UNIVERSAL
LIBRARY

OU_182830

UNIVERSAL
LIBRARY

Osmania University Library

Osmania University Library

Call No. H83 S53P Accession No H 6252

Author [illegible]

Title [illegible]

This book should be returned on or before the date last marked below [illegible]

28 DEC 2005 [illegible] 2002 65

प्रेमचंद और उनका युग

प्रेमचंद और उनका युग

रामविलास शर्मा

विनय गिरि

राजकमल प्रकाशन
नई दिल्ली पटना

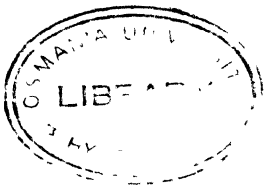

मूल्य : रु 100.00

© डॉ रामविलास शर्मा

पहला संस्करण 1952
तीसरा परिवर्धित संस्करण 1965
पाँचवा परिवर्धित : 1989

प्रकाशक राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड,
1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली-110002

टाइपसैटिंग फोटोटाइप डिवीजन
राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड,
एफ-5, सैक्टर-8, नौएडा-201 301

मुद्रक : गायत्री ऑफसेट प्रेस,
ए-66, सैक्टर-2
नौएडा-201 301

PREMCHAND AUR UNKA YUG
A critical study by Dr Ram Bilas Sharma

ISBN 81-7178-013-0

चौथे संस्करण की भूमिका

इस सस्करण में मैंने एक नया अध्याय जोडा है 'प्रेमाश्रम और गोदान—कुछ अन्य समस्याएँ।' दोनों उपन्यासो मे प्रेमचद ने अवध के किसानो का चित्रण किया है। **प्रेमाश्रम** के आरभ मे उन्होने लिखा है, "लखनपुर बनारस नगर से बारह मील पर उत्तर की ओर एक बडा गाँव है।" इस गाँव की भौगोलिक स्थिति वही है जो **गोदान** मे बेलारी की है और बेलारी के लिए कहा गया है कि वह अवध मे है। **प्रेमाश्रम** मे कुछ पात्र जब-तब अवधी बोलते हैं, भोजपुरी उनमे कोई नहीं बोलता। मनोहर और होरी, बिलासी और धनिया, बलराज और गोबर, राय कमलानद और राय अमरपाल सिह—दोनो उपन्यासो के अनेक पात्रो मे यथेष्ट समानता है। कमलानद और अमरपाल सिह—ये दोनो 'राय साहब', बडे ताल्लुकेदार हैं और दोनो की लखनऊ में कोठियाँ हैं। अवध ताल्लुकदारी का गढ है· दोनो उपन्यासों मे प्रेमचद की निगाह के सामने अवध के किसान हैं।

इन दोनो उपन्यासो को एक साथ पढने से प्रेमचद की कला के विकास को समझने मे सहायता मिलेगी। इन उपन्यासों के अनेक पात्र एक-दूसरे से मिलते-जुलते हैं, किंतु ज्ञानशकर **गोदान** मे नहीं हैं। कारण यह है कि **प्रेमाश्रम** मे प्रेमचद ने किसान-जमीदार सबधो पर ध्यान केंद्रित किया है, **गोदान** मे किसान-महाजन सबधो पर। कुछ विद्वानो ने यह दिखाने का प्रयत्न किया है कि **प्रेमाश्रम** मे वास्तविक समस्या भारतीय-पाश्चात्य संस्कृतियो के द्वद्व की है। यह उपन्यास की सामाजिक विषयवस्तु के अवमूल्यन का असफल प्रयास है, असफल इसलिए कि जिस तथ्य को वे एक जगह अस्वीकारते हैं, उसी को दूसरी जगह स्वीकार भी कर लेते हैं। यही स्थिति **गोदान** की ऋण-समस्या को लेकर भी है। पर यहाँ वे होरी को नई कविता के मोहभंग से जोडकर उसे आतरिक विघटन का प्रतीक बना देते हैं। **प्रेमाश्रम** में गाँधीवाद की विजय है, **गोदान** मे अस्तित्ववाद की! फिर वे यह प्रश्न भी करते हैं · होरी लडते-लडते क्यो नहीं मरता? लड़ते-लडते मरता तो वह ट्रैजेडी का हीरो होता। ऐसे लोग यह समझ बैठे हैं कि **गोदान** में ऋण-समस्या के अलावा और कोई समस्या नहीं है। इस उपन्यास मे प्रेमचंद ने पारिवारिक सबधो पर बहुत गहराई से विचार किया है और सामाजिक

मान-मर्यादा के नए मानदड प्रस्तुत किए है । धनिया, और उसके नेतृत्व मे होरी, ने गर्भवती विधवा झुनिया को आश्रय देकर गॉव के मुखिया-महाजनो के विरोध का जिस दृढता से सामना किया है, उसकी मिसाल प्रेमचद-साहित्य मे अन्यत्र नही है ।

गोदान मे प्रेमशकर नही हैं, इच्छापूर्ति का स्वप्न नही है । सन् 32 मे प्रेमचद, जयशकर प्रसाद और निराला नए यथार्थवाद की भूमि पर आगे बढ रहे हैं । इस व्यापक विकास के सदर्भ मे **गोदान** का मूल्याकन उचित होगा । इस यथार्थवाद की एक विशेषता यह है कि काग्रेसी नेतृत्व के प्रति उसका रूख आलोचनात्मक है, वह उसके विकल्प की खोज करता है । दूसरी विशेषता यह है कि उसका झुकाव वामपक्ष की ओर है, वह स्वाधीन भारत मे नई समाज-व्यवस्था चाहता है । प्रेमचद ने कई जगह बाल्शेविज्म, बोल्शेविक उसूलो की बात की है, समाजवाद का समर्थन किया है, पर उनके सामने मजदूर वर्ग की भूमिका स्पष्ट न थी न तो स्वाधीनता आदोलन मे, न समाजवाद के निर्माण मे । फिर भी प्रेमचद और निराला, ये दोनो लेखक व्यक्तिगत सपत्ति (सामती और पूँजीवादी सपत्ति) के आलोचक है और उनकी आलोचना समाजवादी विचारधारा के प्रसार के लिए महत्त्वपूर्ण है ।

प्रेमचद के समय मे समाजवादी विचारधारा की मुख्य भूमिका थी—स्वाधीनता आदोलन को साम्राज्यविरोधी मार्ग पर सुसगत रूप से आगे बढ़ाना । यद्यपि **प्रेमाश्रम** और **गोदान** मे किसान-जमीदार और किसान-महाजन की समस्याएँ मुख्य हैं, फिर भी **प्रेमाश्रम** मे किसान को सीधे साम्राज्यवादी शासनतत्र का सामना करना होता है और **गोदान** मे भी महाजनी शोषण की पृष्ठभूमि मे बैंकपतियो का पूँजीवाद मौजूद है । प्रेमचद की 'महाजनी सभ्यता' केवल सामान्य पूँजीवादी सभ्यता नही है, वह अतरराष्ट्रीय बैंकपतियो की सभ्यता भी है । प्रेमचद ने ससार की बहुसख्यक जनता को इन बैंकपतियो के चगुल मे फँसा हुआ देखा था । लिखा था, "किसी देश पर राज्य किया जाता है, तो इसलिए कि महाजनो, पूँजीपतियो को ज्यादा से ज्यादा नफा हो । इस दृष्टि से मानो आज दुनिया मे महाजनो का ही राज्य है । मनुष्य समाज दो भागो मे बँट गया है । बडा हिस्सा तो मरने और खपनेवालो का है, और बहुत ही छोटा हिस्सा उन लोगो का, जो अपनी शक्ति और प्रभाव से बडे समुदाय को अपने बस मे किए हुए हैं।" (मगलसूत्र व अन्य रचनाएँ, पृ 191) । उस समय लेनिन की रचनाएँ भारत मे सुलभ नही थी । दुनिया मे महाजनो के राज्य की बात, मनुष्य समाज के दो भागो मे बँटे होने की बात लेनिनवाद के अनुरूप है । हिंदी मे यह बात सबसे पहले प्रेमचद ने कही थी ।

भारत पर इजारेदार पूँजी का दबाव बना हुआ है । स्वाधीनता के बावजूद यह दबाव बढा है । देश के राजनीतिक, आर्थिक, सास्कृतिक जीवन का कोई पहलू नही है जो इस पूँजी की घुसपैठ से मुक्त हो । प्रेमचद ने महाजनी पूँजीवाद की जो आलोचना की है, वह आज के भारत के लिए अत्यत प्रासगिक है । प्रेमचद ने

सामान्य पूँजीवाद की जो आलोचना की है, वह भी अत्यत महत्त्वपूर्ण है । ''यह हवा इतनी जहरीली हो गयी है कि इसमे जीवित रहना कठिन होता जा रहा है'' (उप , पृ 192), प्रेमचद के इस वाक्य मे समाज-व्यवस्था को बदलने की उत्कट आकाक्षा व्यक्त होती है । प्रेमचद-साहित्य के इस प्रेरणादायक सामाजिक महत्त्व को पूँजीपति वर्ग से चिपके हुए लेखक निरतर अस्वीकारते रहे हैं । पहले वे कहते थे, प्रेमचद तात्कालिक समस्याओ पर लिखते है, उनके साहित्य मे शाश्वत मूल्य नही है । अब वे कहते हैं, प्रेमचद ने भारतीय सस्कृति की श्रेष्ठता दिखाने के लिए उपन्यास लिखे है और इस सस्कृति का सारतत्व है अध्यात्मवाद । अध्यात्मवाद से अधिक शाश्वत ससार मे और क्या होगा ?

यही लेखक प्रेमचद-साहित्य के अवमूल्यन की ओर एक अन्य दिशा से भी प्रयत्नशील होते हैं । वे कहते है लेखक प्रेमचद महान् थे किन् व्यक्ति प्रेमचद अत्यत क्षुद्र थे । लेखक का व्यक्तित्व उसके साहित्य मे प्रतिबिबित होता ही है, इसलिए प्रेमचद के साहित्य मे कही क्षुद्रता भी छिपी होगी । आप उसे न ढूँढ पाएँ तो वे आपकी मदद करते है प्रेमचद पहले विधवा-विवाह का समर्थन करते थे बाद को उन्होने अपनी प्रगतिशील विचारधारा त्याग दी थी ।

मंगलसूत्र के देवकुमार लेखक हैं । साठ साल के होनेवाले हैं, अब साहित्य-रचना से सन्यास ले रहे हैं । उनकी नई कृतियो का सम्मान नही होता । उन्हे लगता है, ''मानो साहित्य-ससार सगठित होकर उनका अनादर कर रहा हो ।'' (उप , पृ 206) । साठवी सालगिरह मनाने का प्रस्ताव है । देवकुमार सोचते है (या उनका कोई भक्त सोचता है) ''क्या यह लज्जा और दुख की बात नही है कि जिस महारथी ने अपने जीवन के चालीस वर्ष साहित्यसेवा पर अर्पण कर दिये, वह इस वृद्धावस्था मे भी आर्थिक चिताओ से मुक्त न हो ?'' (उप , पृ 235) । ये दोनो बाते प्रेमचद को निराला से जोडती है । प्रमचद कवि नही थ पर उनकी सजनशील प्रतिभा कवियो की प्रतिभा से बहुत भिन्न नही थी । चेतना मे कुछ बिब उभरे, किसी कहानी मे व्यक्त हुए । फिर कही डूब गए, परिपक्व हुए, अस्फुट अनुभवो को समेटे हुए पुन उभरे, उपन्यास मे व्यक्त हुए । पूस की अँधेरी रात ! हल्कू खेत के किनारे पुरानी गाढे की चादर ओढे, घुटनियो को गरदन मे चिपकाने हुए, जबरा से बाते करता है । —**पूस की रात** मे । माघ के दिन थे । घटाटोप अँधेरा छाया हुआ था । होरी मटर के खेत की मेड पर अपनी मडैया मे लेटा हुआ था । तारतार कबल, फटी हुई मिर्जई और शीत के झोको से गीली पुआल । होरी बेवाय फटे पैरो को पेट मे डालकर अपनी ही गर्म साँसो से अपने को गर्म करने की चेष्टा कर रहा था । —**गोदान** मे ।

प्रेमचद के उपन्यासो के अनेक सदर्भ उनकी कहानियो मे है ।

छापे की दो-चार भूले मैंने सुधार दी है । शेष पुस्तक पूर्ववत् है ।

दिल्ली
8 अगस्त, 1987

रामविलास शर्मा

पहले संस्करण की भूमिका

'हस' के 'प्रेमचद-स्मृति-अक' मे श्री चद्रहासन ने लिखा था—''प्रेमचद जी का स्वर्गवास उत्तर के हिंदी-भाषियो को उतना न खटका होगा जितना कि दक्षिण के हिंदी-प्रेमियो को।''

इस बार की दक्षिण-यात्रा मे इस सत्य का कुछ अनुभव मुझे भी हुआ। मद्रास मे एक रात अपने घर की सीढियो पर बैठे हुए एक तेलुगु-कवि मित्र ने प्रेमचद की एक कहानी से गद्य का रस लेते हुए लगभग एक पैराग्राफ सुना डाला। उन्हें प्रेमचद के न जाने ऐसे कितने पैराग्राफ कठस्थ थे। दक्षिण मे जहाँ भी लोग हिंदी जानते थे, प्रेमचद को भी जानते थे। कही-कही जो लोग हिंदी न भी जानते थे, वे अपनी भाषा के माध्यम से प्रेमचद को जानते थे। तुलसीदास के बाद हिंदी मे यह पहला इतना बडा कलाकार पैदा हुआ था जिसकी रचनाएँ अपनी ही भाषा के क्षेत्र मे नही, सुदूर दक्षिण के गाँवो मे भी पहुँच गई थी। 'हस' के उसी अक मे मद्रास के हिंदी-प्रचारक श्री ब्रजनदन शर्मा ने लिखा था—''मै यह नि:सकोच कह सकता हूँ कि प्रेमचद जी का उपयोग दक्षिण मे ज्यादा हुआ है, पर हिंदीभाषी जनता ने अभी तक प्रेमचद जी से पूरा लाभ नही उठाया है।''

तेनकाशी के पास जब सुदर झरनो के नजदीक एक हिंदी-लेखक-बधु से साहित्य-चर्चा हो रही थी, तब यह सुनने को मिला कि प्रेमचंद ने विषय-वस्तु मे जरूर ऊँची चीज दी है लेकिन कला की दृष्टि से वह 'सेकेड रेट' थे।

ब्रजनदन जी ने कुछ झूठ न लिखा था कि हिंदी-भाषी जनता ने प्रेमचंद जी से पूरा लाभ नही उठाया। बल्कि जनता ने तो लाभ उठाया है, हिंदी-लेखको ने लाभ नही उठाया। लाभ उठाने का प्रमाण यह होना चाहिए कि हमने प्रेमचद की स्वस्थ परपरा का अनुसरण किया हो, उसे आगे बढाया हो। लेकिन कितने लेखको ने उस परपरा को पहचाना है, उसे हिंदी-साहित्य की मूल्यवान विरासत समझा है? हिंदी के अनेक महान् कथाकारो को चीरहरण से फुरसत न मिली; वह अतस्तल की निगूढ भावनाओ का चित्रण करने मे हिंदुस्तान की जनता का दुख-दर्द भूल गए।

'प्रेमचद-स्मृति-अक' मे एक हिंदी-आलोचक ने लिखा था—''रवि बाबू और शरत् बाबू से तुलना करने मे यदि प्रेमचद कुछ हल्के उतरते हैं तो यह प्रेमचंद

अथवा हिंदी की कोई मान-हानि नही है। प्रेमचंद का क्षेत्र ग्रामीण जग और किसानो का हृदय है। यहाँ वे अद्वितीय हैं। किंतु भावों की जिस गहराई मे रवि बाबू अथवा शरत् बाबू पैठते हैं, वह अभी प्रेमचंद की सीमा से बाहर थी।"

आश्चर्य की बात है कि किसान जीवन के अद्वितीय चित्रकार होते हुए भी प्रेमचद मे भावो की वह गहराई न आ पाई जो एक चोटी के कलाकार मे मिलती है। लेकिन बच्चन और अज्ञेय को क्रांतिकारी कलाकार माननेवाले आलोचको से यह आशा भी कैसे की जा सकती है कि वह प्रेमचद के भावो की गहराई तक पैठेगे।

एक दूसरे हिंदी-आलोचक ने लिखा—"जीवन की वे बुनियादी शक्तियाँ, जो पूँजीवाद को नष्ट करने और समाजवाद को स्थापित करने के लिए काम कर रही है, मौजूदा समाज के झस और जन-क्रांति की अनिवार्यता की जडे जमानेवाली कोई सगठित योजना वे नही दे सके।" यह आलोचक उपन्यासकार भी हैं। उन्होने सगठित योजनाओ और कामशास्त्र का अपूर्व समन्वय किया है।

एक दूसरे समालोचक उपन्यासकार ने लिखा है—"प्रेमचद ने अपनी रचनाओ मे मनोविज्ञान को किंचित् प्रश्रय देने का प्रयास अवश्य किया, पर अव्यक्त मे जिस स्तर के मनोविज्ञान को वह प्रश्रय देना चाहते थे, वह यो भी अत्यत छिछला और केवल ऊपरी सतह को छूनेवाला था, तिस पर वह ऊपरी सतह के मनोविज्ञान को भी ठीक से अपना नही पाए।" काश, इन महोदय ने कम-से-कम हिंदी लिखना ही प्रेमचद से सीख लिया होता!

'हस' मे कुछ साल पहले एक लेख निकला था, 'प्रेमचद से पाँच सौ कदम आगे' (मुमकिन है, हजार कदम रहे हो, ठीक याद नही), उसमे लेखको की एक लबी पाँत गिनाई गई थी जो प्रेमचद से आगे भागती चली जा रही थी। जहाँ तक याद है, उस पाँत मे उस लेख के लेखक और पत्र के (उस समय के) सपादक भी शामिल थे।

प्रेमचद से जिस चीज को हिंदी के इन दिग्गज आलोचको और कलाकारो ने नही सीखा, वह यह है कि जनता कला का स्रोत है और उससे अलग रहकर महान् साहित्य की रचना नही की जा सकती।

जनता से अलग रहकर ये कलाकार महान् उपन्यास लिखते रहे है और अगर जनता ने उन्हे प्रेमचद की तरह सम्मानित नही किया तो इसमे कसूर जनता का है। प्रेमचद के साहित्य की परख समालोचक की राजनीतिक सूझ-बूझ और उनके वैज्ञानिक दृष्टिकोण की परख है। टिटिहरी समुद्र की गहराई नही नाप सकती। उसके लिए समुद्र क्या है?—नीला-नीला पानी जिसमे कही-कही लहरे उठती हैं, वरना समतल! प्रेमचद का महत्व दिन-पर-दिन निखरेगा और उसको हम उतना ही ज्यादा समझेगे जितनी ज्यादा गहराई हिंदुस्तान के स्वाधीनता-आंदोलन मे आएगी और उस आदोलन से आलोचक का सबध दृढ़ होगा। सोवियत आलोचक ब्रेस्क्रोव्नी ने उचित गर्व से कहा है—"यह बात बिलकुल साफ है और उसका कारण भी सब जानते हैं कि इस भारतीय लेखक को बहुत दिनो तक उसका प्राप्य नही

जीवन-सग्राम से तटस्थ रहना चाहिए—हिंदी के पत्रों में इस तरह की धारणाओं को जो प्रश्रय मिलता है, प्रेमचंद का साहित्य उनका ध्वंस करता है।

प्रेमचद का साहित्य अपने जमाने के हिंदुस्तान और उसके स्वाधीनता-आदोलन का प्रतिबिंब है। उसमे उस जमाने के सामाजिक जीवन और स्वाधीनता-आदोलन की असगतियाँ भी झलकती हैं। सोवियत आलोचक ब्रेस्क्रोव्नी के शब्दो मे—"प्रेमचद यह नही देखते कि मजदूर-वर्ग वह अकेली शक्ति है जो कष्ट पाती हुई किसान जनता को मुक्त कर सकती है। तो भी इतना जरूरी है कि जब वे किसान-परिवारों के टूटने को चित्रित करते हैं और दिखलाते हैं कि आर्थिक शक्तियाँ किस प्रकार उनको सहानुभूति-शून्य नगरो मे जाने के लिए बाध्य करती हैं, उस समय लेखक मजदूर-वर्ग से हमदर्दी प्रकट करता है, क्योंकि वह मजदूर-वर्ग मे गरीबी और मजदूरी का रास्ता पकडने के लिए मजबूर किसान को ही देखता है।"

आज की राजनीति मे मजदूर-वर्ग के नेतृत्व मे जनता के साम्राज्यविरोधी सयुक्त मोर्चे का बनाना, मजदूरो और किसानो की एकता दृढ होना देश की प्रगति मे एक बहुत बडी मंजिल की फतह होगी। इसलिए प्रेमचद के युग और उनके साहित्य मे जो असगति मिलती है, उसे नजर-अदाज नहीं किया जा सकता। ब्रेस्क्रोव्नी के लेख पर एक हिंदी-सपादक ने टिप्पणी देते हुए लिखा है—"इस लेख मे आलोचक ने मुख्य रूप से प्रेमचद की आरंभिक कृतियों—जैसे 'प्रेमाश्रम', 'सेवासदन', 'सग्राम'—को आधार बनाया है। उनके विश्लेषण से आलोचक ने बडी गहरी पैठ से यह तो बतलाया है कि प्रेमचद के विचारो की दिशा क्या थी; लेकिन उस दिशा मे उनकी प्रगति के सीमात क्या थे, यह आलोचक नही बतला सका है और वह उनकी बाद की कृतियों—जैसे 'गबन', 'गोदान', 'कर्मभूमि', 'मगलसूत्र', 'मानसरोवर' आदि पर भी विचार किए बिना संभव नही है। हो सकता है आलोचक को बाद की कई पुस्तके उपलब्ध न हुई हो। बहरहाल प्रेमचद पर विचार करने की एक ऐतिहासिक दृष्टि आलोचक ने दी है जिसका प्रेमचद के अध्येताओ के लिए बडा महत्व है। उससे यह भी पता चलता है कि सोवियत के साहित्य-प्रेमी किस प्रकार प्रेमचद की ओर झुक रहे हैं।"

ब्रेस्क्रोव्नी ने अपने लेख मे 'रगभूमि' का जिक्र किया है, उससे उद्धरण भी दिया है। 'गोदान' और 'मगलसूत्र' के बारे में उन्होने खासतौर से लिखा है—"अपने अतिम उपन्यास 'गोदान' मे ही आकर प्रेमचंद ने गाँव की जिंदगी को पहले-जैसा बढा-चढाकर, उसका गुणानुवाद करते हुए चित्रण नहीं किया है जैसा कि वे पहले शहर की जिंदगी की बुराइयो की पृष्ठभूमि में किया करते थे। अपने अंतिम और अपूर्ण उपन्यास 'मगलसूत्र' में उन्होंने शहर की ज़िंदगी की बड़ी भयानक तस्वीर खीची है। भारतीय आलोचक इस उपन्यास को क्रांति की पुकार के रूप में देखते हैं।"

इससे साफ जाहिर है कि ब्रेस्क्रोव्नी प्रेमचद की अतिम रचनाओ से अपरिचित नही है। सपादक ने शायद उनके लेख को सरसरी निगाह से देखकर ही उस पर नोट लिख दिया था। मुख्य बात यह है कि प्रमचद मे मजदूर-वर्ग के नेतृत्व की भूमिका के बारे मे एक असगति है और जो लेखक उससे इनकार करते है, वे प्रेमचद या हिदी-जनता का कोई उपकार नही करते।

प्रेमचद की परपरा को 'अलका', 'कल्ली भाट', 'बिल्लेसुर बर्कारहा' के निराला ने अपनाया। उसे 'चकल्लस' और 'क्या-से-क्या' आदि कहानियो के लेखक पढीस ने अपनाया। उस परपरा की झलक नरेद्र शर्मा, अमृतलाल नागर आदि की कहानियो और रेखाचित्रो मे मिलती है। जैनेद्रकुमार, अज्ञेय, अश्क, यशपाल, भगवतीचरण वर्मा आदि के कथा-साहित्य का उस परपरा से काफी फासला है।

मौजूदा पुस्तक मे प्रेमचद की मख्य-मख्य रचनाओ की ही विवेचना की गई है। यह पुस्तक प्रेमचद पर मेरी पहली पुस्तक से बिलकुल भिन्न है। मै यह भी नही कह सकता कि उन पर यह मेरी आखिरी पुस्तक होगी।

हिदी-उर्दू मे खोज करनेवाले विद्यार्थियो से एक विशेष निवेदन है कि वे प्रमचद के खतो को इकट्ठा करने की जिम्मेदारी ले और पत्रिकाओ मे उनके जो लेख बिखरे पडे हो, उन्हे भी एकत्र करे। इससे प्रेमचद-साहित्य के अध्ययन म सहायता मिलेगी।

प्रेमचद हिदुस्तानी जनता के उज्ज्वल भविष्य की पताकी थे। हिदी-लेखक उस उज्ज्वल भविष्य को लाने मे सहायक हो, हमारी सस्कृति और कला प्रेमचद की जातीय परपरा का अनुकरण करती हुई फले-फूले, इस पुस्तक को लिखने का यही उद्देश्य है।

आगरा
विजयादशमी
सवत् 2009 वि

रामविलास शर्मा

तीसरे संस्करण की भूमिका

इस सस्करण मे श्री अमृतराय और श्री मदनगोपाल की प्रेमचद-सबधी पुस्तको की आलोचना जोड दी है। एक नया अध्याय 'समस्याएँ' है जिसमे मुख्यत प्रेमचद, तोल्स्तोय-पथ और गाँधीवाद की चर्चा है। दो-चार बाते आलोचना मे वामपथी अवसरवाद की भूमिका पर भी है।

10 12 65

रामविलास शर्मा

अनुक्रम

1.	प्रेमचद का जीवन	17
2.	सेवासदन	29
3.	प्रेमाश्रम	42
4	निर्मला और गबन	56
5.	कायाकल्प और रगभूमि	70
6.	कर्मभूमि	81
7.	गोदान	96
8.	कहानियाँ	109
9	सपादक, विचारक और समालोचक	119
10.	प्रगतिशील साहित्य और भाषा की समस्या	134
11	युग-निर्माता प्रेमचद	149
12	समस्याएँ	152
13.	कलम का सिपाही —प्रेमचद	172
14.	श्री मदनगोपाल-कृत मुशी प्रेमचद	185
15.	प्रेमाश्रम और गोदान कुछ अन्य समस्याएँ	190

1. प्रेमचंद का जीवन

प्रेमचद हिंदुस्तान की नई राष्ट्रीय और जनवादी चेतना के प्रतिनिधि साहित्यकार थे। जब उन्होने लिखना शुरू किया था, तब ससार पर पहले महायुद्ध के बादल मँडरा रहे थे। जब मौत ने उनके हाथ से कलम छीन ली, तब दूसरे महायुद्ध की तैयारियाँ हो रही थी। इस बीच विश्व-मानव-सस्कृति मे बहुत से परिवर्तन हुए। इन परिवर्तनो से हिंदुस्तान भी प्रभावित हुआ और उसने उन परिवर्तनो मे सहायता भी की। विराट मानव-सस्कृति की धारा मे भारतीय जन-सस्कृति की गगा ने जो कुछ दिया, उसके प्रमाण प्रेमचद के लगभग एक दर्जन उपन्यास और उनकी सैकडो कहानियाँ हैं।

करोडो मनुष्यो का सहार करनेवाले दो महायुद्धो के बीच प्रेमचद की वाणी अपने भविष्य मे अटल विश्वास रखनेवाली भारतीय जनता की वाणी है। राजनीतिज्ञो के कोलाहल और तोपो की गडगडाहट को भेदती हुई यह वाणी आज और स्पष्ट सुनाई देती है। तमाम कठिनाइयो और बाधाओ को पार करती हुई भारतीय जनता से प्रेमचद कहते है—"यह अत नही है, और आगे बढो, और आगे बढो जब तक कि रगभूमि में विजय न हो, जब तक कि देश का कायाकल्प न हो, जब तक कि इस कर्मभूमि मे गबन और गोदान के होरी और रमानाथ का त्रस्त होना बद न हो और हमारा देश एक नई तरह का सेवासदन, एक नई तरह का प्रेमाश्रम न बन जाए।"

आज से सत्तर-बहत्तर साल पहले सन् 1880 मे बनारस के पास लमही गाँव मे प्रेमचद एक किसान के घर पैदा हुए थे। बहुत से गरीब किसानो की तरह उनके पिता का गुजारा किसानी से न हुआ और उन्होने नौकरी कर ली। जब प्रेमचद का जन्म हुआ, तब इनके पिता को बीस रुपए तनखाह मिलती थी। जब वे सात साल के थे, तभी उनकी माता का स्वर्गवास हो गया। जब पद्रह साल के हुए तब उनकी शादी कर दी गई और सोलह साल के होने पर उनके पिता का भी देहात हो गया। जैसा कि लोग कहते हैं; लडको की यह उम्र खेलने-खाने की होती है लेकिन प्रेमचद को तभी से घर सँभालने की चिंता करनी पडी। तब वह नवे दर्जे मे पढते थे और

उनकी गृहस्थी म दो सौतेले भाई, सौतेली माँ और खुद उनकी स्त्री थी। क्रिया-कर्मो मे साधारण आदमी को किस तरह ठगा जाता है, इसका कडवा अनुभव प्रेमचद को लडकपन ही मे हो गया। सौतेली माँ का व्यवहार, बचपन मे शादी, पडे-परोहित का कर्मकाड, किसानो और क्लर्को का दखी जीवन—यह सब प्रेमचद ने सोलह साल की उम्र मे ही देख लिया था। इसीलिए उनके ये अनुभव एक जबर्दस्त सचाई लिए हुए उनके कथा-साहित्य मे झलक उठे थे।

उन दिनो नाज बीस सेर का था लेकिन तब के लिए यह महँगाई थी। प्रेमचद गाँव मे रहते थे, ट्यूशन करते थे। शहर पढने जाते थे और पाँच मील वापस आकर रात को कप्पी जलाकर खुद पढने बैठते थे। हाई स्कूल पास करने के बाद कॉलेज मे वह तभी भर्ती हो सकते थे जब उनकी फीस माफ हो जाए और इसके लिए सिफारिशो की जरूरत थी। इसी समय मेहनत से चूर होकर वह बीमार पड गए और दो हफ्ते तक नीम का काढा पीते रहे। बडी मुश्किल से कॉलेज मे भर्ती हुए और जैसे-तैसे पढाई जारी रखी, लेकिन हिसाब मे दो बार फेल हुए। तब इटर-मिडिएट मे गणित ऐच्छिक विषय न था।

प्रेमचद अब शहर मे रहने लगे। पाँच रुपए का ट्यूशन किया। एक वकील के लडके को पढाते थे और उसी के अस्तबल के ऊपर एक कच्ची कोठरी मे रहा करते थे। खुद खाना पकाते थे, बर्तन धोते थे और उपन्यास पढते थे। कहानियाँ और उपन्यास पढने का चस्का उन्हे शायद पहले ही लग चुका था। श्री रघुपति सहाय 'फिराक' ने लिखा है कि उनकी दोस्ती अपने एक ऐसे सहपाठी से हो गई थी जिसका बाप तमाखू बेचता था। तमाखू के पिडो के पीछे जमकर दोनो दोस्त हुक्का पीते थे और 'तिलिस्म होशरूबा' पढते थे जिसे उर्दू का 'चद्रकाता' और 'भूतनाथ' समझना चाहिए। 13 साल की उम्र मे ही प्रेमचद ने रतननाथ 'सरशार', मिरजा रुसवा और मौलाना शरर के उपन्यासो से परिचय प्राप्त कर लिया था। गोरखपुर के बद्रिलाल बकसेलर से कजियाँ और नोट्स लेकर वह अपने स्कूल के लडको को बेचा करते थे और इसके बदले उसकी दुकान पर उपन्यास पढा करते थे। उर्दू मे पुराणो के जो अनवाद छपे थे, वे भी उन्होने पढ डाले थे। प्रेमचद मे पढने का बेहद चाव था। पढने के रास्ते मे जितनी ही ज्यादा कठिनाइयाँ आई, उतना ही पढने के लिए उनका चाव और बढ गया। वह कितना पढते थे, इसका अदाज 'तिलिस्म होशरूबा' के आकार-प्रकार का ध्यान करने से लग जाता है। इसके बारे मे उन्होने खुद लिखा है—"इस बृहद् तिलस्मी ग्रथ के 17 भाग उस वक्त निकल चुके थे और एक-एक भाग बडे सुपर रायल के आकार के दो-दो हजार पृष्ठो से कम न होगा। और इन 17 भागो के उपरात उसी पुस्तक के अलग-अलग प्रसगो पर पचासो भाग छप चुके थे।" (*'मेरी पहली रचना'*)

ये उपन्यास प्रेमचद के दखी बचपन के साथी थे। वे मुसीबतो में उन्हे ढाढ़स बँधाते थे और कुछ देर के लिए उन्हे ट्यूशनो, सौतेली माँ और महाजनो की दुनिया

से दूर ले जाते थे। इन्हे पढने से उनकी कल्पनाशक्ति प्रखर हुई और खुद भी लिखने की उन्हे प्रेरणा मिली। लेकिन प्रेमचद ने 'तिलिस्म होशरूबा' का रास्ता नही अपनाया। उनकी रचनाएँ भारतेदु हरिश्चद्र, बालकृष्ण भट्ट और गधाकृष्णदास के कथा-साहित्य का अगला और स्वाभाविक कदम थी।

स्कूल मे पढत हुए कर्ज लेने और महाजनो की निगाह बचाने का अनुभव भी प्रेमचद को हुआ। एक दर्जी से कपडे बनवाए थे। उसे दो-ढाई रुपए की रकम भुगताने मे तीन साल लग गए। एक बेलदार उनसे हिंदी पढा करता था। उससे उन्होने आठ आने उधार लिए थे जो उसने पाँच साल बाद उनके गाँव पहुँचकर वसूल किए।

प्रेमचद ने बेलदार को हिंदी पढाने का जिक्र अपने स्कूली जीवन के सिलसिले मे किया है जिससे मालूम होता है कि उन्होने तब हिंदी का अभ्यास भी कर लिया था। उनका वह जीवन हिंदुस्तान के औसत गरीब विद्यार्थी का जीवन था। एक बार महाजन से उधार न मिलने पर सिर्फ रोटी का प्रबध करने के लिए उन्हे अपनी किताबे तक बेचनी पडी थी। इसका मार्मिक वर्णन उन्होने इस तरह किया है—"जाडो के दिन थे। पास एक कौडी न थी। दो दिन एक-एक पैसे का खाकर काटे थे। मेरे महाजन ने उधार देने से इन्कार कर दिया था। सकोचवश मै उससे माँग न सका था। चिराग जल चुके थे। मै एक बकसेलर की दकान पर एक किताब बेचने लगा। एक चक्रवर्ती-गणित-कर्जी दो साल हुए खरीदी थी, अब तक उसे बडे जतन से रखे हुए था, पर आज चारो ओर से निराश होकर मैने उसे बेचने का निश्चय किया। किताब दो रुपए की थी, लेकिन एक रुपए पर सौदा ठीक हुआ।"

(*'जीवन सार'*)

यह उन्नीसवी सदी का आखिरी साल था। किताब बेचते हुए उनकी मुलाकात एक मामूली स्कूल के हेडमास्टर से हो गई जिसने अठारह रुपए पर इन्हे अपने यहाँ मास्टर रख लिया। इस तरह प्रेमचद ने बीसवी सदी मे प्रवेश किया।

1904 मे उन्होने उर्दू-हिंदी मे ओरियटल इलाहाबाद यूनिवर्सिटी का स्पेशल वर्नाक्युलर इम्तहान पास किया। इसके बाद 1905 मे ट्रेनिंग कॉलेज से पढाने की सनद पाई। उनके सर्टीफिकेट पर खासतौर से लिख दिया गया था कि वह हिसाब पढाने के अयोग्य है—"Not qualified to teach Mathematics"। 1910 मे उन्होने अग्रेजी, दर्शन, फारसी और इतिहास लेकर इटर किया और 1919 मे अग्रेजी, फारसी और इतिहास लेकर बी ए किया। प्रेमचद को जहाँ वास्तविक शिक्षा मिली वे विश्वविद्यालय दूसरे ही थे। उनके अध्यापक लमही के किसान, बनारस के महाजन और किताबो के नोट्स बिकवानेवाले बुकसेलर थे। उनकी टेक्स्ट बुके वे मैकडो उपन्यास थे जो उन्होने लाइब्रेरियो, बुकसेलरो की दुकानो और तमाखूवाले दोस्त के घर पर पढे थे। भले ही वह गणित पढने योग्य न रहे हो, वह हिंदुस्तानी समाज का बीजगणित अच्छी तरह समझ गए थे और अपने

1929-30 मे वह 'माधुरी' का सपादन करते थे। यद्यपि उनके समय की 'माधुरी' ने हिंदी की अपूर्व सेवा की, फिर भी वह उसे राष्ट्रीय आदोलन का साथ देनेवाली नए जनवादी विचारो की समर्थक पत्रिका न बना सकते थे। ऐसी पत्रिका को वह बहुत जरूरी समझते थे, इसीलिए सन् '30 के अवज्ञा-आदोलन के शुरू होते-होते उन्होने 'हस' का प्रकाशन भी आरभ कर दिया। इस तरह 'हस' का जन्म स्वाधीनता-आदोलन की प्रगति के साथ हआ और इसलिए अग्रेज हकूमत की कोप-दृष्टि भी उस पर पडी। प्रेमचद किस बहादुरी से अपने प्रिय पत्र 'हस' के लिए लडे थे, इसका पता श्री जैनेद्रकुमार को लिखे हुए उनके पत्र से लगता है। उन्होने लिखा था—"'हस' पर जमानत लगी। मैंने समझा था आर्डिनेस के साथ जमानत भी समाप्त हो जाएगी। पर नया आर्डिनेस आ गया और उसी के साथ जमानत भी बहाल कर दी गई। जून और जलाई का अक हमने छापना शुरू कर दिया है, पर मैनेजर साहब जब नया डिक्लेरेशन देने गए तो मैजिस्ट्रेट ने पत्र जारी करने की आज्ञा न दी, जमानत माँगी। अब मैंने गवर्नमेंट का एक स्टेटमेंट लिखकर भेजा है। अगर जमानत उठ गई तो पत्रिका तरत ही निकल जाएगी। छप, कट, सिलकर तैयार रखी है। अगर आज्ञा न दी तो समस्या टेढी हो जाएगी। मेरे पास न रुपया है, न प्रॉमिसरी नोट, न सिक्योरिटी। किसी से कर्ज लेना नही चाहता। यह शुरू साल है, चार-पाँच सौ वी पी जाते, कुछ रुपए हाथ आते। लेकिन वह नही होना है।"

(*प्रेमचद-स्मृति-अक, 'हस'*, मई 1937)

सन् '36 मे 'हस' से फिर जमानत माँगी गई। तब वह हिंदी-साहित्य परिषद् की देख-रेख मे निकलता था। परिषद् ने जमानत देने के बदले पत्र को बद कर देना ही अच्छा समझा। प्रेमचद ने बीमारी की हालत मे भी जमानत देने का प्रबध कराया और पत्र को जिदा रखा।

प्रेमचद ने 'हस' को स्वाधीनता-सग्राम का एक सबल सैनिक बना दिया था। उनके जीवन की सबसे सुदर उमगे इस पत्र के साथ जुडी हुई थी। जैनेद्रकुमार जी के शब्दो मे "'हस' के समारम्भ को लेकर वह उस समय नवयुवक की भाँति अपने को अनुभव करते थे।" (*'हस'*, मई 1937)

हाथ-पैर हिला सकने मे भी असमर्थ जब प्रेमचद रोग-शय्या पर पडे हुए जैनेद्र से अपने जीवन की अतिम रात मे बाते कर रहे थे, तब भी उन्हे अपने परिवार से ज्यादा 'हस' का ध्यान था।

"रात के बारह बजे 'हस' की बात होकर चुकी थी। अपनी आशाएँ, अपनी अभिलाषाएँ, कुछ शब्दो मे, और अधिक आँखो से, वह उस समय मुझ पर प्रकट कर चुके थे। 'हस' की और साहित्य की चिन्ता उन्हे तब भी दबाए थी। प्रकार-प्रकार की चिता-दुश्चिता उस समय प्रेमचद जी के प्राणो पर बोझ डालकर बैठी हुई थी। मैं या कोई उसको उस समय किसी तरह नही बटा सकता था। चिंता का केद्र यही था कि 'हस' कैसे चलेगा, नही चलेगा तो क्या होगा। 'हस' के लिए तब

भी जीने की आस उनके मन मे थी और 'हस' न जिएगा यह कल्पना उन्हे असहय थी।" ('हस', उप)

'हस' के भावी जीवन की कल्पना करते हुए प्रेमचद ने अपनी जीवन-यात्रा समाप्त की।

प्रेमचद बडी जीवट के आदमी थे। बिना उफ किए वह तकलीफे सह सकते थे।

मृत्यु-शय्या पर—"उन्हे नीद न आती थी, तकलीफ बेहद थी। पर कराहते न थे, चुपचाप आँख खोलकर पडे थे।" (*जैनेद्रकुमार*, उप)

यही प्रेमचद कप्रिन का उपन्यास 'यामा' पढते-पढते बच्चो की तरह फूट-फूटकर रोने लगे थे। वह एक अत्यत सहृदय और परदु ख-कातर व्यक्ति थे। उन्होने जीवन-भर कठिनाइयो का सामना किया, लेकिन अपने मन मे उन्होने कभी कटुता नही आने दी। उनके आँसू हृदय मे छिपे रहते थे, तरल आँखो मे हँसी नाचा करती थी। जिस किसी ने भी उनके सस्मरण लिखे है, उसने उनके कहकहो का जिक्र अवश्य किया है। प्रेमचद ने निराशावादी कवियो की तरह वेदना के गीत नही गाए। कठिनाइयो को चुनौती देते हुए उन्होने उनका मुकाबला किया। मनुष्य मे अटूट विश्वास—यह उनके हास्य का स्रोत था।

प्रेमचद और नवाबराय—इन नामो को लेकर सुदर्शन जी से उनकी बातचीत इस तरह हुई—

"आपने नवाबराय नाम क्यो छोड दिया?"

"नवाब वह होता है जिसके पास कोई मुल्क भी हो। हमारे पास मुल्क कहाँ?"

"बे-मुल्क नवाब भी होते है।"

"यह कहानी का नाम हो जाए तो बुरा नही, मगर अपने लिए यह नाम घमडपूर्ण है। चार पैसे पास नही और नाम नवाबराय। इस नवाबी मे प्रेम भला, जिसमे ठडक भी है, सतोष भी है।" ('*हस*', मई 1937)

प्रेमचद का नवाबराय नाम किस तरह छिना था, यह हम ऊपर लिख चुके हैं, लेकिन अपनी मुसीबतो पर हँसते हुए उन्होने 'नवाब' को निरर्थक ठहराया और 'प्रेमी' की ठडक और सतोष का अकाट्य तर्क पेश किया।

प्रेमचद का हास्य उनसे मिलनेवाले को नि शस्त्र कर देता था—गर्व या सकोच जो भी अस्त्र उसके पास होता, उसे डालना पडता। श्री इलाचद्र जोशी ने किन्ही बातो पर प्रेमचद का विरोध किया था। उनसे अपने मिलने का हाल जोशी जी ने यो लिखा है—"प्रारभ मे उन्होने कुछ सकोच के साथ बाते अवश्य की, पर कुछ ही देर बाद वह ऐसे खुले कि दोनो को ऐसा लगा जैसे हम लोगो की बडी पुरानी मैत्री हो। यह बात प्रेमचद जी के हृदय की असाधारण उदारता के कारण ही सभव हुई थी।"

पहले से अपरिचित एक सज्जन से वह यो मिले—

"पता लगाकर शाम के वक्त उनके मकान पर पहुँचा। बाहर थोडी देर

ठहरकर खाँ-खूँ करने पर भी कोई नजर न आया तो दरवाजे पर गया और झाँककर भीतर कमरे मे देखा। वहाँ एक आदमी, बडी-बडी मूँछो के कारण जिसका चेहरा छिपा-सा था, फर्श पर बैठकर एकाग्रचित्त से कुछ लिख रहा था। मैंने सोचा कि लेखक श्रेणी का होगा और आगे बढकर बोला कि मैं श्रीयुत प्रेमचद जी से मिलना चाहता हूँ। उन्होने झट आँखे उठाकर आश्चर्य से मुझे निहारा, कलम रख दी और मुँह-भर हँसी भरते हुए बोले—'खडे-खडे क्या मुलाकात करेगे? बैठिए और मुलाकात कीजिए।' हमने करीब दो घटे तक अनेक विषयो पर बातचीत की। ऐसी बे-तकल्लुफी, ऐसी सादगी, ऐसी सरलता एकदम अप्रतीक्षित थी।"

(श्री ए चद्रहासन, 'हस', मई 1937)।

इस तरह प्रेमचद अपने अपरिचित प्रेमियो का सकोच दूर कर देते थे। काम मे बुरी तरह व्यस्त होते हुए भी वह मिलनेवालो के लिए, विशेषकर नए लेखको के लिए, घटो समय निकाल लेते थे। दक्षिण भारत से चद्रहासन आए हैं, लिखना छोडकर दो घटे उनसे बातो मे गुजार दिए। जब तरुण लेखक जैनेद्रकुमार से मिले तो "सात बज गए, साढे सात बज गए, आठ होने आए, बातो का सिलसिला टूटता ही न था। बातो का सिलसिला अभी और चलता लेकिन भीतर से खबर आई कि अभी डॉक्टर के यहाँ से दवा तक लाकर नही रखी गई है, ऐसा हो क्या रहा है! दिन कितना चढ गया, क्या, इसकी भी खबर नही है?

"प्रेमचद अप्रत्याशित भाव से उठ खडे हुए। बोले—जरा दवा ले आऊँ जैनेद्र! देखो, बातो मे कुछ ख्याल ही न रहा।

"कहकर इतने जोर से कहकहा लगाकर हँसे कि छत के कोनो मे लगे मकडी के जाले हिल उठे।" (उप)

प्रेमचद को बाते करने का शौक नही था, लेकिन वह किसी भी लेखक और साहित्य-प्रेमी से ऐसे मिलते थे, जैसे कोई सगा मिला हो। बिरादरी का आदमी मिले, फिर भी खोलकर कोई लेखक बात न करे? यही बात प्रेमचद के समसामयिक निर्द्वद्व कलाकार निराला मे भी रही है, जो बाते करने के सिवा अपनी शक्ति-भर, और शक्ति के बाहर भी, साहित्य-प्रेमियो का सत्कार भी करते थे। एक पीडित जाति के लेखको मे ऐसा सुहृदभाव होना आवश्यक और स्वाभाविक, दोनो है।

फिफ्थ इयर के विद्यार्थी जनार्दनराय ने पहली ही बार उनके दर्शन किए थे लेकिन, तभी—"मैंने कहानियाँ निकाली, उपन्यास का पोथा निकाला और प्रेमचद जी के आगे रख दिया और उन्होने सब काम छोडकर वे कृतियाँ हाथ मे ले ली। शायद किसी की कृतियाँ हाथ मे लेकर उसे जाँच-पडताल के बिना वे नीचे न रखते थे।" (उप)

प्रेमचद से मिलनेवालो ने जो सस्मरण लिखे है, उनमे अक्सर इस बात का जिक्र मिलता है कि प्रेमचद बैठे लिख रहे थे। वह सवेरे तो लिखते ही थे, काम आ पडने

पर किसी भी वक्त कलम चलाते रहते थे। सन् '34 मे जब सुदर्शन जी उनसे मिलने गए तब शाम हो गई थी और प्रेमचद लिखते जा रहे थे। लिखने मे वह एक मजदूर की तरह परिश्रम करते थे और जो लोग लिखना बद कर देते थे, उन्हे फटकारते भी थे। उन्होने श्री जनार्दनदराय से कहा था—"हिंदी मे आज हमे न पैसे मिलते है, न यश मिलता है। दोनो ही नही। इस ससार मे लेखक को चाहिए, किसी की भी कामना किए बिना लिखता रहे।" (उप)

इस दृढ निश्चय से प्रेमचद ने साहित्य-रचना की थी, इसलिए कि वह जानते थे कि भले ही धन और यश न मिले, उनके साहित्य से जनता का हित अवश्य होगा।

प्रेमचद पर जिसने भी लिखा है, उनकी सादगी की तारीफ किए बिना नही रहा। वह ऐसे लेखक थे जो हमेशा आगे बढना चाहते थे और कितनी भी बडी सफलता पाने पर हाथ पर हाथ रखकर बैठना जिन्होने सीखा न था। इसलिए उनमे एक महान् लेखक का आत्मविश्वास था तो वैसी ही नम्रता भी। बनावट उन्हे छू न गई थी। जो भीतर थे, वही बाहर। मन, वचन, कर्म की एकता उनके चरित्र की सबसे बडी विशेषता थी। यही विशेषता उनके उपन्यासो के नायको मे भी मिलती है। जैसा उनका सीधा और सच्चा मन था, वैसा ही सरल उनका जीवन था।

मृत्यु से एक साल पहले जैनेद्रकुमार जी ने उन्हे नीम की सीक से दाँत कुरेदते हुए धूप मे खाट पर बैठे देखा था जहाँ होली खेलनेवालो ने उन्हे रग से तर कर दिया था। श्री बैजनाथ केडिया ने देखा था, बाहर बरामदे मे चटाई पर बैठे कुछ लिख रहे हैं। किसी सस्था के बुलावे पर पटना पहुँचे तो वहाँ वाले सज्जन इन्हे पहचान न सके, क्योंकि उन्होने जो चित्र उपन्यास-सम्राट् का बना रखा था प्रेमचद उससे बिलकुल भिन्न थे। दूसरे दिन मुलाकात होने पर उन सज्जन ने न पहचान पाने की अपनी बेबसी का जिक्र किया तो उन्होने कहा—"जब तुम मुझे नही पहचानते थे और न मैं तुम्हे, तो प्रेमचद कहकर पुकारते। तो इससे मेरी इज्जत थोडे कम हो जाती।" (उप, पृष्ठ 950)

"प्रेमचद नौजवानो के लेखक थे, नई पीढी के लेखक थे। वह साहित्य के सौदागरो से दूर रहते थे, दिखावे और प्रदर्शन से घृणा थी। श्री शांतिप्रसाद वर्मा ने इस सिलसिले की एक मनोरजक घटना का वर्णन किया है। उन्होने नागपुर स्टेशन के पास प्रेमचद को धूप मे खडे तपते हुए देखा। साहित्य-सम्मेलन का अधिवेशन था। प्रेमचद उसमे बुलाए गए थे। धूप मे इसलिए खडे थे कि दूसरी गाडी आने पर और सवारियाँ बिठाकर शहर ले जाएँ, अकेले प्रेमचद को ले जाने से पैसे ज्यादा खर्च होते। इसके बाद एक दिन जब साहित्य-परिषद् के लिए सभापति न मिल रहा था तब किसी ने आकर कहा कि आप ही सभापति हो जाइए। प्रेमचद ने सप्रेम अस्वीकार कर दिया।" (*प्रेमचद उनकी कृतियाँ और कला*, 1949, पृष्ठ 134)

एक बार वह दिल्ली साहित्य-सम्मेलन में गए थे। वहाँ लोगो को शब्दो पर और पदो के लिए झगडते देखकर उन्होने जैनेद्रकुमार जी से कही ठडी हवा खाने की

पीडितो का मानसिक सबल है।

प्रेमचद की आवश्यकताएँ हिंदुस्तान के एक साधारण किसान की आवश्यकताएँ थी। उन्हे भी पूरा करने के लिए उन्हे जी-तोड परिश्रम करना पडा। उनकी प्रतिभा पूरे विकास पर थी, जब 'मगलसूत्र' को अधूरा छोडकर उनकी लेखनी ने विश्राम लिया। वह जिंदगी को प्यार करते थे, मौत से न डरते थे लेकिन मरना भी न चाहते थे। वह लिखना चाहते थे, अपने देश और जनता की और भी सेवा करना चाहते थे। जब 'सोजे वतन' की प्रतियाँ जलाई गई, तब से लेकर 'हस' के लिए जमानत देने तक—और आखिरी जमानत उन्होंने अपनी मृत्यु के साल ही दी थी—उन्हे बराबर ब्रिटिश साम्राज्यवाद से टक्कर लेनी पडी। यह कहना सच होगा कि प्रेमचद देश की आजादी के लिए लडते हुए शहीद हुए और उनका खून अंग्रेज साम्राज्यवादियो के सिर पर है।

जिस समय मजबूर होकर उन्होने 'हस' साहित्य-परिषद् को दे दिया था, इस विचार से कि छपाई से प्रेस चलेगा, उस समय उनके पेट मे अल्सर था और मुँह से खून आता था। साहित्य-परिषद् ने पचास रुपए की बचत के लिए उसे सस्ता-साहित्य-मडल को दे दिया। प्रेमचद ने एक मित्र को सच्ची कडवी बात लिखी थी—"बनियो के साथ काम करके यह सिलासिला कि तुमने 'हस' मे ज्यादा रुपया खर्च कर दिया। इसके लिए मैंने दिलो-जान से काम किया। बिलकुल अकेले अपने वक्त और सेहत का कितना खून किया, इसका किसी ने लिहाज न किया।" (अख्तरहुसैन रायपुरी को पत्र, श्री हसराज 'रहबर' द्वारा 'प्रेमचद जीवन और कृतित्व' मे उद्धृत)।

भले ही कुछ स्वार्थियो ने लिहाज न किया हो, हिंदुस्तान के तमाम देशप्रेमी लेखको और पाठको के लिए प्रेमचद की जीवन-स्मृति एक निधि है, जिसकी वे प्राण-पन से रक्षा करेगे।

2. सेवासदन

'सेवासदन' से पहले हिंदी-उपन्यास-साहित्य मे क्या था ? कई आलोचको ने लिखा है कि देवकीनदन खत्री के 'चद्रकाता' आदि के सिवा कुछ नही था। हिंदी-साहित्य का इतिहास देखने पर यह धारणा निर्मूल सिद्ध होती है।

'सेवासदन' से पहले हिंदी मे कथा-साहित्य की एक परपरा कायम हो रही थी जिस पर ध्यान देने से 'सेवासदन' उसी का एक अगला बढा हुआ कदम मालूम होता है। इससे प्रेमचद की मौलिकता पर बट्टा नही लगता, बल्कि वह अपने वास्तविक रूप मे हमारे सामने आती है। भारतेद-युग के बहुत-से निबध चरित्र-चित्रण और कथोपकथन की दृष्टि से उपन्यास की सीमा को छूते हुए दिखाई देते है। खासकर उनके व्यग्य और हास्य मे, सजीव शैली म और सामाजिक समस्याओ की छान-बीन मे प्रेमचद के उपन्यासो से बहुत बडी समानता दिखाई देती है। भारतेद के निबध 'एक अद्भुत स्वप्न', 'स्वर्ग मे विचार सभा का अधिवेशन', राजा शिवप्रसाद सितारेहिंद का 'राजा भोज का सपना', राधाचरण गोस्वामी का 'यमपुर की यात्रा' आदि का वहाँ जिक्र किया जा सकता है। वर्तमान समाज मे शिक्षा की विडबना, धार्मिक पाखड द्वारा समाज-सुधार का विरोध, अग्रेज शासको द्वारा जनता का उत्पीडन इन निबधो के विषय हैं। प्रेमचद ने इन्ही विषयो को लेकर अपना विशाल कथा-साहित्य रचा था। इसलिए यह समझना भूल होगी कि हिंदी-लेखको ने जनता की शिक्षा और उसके मनोरजन के लिए तिलिस्माती किस्से-कहानियो के अलावा और कुछ न दिया था।

बात निबधो तक सीमित नही है। भारतेदु हरिश्चद्र की प्रेरणा से सामाजिक उपन्यासो का सूत्रपात हो चुका था। भारतेदु ने अपने एक पत्र मे लिखा था—"जैसे भाषा मे अब कुछ नाटक बन गए हैं, अब तक उपन्यास नही बने हैं। आप या हमारे पत्र के योग्य सहकारी सपादक जैसे बाबू काशीनाथ व गोस्वामी राधाचरण जी कोई भी उपन्यास लिखे तो उत्तम हो।"

श्रीनिवासदास का 'परीक्षा गुरु' और बालकृष्ण भट्ट का 'सौ अजान एक सुजान' उल्लेखनीय हैं। इन उपन्यासो मे पुरानी आलकारिक शैली को तिलाजलि दे दी गई है; भाषा और चरित्र-चित्रण मे स्वाभाविकता है यद्यपि कही-कही

उपदेशो के बोझ से कथा दब भी गई है। भट्ट जी के 'सौ अजान एक सुजान' से एक उद्धरण देना काफी होगा। गर्मी की दोपहर का वर्णन है—

"कोई-कोई बडी जगेरैतिन गृहस्थी का सब काम शेष होते देख जेठ के दीर्घ दोपहर की ऊब दूर करने को सूप की फटकार से अपने पडोसी के विश्राम मे विक्षेप डाल रही है। हवा के साथ लडनेवाली कोई कर्कशा न लडेगी, तो खाया हुआ अन्न कैसे पचेगा, यह सोच अपने पडोसियो पर बाण से तीखे और रूखे वचन की वर्षा कर रही है। खेलवाडी बालक, जिन्हे इस दोपहर मे भी खेलने से विश्राम नही है, गधे हाँकते हुए दूसरे-दूसरे खेल का बदोबस्त कर रहे है। बगलो पर साहब लोगो के पदाघात का रसिक पखा-कुली अपने प्रभु के पाद-पद्म को मानो झुकझुककर प्रणाम करता-सा ऊँघ रहा है, पर पखे की डोरी हाथ से नही छोडता।"

बालकृष्ण भट्ट मे उपन्यासकार की व्यापक दृष्टि थी जो सूप फटकारने से लेकर अंग्रेज बहादुर के लिए कुली के पखा खीचने तक सभी घटनाओ को देखती थी। उनके पास सफल उपन्यासकार की वह सजीव व्यग्यपूर्ण शैली थी जो पाठक के राष्ट्रीय आत्मसम्मान को सचेत कर देती थी।

'सेवासदन' इस वाक्य से शुरू होता है—"पश्चात्ताप के कडवे फल कभी-न-कभी सभी को चखने पडते हैं, लेकिन और लोग बुराइयो पर पछताते है दरोगा कृष्णचद्र अपनी भलाइयो पर पछता रहे थे।"

इस तरह का व्यग्य भारतेदु-युग की अपनी विशेषता थी और प्रेमचद उसके सच्चे उत्तराधिकारी थे। लेकिन भारतेदु-युग के निबधो और उपन्यासो के पढनेवाले बहुत थोडी सख्या मे थे। 'चद्रकाता' और 'तिलिस्म होशरूबा' के पढनेवाले लाखो थे। प्रेमचद ने इन लाखो पाठको को 'सेवासदन' का पाठक बनाया, यह उनका युगातरकारी काम था। इन पाठको की सख्या का अदाज किताबो की बिक्री और सस्करणो से नही लगाया जा सकता। शहर या कस्बे के किसी पुस्तकालय मे जाकर प्रेमचद की किताबो की हालत देखिए। तरकारी काटनेवाली स्त्रियो के हाथो से लेकर लाठी को तेल पिलानेवाले दरबानो की उँगलियो तक से उनके सफे पलटे जाने से वे किस खस्ता हालत मे दिखाई देती है। प्रेमचद ने 'चद्रकाता' के पाठको को अपनी तरफ ही नही खीचा, 'चद्रकाता' मे अरुचि भी पैदा की, जन-रुचि के लिए उन्होने नए मापदड कायम किए और साहित्य के नए पाठक—और पाठिकाएँ भी—पैदा किए। यह उनकी जबरदस्त सफलता थी।

यह सफलता उन्हे आसानी से नही मिली। उपन्यास को जनता तक पहुँचाने मे ही उन्हे वर्षो लग गए। 'सेवासदन' उन्होने युद्ध-काल मे लिखा था। सरशार और मिर्जा रुसवा को काले कोसो पीछे छोडते हुए प्रेमचद ने यह उपन्यास पहले उर्दू मे लिखा था। उर्दू मे अपना साहित्य प्रकाशित करने और उसे जनता तक पहुँचाने मे अनेक कठिनाइयो का अनुभव कर चुके थे। अत मे उन्होने उसे हिंदी मे छपवाया।

वेश्या-जीवन पर हिंदी मे पहले भी उपन्यास लिखे गए थे और बाद को भी। हिंदी के इन उपन्यासों मे कही पर तो वेश्या-जीवन मूल कथा के सिलसिले में आ गया है, कहीं-कही वह स्वय मूल कथा है। कुछ उपन्यासों मे धनी लडको को बिगडते दिखाकर—जिनके घर मे अक्सर सुदर स्त्री भी होती थी—लेखक पाठको को सावधान करता था कि वे इस तरह कुमार्ग पर जाने से बचे। कुछ उपन्यासो मे, जो विशेषकर 'सेवासदन' प्रकाशित होने के बाद लिखे गए, यथार्थ चित्रण के नाम पर वेश्या-जीवन का झूठा-सच्चा चित्रण करके पाठको की दिलचस्पी का सामान तैयार किया गया। अगर प्रेमचद का लक्ष्य इन धनी और सुदर स्त्रीवाले नौजवानो को कुमार्ग पर पैर रखने से बचाना ही होता तो वे उन्ही हल्के समाज-सुधारको की पाँति मे आगे न बढ पाते।

प्रेमचद का यह उपन्यास लोगो को सस्ती शिक्षा देने के लिए नही लिखा गया। वास्तव मे वेश्या-जीवन उसका मुख्य विषय है भी नही, सुमन कथा पर छाई हुई है इसलिए ऐसा आभास हो सकता है कि उपन्यास वेश्या-जीवन पर है। लेकिन इस बात की जाँच की जाए कि कितने सफो मे वेश्या-जीवन की चर्चा है तो पता चलेगा कि एक तिहाई से ज्यादा भाग यह चर्चा नही घेरती।

तब 'सेवासदन' की मुख्य समस्या क्या है?

'सेवासदन' की मुख्य समस्या भारतीय नारी की पराधीनता है। प्रेमचद ने किसी तरह तमाम पुरानी सास्कृतिक परपराओ को तोडते हुए वर्तमान समाज मे नारी की पराधीनता को अपने निठुर और वीभत्स रूप मे चित्रित किया है, इस पर सहसा विश्वास नही होता। हमारे साहित्य मे कितने नाटक, कितने उपन्यास नारी के आत्म-बलिदान, उसके सतीत्व, उसकी पतिसेवा पर नही लिखे गए? लेकिन कितने लेखको ने उसकी निस्सहायता, पराधीनता, उसके साथ पशुओ और दासो-जैसे व्यवहार पर नजर डाली है?

तमिलनाडु के महाकवि 'भारती', तेलुगु साहित्य के भारतेदु वीरेशलिंगम् उन थोडे-से साहित्यकारो मे थे जिन्होने नारी की पराधीनता के विरुद्ध आदोलन छेडा था। प्रेमचद ने नकली आदर्शो की रामनामी खींचकर पंडितो और मौलवियो, समाज के 'प्रतिष्ठित' सज्जनो और धनपतियों का वास्तविक रूप जनता के सामने प्रकट कर दिया। कबीर के बाद किसी ने इतनी सचाई से, ऐसे मर्मवेधी व्यग्य से हिंदूधर्म और इस्लाम, दोनो धर्मो के ढोगियो और पाखंडियो का पर्दाफाश न किया था।

सुमन एक अच्छे स्वभाव की सुदर-सी लडकी है। उसे हम एक औसत दर्जे की लडकी कह सकते हैं। उसमे अगर कोई विशेषता है तो यह कि वह अन्याय के सामने झुकना नही जानती; वह अपने आत्म-सम्मान को ठुकराया जाना नहीं देख सकती। उसके पिता थानेदार हैं और अगर किसी "अच्छे घर में उसका ब्याह हो जाता तो शायद उसके जीवन मे ऐसी कोई घटना न होती, जिस पर उपन्यास लिखा जाता।"

उसकी माँ चाहती थी कि उसका ब्याह छुटपन मे ही कर दिया जाए और इस तरह लडकी के ऋण से मुक्त हो जाएँ। लेकिन उसके पिता को नए विचारो की हवा लग चुकी थी और वे इतनी छोटी उम्र मे ब्याह करने के विरोधी थे। जब लडकी सयानी हुई तब उन्होने वर देखना शुरू किया। वह शिक्षित वर चाहते थे लेकिन भारत मे अग्रेजी राज्य ने नौजवानो को कितनी अच्छी शिक्षा दी थी। जितना भी ज्यादा पढे हो—यानी ऊँची डिगरियाँ पास हो—उतनी ही ज्यादा रकम माँगो। प्रेमचद ने उन शिक्षितो की हकीकत जाहिर कर दी जो विवाह और सतीत्व के नाम पर लेन-देन करते थे।

यही नही, पतिव्रत और सतीत्व के हामी सज्जन लडके-लडकी मे जो चीज सबसे पहले देखते थे, वह उनकी राशि और वर्ण था। इन अधविश्वासो की रक्षा के लिए वह सैकडो लडके-लडकियो की जिदगी बर्बाद करने के लिए तैयार रहते थे।

समाज के ये तथाकथित शिक्षित लोग, जिनके लिए मनुष्यता कुछ नही थी, धन सबकुछ था, कितने कायर और झूठे थे, यह प्रेमचद ने बहुत ही कलात्मक ढग से दिखाया है। हिंदी मे इन समस्याओ पर इतनी गहराई से विचार करते हुए किसी ने इतना सुदर व्यग्य न किया था।

प्रेमचद सुमन के पिता कृष्णचद्र की कठिनाइयो का जिक्र करते हुए लिखते हैं—

"इसमे सदेह नही कि शिक्षित सज्जनो को उनसे सहानुभूति थी, पर वह एक-न-एक ऐसी पख निकाल देते थे कि दारोगा जी को निरुत्तर हो जाना पडता। एक सज्जन ने कहा, महाशय, मैं स्वय इस कुप्रथा का जानी दश्मन हूँ, लेकिन करूँ क्या, अभी पिछले साल लडकी का विवाह किया, दो हजार रुपए केवल दहेज मे देने पडे, दो हजार और खाने-पीने मे खर्च करने पडे, आप ही कहिए कि यह कमी कैसे पूरी हो?"

दूसरे महाशय इनसे अधिक नीति-कुशल थे। बोले, "दारोगा जी, मैंने लडके को पाला है, सहस्रो रुपए उसकी पढाई मे खर्च किए हैं। आपकी लडकी को इससे उतना ही लाभ होगा जितना मेरे लडके को। तो आप ही न्याय कीजिए कि यह सारा भार मैं अकेले कैसे उठा सकता हूँ?"

प्रेमचद ऐसे पाखंडियो से नफरत करते थे जो ऊपर से तो दहेज की कुप्रथा की बुराई करते थे लेकिन उसे कायम रखने के लिए हमेशा बहाने ढूँढ लिया करते थे। ऐसे लोगो ने शिक्षा से जो पाया था, वह यह कि बात बनाने मे वह तमाम पुराणपथियो के कान काट सकते थे। नौजवानो मे यह हिम्मत नही थी कि वे घरवालो का विरोध करे। उनकी शिक्षा ने उन्हे नौकरी को जीवन का सबसे बडा लक्ष्य समझना सिखाया था। अपने दब्बूपन की वजह से अन्याय का विरोध करने की हिम्मत उनमे न थी, बहाना था पिता की आज्ञा मानने का।

सुमन के पिता कृष्णचद्र को लाचार होकर बेईमानी पर उतरना पड़ा। बेईमानी से धन पैदा करो, समाज मे इज्जत पाओ—दिखाने के दाँत और खाने के

और, यह थी नीति जिस समाज के ठेकेदार बरतते थे। कृष्णचद्र को घूस न लेने का आदर्श छोडना पडा। घूस ली लेकिन सिद्दहस्त न थे, पकडे गए। फिर ईमानदारी मे आकर सबकछ स्वीकार कर लिया और सजा पा गए।

सुमन पढ-लिखे वर से वंचित ही रह गई। अब उसके मामा ने शहरो का रास्ता छोड गाँवो की तरफ रुख किया। गाँवो के बारे मे हमारे यहाँ बहत-से ऐसे उपन्यास और कविताएँ लिखी गई है जिनमे वहाँ की गरीबी और अशिक्षा पर या तो पर्दा डाला गया है या उन्हे आदर्श रूप मे चित्रित किया गया है। प्रेमचद गाँवो स और गाँवा मे रहनेवालो से प्रेम करते थ, वह उनकी जिदगी बदलना चाहते थे इसलिए वह उनकी गरीबी और अशिक्षा को भोलापन कहकर या ''थोडे मे निर्वाह यहाँ है'' ऐसे गीत बेचकर अपने कर्तव्य स बच निकलना न चाहते थ। उन्होने गाँवो मे प्रचलित सामती कप्रथाओ और मध्यकालीन सस्कारो पर भी प्रकाश डाला। गाँव मे वर ढूँढनेवाले के पहँचने पर कैसा दृश्य आँखो के सामन आता है, प्रेमचद ने हास्य का पट देते हए उसे यो पेश किया है–

''ज्यो ही वह किसी गाँव म पहँचते, वहाँ हलचल मच जाती। यवक गठरियो स वह कपडे निकालते जिन्हे वह बरातो म पहना करते थ। अगूठियाँ और मोहनमाल मगनी माँगकर पहन लेते। माताएँ अपने बालको का नहला-धलाकर आँखो मे काजल लगा देती और धले हए कपड पहनाकर खेलने को भजती। विवाह के इच्छक बढे नाइयो से मूँछ कटवाने और पके हए बाल चनवान लगते। गाँव के नाई और कहार खेतो से बला लिए जाते, कोई अपना बडप्पन दिखान क लिए उनसे पैर दबवाता, कोई धोती छटवाता। जब तक उमानाथ वहाँ रहते, स्त्रियाँ घरो से न निकलती, कोई अपने हाथ स पानी न भरती, कोई खत मे न जाता।''

सामती सस्कारो का कैसा अनपम चित्रण है। रोज खेता मे काम करनेवाले किसान क्यो हल नही छते? पानी भरनेवाली स्त्रियाँ क्यो कएँ पर नही जाती? इसलिए कि इस समाज मे इज्जत उनकी होती है जो अपने हाथ स काम नही करत, जिनकी स्त्रियाँ दूसरो स काम कराने मे अपना गौरव समझती है। उन्ही जागीरदारो, जमीदारो और महतो की नकल करते हए मेहनती किसान मेहनत के काम को छिपाना चाहते है। इस समाज मे मेहनत की इज्जत नही होती, क्योकि मेहनत करनेवाला आजाद नही है। अपनी मेहनत का फल वह खद नही पाता बल्कि समाज क 'प्रतिष्ठित' लोग पाते है। इसलिए माँगे की अगूठियो और मोहनमाला से एक घडी के लिए वह भी इज्जतदार बनना चाहता है। और जैसे 'प्रतिष्ठित' लोगो का जवानी से लेकर–कहना चाहिए, बचपन से लेकर–चिता पर चढन तक औरतो की कमी नही रहती, वैसे ही उम्र पाए हए किसान भी मूँछे छँटवाकर और सफेद बाल चुनवाकर एक बार अपना भाग्य परखना चाहते है।

हिंदी-उपन्यासो मे यह एक नया यथार्थवाद था, जिसे प्रेमचद जन्म दे रहे थे।

शहर के पढे-लिखे कायरो और गाँव के इन अपढ किसानो का चित्रण करते

हुए प्रेमचद की शैली बदलती जाती है । उनकी सहज सहानभूति किसानो के साथ है, जो अपनी अशिक्षा और कुसस्कारो के लिए खुद जिम्मेदार नही है । इसलिए उनकी शैली परिहास का पुट लिए है । शहर के पढे-लिखे दहेजप्रेमी आँखे होते हुए भी अधे है, इसलिए वहाँ प्रेमचद की शैली व्यगयपूर्ण और मर्म पर चोट करनेवाली होती है ।

अत मे उमानाथ एक दोहाजू वर तलाश करते है । यानी ऐसा वर जिसकी पहली स्त्री मर चुकी है लेकिन जो दहेज बिना एक और कन्या का 'उद्धार' करने के लिए तैयार है । उमानाथ अपनी बहन को यो समझाते है—"शहर मे कोई बुड्ढा तो होता ही नही । जवान लडके होते है और बुड्ढे जवान, उनकी जवानी सदाबहार होती है । वही हँसी-दिल्लगी, वही तेल-फुलेल का शौक । लोग जवान ही रह जाते है और जवान ही मर जाते है ।"

जब इस तरह के सदाबहार से सुमन का ब्याह हुआ तो सुमन की माँ उसे देखकर बहुत रोई और उसे ऐसा लगा "मानो किसी ने सुमन को कुएँ मे डाल दिया" हो । उपन्यास की वास्तविक समस्या यह है—लडकियो को कुएँ मे ढकेलना और फिर सतीत्व और पतिव्रत धर्म के गीत गाना । इस समूचे व्यापार मे बेचारी सुमन की इच्छा-अनिच्छा का सवाल नही उठता । बलिपशु की तरह जिस खूँटे से भी बाँध दी जाए उसे बँधना पडता है ।

जैसी कि आशा की जा सकती है, सुमन का जीवन सुखी नही था । एक तो गरीबी थी, दूसरे अनमेल ब्याह हुआ था । उसकी सारी आशाओ, भविष्य के तमाम सुदर सपनो पर पानी फिर गया । जब वह वकील पद्मसिह के यहाँ आने-जाने लगी, तब पति ने उस पर व्यर्थ सदेह भी किया । सुमन ने अच्छी तरह देख लिया कि इस समाज मे स्त्री की कोई इज्जत नही है । इज्जत है तो उन स्त्रियो की जो अपनी इज्जत बेचने के लिए तैयार है ।

सुमन के सामने भोली नाम की वेश्या रहती है । स्त्रिया मे किसी ने पुरुषो से इज्जत पाई है तो भोली ने । वही लोग जो घर की स्त्री को पैर की जूती समझते थे, भोली के तलवे सहलाने मे अपने को धन्य मानते थे ।

एक दिन सुमन ने देखा कि भोली के दरवाजे पर मौलूद की तैयारियाँ हो रही है । भिश्ती ने पानी छिडका, शामियाना लगा और गैस का हडा जला । टमटम, फिटन और साईकिल पर भद्र पुरुष आने लगे । फिर वेश्या के द्वार पर मौलवी साहब पधारे । प्रेमचद लिखते है—

"फिर मौलाना साहब की सवारी आई । उनके चेहरे से प्रतिभा झलक रही थी । वह सजे हुए सिहासन पर मसनद लगाकर बैठ गए और मौलूद होने लगा ।"

इन सब लोगो मे सुमन का पति गजाधर भी जाकर बैठ जाता है । सुमन ने सुना था कि वेश्याएँ दश्चरित्र होती है और इसलिए भले आदमी उनके यहाँ नही जाते । वह पति से पूछती है—"तुम्हे तो वहाँ जाते हुए सकोच हुआ होगा ?" पति उत्तर

देता है—"जब इतने भले मानस बैठे हुए थे तो मुझे क्यो सकोच होने लगा। वह सेठ जी भी आए हुए थे जिनके यहाँ मै शाम को काम करने जाया करता हूँ।"

मालिक और नौकर, धर्मगुरु और शिष्य—किसी को भी वेश्या के दरवाजे जाते हिचक नही थी। वे सब उसकी इज्जत करते थे और अपने को इज्जतदार समझते थे, उस भोली के घर जाकर, जिसका पेशा ही इज्जत बेचना था, जो अपने तन और मन की मालिक न थी, जिसका रग-रूप बाजार के बिकाऊ माल की तरह पैसे के बल पर कोई खरीद सकता था।

वकील पद्मसिह म्युनिसिपैलिटी के मेबर चुने जाते है। उनके हर्ष प्रकट करने का साधन है—भोली का मुजरा कराना। तारीफ की बात यह कि "वह वेश्याओ के नाच-गाने के कट्टर शत्रु थे। इस कुप्रथा को मिटाने के लिए उन्होने एक सुधारक सस्था स्थापित की थी।" उन शिक्षितो की तरह जो दहेज के विरोधी होते हुए भी उसे लेते जाते थे पद्मसिह ने भी मुजरा कराना निश्चित किया।

जब भोली गा रही थी तब पद्मसिह की स्त्री आश्चर्य कर रही थी "कि लोग इतने एकाग्रचित्त होकर क्या सुन रहे है।" सुमन ने गाना पसद किया और उसने धीरे-धीरे दोहराया भी लेकिन—"वह देखती थी कि सैकडो आँखे भोली बाई की ओर लगी हुई है। उन नेत्रो मे कितनी तृष्णा थी! कितनी विनम्रता, कितनी उत्सुकता!" ये सब सदाचार और सतीत्व के ठेकेदार थे।

और सुमन सोचती थी—"इस स्त्री मे कौन-सा जादू है?"

सुमन भी सुदर थी, गला सुरीला था लेकिन उसकी इज्जत करना तो दूर, उसके आत्मसम्मान को पग-पग पर ठुकराया जाता था। इसका कारण क्या था? राशि और वर्ण सब मिला लिए गए थे। मत्रो के साथ भाँवरे पड चुकी थी। फिर भी गृहस्थ नारी का सम्मान क्यो न होता था? इसलिए कि यह विवाह-प्रथा स्वेच्छा से दो मनुष्यो का मिलन नही थी वरन् स्वामी-पुरुष के लिए एक दासी प्राप्त करने का साधन-मात्र थी। सत्य यह था कि पुरुष शासक था और स्त्री शासित। अपने दास की वह जितनी और जब चाहता इज्जत करता, जब चाहता उसे ठुकरा देता। इस दास-स्वामी सबध को ढँकने के लिए उसने जितने आदर्शों के दुपट्टे ओढ रखे थे, प्रेमचद ने उन्हे खीचकर एक तरफ फेक दिया। उन्होने दिखाया कि ये पुरुष-स्वामी उसी स्त्री की इज्जत करते है जो किसी एक की दासी नही है, जो इस हद तक अपनी स्वामिनी है कि अपना तन बेच सकती है। जिस समाज की स्त्रियो मे वेश्याएँ ही स्वाधीन हो और पुरुष उन्ही को सम्मानित करे, ऐसे समाज के भविष्य की कल्पना की जा सकती है। इस जर्जर समाज-व्यवस्था की विडबना को प्रेमचद ने अच्छी तरह प्रकट कर दिया।

क्यो भोली का सम्मान होता है, इस बारे मे बहुत सोच-विचार करने के बाद सुमन जिस नतीजे पर पहुँचती है, वह प्रेमचद के शब्दो मे यह है—

''अत मे वह इस परिणाम पर पहुँची कि वह स्वाधीन है, मेरे पैरो मे बेडियाँ हैं।''

सुमन ने परिस्थिति का सही विश्लेषण किया था। इस सत्य का सामना करने की ताब बडे-बडे समाज-शास्त्रियो मे आज भी नही है, पहले महायुद्ध के दिनो की तो बात ही क्या!

पद्मसिंह के यहाँ से सुमन देर मे लौटती है। गजाधर उस पर शक करता है। वह सुमन से उसी तरह व्यवहार करता है जिस तरह पुरुष-स्वामी अपनी खरीदी हुई दासी से। वह धमकाता है—''अब यह धाँधली एक न चलेगी, साफ-साफ बताओ, तुम अब तक कहाँ रही। ठीक-ठीक बता दो, नही तो आज जो कुछ होना है, हो जाएगा।''

इसी परिस्थिति मे कितनी स्त्रियो ने मार नही खाई, पति की गालियाँ नही सुनी। लेकिन बीसवी सदी के भारतीय समाज मे धीरे-धीरे एक परिवर्तन हो रहा था। साम्राज्यवादी सामती जुए के नीचे जनता कसमसाने लगी थी और समाज का सबसे दलित अग नारी—राष्ट्रीय पराधीनता और घरेलू दासता, दोनो से पिसती हुई नारी—स्वाधीनता के लिए हाथ फैलाने लगी थी। प्रेमचद ने सबसे पहले इस परिवर्तन को देखा था, उसका स्वागत किया था, उसे बढावा दिया था।

सुमन का चरित्र पाठको को ऊँचा उठाता है, वह उनके मन मे एक नई स्फूर्ति, एक नया विश्वास जगाता है।

पति, पुरानी रीति के अनुसार घर से निकालने की धमकी देता है—''चली जा मेरे घर से, राँड कोसती है।''

सुमन न पैरो पडती है, न गिडगिडाती है। उसके स्वर मे भारत का नवजाग्रत नारीत्व उत्तर देता है—''हाँ, यो कहो कि तुझे रखना नही चाहता। मेरे सिर पर पाप क्यो लगाते हो? क्या तुम्ही मेरे अन्नदाता हो? जहाँ मजूरी करूँगी, वही पेट पाल लूँगी।''

प्रेमचद ने सघर्ष का वास्तविक रूप पूरी सचाई के साथ चित्रित किया है। पति अपने को अन्नदाता न समझता तो उसे घर से निकालने की धमकी क्यो देता? लेकिन स्वाभिमाननी सुमन ऐसे अन्नदाता की गुलामी करने और ऊपर से उसकी गालियाँ खाने के लिए तैयार नही है। वह घर से निकलकर चल देती है।

वह पद्मसिंह के घर आश्रय लेती है। अब उसके पति का सदेह पक्का हो जाता है। वेश्या की इज्जत करनेवाले महापुरुष औरत-मर्द मे व्यभिचार छोड़कर दूसरे सबध की कल्पना नही कर पाते। जो लोग पद्मसिंह को अच्छी तरह जानते थे, उन्होने भी अपवाद पर विश्वास कर लिया। ये धर्मरक्षक मंजिल-दर-मंजिल सुमन को भोली के जीवन-पथ पर ठेल रहे थे। प्रेमचद ने विस्तार से दिखलाया है कि इस समाज-व्यवस्था मे सपत्ति के रक्षक सदाचार की आड मे वेश्यावृत्ति को प्रश्रय ही नही देते, वेश्याओ को जन्म भी देते है। प्रेमचद ने सामाजिक सबंधो की

छानबीन कितनी गहराई से की है, यह इसी से जाहिर होता है कि उन्होने वेश्यावृत्ति की मूल प्रेरक शक्तियो को कठघरे मे खडा कर दिया है, जहाँ से उपन्यासकार और पाठको की नजर बचाकर भाग जाना उनके लिए सभव नही है। दहेज, अनमेल विवाह, पति का सदेह, घर से निकालना और वेश्या की देहरी। मानो इस विवाह-प्रथा और वेश्यावृत्ति मे कोई अन्योन्याश्रय सबध हो कि एक होगी तो दूसरी होगी ही। और जिस समाज मे विवाह का मतलब कन्या-विक्रय हो, उससे वेश्यावृत्ति कौन उठा सका है?

नारी की पराधीनता के बारे मे जो कटु अनुभव सुमन को हुआ था, वही कटु अनुभव उससे पहले भोली को हो चुका था। वह सुमन को बतलाती है—"मेरे माँ-बाप ने भी मुझे एक बूढे मियाँ के गले मे बाँध दिया था। उसके यहाँ दौलत थी और सब तरह का आराम था, लेकिन उसकी सूरत से मुझे नफरत थी। मैंने किसी तरह छह महीने तो काटे, आखिर निकल खडी हुई।"

प्रेमचद यह दिखलाते है कि नारी की पराधीनता और वेश्यावृत्ति हिदुओ और मुसलमान दोनो मे है। वह इस्लामी सस्कृति और हिदू सस्कृति का डका बजानेवालो से कहते है—देखो, यह है तुम्हारी सस्कृति जो हिदू और मुसलमान दोनो ही धर्मो की स्त्रियो से वेश्यावृत्ति कराती है। तुम्हारे यहाँ नारीत्व का तभी सम्मान किया जाता है जब वह बिकाऊ हो।

प्रेमचद नारी के आदर और सम्मान की समस्या को तीखेपन से और बार-बार पाठक के सामने लाते है। पद्मसिह से खबर पाकर समाज-सुधारक विट्ठलदास सुमन को अपनी नई वृत्ति छोडने के लिए समझाते है—"तुम्हारा कितना आदर था, लोग तुम्हारी पद-रज माथे पर चढाते थे, लेकिन आज तुम्हे देखना भी पाप समझा जाता है।"

विट्ठलदास एक आदर्शवादी दुनिया मे रहते है, इसलिए जिसे वह सुधारने गए है, उसके रोग का उन्हे पता ही नही है। उनकी लच्छेदार वक्तृता के मुकाबले मे सुमन अपने जीवन का कटु सत्य पेश करती है—

"सुमन ने बात काटकर कहा, महाशय, यह आप क्या कहते हैं? मेरा तो यह अनुभव है कि जितना आदर मेरा अब हो रहा है, उसका शताश भी तब नही होता था। एक बार मैं सेठ चिम्मनलाल के ठाकुरद्वारे मे झूला देखने गई थी, सारी रात बाहर खडी भीगती रही, किसी ने भीतर न जाने दिया, लेकिन उसी ठाकुरद्वारे मे मेरा गाना हुआ तो ऐसा जान पडता था मानो मेरे चरणो से वह मदिर पवित्र हो गया।"

मौलूद का उत्सव और भोली, ठाकुरद्वारे मे गाना और सुमन। धार्मिक पाखड और वेश्यावृत्ति मे कितना निकट सबध है, प्रेमचद से छिपा नही है। कबीर की परपरा को आगे बढाते हुए प्रेमचद न मदिर के पुजारियों को बख्शते हैं और न मस्जिद के मौलवियो को।

विट्ठलदास सुमन के तर्कों से परास्त हो जाते है । उन्होंने सत्य की कल्पना ही की थी, उसे इतने नजदीक से कभी न देखा था । लेकिन जब पद्मसिंह सुमन से मिलने है, तब वह उन्हे परास्त ही नही करती, उनके मर्म-स्थानो को व्यग्य-बाणो से बुरी तरह छेद भी देती है । उनकी कायरता याद करके उसकी घृणा और प्रतिहिंसा जाग उठती है ।

पद्मसिंह अफसोस जाहिर करता है कि वह उस समय सुमन को घर से बाहर न करता तो उसकी यह दशा न होती । सुमन इस तरह की सहानुभूति को अपना अपमान समझती है । वह कडककर जवाब देती है—"तो इसके लिए आपको लज्जित होने की क्या आवश्यकता है ? अपने घर से निकालकर आपने मुझ पर बडी कृपा की, मेरा जीवन सुधार दिया ।"

पद्मसिंह बगले झाँकता ही दिखाई देता है ।

सुमन को वेश्यावृत्ति से प्रेम नही है । वह विट्ठलदास और पद्मसिंह की बात मानकर एक विधवाश्रम मे दाखिल हो जाती है ।

उसके एक बहन भी है । शादी तै होती है लेकिन लडके के बाप का जब पता चलता है कि उसकी बहन वेश्या है तो वह बरात लौटा ले जाता है । एक बार 'कलंकित' होने पर सुमन खुद ही मुसीबत नही उठाती, वह दूसरो की राह मे भी काँटे बिखेरती जाती है । उसके 'कलक' से बहन की शादी नही होती और पितृ-भक्त वर महोदय मे इतना साहस कहाँ कि विवाह कर ही ले । नतीजा यह कि शाता भी विधवाश्रम पहुँच गई । लेकिन समाज की मर्यादा के रखवालो ने दोनो बहनो को विधवाश्रम मे भी न रहने दिया । भूतपूर्व वेश्या के सपर्क से विधवाओ के सतीत्व के लिए भय उत्पन्न हो गया । दोनो बहनो को आश्रम छोडना पडा ।

शाता का पति अत मे बाप से लडकर नाव चलाने लगा और उसने शाता से विवाह भी कर लिया । लेकिन इस गृहस्थ घर मे कलंकिनी सुमन कैसे रहती ? शाता के पुत्र होता है, उसके ससुर आते है और सुमन को वह जगह भी छोडनी पडती है । एक स्त्री, जो अत्याचार नही सहना चाहती, कितनी कठिनाइयो का मुकाबला करती है । सामाजिक सबधो की अवहेलना होने से उसे ऐसा दड दिया जाता है कि दूसरा व्यक्ति फिर विरोध करने का दुस्साहस न करे । सुमन गगा की शरण ले, इसके सिवा और कोई चारा नही रहता । कथा का यही तर्कसगत परिणाम भी था । यहाँ तक एक वीर नारी का सघर्ष, आत्मसम्मान की रक्षा के लिए सभी कठिनाइयो का सामना करना, यह कथा को रोचक और बलशाली बनाए हुए था । इसके बाद प्रेमचद एक काल्पनिक समाधान पेश करते है ।

सुमन का पति गजाधर सन्यासी हो गया है । उसे अपने कर्मो पर पश्चात्ताप हुआ है और अब वह स्त्रियो के उद्धार का काम करने लगा है । वह सुमन को बचा लेता है और वह सेवासदन का काम सँभालने लगती है । सभी आलोचको ने लक्ष्य किया है कि यह अत उपन्यास का निर्बल अश है ।

प्रेमचद समस्या का समाधान देना चाहते थे, लेकिन उचित समाधान देने मे ऐतिहासिक सीमाएँ बाधक थी। नारी की स्वाधीनता और सम्मान-रक्षा का प्रश्न देश की आम सामाजिक और राजनीतिक समस्याओ का ही अग है। नारी की स्वाधीनता देश मे एक स्वाधीन जनतत्र कायम हुए बिना सभव नही। वे शक्तियाँ, जिन्होने सुमन को पहले वेश्या बनाया, पीछे कलकिनी कहकर उसे गगा की तरफ ठेला, समाज पर अपना प्रभुत्व जमाए हुए थी। इनके विरुद्ध सघर्ष—समस्या का यही समाधान हो सकता था। लेकिन पहले महायुद्ध के दिनो मे स्वाधीनता-आदोलन असगठित और कमजोर था। इसलिए प्रेमचद उसे चित्रित नही कर सके। वे समाज की प्रगति रोकनेवाली शक्तियो को देख रहे थे, लेकिन पुरानी व्यवस्था को बदलनेवाली शक्तियाँ उनके सामने तब मैदान मे आई न थी।

इस ऐतिहासिक सीमा के होते हुए भी 'सेवासदन' का मुख्य कथा-भाग यथार्थ जीवन का बहुत ही सफल चित्र प्रस्तुत करता है। सुमन वेश्या-जीवन की प्रतिनिधि पात्र नही है। वह थोड़े ही दिन तक वेश्या रहती है और तब भी और वेश्याओ की तरह वह तन नही बेचती। बेचना तो दूर, वह किसी को उसे समर्पित भी नही कर सकती। ऐसा होना असभव नही है—लेकिन जो कुछ सभव है, वह सभी उपन्यास का विषय नही होता। उपन्यासकार किसी वर्ग या वृत्ति के अनेक व्यक्तियो की विशेषताएँ लेकर एक प्रतिनिधि पात्र की रचना करता है। इस दृष्टि से सुमन का चरित्र-चित्रण पूरी तरह स्वाभाविक नही बन पाया, वह वेश्या-जीवन की प्रतिनिधि किसी भी तरह नही कही जा सकती। लेकिन प्रेमचद का यह लक्ष्य था भी नही। वह नारी की पराधीनता पर हर तरफ से प्रकाश डालना चाहते थे और उसमे वह सफल हुए।

केवल होरी से सुमन की तुलना की जा सकती है। गोदान एक द खात उपन्यास है, प्रेमचद की सबसे यथार्थवादी कृति, जीवन के सत्य को पूर प्रकाश मे व्यक्त करते हुए। होरी का मृत्यु-पर्यत सघर्ष और उसका अत पाठक के हृदय को झकझोर देते है। वह मनुष्य के दुखो की यह मर्मस्पर्शी गाथा सुनकर चकित रह जाता है। 'सेवासदन' उसी लेखक का पहला महान उपन्यास है। सुमन के सघर्ष और दुखो की गाथा कम रोमाचकारी नही है। वह नारी है, इसलिए उसके कष्ट, उसके सघर्ष होरी से दूसरी तरह के है। हिदी कथा-साहित्य की वह पहली नारी है जो आत्म-सम्मान की रक्षा के लिए सघर्ष की डगर पर पाँव उठाती है। बचपन मे वह सीधी और निस्सहाय है। उसकी इच्छाओ को आसानी स कुचलकर उसे एक अवाछित पुरुष के हवाले किया जा सकता है। लेकिन उसके भीतर कही वीर नारी का दर्प सो रहा था, वह दर्प जो भारतीय नारी की विशेषता है, और ठोकर खाकर वह जाग उठता है।

प्रेमचद ने सुमन को एक साँचे मे ढली हुई सुदर मूर्ति की तरह पाठक के सामने नही रख दिया। उसके चरित्र-चित्रण मे एक मौलिकता है जो उनकी कला की

3. प्रेमाश्रम

ऊपर से देखने मे 'प्रेमाश्रम' 'सेवासदन' से बिल्कुल दूसरी तरह का उपन्यास लगेगा, लेकिन वास्तव मे दोनो एक-दूसरे के बहुत निकट है। प्रेमचद ने 'सेवासदन' मे नारी-समस्या की छानबीन हल्के-फुल्के सतही ढग से न की थी। उन्होने दिखलाया कि वेश्यावृत्ति को पैदा करनेवाले और पालने-पोसनेवाले स्वार्थ समाज मे मौजूद थे। इन स्वार्थो के निर्मूल हुए बिना किसी तरह का समाज-सुधार सभव नही था। महत रामदास और बूढे किसान चेतू की घटना से उन्होने दिखला दिया था कि ये स्वार्थ किस तत्परता और क्रूरता से अपनी रक्षा करते है। धर्म और कानून—सभी उनकी मदद के लिए आ जाते है। महत रामदास ही दारोगा को घूस देते है। घूस देनेवाला हत्यारा तो बन जाता है, कृष्णचद्र और उनका परिवार तबाह हो जाते है।

प्रेमचद उन उपन्यासकारो मे थे जो पेड का पत्ता देखकर सतोष न करते थे, बल्कि उसकी जडे खोदकर देखते थे, चाहे वह पाताल तक ही क्यो न गई हो। यही सबब है कि नारी-समस्या और वेश्यावृत्ति की छानबीन करते हुए उन्होने धर्म, कानून और सपत्ति के सबधो पर भी अच्छी तरह प्रकाश डाला था। सामाजिक अन्याय के विष-वृक्ष की जडो को उन्होने 'प्रेमाश्रम' मे पूरी तरह उघाड दिया, शब्द-जाल और छल-कपट की मिट्टी हटाकर दिखला दिया कि अन्याय और अत्याचार के फल किन डालो मे लगते है और कहाँ से उन्हे खाद-पानी मिलता है।

'सेवासदन' मे कुँवर अनिरुद्धसिह ने वेश्यावृत्ति पर जो विचार प्रकट किए है, उन पर ध्यान देने से यह सदेह नही रह जाता कि वे विचार प्रेमचद के ही हैं। उनसे प्रेमचद के व्यापक सामाजिक अनुभव और उनकी सूक्ष्म तर्क-बुद्धि का पता चलता है। कुँवर अनिरुद्धसिह कहते है—

"हमे वेश्याओ को पतित समझने का कोई अधिकार नही। यह हमारी परम धृष्टता है। हम रात-दिन जो रिश्वते लेते हैं, सूद खाते है, दीनो का रक्त चूसते है, असहायो का गला काटते है, कदापि इस योग्य नही है कि समाज के किसी अग को नीच या तुच्छ समझे। सबसे नीच हम है, सबसे बडे पापी, दुराचारी, अन्यायी हम है, जो अपने को शिक्षित सभ्य, उदार और उच्च समझते हैं। हमारे शिक्षित

भाइयो ही की बदौलत दालमडी आबाद है, चौक मे चहल-पहल है, चकलो मे रौनक है। यह मीनाबाजार हम लोगो ने ही सजाया है, ये चिडियाँ हम लोगो ने ही फँसाई है। ये कठपुतलियाँ हमने ही बनाई है। जिस समाज मे अत्याचारी जमीदार, रिश्वती कर्मचारी, अन्यायी महाजन, स्वार्थी बधु आदर और सम्मान के पात्र हो, वहाँ दालमडी क्यो न आबाद हो ? हराम का धन हरामकारी के सिवा और कहाँ जा सकता है ! जिस दिन नजराना, रिश्वत और सूद-दर-सूद का अत होगा, उसी दिन दालमडी उजड जाएगी, ये चिडियाँ उड जाएँगी—पहले नही।"

अनिरुद्धसिह जोर देकर कहते है—पहले नही। वह उन लोगो को चेतावनी देते है जो नजराना, रिश्वत और सूद-दर-सूद का अत किए बिना ही आत्मसुधार से समाज को बदल डालना चाहते है। समाज-सुधार का एक ही रास्ता है—सामाजिक सबधो को बदलना। आत्म-सुधार स सामाजिक अन्याय और उत्पीडन का अत नही हो सकता। 'प्रेमाश्रम' मे उन्ही अत्याचारी जमीदारो, रिश्वती राजकर्मचारियो, अन्यायी महाजनो और स्वार्थी बधुओ की कहानी लिखी गई है जिनको प्रेमचद 'सेवासदन' मे ही वेश्यावृत्ति का जनक और पोषक बतला चुके थे।

'प्रेमाश्रम' पहले महायुद्ध के बाद के दौर का उपन्यास है। यूरोप की बडी-बडी ताकतो ने युद्ध के जरिए अपना सकट हल करने की कोशिश की, लेकिन युद्ध से सकट हल नही हुआ। गुलाम देशो की हालत और बुरी हो गई। वहाँ की जनता को और भी दबाकर रखने के लिए पश्चिमी ताकतो ने जोर-जुल्म बढाया। आजादी चाहनेवाली जनता को रौलट कानून और जलियाँवाला बाग मिला। लेकिन दूसरो को गुलाम बनानेवाले अब पहले-जैसे ताकतवर न थे। वे अब दुनिया को मनमाने ढग से बॉट-चूँटकर लूट न सकते थे। उन्हे खासतौर से डर पैदा हो गया था, सोवियत रूस से। उस देश मे मजदूरो और किसानो ने जमीदारो और पूँजीपतियो का राज खत्म कर दिया है—यह खबर दुनिया के सभी देशो मे फैल गई थी। इसे हिदुस्तान की जनता ने भी सुना था, पढे-लिखे लोगो ने ही नही गाँवो के किसानो ने भी। हिंदुस्तान के लोग अग्रेजो की गुलामी का जुआ उतार फेकने के लिए और भी कोशिश करने लगे।

प्रेमचद साहित्यकार की तटस्थता के हामी न थे। वह यह उपदेश देते थे कि अगर जन-साधारण के आदोलन और सघर्षो को लेकर साहित्य न रचा जाएगा, तो वह अमर न होगा। उनका सिद्धात था—साहित्यकार का कर्तव्य है कि वह जनता की सेवा करने के लिए साहित्य रचे। हिंदुस्तान की बहुसख्यक जनता किसानी करती है। इस जनता को छोडकर औरो के बारे मे लिखने से उपन्यासकार अपने देश और युग का प्रतिनिधि कैसे होता ? इसलिए उन्होने किसानो के बारे मे लिखा।

सन् 20 और 30 के आंदोलनो मे किसानो के जमीदार-विरोधी सघर्ष को

बराबर दबाकर रखने या उसे एकाध जगह सीमित करने की बराबर कोशिश की गई थी। इन आदोलनो की असफलता का बहुत बडा कारण यह भी था कि देश की बहुमख्यक किसान जनता को अपनी माँगों के लिए लडने से रोका गया था। प्रेमचद के लिए राष्ट्रीय स्वाधीनता का आदोलन तभी सफल हो सकता था जब वह करोडो किसानो की अपनी माँगो का आदोलन बन जाए। वह जानते थे कि किसानो के आदोलन से स्वाधीनता का आदोलन कमजोर न पडेगा, बल्कि उसे विजय की मजिल तक ले जाएगा। हिंदुस्तान की सामती ताकते विदेशी प्रभुत्व का आधार थी, इसलिए प्रेमचद के लिए आजादी का मतलब था, इस आधार को खत्म करना।

जमीदार अग्रेजो के दलाल हैं—प्रेमचद ने इस बात को बहुत ही स्पष्ट शब्दो मे राय कमलानद से कहलाया है। रायसाहब ज्ञानशकर से कहते हैं—

''यह जायदाद नही है, इसे रियासत कहना भूल है, यह निरी दलाली है। इस भूमि पर मेरा क्या अधिकार है। मैंने इसे बाहुबल से नहीं लिया। नवाबो के जमाने मे किसी सूबेदार ने इलाके की आमदनी वसूल करने के लिए मेरे दादा को नियुक्त किया था। मेरे पिता पर भी नवाबो की बडी कृपादृष्टि रही। इसके बाद अग्रेजो का जमाना आया और यह अधिकार पिता जी के हाथ से निकल गया। लेकिन राजद्रोह के समय पिता जी ने तन-मन से अग्रेजो की सहायता की। शक्ति स्थापित होने पर हमे वही पुराना अधिकार फिर मिल गया। यही इस रियासत की हकीकत है।''

प्रेमचद ने यहाँ बडी खूबी से दिखला दिया है कि अग्रेजो के खिलाफ लडाई से जमीदारो के विरुद्ध सघर्ष का क्या सबध था। प्रेमचद ने दिखलाया कि जमीन के वास्तविक स्वामी किसान हैं जबकि उसके मालिक बन बैठे हैं अंग्रेज और उनके दलाल। इसीलिए अंग्रेजो के बनाए हुए कानून—उनकी कायम की हुई कचहरियाँ और शांति और व्यवस्था की रखवाली पुलिस—किसानो को दबाने मे सबसे आगे रहते थे।

अंग्रेजी साम्राज्यवाद और जमीदारो-जागीरदारो के आपसी सबध समझे बिना 'प्रेमाश्रम' की रचना न हो सकती थी। प्रेमचद मे यह समझ उनके अध्ययन और मनन से पैदा हुई थी। इस समझ के बिना वह ज्ञानशकर और गायत्री, ज्वालासिंह और गौसखाँ, मनोहर और क़ादिर—इन तरह-तरह के पात्रो को एक जगह न तो इकट्ठा कर पाते, न उनके जीवन-सूत्रो को एक-दूसरे से जोड पाते। हिंदी मे किसानों की समस्याओ पर ज्यादा उपन्यास लिखे ही नही गए, जो लिखे भी गए हैं, उनमे प्रेमचद की सूझबूझ का अभाव है। इसीलिए आज तीस साल बाद भी 'प्रेमाश्रम' हिंदी मे अपने विषय का सर्वश्रेष्ठ उपन्यास है।

'प्रेमाश्रम' उपन्यास-रचना के साधारण नियम तोडकर रचा गया है। कौन है इसका नायक, कौन है इसकी नायिका? जिन आलोचकों ने 'प्रेमाश्रम' में नायक न होने पर खेद प्रकट किया है, उसके कथानक की शिथिलता दिखलाकर प्रेमचंद को

घटिया कलाकार माना है, उसमे मनोविज्ञान की गहराई या तलछट न पाकर प्रेमचंद को विश्व-साहित्यकार के पद से वंचित कर दिया है, उन्हें प्रेमचंद ने एक वाक्य मे उत्तर दे दिया था—''आजाद-रौ आदमी हूँ, मसलेहतो का ग़ुलाम नही !''

('हस', मई 1937, पृ 914)

बडे कलाकार अपने कायदे-कानून खुद बनाते हैं। प्रेमचद भी कायद पढ़कर उपन्यास लिखने न बैठे थे। 'प्रेमाश्रम' मे वे उन किसानो की जिदगी की तस्वीर खीचना चाहते थे जिन्हे साहित्य के लक्षण-ग्रथो मे जगह न मिली थी। वे उस अत्याचार और अन्याय की कहानी सुनाना चाहते थे जिसे उपक्रम, उपसहार, प्रयोजन और उपपत्ति की चर्चा करनेवाले सज्जन अक्सर भूल जाया करते थे।

प्रेमचद ने बेगार करनेवाले, हल जोतनेवाले, प्लेग और सरकार का मुकाबला करनेवाले किसानो को नायक बना दिया। मनोहर, बलराज, कादिर, दुखरन आदि इस उपन्यास के हीरो है। ये नई तरह के नायक हैं—गुण और अवगुण, दोनो से विभूषित। इनकी कहानी का आरभ किसी रमणी से आँख लड जाने से नही होता और न उस कहानी का अत नायक-नायिका के विवाह से होता है। लखनपुर का गाँव—सक्षेप मे इस उपन्यास का नायक है, ज्ञानशकर, गौसखाँ, कचहरी-कानून और पुलिस की जमात खलनायक है।

हिंदी मे इस तरह का उपन्यास किसी ने पहले लिखा न था। एक तो किसानो पर लिखना ही रसराज का अपमान करना था। उस पर किसी खास आदमी को नायक न बनाना और भी अनोखा प्रयोग था। प्रेमचद ने पाप और पुण्य के राक्षस और देवता नही रचे। उन्होने उस धडकन को सुना जो करोडो किसानो के दिल मे हो रही थी। उन्होने उस उछृते यथार्थ को अपना कथा-विषय बनाया जिसे भरपूर निगाह देखने का हियाव ही बडो-बडो को न हुआ था। उन्होने दिखलाया कि हिंदुस्तान की साधारण जनता मे साहस, धीरता और मनोबल के कौन-से स्रोत छिपे पडे हैं। प्रेमचद ने अपना कथा-विषय चुना—सदियो से पिसते हुए दासो की चेतना को, जो अब जाग रही थी और उनके हृदय मे इसान की तरह जीने की तीव्र लालसा पैदा कर रही थी। 'प्रेमाश्रम' लिखना एक अद्‌भुत साहस का काम था। साहित्य का झडा लिए हुए प्रेमचद ऐसे मार्ग पर चल पडे जिसे पहले किसी ने तै न किया था। उनकी प्रतिभा का यह प्रमाण है कि उन्होने जो साहस किया, वह दु:साहस साबित नही हुआ। 'प्रेमाश्रम' एक अत्यत लोकप्रिय उपन्यास के रूप मे आज भी जीवित है।

'प्रेमाश्रम' किसान-जीवन का महाकाव्य है। उसमे उस जीवन का एक पहलू नही दिखाया गया, वह एक विशाल नदी की तरह है जिसमे मूल धारा के साथ आसपास के नालो का पानी, जड से उखडे हुए पुराने खोखले पेड और खेतों का घासपात भी बहता हुआ दिखाई देता है।

यहाँ हमे दरवाजे पर बैठा मनोहर बैलों के लिए कडवी छाँटता दिखाई देता है।

कसरत और लावनी का शौकीन बलराज अपनी लाठी मे तेल लगा रहा है। डपटसिंह मनोहर से उन डिप्टी साहब की चर्चा करता है जिनके इजलास मे इजाफा-लगान का मामला तै होना है लेकिन जो जमीदार ज्ञानशकर के दोस्त हैं। मनोहर सोचता है, कोई कानून ऐसा बन जाता जिसमे इस तरह के मुकदमे इन हाकिमो के यहाँ न जाते तो कितना अच्छा होता ! कानून सबके लिए एक-सा है, फिर वह हाकिमो से क्यो डरता है ? मनोहर का कहना है—"हाकिम लोग आप भी तो जमीदार होते है, इसलिए वह जमीदारो का पच्छ करते है।" फिर वह उम्मीद करता है कि शायद लाट साहब की पचायत मे किसानो की फरियाद सुनी जाए, लेकिन डपटसिंह इस आशा पर पानी फेर देते हैं। कहते हैं—"यहाँ भी तो सब जमीदार ही होते हैं, काश्तकारो की फरियाद कौन सुनेगा ?"

किसानो के भय का कारण यह है कि पुराने जमीदार जटाशकर के जमाने से उसके बेटे ज्ञानशकर के जमाने मे जोर-जुल्म और भी बढ गया है। जटाशकर को अपनी इज्जत का बडा खयाल रहता था। लडकियो का विवाह हो तो ठाटबाट से, उत्सव मनाए जाएँ तो धूमधाम से, घर से निकले तो पालकी पर चढकर। लेकिन ज्ञानशकर के लिए पैसा ही इज्जत है। वह एक नए जमाने का जमीदार है जब महायुद्ध खत्म हो चुका था और सारे हिंदुस्तान मे दमन और लूट-खसोट का दौरदौरा था। वह अपने बाप का श्राद्ध भी करता है तो सोच-समझकर कि पैसा ज्यादा खर्च न हो जाए। अपनी 'रियासत' का इतजाम करने मे वह चचा-ताऊ के रिश्ते भूल जाता है, उसके लिए पैसे का रिश्ता ही सबसे बडा रिश्ता है। वह अपने भतीजे को ही जेल भिजवाना चाहता है लेकिन जब वह बरी हो जाता है, तो उसके श्रेय मे हिस्सा बटाने भी पहुँच जाता है। उसका भाई अमरीका पढने गया था। जब वह लौटकर आता है जो उसे खुशी नही होती, उसे डर लगता है कि वह जायदाद मे हिस्सा माँगेगा। उसका ससुर नि सतान है, इसलिए वह उसकी जमीदारी पर भी दाँत लगाए हुए है। वह उसे जहर देकर मार डालने मे भी आगा-पीछा नही करता, ससुर न मरा तो इसमे उसका दोष नही। उसके एक साली है, गायत्री, जिसकी अपनी जमीदारी है। ज्ञानशकर साली और जमीदारी दोनो को हडपने की काफी कोशिशे करता है।

ज्ञानशकर अपने वर्ग का प्रतिनिधि पात्र है। वह जितना धूर्त है, उतना चतुर नहीं। इसलिए उसकी बहुत कम योजनाएँ सफल हो पाती हैं। वह जितना धन का लोभी है, उतना ही कामी भी। इसलिए उसकी कामुकता कभी-कभी उसका बना-बनाया खेल बिगाड देती है। वह अपना काम बनाने के लिए दु साहस कर सकता है, लेकिन वह दूसरो का चरित्र समझने मे असमर्थ है। इसलिए उसे दूसरो से अपनी निंदा सुननी पडती है। वह कपटी, छली और दगाबाज है, लेकिन उसमे हिम्मत चोरो के बराबर भी नही है। उसकी कायरता पाठक की सहानुभूति दूर कर देती है। वह जितना कायर है, उतना ही कठोर और निर्दयी भी है। वह लखनपुर के

किसानो का मुख्य प्रतिद्वद्वी है लेकिन उनके सामने वह अपने पैरो खडा नही होता। उसे कानून और पुलिस की बैसाखियो मे खडा रखनेवाली ताकत अग्रेजी राज की है।

प्रेमचद के उपन्यास-साहित्य मे ज्ञानशकर तमाम खल पात्रो का सिरमौर है। उसके चित्रण मे प्रेमचद ने अद्‌भुत कौशल का परिचय दिया है। कथानक को ससबद्ध रखने के लिए भी वह कथाकार की बडी सहायता करता है।

उसके विरुद्ध लखनपुर की जनता है, जो उससे उतनी ही भिन्न है जितनी मौत से जिदगी।

प्रेमचद ने बलराज को हिदुस्तान के किसान-नौजवानो का प्रतिनिधि बनाया है। वह कसरत-कुश्ती का शौकीन है, गाना-बजाना, दोस्तो मे गपशप करना उसे पसद है। दुनिया का अनुभव कम है, इसलिए उतावलापन उसमे ज्यादा है। वह एक नए आदर्श से प्रभावित है, जिसके अनुसार हर इसान को इसान की तरह रहने का हक मिलना चाहिए। वह किसी भी तरह का अन्याय बर्दाश्त करने के लिए तैयार नही है। वह उस लोहे की तरह है जो आग मे तपकर इस्पात बनने की क्षमता रखता है।

गौसखाँ ने जब बेदखली की धमकी दी तो मनोहर ने जवाब दिया—"बेदखली की धमकी दूसरो को दे, यहाँ हमारे खेतो के मेड पर कोई आया तो उसके बाल-बच्चे उसके नाम को रोएँगे।"

बलराज इसी मनोहर का बेटा है। उसने पढना-लिखना भी सीखा है अखबारो से बदलती हुई दुनिया का हाल भी वह जानता है।

डपटसिह जब मजाक करता है—"बलराज से कहो, सरकार के दरबार मे हम लोगो की ओर से फरियाद कर आए", तब मजाक मे किसानो की बेबसी का छिपा हुआ भाव देखकर बलराज उत्तर देता है—

"तुम लोग तो ऐसी हँसी उडाते हो, जानो काश्तकार कुछ होता ही नही। वह जमीदार की बेगार ही भरने के लिए बनाया गया है। लेकिन मेरे पास जो पत्र आता है, उसमे लिखा है कि रूस मे काश्तकारो ही का राज है, वह जो चाहते है करते है। उसी के पास कोई देश बलगारी है। वहाँ अभी हाल की बात है, काश्तकारो ने राजा को गद्दी से उतार दिया है और अब किसानो और मजदूरो की पचायत राज करती है।"

प्रेमचद का हृदय सकुचित राष्ट्रवाद से ऊपर था। वह जानते थे कि इसाफ और नई जिदगी के लिए तमाम दुनिया की आम जनता जो लडाई लड रही है, हिदुस्तान का स्वाधीनता-आदोलन उसी का एक हिस्सा है। वह हिदुस्तान के लोगो मे एक नया भाव पैदा होते देख रहे थे कि दुनिया के तमाम मेहनत करनेवाले लोग भाई-भाई हैं। बलराज मे उन्होने इसी नई चेतना की किरने फूटती दिखाई हैं।

बलराज दुनिया के तमाम मेहनत करनेवालो को अपना भाई समझता है।

इसलिए वह खुद हिंदुस्तान के गरीब किसानो और खेत-मजदूरो के लिए लडने-मरने के लिए तैयार रहता है।

मनोहर, बलराज और हलवाहा रगी चमार खाना खाने बैठते हैं। तीनो की थालियो मे जौ की मोटी रोटियाँ, अरहर की दाल और बथुए का साग है। बलराज की माँ ने एक कटोरा दूध उसके सामने रख दिया। औरो को दूध क्यो नही मिला? इसलिए कि बाकी दूध बेगार मे चला गया था। बलराज इस पर बिगड उठता है। वह एक नया सिद्धात पेश करता है—"जो हमसे अधिक काम करता है उसे हमसे अधिक खाना चाहिए।" उसे दूध-घी मिले और उसका हलवाहा सूखी रोटियो से ही सतोष करे—"ऐसा दूध-घी खाने पर लानत है।"

गायत्री पर घात लगानेवाले, भाई के घर आने से दुखी होनेवाले, किसानो पर क्रूर अत्याचार करनेवाले ज्ञानशकर की चरित्र-कालिमा के मुकाबले मे बलराज की यह मानवता घी के दीये जैसी प्रकाशमान दिखाई देती है।

किसानो मे यह मानववादी चेतना जमीदारो और हाकिमो को भयभीत कर देती है। किसानो को आतकित करने के लिए वे उन पर तरह-तरह से अत्याचार करते हैं। डिप्टी का दौरा होता है तो चपरासी एक किसान के पेड की लकडियाँ उठा ले जाते हैं। वह ठड मे दिन कैसे काटेगा, इसकी उन्हे चिंता नही। बकरीद मनाने के लिए कादिर मियाँ ने जो बकरा पाला था, वह हाकिमो के पेट मे पहुँच जाता है। प्रेमचद इस बात का सकेत करते हैं कि इस जुल्म के शिकार हिंदू-मुसलमान दोनो हैं। पसारी की दुकान से माल लूटा जाता था, उसकी कमी वह किसानो से ब्याज मे पूरी करता था। हाकिमो को रोगी, नीरोग, बूढे, बच्चे, किसी का लिहाज नही। एक बूढ़ी अपने बेटे के साथ गाडी मे अस्पताल जा रही थी, उसे उतारकर गाडी मे लकडियाँ लादते उन्हे जरा भी सकोच नही होता।

एक बार हाकिम के आने पर गाँव के किसान इकट्ठे किए जाते हैं। बलराज किसी काम से गया है। आने मे देर होती है। दो सिपाही उसे पकड लेते हैं और उसे बाँधना चाहते है, तभी मनोहर—"बाज की तरह टूटकर बलराज के पास पहुँचा और दोनो कास्टेबिलो को धक्का देकर बोला—छोड दो, नही तो अच्छा न होगा। इतना कहते-कहते उसकी जबान बद हो गई और आँखो से आँसू निकल पडे।"

कुछ आलोचक कहते हैं कि प्रेमचद मे मनोवैज्ञानिक गहराई नही है। मनोविज्ञान का अर्थ विकृत काम-विकार ही न हो तो यह भी बडा सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक चित्रण है। बेटे की दुर्दशा देखकर बाप अपने को रोक नही पाता। तैश में आकर सिपाहियो को धक्का देता है, लेकिन दूसरे ही क्षण अपनी बेबसी समझकर रोने लगता है।

ज्ञानशकर लखनपुर के आसामियों पर इजाफा-लगान का दावा करता है। परिस्थितियाँ किसानों की चेतना को और पैना करती हैं और वे अपना एका और मज़बूत करते हैं और ज़मीदार का मुकाबला करने की ठानते हैं। गाँव मे ताऊन

फैल जाता है; लेकिन हाकिमो-जमीदारों की तरफ से कोई रियायत नही होती। उनकी जिंदगी कितनी कडवी हो चुकी है, इसका अदाज इस बात से लग सकता है कि जब ज्ञानशंकर के भाई प्रेमशकर डपटसिंह के पास पहुँचते हैं, जिसका एक लडका जाता रहा है और दूसरा जानेवाला है, तो वह कहता है—

"क्या जाफा वसूल करने आए हो ? उसी से ले लीजिए जो वहाँ धरती पर पडा हुआ है। वह आपकी कौडी-कौडी चुका देगा। गौसखाँ से कह दीजिए, उसे पकड ले जाएँ, बाँधे, मारे, मैं न बोलूँगा। मेरा खेती-बारी से, घर-द्वार से इस्तीफा है।"

इस किसान के लिए जिंदगी जहर का घूँट बन गई है। सहन करने की सामर्थ्य खो चुका है। उसका सारा आवेग उसके व्यग्य-वचनो मे फूट पडता है जिससे सुननेवाला तिलमिला उठे। प्रेमचद का व्यग्य उपन्यासो मे पात्रो का रोष, क्षोभ और प्रतिहिंसा प्रकट करने का साधन है। जितना ही किसान हाथ उठाने मे असमर्थ होकर मन मे घुटता है, उतना ही उसका व्यग्य आँच मे तपकर पैना हो जाता है।

इन तमाम कठिनाइयो के बावजूद गाँववाले जीत गए। इनकी एकता के आगे सरकारी कचहरियो को झुकना पडा। लेकिन मुकदमा हारने पर भी जमीदार शक्तिशाली है। प्लेग की वजह से लोगो ने अपने झोपडे जमीदार के बाग मे डाले थे। ज्ञानशकर उनमे आग लगवा देता है। इसके बाद उसने ताल का पानी बद कराने की कोशिश की। जिन चीजो पर किसानो का हजारो साल से पचायती हक था, जमीदार उन्हे भी हडपने की कोशिश कर रहा था। प्रेमचद लिखते हैं—"लोगो को कभी स्वप्न मे भी यह अनुमान न हुआ था कि जमीदार इतनी जबरदस्ती कर सकता है। उनका चिरकाल से इस पर अधिकार था। पर आज उन्हे ज्ञात हुआ है, इस पर हमारा स्वत्व नही है।"

कादिर हाथ-पैर जोडकर किसानो को हमेशा मनाता रहता है कि वे झगडा न करे। जब तालाब को लेकर जमीदार के आदमी फसाद करना शुरू करते हैं, तब सुलह की राह न देखकर वह खिसक जाना चाहता है। लेकिन सुक्खू चौधरी उसका हाथ पकडकर रोक लेता है और कहता है कि निपटारा होने तक रुकना पडेगा। तब क्या झगडा मोल लिया जाए ? गाँव के किसानो की एकता किस तरह मजबूत हो रही है, यह कादिर और सुक्खू की सक्षिप्त बातचीत से मालूम हो जाता है

"कादिर खाँ—तो क्या कहते हो, लाठी चलाऊँ ?

सुक्खू—और लाठी है किस दिन के लिए ?

कादिर—किसके बूते पर लाठी चलेगी ? गाँव मे रह कौन गया ? अल्लाह ने पट्ठो को चुन लिया।

सुक्खू—पट्ठे नही हैं, न सही, बूढे तो हैं। हम लोगो की जिंदगानी किस रोज काम आएगी ?"

परिस्थितियो की मार खाते-खाते किसान अब प्रतिरोध के लिए तैयार हो उठे थे। सुक्खू चौधरी उन लोगों में थे जो किसी हालत में जमींदार का विरोध न करना

चाहते थे। लेकिन मजबूर होकर उन्हे भी मनोहर और बलराज की तरह बाते करनी पडी।

जमीदार पर फिर दावा हुआ और किसान फिर जीते। सत्यनारायण की कथा हुई, ब्राहमणो का भोज हुआ। गौस खाँ ने दरोगा से मिलकर सुक्खू के यहाँ कोकीन बरामद करा दी और उन्हे दो साल की कैद की सजा सुना दी गई।

गाँव मे एक पुलिस-अफसर आता है। लोगो से बेगार कराई जाती है। कादिर खाँ बलराज को याद करते है, उसके अखबार मे लिखी बातो को याद करते हैं—

"देखते तो हो, बलराज के अखबार मे कैसी-कैसी बाते लिखी रहती हैं। यह सब अपनी तकदीर की खूबी है।"—और रोने लगते हैं।

प्रेमचद ने कादिर जैसे किसानो के पुरानपथी विचारो की दीवार को जर्जर होकर ढहता हुआ दिखाया है। वह अन्याय का विरोध नही करना चाहते; हर चीज अल्लाह और किस्मत के नाम पर सह लेना चाहते है, लेकिन बलराज की कही हुई बातो ने एक नया भाव पैदा कर दिया है। एक देश है जहाँ किसान घास छीलने के लिए मजबूर नही किए जाते। यह भाव उन्हे अपनी 'तकदीर' पर आँसू बहाने के लिए विवश करता है।

दुखरन साफ की हुई जमीन लीपने से इनकार करता है। उसे बरी तरह जूतो से पीटा जाता है। कादिर खाँ अपना सिर आगे कर देते हैं कि पहले इसे पीट लो। धक्का देकर उन्हे गिरा दिया जाता है। तभी प्रेमशकर आते हैं और वे प्रेम से सब मसले तय करने के पक्षपाती है। वह लोगो से काम करने को कहते हैं। दुखरन ने घर आकर शालिगराम की बटिया एक तरफ फेक दी। ईश्वर से उसका विश्वास उठ गया था। तहसीलदार प्रेमशकर से कहता है—"हम लोग एक तौर पर आपके मददगार है, रिआया को सताकर, पीसकर मजबूत बनाते हैं और आप जैसे कौमी हमदर्दो के लिए मैदान साफ करते हैं।" प्रेमशकर के पास इस नीचता का कोई उत्तर नही है। प्रेमचद ने दृढता से सत्य को चित्रित करते हुए सिद्ध किया है कि किसानो को जिनसे निपटना पडता है, वे हृदयहीन राक्षस हैं।

गौस खाँ गाँव की चरावर पर रोक लगाता है। जिन मैदानो मे किसानो के पुरखे सदा से अपने जानवर चराते आए थे, उन पर अन्याय से अब जमीदार अधिकार करना चाहता है। बलराज की माँ वहाँ अपने जानवर लिए पहुँचती है। उसे सुनाया जाता है कि सरकारी हुक्म है कि अब कोई जानवर वहाँ न चरे।

जो काम सुमन न कर सकी थी, वह बलराज की माँ बिलासी करती है। वह गाँव की पचायती जमीन के लिए लडती है। प्लेग, मुकदमा, आगजनी—इन सबसे निपटकर बिना आतंकित हुए वह कहती है—

"कैसा सरकारी हुकुम? सरकार की जमीन नही है। हमारे मवेसी सदा से यहाँ चरते आए हैं और सदा यही चरेगे। अच्छा सरकारी हुकुम है, आज कह दिया चरावर छोड दो, कल कहेगे अपना-अपना घर छोडो, पेड तले जाकर रहो। ऐसा

कोई अधेर है ?'' गौस खाँ क कहने मे उसके जानवर घेर लिए जाते हैं और जमीदार के चाकर उन्हे मवेशीखाने ले चलते हैं। बिलासी रास्ता रोककर खडी हो जाती है।

फिर गौस खाँ से यह बातचीत होती है–

''गौस खाँ–न हटे तो इसकी मरम्मत कर दो।

बिलासी–कहे देती हूँ इन जानवरो के पीछे लहू की नदी बह जाएगी। माथे गिर जायँगे।

फैजू–हटती है या नही चुडैल ?

बिलासी–तू, हट जा, दाढीजार।''

फैजू के धक्के से गिरकर वह बेहोश हो जाती है, लेकिन जैसा उसने कहा था–माथे गिर गए। गौस खाँ को जान से हाथ धोना पडा। मनोहर औरत की इज्जत के लिए मर मिटा।

ज्ञानशकर किसानो को इतना सताता है कि मनोहर अपने को धिक्कारने लगता है। गाँव के लोग उसके विरुद्ध हो जाते है, बलराज भी मनोहर का विरोध करने लगता है। ज्ञानशकर पुलिस को मिलाकर बहुत-से किसानो को हत्या के मामले मे फँसा देता है। कादिर गाँववालो की आलोचना का उत्तर देते हुए मनोहर के समर्थन मे कहते है–''यारो ! ऐसी बाते न करो, बेचारे ने तुम लोगो के लिए तुम्हारे हक की रक्षा करने के लिए यह सबकछ किया। उसके जीवट और हियाव की तारीफ तो नही करते और उसकी बुराई करते हो ! हम सब-के-सब कायर हैं, वही एक मर्द है।''

कादिर के ये शब्द बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। प्रेमचद पाठक को याद दिलाते हैं कि मनोहर ने जो कुछ किया, वह अपनी स्त्री की इज्जत रखने के लिए ही नही, वह सभी के हक की लडाई थी, जिस हक को जमीदार छीनना चाहता था। प्रेमचद ने बडे कलात्मक ढग से ये शब्द उस कादिर से कहलाए हैं जो हमेशा मनोहर और बलराज को रोका करता था, उन्हे ईश्वर का भरोसा करके अन्याय सहने का उपदेश दिया करता था। कादिर ने जिदगी के स्कूल मे नया सबक सीखा था–अन्याय का विरोध न करना कायरता है। इसीलिए वह कहता है–''हम सब-के-सब कायर है, वही एक मर्द है।''

लेकिन मनोहर को इससे सतोष न हुआ। वह अपने ही उन भाइयो से दुर्व्यवहार की आशा न करता था, जिनके लिए उसने क्या कुछ न सहा था। वह निराश होकर आत्महत्या कर लेता है। धीर-वीर मनोहर मानसिक दृढता की सीमा पार कर रहा था। हर व्यक्ति की सहनशीलता की सीमा होती है। उस सीमा तक पहुँचकर वह टूट जाता है।

प्रेमचद के किसान देवता नही है, वे मनुष्य है। उनमे कमजोरियाँ हैं; वे उनसे लडते हैं। कभी जीतते है, कभी हारते है। प्रेमचद ने चरित्र का उत्थान-पतन

दिखाने मे, एक साहसी लेकिन अति व्यथित किसान का हृदय पढने में, अपनी ज्वलत प्रतिभा का परिचय दिया है और प्रेमचद ही विधवा बिलासी मे गर्व-भाव का उदय होना दिखा सकते थे कि विधवा हुई तो क्या, उसने अन्याय के सामने कभी सिर नही झुकाया।

वह कहती है—"मैं विधवा हो गई तो क्या, घर सत्यानास हुआ तो क्या, किसी के सामने आँख तो नीची नही हुई।"

लेकिन उसकी मुसीबतो का अत नही हुआ। प्रेमचद एक विशाल सघर्ष को निर्मम यथार्थवादी की तरह उसके तर्कसगत परिणाम की तरफ बढाकर ले चलते है। अमन और कानून की ताकतें अब भी बहुत मजबूत हैं। लखनपुर के किसान अकेले पड जाते हैं। किसी दूसरे गाँव मे जूँ तक नही रेंगती, क्योंकि अभी उनका कोई सगठन नही है। शहर मे उन्हे कोई मदद नही मिलती, क्योकि मजदूर से उनका एका नही है। सन् 19-20 मे जब प्रेमचद ने यह उपन्यास लिखा था, तब ऐतिहासिक परिस्थिति ऐसी ही थी। प्रेमशकर की प्रेम से सब झगडे निपटाने की नीति किसानो को एक तकलीफ से भी नही बचा सकी।

बलराज और कादिर को काला पानी हो गया। बिलासी पर बकाया लगान का दावा किया गया। उसके जानवर, जिन्हे चरावर मे ले जाने के लिए वह लडी थी, कुर्क कर लिए गए। चपरासियो द्वारा खुद बिलासी बुरी तरह पीटी गई।

किसानो के पास मालगुजारी देने के लिए कुछ न था। उन पर ज्ञानशकर किस तरह जुल्म करता है, इसका वर्णन करते हुए प्रेमचद ने लिखा है—

"फैजुल्लाह ने सख्ती करनी शुरू की। किसी को चौपाल के सामने धूप में खडा करते, किसी को मुश्के कसकर पिटवाते। दीन नारियो के साथ और भी पाशविक व्यवहार किया जाता, किसी की चूडियाँ तोडी जाती, किसी के जूडे नोचे जाते। इन अत्याचारो को रोकनेवाला अब कौन था? सत्याग्रह मे अन्याय को दमन करने की शक्ति है, यह सिद्धात भ्रातिपूर्ण सिद्ध हो गया।"

यथार्थवादी चित्रण का इससे अच्छा निर्वाह और क्या हो सकता था? 'सेवासदन' की तरह यह उपन्यास भी वास्तव मे दु:खात है। सत्याग्रह भ्रांतिपूर्ण सिद्ध हो गया। ऐसा मार्ग जो अन्याय का दमन कर सके, किसानो के सामने न था। यह ट्रेजेडी व्यक्तिगत या घरेलू समस्याओ को लेकर लिखे हुए दु:खात उपन्यासो और नाटको से कही ज्यादा विशद और मार्मिक है। यह एक युग की ट्रेजेडी है, जब किसान पर अत्याचार बढे हैं, उसने उनका प्रतिरोध करने की कोशिश की है लेकिन सफल नही हो पाया। यह दु:खात परिणति एक दीर्घकालीन और सहारकारी सघर्ष के बाद हुई थी। एक तरफ लखनपुर का गाँव अपनी शक्ति बटोरता है, लडता है, परास्त होता है, फिर बिखर जाता है, दूसरी तरफ ज्ञानशकर और कारिंदे, थानेदार और तहसीलदार, जज, वकील और पेशकारों की फौज है जो अपनी सारी ताकत से गाँव को कुचल देना चाहती है। प्रेमचंद ने इस सघर्ष को

विस्तार से चित्रित किया है और ऐसा प्रभावशाली कौशल, घटनाक्रम को सजीव कर देने की ऐसी क्षमता खुद उनके उपन्यासो मे भी कम देखी जाती है।

इस सघर्ष मे दोनों प्रतिद्वद्वी बराबर के नही हैं। जमीदार और राजसत्ता असगठित किसानो के मुकाबले मे बहुत शक्तिशाली हैं। फिर भी पाठक की पूरी सहानुभूति लखनपुर के निवासियो के साथ रहती है, इसलिए कि वे नए जीवन के लिए, एक नए हिंदुस्तान के लिए लडते है। जहाँ तक किसानो का सबध है, उनकी कहानी मे पाठक की दिलचस्पी कम नही होने पाती। और अत मे प्रेमचद, 1920 मे ही पाठक के सामने यह निष्कर्ष रखते हैं—"सत्याग्रह मे अन्याय को दमन करने की शक्ति है, यह सिद्धात भ्रांतिपूर्ण सिद्ध हो गया।"

इसके बाद वही काल्पनिक समाधान है जिसने 'सेवासदन' को कमजोर बनाया था। 'प्रेमाश्रम' का समाधान और भी कमजोर है। जो प्रेमशकर लखनपुर को एक आदर्श गाँव बना देते है, वह किसानो के सघर्ष के दिनो मे न उन्हे सगठित कर पाते है, न दमन और जुल्म का मुकाबला करने मे उनका साथ देते हैं। वह विदेश मे पढे हुए एक अच्छे-खासे भलेमानुस है जो सपने देख सकते हैं लेकिन जीवन-सघर्ष की आँच सहने मे असमर्थ हैं। वह 'प्रेमाश्रम' के सबसे निर्जीव पात्रो मे हैं, खासकर उन तपे हुए और मार खाए हुए किसानो के मुकाबले मे जिनके गाँव को वह स्वर्ग बना देते हैं। उपन्यास का अत अस्वाभाविक ही नही है, वह उसके प्रभाव को भी कम कर देता है। जिन शक्तियो ने लखनपुर के किसानो को पीस डालने मे कुछ उठा नही रखा, वे सब बरकरार रहती है। उस अवस्था मे कोई परिवर्तन नही होता, जिसमे अग्रेजो के दलाल किसानो की कमाई का फल कुछ खुद लूटते थे और बाकी अग्रेज स्वामियो को भेट कर देते थे। तब लखनपुर एक सुखी और आदर्श गाँव कैसे बन गया?

उपन्यास के काल्पनिक अत का यही महत्त्व स्वीकार किया जा सकता है कि उससे प्रेमचद की आशाएँ जाहिर होती हैं कि भविष्य मे वह किस तरह के गाँव चाहते थे। उससे यह जाहिर होता है कि प्रेमचद समझते थे कि जमीदारी प्रथा खत्म हो जाए तो किसानो का जीवन इस तरह सुखी हो सकता है। यह मान लेने पर भी ज्ञानशकर-सबधी कथा को जितना विस्तार दिया गया है, वह अनावश्यक ही साबित होता है और उससे उपन्यास की मूल कथा का प्रभाव काफी कम हो जाता है।

इस तरह की खामियो से मामूली कलाकार भी बच सकता है, लेकिन मुख्य बात यह है कि 'प्रेमाश्रम' हिंदी का पहला 'हीरोइक' उपन्यास है जिसे लिखना एक असाधारण कलाकार ही का काम था। उसमे जनता की वीरता का चित्रण है, बिना शब्दों की झकार-टकार का सहारा लिए हुए, बिना अलकारो से साहित्य की आत्मा को ढाँके हुए। तुलसीदास ने भारतीय जनता के शौर्य का चित्रण किया था—पौराणिक गाथाओ के पात्रो द्वारा। प्रेमचंद तुलसीदास के त्याग, सहृदयता

और शूरता की परपरा के उत्तराधिकारी हैं।

'प्रेमाश्रम' की कला किस बात मे है? कथा गढ़ने मे, कथोपकथन मे, चरित्र-चित्रण मे? इन सबमे भी लेकिन इन सबसे अलग भी। उस कला का विश्लेषण उपन्यास के इन अगो का अलग-अलग विवेचन करने से नही हो सकता। वह कला जीवन का सपूर्ण चित्र देने मे है, उस चित्र मे जीवन को एक नई गति देने मे है।

प्रेमचद हमे ठेठ किसानो के बीच ले जाते है। उनके अलाव, उनके खेत और ताल, उनके अखाडे और लावनी-ख्याल, उनके अधविश्वास और नए जीवन के कसमसाते हुए भावाकुर—'प्रेमाश्रम' मे यह सबकुछ सजीव है, उसके पृष्ठो मे इतिहास जी रहा है। प्रेमचद किसानो की प्राचीन परपरा दिखाते हैं तो यह भी कि कहाँ उनकी कडियाँ टूट रही हैं। प्रेमचद की कला इस बात मे है कि वे हिदुस्तान के बदले हुए किसान का चित्र खीच सके हैं। घटनाएँ साधारण हैं लेकिन उनसे वह अपने पात्रो का पुरानापन और नयापन, उनको पीछे ठेलनेवाली और आगे बढानेवाली विशेषताएँ प्रकट करते हैं। पहाड की तस्वीर खीचना आसान है, नदी के बहाव को चित्रित करना मुश्किल। प्रेमचद ने यथार्थ के बहाव को पकड लिया है। उसे उन्होने भावी पीढियो के लिए 'प्रेमाश्रम' मे सरक्षित कर दिया है।

प्रेमचद की कला उपन्यास की चित्रमयता मे है। प्रेमचद अपने पात्रो पर मनोवैज्ञानिक लेख लिखने नही बैठ जाते, जैसा कि कुछ अद्भुत कलाकार किया करते हैं। वह अपने पात्रो से लबी-लबी स्पीचे भी नही दिलवाते जिनमे थोथे तर्कजाल का विस्तार करके उपन्यास को वजनी बना दिया जाता है। प्रेमचद पात्रो के, घटनाओ के, दृश्यो के ऐसे चित्र आँकते है कि पाठक उन्हे हमेशा याद रखता है और वे उसकी स्मृति मे छिपे हुए उसके विचारो और कर्मो को प्रभावित करते है।

प्रेमचद ने 'मनोवैज्ञानिक' कलाकारो की तरह इस उपन्यास को तर्कजाल और अपनी टीका से लाद दिया होता तो वह साधारण जनता मे कभी इतना लोकप्रिय न होता। वह जो कुछ कहना चाहते हैं, उसे चित्रो द्वारा ही कहते हैं। पात्रो के सवादो मे तर्कजाल भरनेवाले सज्जन वास्तव मे अपने यथार्थ जीवन के अज्ञान को छिपाते है। उनका अनुभव बहुत ही सीमित और सकुचित होता है, लेकिन वह उसे हिंद महासागर की तरह गहरा दिखाना चाहते है। प्रेमचद मे यथार्थ जीवन की गहरी जानकारी है, उनके उपन्यासो मे महत्त्वपूर्ण जीवन-दर्शन, सुलझा हुआ दृष्टिकोण और गभीर विचार मिलते हैं।

प्रेमचद के दृष्टिकोण की खूबी इस बात मे है कि वह समाज मे देख सकते हैं कि कौन-सी चीज मर रही है और कौन-सी चीज उग रही है। वह समाज को एक गतिशील क्रम के रूप मे देखते हैं। यहाँ स्थिरता नही है लेकिन क्षणभगुरता का नाम ससार नही है। यहाँ कुछ शक्तियाँ पतनशील हैं तो कुछ शक्तियाँ उदयशील भी। लखनपुर के किसान उगनेवाली शक्ति है। वे निरस्त्र है, सघर्ष मे मार खा

जाते हैं, भयानक यातनाएँ सहते है, अधविश्वासो और कुसस्कारो से पूरी तरह पीछा नहीं छुडा पाते, लेकिन भविष्य उन्ही का है, समाज की उदीयमान शक्ति वही हैं। ज्ञानशकर, ज्वालासिह, गौस खाँ वगैरह भले ही शक्तिशाली दिखाई दे लेकिन उनका भविष्य अधकारमय है। वे समाज की प्रगति को रोकनेवाली मरणशील शक्ति हैं। इन दो तरह के दलो मे वर्षो तक सघर्ष चलता है और उसके दौरान नई नैतिकता पुरानी सामती सस्कृति को चुनौती देती है, उससे टक्कर लेती है और दृढ होती है।

प्रेमचद का जीवन-दर्शन इसी ससार मे जूझनेवाले मनुष्यो के दुख-सुख, आशा-निराशा, विजय-पराजय का चित्रण करने मे प्रकट होता है। वह पाठक को यह नही सिखाते कि यह ससार झूठा है, इसमे रहनेवाले मनुष्य झूठ हैं, उनका सघर्ष झूठा है। वह दिखलाते है कि मनुष्य जिन परिस्थितियो मे पैदा हुआ है, उनसे प्रभावित होते हुए भी उन्हे बदलने की कोशिश करता है।

प्रेमचद का गभीर चिनन, उनके ऊँचे विचार, एक नई मनुष्यता, एक नई नैतिकता का चित्रण करने मे प्रकट होते है, जो हिदुस्तान के किसानो मे किरण की तरह फूट रही थी। इस घटना का अतर्राष्ट्रीय महत्त्व था। हिदुस्तान को आधार बनाकर हिदुस्तान के जान-माल की मदद से अग्रेजो ने ऐसा साम्राज्य कायम किया था जिसमे सूरज न डूबता था। उस साम्राज्य के स्तभ थे, अग्रेजो के दलाल, भारत के राजा, जागीरदार और जमीदार। हिदुस्तान के किसान उनके खिलाफ सघर्ष करके सिर्फ अपने सुखी जीवन के लिए न लड रहे थे बल्कि वह ससार के सभी दासो की शाति और स्वाधीनता के लिए लड रहे थे। प्रेमचद हिदी के पहले लेखक थे जिन्होने अतर्राष्ट्रीय महत्त्व का ऐसा उपन्यास लिखा था।

यह उपन्यास असहयोग-आदोलन के बाद छपा, यह हमारा दुर्भाग्य था। फिर भी उसने स्वाधीनता-आदोलन को दृढ करने के लिए उसे एक नई गति देने मे, किसान-समस्या को आजादी की मूल समस्या के रूप मे स्वीकार करने मे बहुत बडा काम किया है। ऐसा सामाजिक महत्त्व विरले ही उपन्यासो का होता है।

प्रेमचद की कला उनकी सजीव शब्दावली, वर्णन की काव्यमयता, उनके गद्य के वह सजीव अश, जिन्हे पाठक कविता की पक्तियो की तरह रट लेते हैं—इन सबमे प्रकट होती है। प्रेमचद की कला मनोहर, बलराज, कादिर के सजीव चित्रण मे प्रकट होती है जिनसे बिछुडने पर एक आत्मीय के बिछोह का-सा दु ख होता है।

किसी समय जब प्रेमचद के मनोहर, बलराज और कादिर का जीवन बदल जाएगा और लखनपुर वास्तव मे एक सुखी गाँव बनेगा, तब मनोहर, बलराज और कादिर की सतान 'प्रेमाश्रम' पढेगी और कहेगी—हाँ हमारे पुरखे वीर थे, उन्होने अन्याय के सामने सिर नही झुकाया, वे अपना रक्त न बहाते तो यह गाँव सुखी न होता। और यह सब कहते-सोचते उनका हृदय प्रेमचद के प्रति कृतज्ञता से भर उठेगा।

4. निर्मला और ग़बन

'निर्मला' और 'गबन' प्रेमचद के ऐसे उपन्यास है, जिनमे नारी-समस्या प्रधान है।

'सेवासदन' को देखते हुए 'निर्मला' की कहानी का क्षेत्र सकुचित है; लेकिन कई जगह इसके स्थल 'सेवासदन' से ज्यादा करुण और मर्मस्पर्शी हैं।

'निर्मला' मे कई तरह के दपती है। उदयभानुलाल और कल्याणी, भालचद्र और रगीलीबाई, डॉक्टर और सुधा, तोताराम और निर्मला।

कल्याणी और उदयभानु—निर्मला के माता-पिता—का झगडा उपन्यास के अगले सघर्षो की अग्रसूचना है। उदयभानु का कहना है—"ऐसे मर्द और होगे जो औरतो के इशारे पर नाचते है" और कल्याणी का कहना है—"ऐसी स्त्रियाँ भी और होगी, जो मर्दो की जूतियाँ सहा करती है।" मर्द को घर का अभिमान, सोचना है—यह घर छोडकर कहाँ जाएगी? कल्याणी चलने को होती है तो वह ताना देता है—मैके का घमड होगा। कल्याणी मैके जाने पर लानत भेजती है। तैश मे घर छोडकर चली तो जाती लेकिन बच्चो का मोह उसे रोक लेता है। पति उसे सबक सिखाने के लिए नदी के किनारे कपडे छोडकर कुछ दिन बाहर जाने का विचार करते है, लेकिन रात मे एक गुडा, जिसे उन्होने सजा कराई थी, उनकी हत्या कर डालता है। कल्याणी समझती है कि उसी की जली-कटी बातो से उसके पति का अत हुआ।

इससे उल्टा जोडा भालचद्र और रगीलीबाई का है। भालचद्र आबकारी के ऊँचे ओहदे पर थे। खूब रिश्वत लेते थे। काला भुजग शरीर था, लेकिन पत्नी—"गोरे रग की प्रसन्न-मुख महिला थी। रूप और यौवन उनसे विदा हो रहे थे, पर किसी प्रेमी मित्र की भाँति मचल-मचलकर तीस साल तक जिसके गले से लगे रहे, उसे छोडते न बनता था।" पतिदेव हिंदी के अक्षर बिल्कुल न पहचानते थे लेकिन रगीलीबाई खत पढ़ लेती थी। इन्ही के लडके से निर्मला का ब्याह होनेवाला था, यह सुनकर कि उदयभानु नही रहे—यानी भारी दहेज अब न मिलेगा—भालचद्र ने शादी करने से इनकार कर दिया। रगीलीबाई कोमल हृदय की थीं, लेकिन पति पर कठोर शासन करती थी। वह चाहती हैं कि शादी हो जाए लेकिन पति को हीले-हवाले करते देखकर डपटकर कहती है—"क्यो जी, तुम मुझसे भी

उड़ते हो, दाई से पेट छिपाते हो ? मैं तुम्हारी बाते मान जाती हूँ, तो तुम समझते हो, इसे चकमा दिया; पर मै तुम्हारी एक-एक नस पहचानती हूँ।"

रगीलीबाई के द्वारा प्रेमचद ने बहुत-सी सताई हुई स्त्रियो का मानो बदला ले लिया हो, मानो यह दिखला रहे हो कि हमारे समाज मे स्त्रियाँ पतियो को नचा भी सकती है। ब्याह तय हो जाता अगर लडका ही दहेज पर न अड जाता। वह कॉलेज मे पढता है लेकिन सीधे अपनी माँ से कहता है—"कही ऐसी शादी कराइए कि खूब रुपए मिले।" और रगीलीबाई उससे परास्त होकर कहती है—"तुम बाप-पूत दोनो एक ही थैली के चट्टे-बट्टे हो।"

सुधा निर्मला की घनिष्ठ मित्र है। अपने पति से बडा प्रेम करती है, लेकिन पतिदेव के हृदय मे निर्मला के लिए प्रेम का दीपक जला करता है। जब सुधा को पता लगा तो उसने उन्हे खूब आडे हाथो लिया। पति हयादार थे इसलिए जल्दी ही मर गए। फिर भी सुधा को अपने किए पर पश्चात्ताप नही हुआ। वह कहती है—"ऐसे सौभाग्य से मै वैधव्य को बुरा नही समझती।"

कल्याणी और सुधा-जैसी नारियाँ हिंदी-उपन्यासो और नाटको की उन तमाम महिलाओ से भिन्न है जो व्यभिचारी पति के चरणो को आँसुओ से तर कर देती है और उसके अन्याय का प्रतिकार करने की बात भी नही सोचती। वे विशेष रूप से शरत् बाबू की देवियो से भिन्न है, जो अधिकतर अपने दुख मे घुट-घुटकर मरना पसद करती है, लेकिन समाज का खुला विरोध नही करती। प्रेमचद अपने उपन्यासो मे नए ढग के नारी पात्रो को रच रहे थे जो अन्याय और दुख सहती है लेकिन उनका विरोध भी करती है। यदि नारी घुट-घुटकर मरा करे और सामाजिक रुकावटो का विरोध न करे तो कुछ लोग इसे बहुत गभीर मनोविज्ञान समझते है। वास्तव मे उससे उनके सामती सस्कारो को सतोष होता है जिनके वश मे रहकर वे नारी को दासी ही बनाकर रखना चाहते हैं।

मुख्य कहानी निर्मला की है। उसके पिता की मृत्यु के बाद उसके ब्याह मे बहुत-सी अडचने आती हैं। दहेज मे लोग लबी रकमे माँगते हैं। विधवा कल्याणी यह सब कहाँ से लाए ? आखिर जैसे गजाधर ने सुमन का उद्धार किया था, वैसे ही तोताराम ने निर्मला का उद्धार किया। सुमन का पति उससे लडता था, निर्मला का पति उसे खुश रखने की हजार कोशिशे करता है। लेकिन इससे निर्मला का जीवन सुखी नही होता, बल्कि सुमन से हजार गुना दुखी हो जाता है।

तोताराम की उम्र चालीस के करीब थी लेकिन बाल पक गए थे और तोद निकल आई थी। मदाग्नि और बवासीर से भी परेशान थे। घर मे तीन लडके थे और विधवा बहन। नई बीवी को खुश रखने के लिए वह उपहार भेट किया करते थे। कजूस थे लेकिन उसे खुश रखने के लिए धन की परवाह न करते। लडको को न देते; बीवी को मेवे और मिठाइयाँ खिलाते। वकालत से फुरसत पाकर उसे ग्रामोफोन सुनाते थे।

तोताराम जितना ही उसे रिझाने की कोशिश करते थे, उतना ही निर्मला का मन उससे भागा-भागा फिरता था। उसकी परिस्थिति का भयावनापन प्रेमचद ने नीचे शब्दो मे यो व्यक्त किया है—

"लेकिन निर्मला को न जाने क्यो तोताराम के पास बैठने और हँसने-बोलने मे सकोच होता था। इसका कदाचित् यह कारण था कि अब तक ऐसा ही एक आदमी उसका पिता था, जिसके सामने वह सिर झुकाकर, देह चुराकर निकलती थी, अब उसकी अवस्था का एक आदमी उसका पति था। वही बाते, जिन्हे किसी युवक के मुख से सुनकर उसका हृदय प्रेम से उन्मत्त हो जाता, वकील साहब के मुँह से निकलकर उसके हृदय पर शर के समान आघात करती थी। वह अपना रूप और यौवन उन्हे न दिखाना चाहती थी, क्योकि वहाँ देखनेवाली आँखे न थी।"

पति के प्रेम से उसका क्रोध और अवज्ञा अच्छे थे। सुमन का पति उस पर सदेह करता था, मुँह पर कह देता था, लड लेता था, सुमन को लडने का मौका देता था। निर्मला का पति उस पर सदेह करता है—गजाधर की तरह पर-पुरुष से प्रेम का नही वरन् अपने बडे लडके मसाराम से भावी सबध की आशका से वह निर्मला को अपने प्रेम का बदी बना लेना चाहता है। वह वकील है, अग्रेजी पढा-लिखा है, इसलिए अपना सदेह छिपाकर रखता है और ऊपर से प्रेम का अभिनय करते हुए वह निर्मला को जीवित नरक मे ठेल देता है। उसे विरोध करने का, लडने-झगडने का मौका ही नही देता। अतृप्त नारी दर्पण मे अपना शृगार देखकर मन-ही-मन भस्म हुआ करती है—"निर्मला जब वस्त्राभूषणो से अलकृत होकर आईने के सामने खडी होती और उसमे अपने सौंदर्य की सुषमापूर्ण आभा देखती, तो उसका हृदय एक सतृष्ण कामना से तडप उठता था।" जिस विवाह-प्रथा का आधार रुपए-पैसे का लेन-देन था, निर्मला उसी की वेदी पर उस पशु की तरह छटपटाया करती थी जिसका सिर पूरी तरह धड से जुदा न हुआ हो।

इस दखभरी कहानी मे तोताराम की फिर जवान बनने की कोशिशे हास्यरस पैदा करके पाठक के मन को हल्का करती है। मित्र ने सलाह दी—"यह ढीला-ढाला कोट फेको, तजेब की चुस्त अचकन हो, चुन्नटदार पाजामा, गले मे सोने की जजीर पडी हुई, सिर पर जयपुरी साफा बँधा हुआ, आँखो मे सुर्मा और बालो मे हिना का तेल पडा हुआ। तोद का पिचकना भी ज़रूरी है। दोहरा कमरबद बाँधो। जरा तकलीफ तो होगी, पर अचकन सज उठेगी। खिजाब मै लगा दूँगा। सौ-पचास गजले याद कर लो, और मौके-मौके से शेर पढो।"

प्रेमचद गजलो की परपरा को कितनी प्रगतिशील समझते थे, यह इसी से जाहिर है कि उन्होने सुर्मा और दोहरे कमरबद के साथ गले मे सदाबहार सदासोहाग गजलो की माला पहनने की सलाह दिलवाई है, मानो गजलो के बिना सारे बनावटी काम अधूरे ही रह जाते।

तोताराम ने इन सब बातो पर अमल किया और वे सीग कटाकर बछडो मे

शामिल हो गए। बॉके का स्वॉग करते हुए उन्होने शेक्सपियर के प्रसिद्ध हास्य-पात्र फालस्टाफ की बहुत-सी बाते उतार ली। एक छडी से तीन तलवार लिए हुए हमलावरो को उन्होने मार भगाया। निर्मला ने फालस्टाफ के दोस्तो की तरह सवाल किया—"इस छडी पर तो तलवारो के बहुत-से निशान बने हुए होगे।" तोताराम ने वारो को खाली जाने दिया था, इसलिए छडी साफ बच गई थी। तभी उनकी बहन के कमरे मे एक साँप निकल आया। तोताराम के हाथो के तोते उड गए और उनकी बहन ने कह ही तो दिया—"है-है! मर्द होकर डरते हो?" आखिर साँप को उनके बडे लडके ने मारा, लेकिन तोताराम बोले—"मै तो आ ही रहा था, तुमने क्यो जल्दी की?" फिर भी मुर्दा साँप से डर लगता था, इसलिए यह भी कहा—"दे दो, कोई फेक आए।"

निर्मला तोताराम के इस अभिनय से इतना दुखी रहने लगी कि उसने भाग्य से समझौता करने का फैसला कर लिया। लेकिन इससे तोताराम का मन शात न हुआ। जब तक निर्मला खिची-खिची रहती थी, तब तक वह उसे मनाने-रिझाने मे लगे रहते थे। एक बार जब उसने आत्मसमर्पण कर दिया, तब वह उसके स्वामी और शासक बन बैठे। यह अकाल-वृद्ध पति अपने लडके से ही ईर्ष्या करने लगता है और स्कूल मे रखकर निर्मला और मसाराम दोनो को काला पानी दे देता है। ऊपर से मसाराम को यह जताता है कि इसका मूल कारण निर्मला है।

तोताराम का सारा घिनौना चरित्र निर्मला से छिपा नही रहता। पहले वह उनकी देह से ही घृणा करती थी, अब उसे उनके चरित्र से भी घृणा हो जाती है। प्रेमचद ने उनकी असहय पीडा—वास्तविक पीडा का वर्णन यो किया है—

"जिस देह का स्पर्श उसे सर्प के शीतल स्पर्श के समान लगता था, उससे आलिगित होकर उसे जितनी घृणा, जितनी मर्म वेदना होती थी, उसे कौन जान सकता है?"

सुमन उससे कितनी सौभाग्यशाली थी, जिसे इस तरह के पति-प्रेम से वचित ही रहने का सुख मिला था!

स्कूल मे मसाराम बीमार पड जाता है। निर्मला सहनशीलता की सीमा पर पहुँच चुकी है। वह अब पति को बतला देती है कि वह सब समझती है और उसकी नजरो मे पति महाशय क्या है। वह कहती है—"यह सब आप करा रहे है।" लेकिन पति निर्दोष होने का अभिनय करता है। निर्मला फिर कहती है—"खूब सोचिए इसीलिए आपने उन्हे वहाँ भेजा था? आपके मन मे कोइ और बात न थी?" लेकिन तोताराम बेशर्म आदमी हैं। इशारो मे समझने से इनकार करते है। निर्मला मे अभी इतनी हिम्मत नही आई कि वह खुलकर उनका तीव्र विरोध करे। मसाराम को घर लाने की सलाह देकर वह इतना ही कहती है—"मेरे कारण न लाना चाहते हो, तो मुझे मेरे घर भेज दीजिए। मै वहाँ आराम से रहूँगी।" तोताराम से इसका कोई जवाब देते नही बन पडता।

मसाराम को टी बी हो जाती है। तोताराम को मरते हुए लडके स भी भय लगता है कि कहीं वह उनकी धर्मपत्नी का सतीत्व नष्ट न कर दे। निर्मला अब पति के सदेह और समाज की कानाफूसी की परवाह न करके सीधे अस्पताल पहुँच जाती है। तोताराम का हृदय मृत्यु-शय्या पर पडे हुए लडके को देखकर भी नहीं पिघलता। अब भी पत्नी को डॉटकर कहते हैं, मानो घर मे जिस कुत्ते को बाँध आए हो, वह रस्सी तुडाकर वहाँ भाग आया हो—"तुम यहाँ क्या करने आई ?" लेकिन निर्मला अब वह निर्मला नही है। एक क्षण वह इस प्रश्न से स्तभित रह जाती है। जब तोताराम ने अपना प्रश्न दोहराया तो—

"निर्मला ने नि शक भाव से उत्तर दिया—आप यहाँ क्या करने आए हैं ?"

इस पर तोताराम का स्वामी-भाव जाग उठा। नथने फडकने लगे। शायद अस्पताल था, वर्ना हाथ चला बैठते। फिर भी निर्मला का हाथ पकड लिया और बोले—"तुम्हारे यहाँ आने की कोई जरूरत नही। जब मैं बुलाऊँ तब आना, समझ गई ?"

पुरुष ने अपने अधिकार का उपयोग किया। अब विजयी होना उसके हाथ मे नही था। विमाता और उसका बेटा दोनो मिलकर उस नीच तोताराम का सामना करते हैं। मसाराम ने सारी ताकत बटोरी और जिस निर्मला ने उसके लिए इतना सहा था, वह उसके पैरो पर गिरकर कहता है—"अम्मा जी, इस अभागे के लिए आपको व्यर्थ इतना कष्ट हुआ। मै आपका स्नेह कभी न भूलूँगा। ईश्वर से मेरी यही प्रार्थना है कि मेरा पुनर्जन्म आपके गर्भ से हो, जिससे मैं आपके ऋण से उऋण हो सकूँ। ईश्वर जानता है, मैंने आपको विमाता नही समझा। मैं आपको अपनी माता समझता रहा। आपकी उम्र मुझसे ज्यादा न हो, लेकिन आप मेरी माता के स्थान पर थीं और मैंने आपको सदैव इसी दृष्टि से देखा अब नहीं बोला जाता अम्मा जी, क्षमा कीजिए! यह अंतिम भेट है।"

मसाराम के एक-एक शब्द में तोताराम की पराजय थी। उसके शब्दो ने समझा दिया कि उनकी नीचता किसी से छिपी नही है। मसाराम उनके सदेहो की असलियत प्रकट करके अपनी विमाता के लिए निर्भय होकर अपना स्नेह व्यक्त कर देता है।

"निर्मला ने निर्भय नेत्रों से देखते हुए कहा—डॉक्टरो ने क्या सलाह दी ?"

उसका भय दूर हो गया है; लेकिन बहुत देर में दूर हुआ। वह मसाराम की जान बचा सकती थी और बचा लेती अगर इतनी हिम्मत उसने जरा पहले दिखाई होती। निर्मला सुमन नहीं है। वह कभी न कह पाती—"जहाँ मजूरी करूँगी वहीं पेट पाल लूँगी।" अपने चरित्र की इस निर्बलता की वजह से वह मसाराम को खो देती है और उसके बाद भी कष्ट उठाती है।

तोताराम की गृहस्थी चौपट हो जाती है। लडके शरारती हो जाते हैं। निर्मला, जैसका स्वभाव पहले इतना मधुर था, अब कर्कशा बन जाती है। फिर सुधा के

पति का प्रेम-निवेदन, निर्मला की फटकार, डॉक्टर की मृत्यु, तोताराम के एक लडके का घर से लापता होना, निर्मला से झगडा, लडके का पता लगाने के लिए तोताराम का बाहर निकलना और निर्मला का घुल-घुलकर मरना और अत मे—

"उसी समय जब पशु-पक्षी अपने-अपने बसेरे को लौट रहे थे, निर्मला का प्राण-पक्षी भी, दिन-भर शिकारियो के निशानो, शिकारी चिडियो के पजो और वायु के प्रचड झोको से आहत और व्यथित अपने बसेरे की ओर उड गया।"

जिस समय लोग निर्मला की लाश बाहर निकालते है और इस पसोपेश मे होते है कि इसका दाह कौन करेगा, उसी समय एक बूढा पथिक एक बुकचा लटकाए आकर खडा हो गया। यही मुशी तोताराम थे।

यही उपन्यास समाप्त हो जाता है।

शायद यह प्रेमचद का पहला दुखात उपन्यास है।

दु खपूर्ण अत केवल निर्मला के जीवन का नही होता। एक ट्रैजिक पात्र और है, मसाराम। यह एक नई तरह का पात्र है, जिसे प्रेमचद ने अपने उपन्यास मे जगह दी है। हिदी कथा-साहित्य मे वयस्क स्त्री-पुरुषो की समस्याओ पर काफी लिखा गया है, लेकिन स्कूली उम्र के लडको की तरफ कलाकारो का ध्यान कम गया है।

मसाराम एक मातृहीन बालक है। इस जर्जर सामती समाज मे स्त्रियो की तरह लडको को भी स्वाधीनता नही है—यह तथ्य सबसे पहले प्रेमचद ने पेश किया। मसाराम अपनी विमाता का गुलाम नही है। वह गुलाम का-सा सलूक पाता है अपने पिता से। तोताराम के लडके चोरी-बदमाशी सीखने की आजादी हासिल कर लेते है, लेकिन जहाँ मसाराम के सहज विकास और उसकी स्वाभाविक इच्छाओ से पिता का स्वार्थ टकराता है, वहाँ लडके को दबना पडता है, पिता उसे उसी तरह अपनी सपत्ति समझता है जैसे स्त्री को।

मसाराम एक कच्ची उम्र का लडका है। घर-गृहस्थी की बाते कम समझता है, खासकर यह तो वह सपने मे भी न सोचता था कि उसके पिता निर्मला और उसके सबध मे किसी तरह के अनौचित्य की आशका करते होगे। वह मेहनती और सच्चरित्र लडका था। जिदगी मे बहुत-कुछ कर सकता था। लेकिन इस सडी-गली समाज-व्यवस्था मे, जहाँ नौजवानो के कोई अधिकार नही हैं, वह पिस गया।

मसाराम की ट्रेजेडी और भी करुण इसलिए हो उठती है कि वह मातृहीन बालक है। उसका दुख कम करने के बदले परिवार की व्यवस्था उसके अतस के दु ख को हर वक्त कुरेदा करती है।

"ज्यो-ज्यो मातृस्नेह की पूर्व-स्मृतियाँ जागृत होती थी, उसके आँसू उमड़ते आते थे। वह कई बार अम्मा-अम्मा पुकार उठा, मानो वह खडी सुन रही है। मातृहीनता के दु:ख का आज उसे पहली बार अनुभव हुआ। वह आत्माभिमानी था, साहसी था, पर अब तक सुख की गोद मे लालन-पालन होने के कारण वह इस

समय अपने को निराधार समझ रहा था।''

आत्माभिमान और साहस के गुण उसी परिवार मे पूरी तरह विकसित हो सकते हैं जिसका आधार पैसा न हो। निर्मला का विवाह योग्य वर से न हुआ, क्योंकि उसके परिवार के पास पैसा न था। वह तोताराम की दासी है, क्योंकि उसके पास अपना एक पैसा नही। मसाराम के लिए परिवार मे उसका अपना कोई अधिकार नही, क्योकि धन के स्वामी पिता है और वह उनके अन्याय के विरुद्ध कही फ़रियाद नही कर सकता।

'निर्मला' प्रेमचद के कथा-साहित्य के विकास मे एक मार्ग-चिह्न है। यह पहला उपन्यास है जिसमे उन्होने किसी सेवासदन या प्रेमाश्रम का निर्माण करके पाठक को झूठी सान्त्वना नही दी। कहानी अपने निर्मम तर्कसगत परिणाम की तरफ अविराम गति से बढती जाती है। उन्होने कहानी लिखने मे यथार्थवाद को पूरी तरह निबाहा है। यह क्रातिकारी यथार्थवाद नही है, निर्मला और मसाराम मे काफी निष्क्रियता है, सुमन की तरह वे अन्याय का प्रतिकार करने नही बढते। फिर भी यथार्थवाद को लाने और पुष्ट करने मे 'निर्मला' का महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह उपन्यास असहयोग-आदोलन की असफलता के बाद लिखा गया था और जाहिर करता है कि किस तरह हिदी-लेखक कल्पित समाधानो से सतुष्ट न होकर यथार्थ जीवन का सामना करने के लिए आगे बढ रहे थे।

'गबन' मे जालपा और रमानाथ ऐसे दपती है जो सुखी है। इनका ब्याह दहेज की वजह से नही रुका और न पति के सदेह से स्त्री को यम-यातना भोगनी पडती है। लेकिन जालपा को गहनो का शौक है। बचपन से उसने चद्रहार का सपना देखा है। ब्याह मे गहने मिलते हैं लेकिन वे उसके अपने नही हो पाते। उसका मन रखने के लिए रमानाथ और उसके पिता ने उसे ठगा था और एक दिन रमानाथ उन्हे चुरा लेता है और वे सर्राफ को वापस कर दिए जाते है।

रमानाथ चरी की नौकरी करता है। जालपा की मित्र रतन उसे कगन खरीदने के लिए रुपए देती है। वे रुपए भी सर्राफ के यहाँ पहुँच जाते है। रतन बराबर तकाजे करती है। एक दिन जालपा चरी के रुपए उठाकर रतन को दे देती है। गबन मे पकडे जाने के भय से जालपा से सच्ची बात कहने की हिम्मत न होने से रमा भाग खडा होता है। बूढे खटीक देवीदीन के यहाँ आश्रय पाता है। सरकारी गवाह बनकर वह क्रातिकारियो को सजा कराता है लेकिन जालपा से फटकारे जाने पर—जो उसे ढूँढती हुई कलकत्ता पहुँच गई है—वह जज के सामने सच्ची बात कह देता है। मुकदमा फिर होता है और क्रातिकारी रिहा कर दिए जाते है। अत मे रमा, जालपा, देवीदीन वगैरह इलाहाबाद मे आकर खेती-बाडी करने लगते हैं।

प्रेमचद के नारी-पात्रो मे जालपा एक नए ढग की स्त्री है। वह परिस्थितियो से टक्कर लेती है लेकिन कभी धैर्य नही खोती। भारी-से-भारी मुसीबत पडने पर वह विवेक से काम लेती है और कठिनाइयो का सामना करने के लिए नए-नए दाँव-पेच

निकाल लेती है। वह निर्मला की तरह घुल-घुलकर प्राण देनेवाली नही है और न सुमन की तरह तैश मे आकर जल्दी ही किसी अनजानी राह पर कदम उठानेवाली। उसका चरित्र कठिनाइयो का सामना करते हुए बराबर निखरता रहता है, क्योकि वह अपनी खामियो को पहचान सकती है। वह एक ईमानदार और साहसी स्त्री है।

वह गाँव की लडकी है। सावन की घटाओ के नीचे बाग मे झूला झूल चुकी है। कजली और बारहमासा ने उसके मनोभावो को सरस बनाया है। लेकिन वह किसी खेत-मजूर की लडकी न थी। उसके पिता उसके भविष्य के लिए यह न सोचते थे कि वह मर्द के साथ खेत मे काम करेगी। उसके भविष्य के नक्शे मे पति और गहने ही बनाए गए थे।

स्त्रियो को अक्सर गहनो से प्रेम होता है। इसके लिए उन्हे कभी-कभी कोसा भी जाता है और अनेक पुरुष अपने ऊपर गर्व भी करते है कि वह गहनो-जैसी तुच्छ चीजो से प्रेम करनेवाली स्त्रियो से ऊँचे हैं। लेकिन गहनो से स्त्रियो के इस प्रेम का कारण क्या है?

प्रेमचद लिखते है—"जालपा को गहनो से जितना प्रेम था, उतना कदाचित् ससार की और किसी वस्तु से न था, और उसमे आश्चर्य की कौन-सी बात थी? जब वह तीन वर्ष की अबोध बालिका थी, उस वक्त उसके लिए सोने के चडे बनवाए गए थे। दादी जब उसे गोद मे खिलाने लगती, तो गहनो ही की चर्चा करती। तेरा दूल्हा तेरे लिए बडे सुदर गहने लाएगा। ठुमक-ठुमककर चलेगी।"

जब वह कुछ और बडी हुई, तब उसने गुडियो को गहने पहनाए थे। और बढने पर अपने गाँव-घर की स्त्रिया से वह गहनो की चर्चा सुना करती थी। इस तरह उसका जीवन एक ऐसी दुनिया मे बीता था जिसे प्रेमचद ने 'आभूषण-मडित ससार' कहा है।

स्त्री के लिए काम-काज के दरवाजे बद होगे तो वह जरूर गहनो के लोक मे घूमती रहेगी।

जालपा और रमा एक-दूसरे को प्यार करते थे। लेकिन यह प्यार का भ्रम ही था। जालपा गहनो को प्यार करती थी और रमा उसके रूप और जवानी को। गहनो के चले जाने के बाद जालपा के व्यवहार मे अतर आ जाता है। वह रमा से खिची-खिची रहने लगती है।

रमा जालपा से अपने मन की बात नही कह पाता। कई बार सकल्प करता है कि कहे, लेकिन हर बार सकल्प टूट जाता है। ऐसा क्यो होता है? इसलिए कि परस्पर विश्वास का आधार अभी बन नही पाया। रमा जालपा का रूप-यौवन चाहता है लेकिन बदले मे क्या दे? वह गहने ही दे सकता है और गहनो से ही वह प्रसन्न हो सकती है। लेन-देन का व्यापार यहाँ भी है। रिश्वत, झूठ, मर्यादा बनाए रखने के लिए दाँव-घात—ये सब रमा के चरित्र की विशेषताएँ हैं जो सपत्ति की पूजा करनेवाले समाज मे पैदा हुई है।

रमा और जालपा के चरित्र मे एक मौलिक अतर है । जालपा को सच कहने और सोचने की शिक्षा मिली है । वह नारी है; इसलिए पीडितो की व्यथा को पुरुष से ज्यादा अच्छी तरह समझती है । जब रमा नौकरी के अलावा ऊपरी आमदनी की बात करता है तो जालपा टोकती है—"तो तुम घूस लोगे, गरीबो का गला काटोगे ?"

रमा की तरह वह आत्मसम्मान के भाव मे रीती नही है । जब उसकी माँ उसे अपना चद्रहार भेजती है, तो यह सोचकर कि उन्होने बडे सकट मे उसे भेजा होगा, वह उसे वापस कर देती है । वह कहती है—"मैं किसी का दान न लूँगी, चाहे वह माता ही क्यो न हो ।" जालपा यहाँ पर जता देती है कि उसके गहनो के प्रेम की सीमा है और वह किसी भी कीमत पर गहने लेने को तैयार न हो पाएगी । उसका यही आत्मसम्मान उसका सबसे बडा रक्षक साबित होता है, जबकि रमानाथ मे इसी का अभाव उसके दु ख और कठिनाइयो का सबसे बडा कारण बन जाता है ।

गहने न पाकर जालपा ने क्षोभ मे अपनी सहेलियो वगैरह को पत्र लिखे और रमा को डालने को दिए, फिर उसे पश्चात्ताप हुआ । रमा ने उन्हे पढ लिया था और बिना पोस्ट किए वापस ले आया था । जालपा यह न जानते हुए पहले ही अपने मन की कहानी कह देती है और रमा की निंदा करने के लिए क्षमा माँग लेती है । रमा ने कभी भी इतने विश्वास से अपने मन की बात जालपा से नही कही ।

जालपा को जब गहने मिल जाते है तो वह पति की सेवा करने लगती है यानी उसके नहाने का सामान रख देती है, दफ्तर जाने के वक्त कपडे ला देती है, वगैरह । अब वह प्रसन्न रहने लगी और अपनी सहेलियो मे गाने-बजाने से लेकर सिनेमा तक का आनद लेने लगी । लेकिन रमा के साथ अपने सबध की असलियत को भी वह ज्यादा अच्छी तरह समझने लगी । उससे यह छिपा नही रहा कि रमा उससे मन की बात नही करता । क्यो नही करता, इस पर विचार करते हुए वह सत्य का पता लगा लेती है ।

रमानाथ से वह कहती है—"मुझसे प्रेम होता तो मुझ पर विश्वास भी होता । बिना विश्वास के प्रेम हो भी कैसे सकता है ? जिससे तुम अपनी बुरी-से-बुरी बात न कह सको, उससे तुम प्रेम नही कर सकते । बोलो, है या नही ! आँखे क्यो छिपाते हो ।"

सत्य, कठोर फिर भी सत्य । वेश्या जोहरा की तरफ आकृष्ट होकर मानो रमानाथ ने आगे चलकर जालपा की बात को अपने जीवन मे सच कर दिखाया ।

गबन के बाद जब रमा भागता है तब जालपा का साहस और धीरज अपने निखरे हुए रूप मे प्रकट होते हैं । वह अपना प्रिय हार बेच डालने का निश्चय कर लेती है । उसे अपनी सहेलियो से रुपए मिल सकते थे । ये सहेलियाँ रमा के दोस्तो-जैसी नही थी जो वक़्त पडने पर दगा दे गए । प्रेमचद स्त्रियो और पुरुषो की अपनी-अपनी मैत्री का भेद बतलाते हुए लिखते हैं—"स्त्रियो मे बडा स्नेह होता है ।

पुरुषो की भाँति उनकी मित्रता केवल पान-पत्ते तक ही समाप्त नहीं हो जाती।" इस स्नेह का कारण यह है कि वे सभी दोहरी दासता के बधनो मे जकडी हुई है और पुरुषो से ज्यादा एक-दूसरे के दुख-दर्द को समझती है।

रमानाथ के चले जाने पर जालपा खुद अपने अतस्तल को टटोलती है और इस सत्य को स्वीकार करती है कि पति को खोने के लिए वह भी जिम्मेदार है। फिर भी वह धीरज से काम लेती है। वह अपनी सास पर जाहिर नही होने देना चाहती कि कोई गभीर घटना हो गई है। वह सारी रात अकेले जागते बिता देती है।

सर्राफो के तकाजे आने पर वह अपने गहने बेच डालती है और उनके रुपए चुका देती है। उसे अपने बनाव-सिगार की पिछली चीजो से घृणा हो जाती है। अपने मखमली स्लीपर, रेशमी मोजे, बेले, फीते वगैरह सब एक झोले मे भरकर गगा मे प्रवाहित कर आती है।

अपनी सखी रतन से वह मन का भेद कहती है। अगर वह रमा की जगह होती तो इस तरह न भागती। कठिनाइयो से भाग खडे होना जालपा के स्वभाव मे नही है।

शतरज का नक्शा बनाकर पति का पता लगाने मे वह अपनी चतुरता और सहज बुद्धि का परिचय देती है।

जालपा एक देश-भक्त नारी है। देश की सेवा करनेवालो के लिए उसके दिल मे सहज सम्मान है और देश के साथ विश्वासघात करनेवालो के लिए उसके पास केवल रोष और घृणा है। रमा ने मुखबिरी करके जब क्रांतिकारियो को सजा करा दी तो जालपा के लिए वह उसका सबसे बडा शत्रु हो गया।

"वह उससे कहना चाहती थी—तुम्हारा धन और वैभव तुम्हे मुबारिक हो, जालपा उसे पैरो से ठुकराती है। तुम्हारे खून से रँगे हुए हाथो के स्पर्श से मेरी देह मे छाले पड जाएँगे। जिसने धन और पद के लिए अपनी आत्मा बेच दी, उसे मै मनुष्य नही समझती। तुम मनुष्य नही हो, तुम पशु भी नही हो, कायर हो! कायर!"

कहते हैं कि पुराने जमाने मे भारत की वीर नारियाँ समर-भूमि जाते हुए पति को स्वय कवच पहनाती थी और वह पीठ दिखाकर भाग आए तो उसके लिए घर का द्वार बद कर लेती थी। वह वीरता वर्तमान भारत की नारियो मे मिट नही गई बल्कि और निखर रही है। जालपा उन्ही की प्रतिनिधि है। वह स्नेह मे जितनी कोमल है, घृणा मे उतनी ही कठोर।

पति का ध्यान छोडकर वह उन क्रातिकारी की बात सोचने लगती है जिन्हे फाँसी की सजा दी गई। उनकी बूढी माँ और स्त्री के दु ख का विचार करके रमा के लिए उसका मन और भी घृणा से भर जाता है।

और जब सरकारी गवाह रमानाथ रेशमी साफा बाँधे, सुनहरी ऐनक लगाए देवीदीन के घर आता है और बूढी खटकिन की फटकार सुनकर अपनी सफाई पेश

करने लगता है कि पुलिस की सख्तियो और धमकियो से उसे ऐसा करना पडा, तब जालपा—

"बाज की तरह कूदकर धम्-धम् करती हुई नीचे आई और जहर मे बुझे हुए नेत्र-बाणो से उस पर प्रहार करती हुई बोली—अगर तुम सख्तियो और धमकियो से इतना दब सकते हो, तो तुम कायर हो। तुम्हे अपने को मनुष्य कहने का कोई अधिकार नही। क्या सख्तियाँ की थी? जरा सुनूँ? लोगो ने हँसते-हँसते सिर कटा लिए है, अपने बेटो को मरते देखा है, कोल्हू मे पेले जाना मजूर किया है पर सचाई से जौ-भर भी न हटे। तुम भी तो आदमी हो, तुम क्यो धमकी मे आ गए? क्यो नही छाती खोलकर खडे हो गए कि इसे गोली का निशाना बना लो, पर मै झूठ न बोलूँगा। क्यो नही सिर झुका दिया? देह के भीतर इसीलिए आत्मा रखी गई है कि देह उसकी रक्षा करे। इसलिए नही कि उसका सर्वनाश कर दे।"

जालपा भारत का उगता हुआ नारीत्व है। वह भविष्य के तूफानो की अग्रसूचना है। उसने वर्तमान की राह पर मजबूती से पाँव रखा है और भविष्य की तरफ वह निश्शक दृष्टि से देखती है। वह एक नई आग है, जो झूठी सस्कृति के कागजी फूलो को भस्म कर देती है। वह सदियो की लाछना और अपमान को पहचाननेवाली नई शूरता है जिसके आगे कोई बाधा ठहर नही सकती। वह हिदस्तान के नए आनेवाले इतिहास की भूमिका है—वह इतिहास, जिसमे लाखो जालपा एक साथ आगे बढेगी और ऐसे नारीत्व का चित्र आँकेगी जिसके सामने अतीत के सभी चित्र फीके लगेगे।

प्रेमचद के शब्द ही सरकारी गवाह और देशभक्त नारी के मिलन की पेचीदा परिस्थिति को इतने सीधे ढग से पाठक के हृदय मे उतार सकते थे। कही अलकारो का बोझ नही, कही भारी-भरकम शब्दावली नही। परिस्थिति का सारा तनाव, जालपा का आहत आत्मसम्मान, रमा की आत्महीनता, अग्रेजो के पुलिसराज की कुरूपता, हिदस्तान के शहीदो की गौरवशाली परपरा—थोडे-से ही शब्दो मे यह सब व्यजित करके प्रेमचद ने जालपा-रमा की भेट के इस दृश्य को हिदी-कथा-साहित्य मे चिरस्मरणीय बना दिया है।

उसका चरित्र जितना ही महान् है, रमा का उतना ही हल्का और घृणित। उसने कजली और बारहमासा नही गाए, न झूले पर बढ-बढकर पैगे मारी है। रतन के साथ झूला झूलते हुए उसके प्राण सूख जाते है। उसने सस्कृति के नाम पर शहर मे सैर-सपाटा और सिनेमा देखना ही सीखा है। वह शहरी मध्यम वर्ग की कमजोरियो का प्रतीक है। सचाई और आत्मसम्मान से ज्यादा महत्त्व उसकी नजरो मे झूठी मान-मर्यादा का है। उसके पतन का इतिहास इस झूठी मर्यादावाले समाज के पतन का इतिहास है।

फिर भी वह दोषो-ही-दोषो का भडार नही है। वह सचाई की जिदगी बसर कर सकता था, इसकी चाह उसमे है; लेकिन इसके लिए उसमे मनोबल का अभाव

है, वह झूठ बोलता है, बहाने बनाता है, फिर अपनी नीचता पर रोता है । कही इसानियत के अंकुर उसके हृदय में दबे पडे हैं । जालपा की फटकार सुनकर वह अपना बयान वापस लेने का निश्चय कर लेता है । उसके चरित्र मे काफी परिवर्तन होता है । प्रेमचद की कला और मनोविज्ञान की बारीकी इस बात मे दिखाई देती है कि वह उसे न तो पहले राक्षस बनाकर खडा करते है और न बाद मे उसे देवता बना देते है । जब नदी मे एक स्त्री अपनी बच्ची को लिए हुए डूबती दिखाई देती है, तब रमा एक बार फिर अपनी कायरता का परिचय देता है । जोहरा कूदने को तैयार होती है, तब वह लजाकर कहता है—"जाने को मै तैयार हूँ, लेकिन वहाँ तक पहुँच भी सकूँगा, इसमे संदेह है । कितना तोड है ।"

और जब जोहरा बाढ के पानी मे आगे बढ जाती है, तब वह पछताकर कहता है—"मुझे अपनी कायरता पर लज्जा आ रही है ।" इस पर जालपा व्यग्य करती है—"इसमे लज्जा की कौन-सी बात है ? मरी लाश के लिए जान को जोखिम मे डालने से फायदा ? जीती होती तो मैं खुद तुमसे कहती, जाकर निकाल लाओ ।"

आखिर रमा पानी मे कूदता है लेकिन तब, जब जोहरा डूबने लगती है और आखिर डूब ही जाती है ।

मानो यह दिखाने के लिए कि जिस परिवार मे पति-पत्नी दोनो मेहनत करते है, वह कितना सुखी रह सकता है, प्रेमचद ने देवीदीन खटीक और उसकी बूढी स्त्री की तस्वीर खीची है । ये दोनो बूढे है लेकिन इनमे परस्पर इतना प्रेम है जितना रमा और जालपा ने कभी सपने मे सोचा भी न था । उनका यह प्रेम एक साथ मेहनत-मजूरी करने मे पैदा हुआ है, जिदगी मे एक साथ दुख-सुख सहने मे पैदा हुआ है, और ऐसा प्रेम ही वास्तविक और टिकाऊ होता है ।

उनके दो जवान बेटे अग्रेजी राज से लडते हुए शहीद हुए है; लेकिन देवीदीन इस पर रोता नही है, गर्व करता है । इतना ही नही, वह यह भी समझने लगा है कि हिदुस्तान को आजाद करेगे तो उस-जैसे मेहनत-मजूरी करनेवालो के बेटे ही । वह सफेदपोश नेताओ की असलियत समझ गया है । वह बडे-बडे सेठो के धर्म की असलियत भी जानता है जो प्रयाग मे गगा-स्नान करके मजदूरो को हटरो से पिटवाते है । उसकी पत्नी उसी की तरह देशभक्त है । रमा की लाई हुई सोने की चूडियो को वह उठाकर फेक देती है क्योकि वे एक सरकारी गवाह की लाई हुई चूडियाँ है । और देवीदीन बहुत ही मजाक-पसद आदमी है । वह दिल खोलकर हँसता है और जिदगी की असगतियो को अपनी पैनी निगाह से देखकर हँसी की थोडी-सी सामग्री भी हाथ से जाने नही देता ।

देवीदीन भारत के उन साधारण जनो का प्रतिनिधि है जो जनता से दगा करनेवाले नेताओ की असलियत पहचान गए हैं और जो एक आजाद, सुखी जिदगी हासिल करने के लिए नया रास्ता ढूँढ रहे है ।

देवीदीन मौत पर हँसता है । उसकी हँसी की एक मिसाल यह है । रेल मे रमा

के साथ वह कलकत्ते जा रहा है । "जरा देर बाद बोला—बुढिया अभी जीती है । देखे, हम दोनों मे पहले कौन चलता है । वह कहती है पहले मैं जाऊँगी, मैं कहता हूँ पहले मैं जाऊँगा । देखो, किसकी टेक रहती है ।"

देवीदीन ने जमाने को गहराई से देखा है । वह मानो भविष्य को देखता हुआ कहता है—"अरे, तुम क्या देश का उद्धार करोगे ! पहले अपना उद्धार कर लो । गरीबो को लूटकर विलायत का घर भरना तुम्हारा काम है । इसीलिए तुम्हारा इस देश मे जनम हुआ है । एक बार यहाँ एक बडा भारी जलसा हुआ । एक साहब बहादुर खडे होकर खूब कूदे । जब वह नीचे आए तो मैंने उनसे पूछा—साहब, सच बताओ, जब तुम सुराज का नाम लेते हो, उसका कौन-सा रूप तुम्हारी आँखो के सामने आता है ? तुम भी बडी-बडी तलब लोगे, तुम भी अग्रेजो की तरह बँगलो मे रहोगे, पहाडो की हवा खाओगे, अग्रेजी ठाठ बनाए घूमोगे, इस सुराज से देश का क्या कल्याण होगा । तुम्हारी और तुम्हारे भाई-बदो की जिदगी भले आराम और ठाट से गुजरे, पर देश का तो कोई भला न होगा । बस, बगले झाँकने लगे । तुम दिन मे पाँच बेर खाना चाहते हो, और वह भी बढिया माल, गरीब किसान को एक जून सूखा चबेना भी नही मिलता । उसी का रक्त चूसकर तो सरकार तुम्हे हुद्दे देती है । तुम्हारा ध्यान कभी उनकी ओर जाता है ? अभी तुम्हारा राज नही है, तब तो तुम भोग-विलास पर इतना मरते हो, जब तुम्हारा राज हो जाएगा, तब तो तुम गरीबो को पीसकर पी जाओगे ।"

प्रेमचद गरीब जनता का पक्ष लेनेवाले लेखक थे । वह जीवन-संग्राम मे तटस्थ रहनेवाले लेखक नही थे, वरन् अग्रेजो और उनके दलालो के खिलाफ कलम को अचूक अस्त्र की तरह इस्तेमाल करते थे । "गरीबों को लूटकर विलायत का घर भरना"—इस एक टुकडे मे प्रेमचद ने अपने जमाने और आज के हिदुस्तान की कथा कह दी है । किसी लेखक ने उस समय इतिहास की गहराइयो तक पैठनेवाली यह निगाह हिदुस्तान मे न पाई थी । महान लेखक सचमुच भविष्यद्रष्टा होते हैं । "जब तुम्हारा राज हो जाएगा, तब तो गरीबो को पीसकर पी जाओगे ।" यह निर्मम सत्य देखनें और कहने की ताब प्रेमचद ही मे थी ।

प्रेमचद ने इस उपन्यास मे देवीदीन के मुँह से पहले-पहल मजदूरो की सच्ची हालत का वर्णन कराया है । ये मजदूर जूट-मिलो मे काम करते हैं । वे सभी एक ही गाँव-देश के रहनेवाले और एक ही भाषा बोलनेवाले नही हैं । लेकिन उन सबकी जिदगी एक-सी है; उन सबके साथ एक-सा ही जानवरों-जैसा बर्ताव किया जाता है । "उसकी जूट की मिल है । मजूरो के साथ जितनी निर्दयता इसकी मिल में होती है, और कही नहीं होती । आदमियो को हटरो से पिटवाता है, हंटरो से ।"

देवीदीन किसानो और मजदूरो की हालत से अच्छी तरह परिचित है, इसलिए भविष्य मे कैसा राज बनेगा, इस पर काफी सोचता है । वह कुछ दिन और जीना चाहता है. वह दिन देखने के लिए जब रमा के अनुसार "बहुमत किसानों और

मजूरो का ही होगा ।'' रमा से अपने मन की बात सुनकर देवीदीन कहता है—''भैया, तुम भी इन बातों को समझते हो । यही मैंने भी सोचा था । भगवान् करें, अभी कुछ दिन और जीऊँ । मेरा पहला सवाल यह होगा कि विलायती चीजो पर दुगुना महसूल लगाया जाए और मोटरो पर चौगुना ।''

प्रेमचद ने देवीदीन की यह इच्छा एक विरासत की तरह हिंदुस्तान की नई पीढ़ी के लिए छोड दी है । वह प्रेमचद की ही विरासत है जो उन्होने अपने पीछे आनेवालो के लिए छोडी है । जिस देश मे जालपा-जैसी वीर नारी हो, देवीदीन-जैसा सदा जवान रहनेवाला सच्चा देश-भक्त हो, वहाँ गरीबो को लूटकर विलायत का घर भरने का काम ज्यादा दिन तक नही चल सकता ।

'निर्मला' के बाद 'गबन' हिंदी-साहित्य के यथार्थवाद मे एक और आगे बढा हुआ कदम है । वह जीवन की असलियत की छान-बीन और गहराई से करता है, भ्रम के पर्दे उठाता है, नए रास्ते ढूँढने के लिए वह जनता को नई प्रेरणा देता है । एक साधारण लेखक के हाथो मे जालपा की कहानी गहनो से प्रेम करने का बुरा नतीजा दिखानेवाली एक मामूली उपदेश-मूलक कहानी बन जाती । प्रेमचद ने उसे नारी-समस्या का व्यापक चित्र बनाने के साथ-साथ इस समस्या को हिंदी-साहित्य मे पहली बार देश की स्वाधीनता की समस्या से जोड दिया है । जालपा को सच्चा सुख उनकी देखभाल करने मे मिलता है जिनके बेटो और पतियो को अग्रेजी राज फाँसी देने की तजवीज करता है । सामाजिक जीवन और कथा-साहित्य के लिए यह एक नई दिशा की तरफ सकेत था ।

5. कायाकल्प और रंगभूमि

'कायाकल्प' दो वर्गो की कहानी है—एक तरफ जागीरदार और रानियाँ हैं और दूसरी-तरफ किसान जनता है । 'कायाकल्प' किसानो का नही होता, बल्कि जगदीशपुर की रानी देवप्रिया का होता है । रानी देवप्रिया को हम विलासप्रिया के रूप मे देखते हैं । अपने पूर्वजन्म के पति को पाकर वह अपनी रियासत विशाल सिंह को देकर चली जाती है । चक्रधर का लडका शखधर आगे चलकर देवप्रिया से मिलता है । वह भी पूर्वजन्म मे देवप्रिया का पति था । ऐसा लगता है कि देवप्रिया को जितने नौजवान मिलते है, वह उन्हे अपने पूर्वजन्म का पति कहकर इस जन्म का पति भी बना लेती है । शखधर की मृत्यु के बाद देवप्रिया भोगविलास का जीवन त्याग देती है और जगदीशपुर मे फिर राज करने लगती है । इस तरह उसका कायाकल्प हो जाता है ।

कथा का यह भाग चमत्कारो से भरा हुआ है और प्रेमचद की कलम भी इसमे जान नही डाल सकी । 'कायाकल्प' की इस कमजोरी की तरफ सभी आलोचको ने सकेत किया है । इस उपन्यास के जोरदार हिस्से वे हैं जहाँ प्रेमचद ने हाड-मास के आदमियो के इस जीवन पर दृष्टि केंद्रित करके उनके चरित्र की अच्छाइयो-बुराइयो को चित्रित किया है । इससे पता चलता है कि प्रेमचद की कलम की ताकत यथार्थ जीवन को आँकने से पैदा हुई थी । उनकी कला इसलिए प्रभावशाली थी कि वे अपनी आँखो से देखी हुई सचाई को चित्रित करते थे । जहाँ ग़लत आदर्शों या विचारो के प्रभाव से उन्होने यह रास्ता छोड दिया, वहाँ उनकी कला प्रभावहीन हो गई और उनकी कलम का जादू उड गया ।

रानी देवप्रिया के जाने के बाद जब विशाल सिंह का राज-तिलक होता है, तब जागीरदारो और राजाओ की सस्कृति अपना असली रूप अच्छी तरह प्रकट करती है । अग्रेज हाकिमो की दावते करना है, दूसरे राजाओ का आदर-सत्कार करना है । राजा विशाल सिंह खुद तो कुछ करते नहीं हैं । पैसा कहाँ से आए ? उनका दीवान सलाह देता है कि हल पीछे दस रुपया चदा लगा दिया जाए । राजा साहब को प्रजा का बडा ध्यान है । चाहते हैं कि प्रजा को कष्ट न हो । लेकिन उससे भी ज्यादा उन्हे अग्रेज हाकिमो का ध्यान है । इसलिए पैसा इकट्ठा करने की आज्ञा देते

हुए हिदायत करते है—"इतना खयाल रखिए कि किसी को कष्ट न होने पाए । आपको ऐसी व्यवस्था करनी चाहिए कि असामी लोग सहर्ष शरीक हो ।"

जोर-जबरदस्ती से रुपया इकट्ठा किया जाता है । प्रेमचद दिखलाते हैं कि इन रियासतदारो की हुकूमत आतक पर ठहरी हुई है । गाली-गुप्ता, मार-पीट, कुडकी-बेदखली—इन सभी साधनो से अग्रेजो और उनके भक्तो की खातिर के लिए रुपए बटोरे जाते है । जब चमार पोलो के खेलवाले घोडो को घास नहीं पहुँचाते, तब उन्हे हटरो से पीटा जाता है । राजा, दीवान, पुलिस, सभी बदूके लेकर आ पहुँचते है । चक्रधर चाहता है कि फसाद न हो और शाति से समझौता करा दिया जाए, लेकिन बदूक के कुदे से उसे गिरा दिया जाता है । मजदूर मिलकर बदूकधारियो को पीछे ठेल देते है । अपने दलालो को यो भागते देखकर अग्रेजी राज अपने हिसक रूप मे प्रकट हो जाता है । अग्रेजो के कैपो से मजदूरो पर गोलियाँ चलनी शुरू होती है और बहुत-से मारे जाते हैं, बहुत-से घायल होते है । लेकिन सगठित मजदूर अग्रेजो की बदूके छीनकर उन्हे भी भगा देते अगर चक्रधर ने उन्हे पीछे हटने के लिए न कहा होता । गाँव के ये खेत-मजदूर जीवट के आदमी है । वे काले-सफेद किसी बदूकधारी से नही डरते । वे अग्रेजो और उनके दलालो को निकाल बाहर करते, अगर उन्हे चक्रधर-जैसे लोगो की असलियत का पता लग जाता । इतना पता लगने मे देर लगती है, लेकिन पता लग जरूर जाता है ।

चक्रधर को सजा हो जाती है । वहाँ पर कैदियो और जेल-अधिकारियो मे सघर्ष होने पर वह एक तरफ कैदियो का पक्ष लेता है, दूसरी तरफ अधिकारियो पर भी आँच न आने पाए, इस बात का ध्यान रखता है ।

जेल से छूटने पर स्वय राजा साहब चक्रधर का स्वागत करने पहुँचते है । उन्हे ऐसे नेताओ की जरूरत है जो जनता को अपने काबू मे रखे और राजा पर आँच न आने दे । चक्रधर के तमाम सिद्धात—जो उसने जनता को मोहने के लिए गढे थे—रियासत मे टूट जाते है । "उन्हे स्वय कभी-कभी कर्मचारियो की तबीह करनी पडती थी, कई बार उन्हे विवश होकर नौकरो को मारना भी पडा था । सबसे कठिन समस्या यही थी कि यहाँ उनके पुराने सिद्धात भग होते चले जा रहे थे ।" मुँह से सिद्धात-चर्चा और अमल मे उन्हे तोडना, इस तरह के नेताओ की यह विशेषता थी ।

प्रेमचद ने एक घटना के जरिए चक्रधर के पतन का सुदर चित्र खीचा है । मोटर पर हवा खाते हुए रास्ते मे एक साँड मिलता है जो रास्ता रोककर खडा हो जाता है । जब वह उसे हटाने निकले तो उसने उनका पीछा किया । एक पड पर चढ़कर चक्रधर ने अपनी जान बचाई, लेकिन साँड ने मोटर को चूर-चूर कर दिया । पास एक गाँव मे जाकर चक्रधर तुरंत मोटर ठेलकर ले चलने के लिए कहते हैं । "किसान लोग अभी थोडी ही देर पहले ऊख की सिचाई करके आए थे । कोई बैलो को सानी-पानी दे रहा था, कोई खाने जा रहा था, कोई गाय दुह रहा था ।"

जब किसान पूछते हैं—कहाँ से आते हो, तो चक्रधर अपना प्रजा के नेतावाला रूप भूलकर सीधा जवाब देता है—"हम महाराज ही के यहाँ से आते हैं ।"

किसान जब चलने से इनकार करते है, तब चक्रधर उनसे जबरदस्ती बेगार लेना चाहता है । एक किसान को डॉटते हुए कहता है—"मै सीधे से कहता हूँ, तो तुम लोग उडनघाइयाँ बताते हो, अभी कोई चपरासी आकर दो घुडकियाँ जमा देता, तो सारा गाँव भेड की भाँति उसके पीछे चला जाता ।" इस पर किसान उलटकर जवाब देता है—"सिपाही क्यो घुडकियाँ जमाएगा, कोई चोर है । हमारी खुशी, नही जाते । आपको जो करना हो कर लीजिएगा ।" चक्रधर उस आदमी को धक्के देकर गिरा देता है । उसमे यह सुनने की ताब न थी कि किसान अपनी खुशी को बेगार न करने का सबब बतलाएँ ।

तभी उस गाँव मे चक्रधर का जेल का साथी धन्नासिह उसे पहचान लेता है—चक्रधर के रूप मे नही, जेल के अहिसावादी भगत जी के रूप मे—और कहता है—"हाँ साहब, यह आदमी, जिसे आप ठोकरे मार रहे है, मेरा सगा भाई है ।"

चक्रधर ने उस आदमी को इतने जोर से ठोकरे मारी थी कि वह कुछ दिन मे मर ही गया । जब उसकी लाश को लोग उठाकर ले जाते हैं, तब चक्रधर उधर से निकलता है, लेकिन लोगो को मुँह दिखाने की हिम्मत नही होती । धन्नासिह और एक बूढे किसान की यह बातचीत उसे सुनाई देती है—

"बूढ़ा आदमी—भैया, जेहल की दूसरी बात थी । तब दयावान रहे होगे । तब राजा ठाकुर तो नही थे । राज पाकर दयावान रहे, तो जानो ।

"धन्नासिह—दादा, वह राज पाकर फूलनेवाले आदमी नही थे । तुमने देखा यहाँ से जाते-ही-जाते माफी दिला दी ।

"बूढा—अरे पागल, जान का बदला कही माफी से चुकता है । जान का बदला जान है । मुन्ना की अभागिनी विधवा माफी लेकर चाटेगी, उसके अनाथ बालक माफी की गोद मे खेलेगे, या माफी को दादा कहेगे । तुम बाबू जी को दयावान कहते हो, मै उन्हे सौ हत्यारो का एक हत्यारा कहता हूँ । राजा है, इससे बच जाते हैं, दूसरा होता तो फाँसी पर लटकाया जाता । मै तो बूढा हो गया हूँ, लेकिन उन पर इतना क्रोध आ रहा है कि मिल जाएँ, तो खून चूस लूँ ।"

चक्रधर से वहाँ से भागते ही बन पडा ।

इस उपन्यास मे प्रेमचद ने निष्काम राजाओ की कामचेष्टाओ का बडा सुदर वर्णन किया है । विशाल सिह ने तीन-चार ब्याह किए, पुत्र का मुँह देखने से वंचित रहे । उनकी रानियो का वाद-विवाद सुनने लायक होता है ।

इनमे लौगी बडी सजीव पात्र है । अपने आदर्शो पर हमेशा तो टिकी नही रहती, फिर भी वह बड़ी कर्मठ है । वह राजा से मनोरमा को ब्याहने का विरोध करती है । कहती है—"ब्याह जोड का अच्छा होता है । ऐसा ब्याह किस काम का कि वर बहू का बाप मालूम हो, बेचारी कन्या के दिन रोते ही बीते ।"

मुंशी वज्रधर झिनकू नाम के सज्जन को ज्योतिषी बनाकर लाता है । जब झिनकू ज्योतिषी का भेस धरकर आता है, तब वज्रधर कहता है—"यार जरा-सी कसर रह गई । तोद के बग़ैर पंडित कुछ जँचता नही । लोग यही समझते हैं कि इनको तर माल नही मिलते, जभी तो ताँत हो रहे हैं । तोदल आदमी की शान और होती है, चाहे पंडित बने, चाहे सेठ, चाहे तहसीलदार ही क्यो न हो जाए । "

झिनकू जवाब देता है—"सरकार, तोद होती तो आज मारा-मारा क्यो फिरता ? मुझे भी न लोग झिनकू उस्ताद कहते ? कभी तबला न होता तो तोद ही बजा देता, मगर तोंद न रहने मे कोई हरज नही है, यहाँ कई पंडित बिना तोंद के भी हैं ।"

जिरह मे हारकर उसे स्वीकार करना पडता है—"नही सरकार, कोई बडा पंडित तो नहीं है । तोंद के बिना कोई बडा हो ही कैसे जाएगा । "

जब लौंगी के सामने ज्योतिषी बनकर खडा होता है, तब वह तुरत भाँप जाती है कि यह बना हुआ है । उसने कजरौटा निकालकर उसके मुँह पर काजल पोत दिया । "बहुत उछले-कूदे, बहुत फडफडाए; पर लौंगी ने जौ-भर भी न हिलने दिया, मानो बाज ने कबूतर को दबोच लिया हो ।"

मुंशी वज्रधर ने कोशिश की कि लौंगी का हाथ पकडकर झिनकू को छुडा दे; लेकिन उल्टा उसी के नाग-पाश मे फँसकर रह गए । लौंगी ने झिनकू को तो न छोडा; एक हाथ से उसकी गरदन पकडे हुए थी, दूसरे हाथ से मुंशी जी की गरदन पकड ली और बोली—"मुझसे जोर दिखाते हो लाला ! बडे मर्द हो तो छुडा लो गरदन ! बहुत दूध-घी बेगार मे लिया होगा । देखे वह जोर कहाँ है !"

बेगार के घी-दूध ने कुछ भी साथ न दिया । उस औरत से दोनो मर्द परास्त होकर घर आए । ज्योतिषियो की नकल का यह दृश्य जिसने दिखाया है, उसके लिए यह विश्वास करना कठिन हो जाता है कि वह पूर्वजन्म मे विश्वास करता था ।

चक्रधर का चरित्र आँकते हुए प्रेमचद ने पाठको के हृदय मे वही सत्य उतारा है जिसे 'गबन' का देवीदीन अपने ओजपूर्ण शब्दों में रमा से कहता है । उपन्यास मे चमारों से बेगार कराए जाने का विरोध, राजा और अंग्रेजों द्वारा बदूकें चलाए जाने का प्रतिरोध, संगठित होकर उनकी बंदूकें छीनने के लिए बढ़ना, जेल में कैदियों की दुर्दशा और उनके ऊपर दमन, वहाँ भी कैदियो का संगठित होकर बदूकें छीन लेना, चक्रधर द्वारा मन्नासिंह की हत्या और लाश जाते समय उस बूढ़े का क्रोध—ये सब घटनाएँ दृढ़ता से पाठक के मन पर अंकित हो जाती हैं । प्रेमचंद ने जनता पर दमन होते पहले भी दिखलाया था । इस उपन्यास में वह एक नई चीज़ दिखलाते हैं—जनता दमन से आतंकित न होकर उसका मुकाबला करने बढ़ती है । और वह सफल हो सकती है अगर चक्रधर-जैसे लोग आकर अंग्रेजों और राजाओ की रक्षा न करने लगें ।

'रगभूमि' की मुख्य कथा अधे भिखारी सूरदास को लेकर रची गई है, जो अपनी और गाँव की जमीन के लिए मरते दम तक लडता है । उसकी जमीन पर जॉन सेवक अपना कारखाना बनाना चाहता है; लेकिन वहाँ गाँव के जानवर भी चरते हैं । सूरदास वह जमीन बेचने से इनकार करता है । वह बडा सहृदय और परोपकारी व्यक्ति है । वह सुभागी को अपने घर मे टिका लेता है, जब उसका पति भैरो उसको बहुत मारता है । लोग सूरदास को बदनाम करते है और कुछ सलाह भी देते हैं कि वह जमीन बेच दे; लेकिन वह अपनी बात पर अटल रहता है । झूठे मुकदमे मे जेल हो जाती है; जनता उसका जुर्माना भरकर उसे छुडा लाती है ।

सूरदास अपनी जमीन को पुरखो की यादगार समझना है । वह मरने से पहले वहाँ अपनी यादगार मे कुछ बनवाकर छोड जाना चाहता है । सूरदास का विचार है कि वहाँ कारखाना बनेगा तो गाँव मे दुराचार फैलेगा । कुँवर भरतसिंह का भी विचार है कि तबाकू की खेती हुई तो अनाज महँगा हो जाएगा । जॉन सेवक के ताल्लुकात एक तरफ कुँवर भरत सिंह जैसे ताल्लुकेदारो से हैं तो दूसरी तरफ क्लार्क-जैसे अग्रेज हाकिमो से भी । दोनो के साथ मिलकर वह अपना काम निकालना चाहता है । कहने को कहता है—"हमारी जाति का उद्धार कला-कौशल और उद्योग की उन्नति मे है ।" वास्तव मे वह लूट का जाल रचता है जिसमे जमीदार और अग्रेज भी शामिल रहते हैं । क्लार्क को वह अपनी लडकी सोफिया भी देने के लिए तैयार हो जाता है । वह अपने दिल मे स्वीकार करता है—"तुमने देश की व्यावसायिक उन्नति के लिए नही अपने स्वार्थ के लिए यह प्रयत्न किया है ।"

सूरदास अगर एक अत्यत सहृदय और परोपकारी मनुष्य है तो जॉन सेवक कठोर और घोर स्वार्थी पुरुष है । उसे अपने स्वार्थ के आगे कुछ नही सूझता, लोगो मे फूट डालने और अपना काम बनाने मे वह एक ही है । पडे से कहता है—"यात्रियो के लिए सडक के किनारे खपरैल के मकान बनवा दिए जाएँगे ।" अहीर से कहता है—"हाते मे गाय-बैल चराने की इजाजत दे दी जाएगी ।" पानवाले से कहता है—"मिल खुलने पर तुम्हारी बिक्री चौगुनी हो जाएगी ।" लडको के लिए मदरसा खुलवा देने का वादा करता है । सूरदास अकेला पड़ जाता है, फिर भी वह लड़ता है । जॉन सेवक उससे कहता है—"अब व्यापार का राज्य है, और जो इस राज्य को स्वीकार न करे, उसको तारों का निशाना मारनेवाली तोपें हैं ।"

जब्र और फरेब से उसकी जमीन छीन ली जाती है । अब पाँडेपुर की बस्ती मे मजदूरो का जन्म होता है । उनमे अभी संगठन नही है । उन्होने अपने एके की ताकत पहचानी नहीं है । मिल की नौकरी ने उन्हें जानवरो की तरह जिंदगी बिताने पर मजबूर किया है । वे अपनी पुरानी परपराएँ खो रहे हैं और नई अभी गढ़ नही पाए । सूरदास उनके बारे में कहता है—"वे सारी बस्ती में फैले हुए हैं, और रोज

ऊधम मचाते हैं । हमारे महल्ले मे किसी ने औरतों को नही छेडा था, न कभी इतनी चोरियाँ हुई, न कभी इतने धडल्ले से जुआ हुआ, न शराबियों का हुल्लड रहा । जब तक मजदूर लोग यहाँ पर नही आ जाते औरते घरो से पानी भरने नही निकलती । रात को इतना हुल्लड होता है कि नीद नही आती ।''

जॉन सेवक, उसके जागीरदार और अग्रेज दोस्त मजदूरो की इस बर्बाद जिंदगी के लिए जिम्मेदार है । वे चाहते हैं कि ये लोग जानवरो की तरह रहे ताकि इन्हे अपने अधिकारो का ज्ञान न हो और उनके स्वार्थ सुरक्षित रहे । मजदूरो के लिए मकानो की जरूरत होती है तो किसानो से उनके घर खाली कराए जाते है । अग्रेज हाकिम किसानो के साथ इस सब धाँधली मे तटस्थ दिखाई देते हैं । वास्तव मे वे जॉन सेवक का साथ देते हैं । उसकी मदद के लिए पुलिस पहुँच जाती है । लोग अपने बाप-दादो की देहरी छोडना नही चाहते । उन्हे जो मुआवजा दिया जा रहा है, वह खुली डकैती है । उसमे वे कही छप्पर डालकर भी नही रह सकते । अगर जॉन सेवक, कुँवर भरत सिह वगैरह को उद्योग-धधो की उन्नति से सचमुच प्रेम होता तो वे कहीं और जमीन खरीदकर मिल बनवा सकते थे । लेकिन अधे भिखारी से ज्यादा सस्ती जमीन उन्हे और कौन दे देता ? सवाल था कौडी मोल जमीन लेने का । अगर जॉन सेवक और उसके दोस्त सचमुच औद्योगिक उन्नति के पक्षपाती थे तो वे मज़दूरो को इतनी बुरी हालत मे क्यो रखते थे जो मिल को चलानेवाले थे, वे किसानो पर क्यो अत्याचार कर रहे थे, जो तबाकू की खेती करके उन्हे कच्चा माल दे सकते थे ? जॉन सेवक के लिए स्वार्थ मुख्य चीज थी, उसे छिपाने के लिए दूसरी बातें बाद मे याद आती थी ।

जब सिपाही लोगो के घरों में घुसकर सामान फेकना शुरू करते हैं तो ऐसा मालूम होता है कि—''मानो दिन-दहाडे डाका पड रहा हो ।'' सूरदास अपनी झोंपड़ी छोड़ने से इनकार कर देता है । चारों तरफ से जनता इकट्ठी हो जाती है और पुलिस को 'मजबूर' होकर गोलियाँ चलानी पडती हैं । कई आदमी मारे जाते हैं, कई घायल होते हैं । इस तरह अग्रेजी राज किसानो की जमीन उन्ही के खून से तर करके अपने वफादार दोस्त जॉन सेवक को भेंट करता है ।

सूरदास प्रेचमद के उन पात्रों में है जो जिंदगी को एक सघर्ष समझते हैं और कितनी भी कठिनाइयाँ पड़ें, उनके सामने पीठ दिखाना नहीं जानते । सूरदास का चरित्र मिठुआ से उसकी बातचीत मे बहुत अच्छी तरह झलकता है—

''मिठुआ—दादा, अब हम रहेंगे कहाँ ?

सूरदास—दूसरा घर बनाएँगे ।

मिठुआ—और जो कोई फिर आग लगा दे ?

सूरदास—तो फिर बनाएँगे ।

मिठुआ—और फिर लगा दे ?

सूरदास—तो हम भी फिर बनाएँगे ।

मिठुआ—और जो कोई हजार बार लगा दे ?

सूरदास—तो हम हजार बार बनाएँगे ।"

मिठुआ—और जो कोई सौ लाख बार लगा दे ?

सूरदास—तो हम भी सौ लाख बार बनाएँगे ।"

मिठुआ बच्चों की तरह सवाल करता है और सूरदास बच्चो की ही तरह जवाब देता है; उसके जवाब मे चरित्र की दृढता छिपी है । सूरदास हिंदुस्तान के उन किसानो में है जिनमे रचने की, निर्माण करने की तीव्र आकाक्षा है । उनकी बनाई हुई चीजो को लाख बार बरबाद कर दो, नए निर्माण के लिए वे फिर कमर कसकर तैयार हो जाते हैं ।

अग्रेजी राज का प्रतिनिधि क्लार्क सूरदास से डरता है, इसलिए कि सूर अन्याय नही सह सकता और जनता उसका आदर करती है । वह उन लोगो से नहीं डरता जो देशभक्ति का नाटक करते हैं, जो अमल मे अग्रेजी राज का बाल भी बाँका नहीं कर सकते । क्लार्क राजा महेद्रसिह से कहता है—"हमें आप-जैसे मनुष्यों से भय नही है, भय ऐसे मनुष्यों से है जो जनता के हृदय पर शासन करते हैं ।"

सूरदास मृत्यु-शय्या पर पडा हुआ कहता है—"हमारा दम उखड जाता है, हाँफने लगते हैं, खिलाडियो को मिलाकर नही खेलते, आपस मे झगड़ते हैं, गाली-गलौज, मारपीट करते हैं । कोई किसी को नही मानता । तुम खेलने में निपुण हो, हम अनाडी हैं । बस, इतना ही फरक है ।"

सूरदास की जीत क्यो नही हुई ? इसलिए कि खिलाडी आपस मे मिलकर न खेले थे, आपस मे झगडते रहे थे । क्या उसकी बात सच है ? किसान आपस में झगडते रहे थे; मजदूरो मे न आपसी एका था, न उन्होंने किसानो से एका किया था । फिर क्लार्क और जॉन सेवक की जीत क्यो न होती ? इसके अलावा सूरदास के शत्रु ज्यादा निपुण हैं । वह कहता है—फिर जीतना है तो सावधान होकर इनसे खेलना । सूरदास मानो अपनी मृत्यु-शय्या से संदेश देता है—"अगर अपने उजडे हुए घर बसाने हैं तो अपना एका मजबूत करो ।"

तब उसका सघर्ष व्यर्थ हुआ ? नहीं, व्यर्थ नही हुआ । उसके संघर्ष ने उसके और उसके साथियो के आत्मसम्मान की रक्षा की । सूरदास को गर्व है कि वह कायरों की तरह मैदान छोड़कर नही भागा; उसे दृढ़ विश्वास है कि वह जीतेगा यानी न्याय का पक्ष जीतेगा, भले ही सूरदास व्यक्तिगत रूप से दुनिया में न रहे । वह कहता है—"हम हारे तो क्या, मैदान से भागे तो नहीं, रोए तो नही, धाँधली तो नहीं की । फिर खेलेगे, जरा दम ले लेने दो, हार-हारकर तुम्हीं से खेलना सीखेंगे और एक-न-एक दिन हमारी जीत होगी, अवश्य होगी ।"

'रंगभूमि' उपन्यास सन् '30 का आंदोलन छिड़ने के पहले लिखा गया था । प्रेमचद ने मानो भविष्य की ओर देखते हुए तमाम हिंदुस्तान की जनता की तरफ से

अग्रेज़ो राज को चुनौती देते हुए सूरदास से कहलाया था—''फिर खलेंगे, जरा दम ले लेने दो ।''

प्रेमचंद ने सूरदास का सबसे बडा गुण बताया है—''अन्याय देखकर उससे न रहा जाता था, अनीति उसके लिए असहय थी ।'

इस गुण के कारण 'रंगभूमि' के और सभी पात्र उससे नीचे ठहरते हैं ।

सोफिया और विनय की प्रेम-कहानी का मुख्य कथा से कोई सबध नहीं है और इसलिए 'रगभूमि' के पूरे कथा-गठन मे एक शिथिलता है, जो 'सेवासदन' या 'प्रेमाश्रम'-जैसे उपन्यासों मे नही है । सोफिया एक मानवतावादी विचारो की लडकी है । वह धर्म के बधन नहीं मानती । 'रगभूमि' शायद हिंदी का पहला उपन्यास है जिसमें एक ईसाई लडकी और एक हिंदू लडके का प्रेम दिखाया गया है । प्रेमचद प्रेम-सबंध को धार्मिक पाबंदियों से ऊँची चीज समझते थे. इसलिए उन्हें कोई तोडे तो इसे अच्छा मानते थे । आगे चलकर 'कर्मभूमि' मे उन्होंने मुसलमान लडकी सकीना से हिंदू लडके अमरकात का प्रेम दिखाया है । सकीना सोफिया से ज्यादा बहादुर लडकी है । वह गरीब है, इसलिए उस पर एक हद तक पाबदी भी और सख्त है, फिर भी वह पाबंदियाँ तोडने के लिए ज्यादा तत्पर है ।

सोफिया से विनय के प्रेम की बात जानकर उसकी माँ उसे राजस्थान भेज देती है । वहाँ वह राजाओ के विचित्र रूप देखता है । एक राजा साहब शिव के परम भक्त हैं, लेकिन अंग्रेज रेजीडेट से जितना डरते हैं, उतना शिव जी से भी नही । प्रेमचद ने दिखलाया है कि राजा और जागीरदार अग्रेज की कठपुतलियाँ हैं । वहाँ की प्रजा को दोहरा जुल्म सहना पडता है—एक तो अंग्रेज का, दूसरा उसकी कठपुतली का । रियासतों में प्रजा के दुख-सुख की चिंता कोई नही करता । प्रजा राजा के सुख का सामान जुटाने के लिए है । रियासत का दीवान विनय से कहता है—''रियासतो को आप सरकार की महलसरा समझिए, जहाँ सूर्य के प्रकाश का भी गुज़र नही हो सकता । हम सब इस हरमसरा के बख्शी ख्वाजासरा हैं । हम किसी की प्रेम-रस-पूर्ण दृष्टि को इधर उठने न देगे, कोई मनचला जवान इधर कदम रखने का साहस नही कर सकता ।''

विनय की मुलाक़ात वीरपाल नाम के आतंकवादी से होती है । वह किन परिस्थितियो मे आतकवादी हुआ, इसकी कहानी रोचक है । वह अपने गाँव का मुखिया था । उसका इलाक़ेदार गाँव की एक नौजवान विधवा को निकाल ले जाना चाहता था । इलाक़ेदार के आदमी जब उस विधवा के घर मे घुसे, तब वीरपाल भी उनके साथियों के साथ मुक़ाबले पर पहुँच गया । इलाक़ेदार के आदमी पिटकर भाग गए; लेकिन वह प्रभावशाली आदमी था । चोरी के झूठे मुक़दमे में वीरपाल को फँसाते उसे देर न लगी । वीरपाल को मजबूर होकर राजा से लडते हुए जंगलो में रहना पड़ता है । उसे डाकू कहकर बदनाम किया जाता है लेकिन प्रजा उससे प्रेम करती है और उसके पास अच्छा-खासा दल इकट्ठा हो जाता है ।

विनय राजा से मिल जाता है । 'गबन' के रमानाथ और 'कर्मभूमि' के अमरकांत की तरह उसे भी फिसलते देर नहीं लगती । वह दलील देता है—"वह उन्ही साँगा और प्रताप के वशज हैं, जिन्होंने हिंदू जाति की रक्षा के लिए अपने प्राणो की आहुति दे दी थी ।" इसलिए वह इस नतीजे पर पहुँचता है कि "वे हमारे साथ अन्याय भी करे, तो भी हम जबान न खोलेगे ।"

रियासतों मे किस तरह के आतक से जनता को दबाया जाता है, प्रेमचद ने इसका बडा प्रभावशाली वर्णन किया है । 'डाकुओ' को इस तरह दबाया जाता है कि "वहाँ कोई जवान आदमी न रहा ।" जनता का नाश—यह था खूनी आतक का तरीका । विनय जिस रियासत मे हिंदू जाति के गौरव की रक्षा कर रहा था, उसी मे अग्रेज और उनके दलाल हिंदुस्तान के नौजवानो के खून से होली खेल रहे थे । जब रेज़ीडेट दौरे पर निकलते तब "एक अँगरेजी रिसाला साथ ले लेते, और इलाके-के-इलाके उजडवा देते । गाँव-के-गाँव तबाह करवा देते । यहाँ तक कि स्त्रियो पर भी अत्याचार होता था ।" विनय इन सब कामो में अग्रेज रेजीडेट और उसके देशी चाकरो का साथ देता था—"रियासत और क्लार्क के इन सारे दुष्कृत्यो में विनय भी मनसा, वाचा, कर्मणा सहयोग करते थे । विद्रोहियो के दमन मे कोई इतना हृदय-हीन, विचार-हीन, न्याय-हीन न बन सकता था ।"

विनय ने जो पुनरुत्थानवाद का दृष्टिकोण अपनाया था, उसका यही नतीजा हो सकता था । वह खुद एक राजा का लडका था । मान और प्रतिष्ठा के लिए उसने देशभक्ति का अभिनय किया था । प्रजा उसकी नजरो मे कुछ न थी । वह अपने जागीरदारी वर्ग का सच्चा हिमायती था । इसलिए जब उसने जनता को अपने वर्ग के अधिकारो पर हमला करते देखा तो आपे से बाहर हो गया । हिंदू जाति की गौरव-गाथा उसके लिए एक चादर थी जिससे वह अपनी वास्तविकता को ढकना चाहता था । विनय का पतन दिखाकर प्रेमचद इस पुनरुत्थानवादी दृष्टिकोण से पाठक को आगाह करते हैं । हिंदू जाति का गौरव-रक्षक प्रजा पर ऐसे अत्याचार करता है कि पुलिस और रियासत के कर्मचारी भी उसकी बराबरी नही कर सकते ।

विनय ने एक बुढ़िया के लडके को 'विद्रोह' करने के अपराध में जेल भिजवा दिया था । बुढ़िया भीख माँग-माँगकर खाती है । विनय से मिलने पर उसे बिना पहचाने हुए कहती है—"भगवान् उस अधम पापी विनय सिंह का बुरा करे । उसी के कारण बुढ़ापे में यह दिन देखना पडा ।" एक पंडित जी कहते हैं—"सैकड़ों घर उजाडकर न जाने कहाँ चल दिया ! पुरश्चरण का पाठ कर रहा हूँ । जिस दिन सुनूँगा कि उस हत्यारे पर देवी ने कोप किया, उसी दिन मेरी तपस्या पूरी हो जाएगी ।"

सारी जनता विनय से घृणा करने लगती है । उसकी हिम्मत नही होती कि अकेले-दुकेले किसी को मुँह दिखाए । जब वह सूरदास के गाँव पहुँचता है, तब वहाँ

भी लोग उसका विश्वास नही करते और उनके तानो से परेशान होकर वह आत्महत्या कर लेता है ।

उसके बहनोई राजा महेद्रप्रताप सिह कम नही हैं । पहले बडे ऐयाश थे; बाद मे सादा जीवन बिताने लगे । वह म्युनिसिपैलिटी के प्रधान हैं और लोगो मे समानता और न्याय के विचारो के समर्थक होने का अभिनय भी करते है । वास्तव मे वह न्याय और समानता की बाते कहकर अपने सामती विशेषाधिकारो की रक्षा करना चाहते हैं । जॉन सेवक से इनकी साँठ-गाँठ रहती है । सूरदास के बारे मे वह जॉन सेवक से कहते है—"मुझे तो वह बहुत ही गरीब सीधा-सा आदमी मालूम होता है, मगर है छँटा हुआ । उसकी दीनता पर तरस खाकर मैने निश्चय किया था कि आपके लिए कोई जमीन तलाश करूँ । लेकिन उन सब लोगो ने शरारत पर कमर बाँधी है और आपको जबर्दस्ती वहाँ से हटाना चाहते है, तो इसका उन्हे अवश्य दड मिलेगा ।"

यह दिलचस्प बात है कि राजा महेद्रप्रताप सिह-जैसे सामतवादी लोग जॉन सेवक के सहायक है । उसकी औद्योगिक क्राति से इनका बाल भी बाँका नही होता, बल्कि वे इस नई लूट-खसोट मे भी शरीक होना चाहते है । जॉन सेवक की औद्योगिक क्राति से नुकसान होता है केवल किसानो का । प्रेमचद ने 'रगभूमि' मे बडी खूबी से दिखलाया है कि ऐसे पूँजीपति, जिनकी साँठ-गाँठ जमीदारो और राजाओ से होती है, अग्रेजी राज के परम भक्त और सहायक होते है । सूरदास इन सबकी ताकत को चुनौती देता है । उसकी लडाई वस्तुत सामत-विरोधी और साम्राज्य-विरोधी है ।

राजा महेद्रप्रताप के अनुसार सूरदास-जैसे लोग अशाति फैलानेवाले है । इसीलिए राजा साहब न्याय और समानता के समर्थक होते हुए भी इन लोगो पर दमन-चक्र चलाया जाना बुरा नही समझते । सूरदास अपनी पैतृकभूमि के लिए लडता है, गाँववालो के हित के लिए लडता है, यह राजा साहब की नजरो मे अशाति फैलाता है । अग्रेजी राज और अपने सामती हितो की रक्षा के लिए ऐसे लोग ऐसी ही थोथी दलीले दिया करते हैं ।

राजा महेद्रप्रताप कहते है—"यो मै स्वय जनवादी हूँ और उस नीति का हृदय से समर्थन करता हूँ, पर जनवाद के नाम पर जो अशाति फैली हुई है, उसका मै घोर विरोधी हूँ । ऐसे जनवाद से, धनवाद, एकवाद सभी वाद अच्छे हैं ।"

राजा साहब उन राजनीतिज्ञो मे हैं जो सिद्धात-चर्चा मे तब तक किसी से पीछे नही रहते जब तक कि उनके सिद्धातो को अमल की आँच न लगे । जहाँ उनके विशेषाधिकार के लिए खतरा पैदा हुआ, वही वे अशाति-अशाति की पुकार मचाने लगते हैं ।

'रगभूमि' सन् '20 और '30 के आदोलनो के बीच हिंद-प्रदेश की रगभूमि है ।

इसमें राजा, ताल्लुकेदार, पूँजीपति, अंग्रेज़-हाकिम, किसान, मजदूर—हिंदुस्तानी जीवन की एक विशद झाँकी देखने को मिलती है । नायकराम का हास्य, सोफ़िया की सरलता, विनय का साहस, राजा महेंद्रप्रताप की धूर्तता, जॉन सेवक की स्वार्थपरता, वीरपाल का साहस, सूरदास की दृढ़ता पाठक के हृदय पर गहरी छाप छोड जाते हैं । अभी तक प्रेमचद के किसी भी उपन्यास मे इतने अविस्मरणीय पात्र एक साथ न आए थे । यह उनके बढते हुए कौशल का परिचय था ।

'रगभूमि' का सबध ठेठ हिंदुस्तानी जनता से है । उसे किसी विदेशी कृति की नकल या उससे अनुप्राणित समझना भ्रम है । प्रेमचद की पैनी निगाह देख रही थी कि हिंदुस्तान की जनता लड रही है—बिना किसी पार्टी की मदद के, बिना किसी राजनीतिक नेता की सलाह का फायदा उठाए । यह सन् '20 और '30 के बीच का उपन्यास है जब हिंदुस्तान मे बडे-बडे नेताओ की तरफ़ से राष्ट्रीय आदोलन का सचालन न हो रहा था, जब अग्रेज कहते थे कि देश मे शांति है । तब भी सूरदास लड़ रहा था और मृत्यु-शय्या से पुकारकर कह रहा था—"फिर खेलेंगे, जरा दम ले लेने दो ।" यह भारत की अजेय जनता का स्वर था ।

6. कर्मभूमि

'कर्मभूमि' हिंदुस्तान के स्वाधीनता-आंदोलन की गहराई और प्रसार का उपन्यास है । यह आंदोलन एक जबरदस्त सैलाब की तरह तमाम जनता को अपने अंदर समेट लेता है । विद्यार्थी, किसान, अछूत, स्त्रियाँ, शिक्षक, व्यापारी, मजदूर—सभी इसके प्रवाह में आगे बढ़ चलते हैं । 'प्रेमाश्रम' के किसान अब अकेले नहीं हैं । उनकी लड़ाई के साथ तमाम जनता अपनी आजादी की लड़ाई में आगे बढ़ रही है । आंदोलन में जनता से नए नेता पैदा होते हैं । लाठी-चार्ज होते हैं, गोलियाँ चलती हैं, लेकिन लोग अपनी सफें मजबूत करते हुए आगे बढ़ते हैं ।

प्रेमचंद ने यह उपन्यास सविनय आज्ञा-भंग आंदोलन के दिनों लिखा था । यह एक दिलचस्प बात है कि नमक-कानून तोड़ने का आंदोलन इसका विषय नहीं है । प्रेमचंद की दृष्टि जनता के उन स्तरों की तरफ जाती है जो अपनी जिंदगी और मौत की समस्या हल करने के लिए इस आंदोलन में आगे बढ़ते हैं । 'कर्मभूमि' हिंदुस्तानी जनता के उन स्तरों को रंगमंच पर ला खड़ा करती है जिनके दर्शन पहले हिंदी-कथा-साहित्य में कम हुए थे । ये शहर और गाँवों के गरीब अछूत हैं ।

प्रेमचंद केवल यथार्थ का अक्स उतारनेवाले कलाकार नहीं थे । वे यथार्थ के महत्त्वपूर्ण पहलुओं को परखकर उन्हें उपन्यास में विशेष स्थान देते थे । यही सबब है कि 'कर्मभूमि' में वह सबसे ज्यादा जोर जमीन की समस्या, लगान कम करने की समस्या, खेत-मजदूरों और गरीब किसानों के लिए जमीन की समस्या पर देते हैं ।

अमरकांत महाजन लाला समरकांत के बेटे हैं । राष्ट्रीय आंदोलन के प्रभाव में समाज-सेवा के कामों में भाग लेते हैं । पिता और पत्नी विरोध करते हैं । घर में झगड़ा करते हैं और एक गाँव में जाकर किसानों का संगठन करते हैं । आगे चलकर उनके घरवाले भी आंदोलन में शामिल होते हैं और वह अपने घर वापस आते हैं ।

अमरकांत अच्छे खाते-पीते खानदान के आदमी हैं, लेकिन इस उपन्यास में प्रेमचंद ने हिंदुस्तान की गरीबी पर ध्यान केंद्रित किया है । उन्होंने यह दिखलाया है कि हिंदुस्तान की आजादी इन गरीबों के लिए सबसे पहले है और वे आजादी की

लडाई मे सबसे बडी ताकत भी हैं । विद्यार्थी जीवन मे अमरकांत अपने दोस्त सलीम के साथ गॉवो की आर्थिक दशा का अध्ययन करने जाता है । उनकी गरीबी देखकर उसकी ऑखे खुल जाती हैं और उसके राष्ट्रीय विचार और दृढ होते हैं । उसे ताज्जुब होता है कि अमलो और महाजनो को उन पर दया नही आती । उसके प्रोफेसर शाति कुमार जवाब देते हैं—"दया और धर्म की बहुत दिनो परीक्षा हुई और यह दोनो हल्के पडे । अब तो न्याय-परीक्षा का युग है ।" यहाँ प्रेमचद ने वह सूत्र लिख दिया है, पूरा उपन्यास जिसकी व्याख्या मालूम होता है ।

गरीबी देहात तक सीमित नही है । प्रेमचद की निगाह शहर के अदर दो तरह के घर और महल्ले देखती है—एक गरीबो के, दूसरे अमीरो के । जब अमरकात सकीना की माँ को छोडने उसके घर जाता है तो वहाँ की बदबू और रहन-सहन देखकर सिहर उठता है । ऐसा मालूम होता है कि शहर का नाम एक है लेकिन वास्तव मे शहर दो है । प्रेमचद लिखते है—

"गली मे बडी दुर्गध थी । गदे पानी के नाले दोनो तरफ बह रहे थे । घर प्राय सभी कच्चे थे । गरीबो का महल्ला था । शहरो के बाजारो और गलियो मे कितना अतर है ! एक फूल है—सुदर, स्वच्छ, सुगधमय, दूसरी जड है—कीचड और दुर्गध मे भरी, टेढ़ी-मेढी, लेकिन क्या फूल को मालूम है कि उसकी हस्ती जड से है ?'

प्रेमचद के अनुसार समरकात और उनके वर्ग के लोगो का सुख और विलास इन्ही गदे महल्ले मे रहनेवालो की मेहनत पर टिका हुआ है, यद्यपि धनी लोग यह नही समझते कि उनकी सस्कृति और वैभव मे दूसरो की मेहनत का भी कोई सबध है ।

सकीना का घर शहर के औसत गरीब का घर है । प्रेमचद ने उसका वर्णन यो किया है—

"द्वार एक परदे की दीवार मे था । उस पर एक टाट का फटा-पुराना परदा पडा हुआ था । द्वार के अदर कदम रखते ही एक ऑगन था, जिसमे मुश्किल से दो खटोले पड सकते थे । सामने खपरैल का एक नीचा सायबान था और सायबान के पीछे एक कोठरी थी, जो इस वक्त अँधेरी पडी हुई थी । सायबान मे एक किनारे चूल्हा बना हुआ था और टीन और मिट्टी के दो-चार बरतन, एक घडा और एक मटका रखे हुए थे ।"

इन तग गलियो और गदे मकानो मे आजादी के आदोलन की हवा टाट के परदे उठाकर घुस रही थी । हिंदू और मुसलमान, औरत और मर्द, बूढ़े और जवान, सभी देश को स्वाधीन करने के लिए और अपनी नरक की जिंदगी से छुट्टी पाने के लिए आगे बढ़ रहे थे । प्रेमचद अपने उपन्यासों मे बराबर इस चीज पर जोर देते हैं कि हिंदुओ और मुसलमानो की बुनियादी समस्याएँ एक हैं, इसलिए मिलकर उन्हे हल करना चाहिए । दोनो की आर्थिक समस्याएँ एक है, एक आजाद इन्सानियत की सस्कृति गढ़ने मे उनकी सास्कृतिक समस्याएँ भी एक-जैसी हैं ।

सकीना की माँ पठानिन के सामने बेटी के विवाह की समस्या है । वह अमरकात से इसका जिक्र करती है तो वह अपने दोस्तो से इस बारे मे बात करने का वादा करता है । पठानिन जानती है कि अमरकात एक अमीर का लडका है, इसलिए उसके दोस्त भी अमीर होगे । फिर वे गरीब के घर क्यो शादी करने लगे ? वह कहती है—

'तो भला धनी लोग हम गरीबो की बात क्यो पूछेगे ? हालाँकि हमारे नबी का हुक्म है कि शादी-ब्याह मे अमीर-गरीब का विचार न होना चाहिए, पर उनके हुक्म को कौन मानता है ! नाम के मुसलमान, नाम के हिंदू रह गए है । न कही सच्चा मुसलमान नजर आता है, न सच्चा हिंदू ।''

पठानिन का मतलब है कि मुँह से तो सब बराबरी और भाईचारे की बाते करते हैं, लेकिन जब अमल का सवाल आता है तो वे सिद्धातो को उठाकर ताक पर रख देते है ।

अमरकात इस बात का महत्त्व नही समझता कि गरीबो को आधार बनाने से आजादी के आदोलन को कितनी ताकत मिलेगी । जब मुन्नी को छुडाने के लिए—जिसने अपनी बेइज्जती का बदला लेने के लिए दो अग्रेज फौजियो को मार डाला था—शहर मे चढा होता है तो उसका ध्यान पठानिन-जैसे गरीबो की तरफ नही जाता । पठानिन के लिए मुन्नी को छुडाने की लडाई उसकी अपनी लडाई है । अपनी लडकी के काढे हुए रूमाल बेचकर उसने जो दो रुपए इकट्ठे किए थे, उन्हे अमरकात को देने के लिए बेचैन हो जाती है ! अमरकात का नेतावाला घमड चूर हो जाता है । ''वह अपने को कुछ समझने लगा था । जिधर निकल जाता, जनता उसका सम्मान करती, लेकिन इन फाकेमस्तो का यह उत्साह देखकर उसकी आँखे खुल गयी ।'' फिर भी वह चढा लेने से इनकार करता है । तब सकीना कहती है—''जहाँ गरीबो के रुपये नही पूछे जाते, वहाँ गरीबो को कौन पूछेगा !''

तब भी अमरकात की आँखे नही खुलती । वह अपने को गरीबो मे से एक नही समझता हालाँकि मुँह से यही कहता है । घर मे लडका होने पर दुनिया-भर के लोग बुलाए जाते है, लेकिन उसे पठानिन को बुलाने का ध्यान नही आता । अमरकात की खातिर उसने अपना पेट काटकर एक रेशमी कुर्ता और टोपी तैयार की थी । इसका महत्त्व तब मालूम होता है जब एक दिन वह सकीना के घर जाता है और उसे गीले कपडे पहने हुए रोती हुई पाता है । वह दरवाजा बद करके अपनी एकमात्र पोशाक धोकर सुखा रही थी । जब अमरकात आया तो उसे उन्ही गीले कपडो से तन ढँककर दरवाजा खोलना पडा । इस गरीबी मे भी सकीना और उसकी माँ-जैसे लोग सच्ची देश-भक्ति और भाईचारा निबाहने के लिए तैयार थे ।

गरीबो की यह हालत थी, लेकिन सुसस्कृत अग्रेजी राज्य ने गोरे फौजियो को हत्या और बलात्कार की पूरी छूट दे रखी थी । अमरकात और उसके साथ के विद्यार्थी जब गाँवो का आर्थिक जीवन देखकर लौटते है, तब अचानक उन्हे अरहर

के खेत से एक स्त्री का चीत्कार सुनाई देता है । लडके डडे सँभालकर खेत की तरफ लपकते है । दो गोरे बाहर खडे हुए पहरेदारी कर रहे थे । उनमे से एक लडको को ठोकर मारने की धमकी देता है । इसके बाद के सघर्ष का वर्णन प्रेमचद ने इस तरह किया है–

'इतना उसके मुँह मे निकलना था कि डॉ शातिकुमार ने लपककर उसके मुँह पर घूँसा मारा । सैनिक के मुँह पर घूँसा पडा, तिलमिला उठा, पर था घूँसेबाजी मे मँजा हुआ । घूँसे का जवाब दिया तो डाक्टर साहब गिरे पडे । उसी वक्त सलीम ने अपनी हॉकी स्टिक उस गोरे के सिर पर जमाई । चौंधिया गया, जमीन पर गिर पडा और जैसे मूर्छित हो गया । दूसरे सैनिक को अमर और दूसरे छात्र ने पीटना शुरू कर दिया था, पर वह इन दोनों युवको से भारी था । सलीम इधर से फुरसत पाकर उस पर लपका । एक के मुकाबले में तीन हो गए । सलीम की स्टिक ने इस सैनिक को भी जमीन पर सुला दिया । इतने मे अरहर के पौधो को चीरता हुआ तीसरा गोरा आ पहुँचा । डॉक्टर शांतिकुमार सँभलकर उस पर लपके ही थे कि उसने रिवाल्वर निकालकर दाग दिया ।''

लडके शांतिकुमार की देखभाल करने लगे । मुमकिन है, वह गोरा उन पर फिर गोली चला देता लेकिन वहाँ कुछ मजदूर भी खडे थे । शांतिकुमार को गिरते देखकर उन्होने गोरो पर हमला किया । ''सब-के-सब अपनी लकडियाँ सँभालकर गोरे पर दौडे । गोरे ने रिवाल्वर दागा, पर निशाना खाली गया । इसके पहले कि वह तीसरी गोली चलाए, उस पर डडो की वर्षा होने लगी और एक क्षण मे वह आहत होकर गिर पडा ।''

प्रेमचद का यह उपन्यास स्वाधीनता-आदोलन के उस दौर का है जब लोग अग्रेजो का मनमाना अत्याचार सहने के लिए तैयार न थे । वे अन्याय और अत्याचार का प्रतिकार करने लगे थे । इसके लिए वे जो भी साधन मिले, उनका उपयोग करने के लिए तैयार थे । प्रेमचद ने 'कर्मभूमि' मे पहली बार मजदूरो और विद्यार्थियो को एक साथ अग्रेजो का मुकाबला करते दिखाया है । जैसा कि सभी लोग जानते हैं, इसके बाद भी नौजवानो ने अनेक बार मजदूरो और किसानो के साथ मिलकर अग्रेजो का मुकाबला किया था । प्रेमचद ने राष्ट्रीय आदोलन की एक महत्त्वपूर्ण कडी को पकडा था और उसका यहाँ चित्रमय वर्णन किया है ।

आगे चलकर उपन्यास मे वह दिखलाते है कि अग्रेजो ने जिसे दलित और अपमानित किया था, उसी को जनता श्रद्धा की दृष्टि से देखती है ।

मुन्नी का जो अपमान हुआ था, उसे वह भूल न सकती थी । प्रेमचद स्त्रियों की बेहद इज्जत करते थे । उन पर किसी भी तरह का अन्याय और अत्याचार देखकर उनका खून खौल उठता था । मुन्नी जब खेत से निकलती है, तब उनकी लेखनी बहुत ही थोडे और सयत शब्दो मे उस करुण दृश्य का वर्णन करती है । उन शब्दो के पीछे प्रेमचद के मानवता-प्रेमी हृदय की रोषाग्नि छिपी हुई है । ''उसी वक्त एक

युवती खेत से निकली और मुँह छिपाए, लँगडाती, कपडे सँभालती, एक तरफ चल पडी । अबला लज्जावश किसी से कुछ कहे बिना, सबकी नजरो से दूर निकल जाना चाहती थी । उसकी जिस अमूल्य वस्तु का अपहरण किया गया था, उसे कौन दिला सकता था ? दुष्टो को मार डालो, इससे तुम्हारी न्याय-बुद्धि को सतोष होगा, उसकी तो जो चीज गई, वह गई । वह अपना दु ख क्यो रोए, क्यो फरियाद करे, सारे ससार की सहानुभूति उसके किस काम की है !''

मुन्नी पागल की तरह घूमा करती है । वह घर लौटकर नही जाती, क्योकि उसकी जातिवाले उस 'अपवित्र' नारी को कैसे ग्रहण करेगे ? एक दिन वह कात की दुकान पर दा फौजियो को मार डालती है । पहले लोग इसे हत्यारिन समझते है, लेकिन जहाँ उन्हे उसकी असली कहानी का पता चलता है, वे सब उसके साथ हमदर्दी का व्यवहार करने लगते है । प्रेमचद ने आम जनता की सहायता को आँकने मे यहाँ कमाल कर दिया है । उन्होने जनता के हृदय मे छिपे हुए कोमल भावा को जागते हुए दिखाया है । एक वीर नारी की रक्षा के लिए जनता एक जबरदस्त घेरा डाल देती है । स्त्रियो को उससे विशेष सहानुभूति है । सहानुभूति ही नही, उन्हे उस पर गर्व भी है । अमरकात की पत्नी सुखदा कहती है—''अगर इसको फाँसी हो गई, तो मै समझूँगी, ससार से न्याय उठ गया । उसने कोई अपराध नही किया । जिन दुष्टो ने उस पर ऐसा अत्याचार किया, उन्हे यही दड मिलना चाहिए था । मै अगर न्याय के पद पर होती तो, उसे बेदाग छोड देती । ऐसी देवी की तो प्रतिमा बनाकर पूजना चाहिए । उसने अपनी सारी बहनो का मुख उज्ज्वल कर दिया ।''

सुखदा के शब्दो मे प्रेमचद ने हिदुस्तानी स्त्रियो के चरित्र की विशेषता प्रकट की है । अन्यायी को दड मिलने पर ऐसा हर्ष वे ही प्रकट कर सकती थी, इसलिए कि गुलामी और अन्याय का बोझ पुरुषो से ज्यादा उन्हे सहना पडता था । इससे पहले भी जब अमरकात और उसके साथी एक-दूसरे की पीठ ठोकते हुए गोरो पर फतह पाकर लौटे थे, तब सुखदा ने ही अमरकात से उस स्त्री के बारे मे पूछा था जिसके साथ गोरो ने बलात्कार किया था । अमरकात और उसके साथियो ने उसकी कोई खबर न ली थी । तब सुखदा उसे डाँटकर कहती है—''एक दिन जाकर सब कोई उसका पता क्यो नही लगाते, या स्पीच देकर ही अपने कर्त्तव्य से मुक्त हो गए ।''

सुखदा ने अमरकात के चरित्र की कमजोरी अच्छी तरह पहचान ली है । उसमे नेता बनने की साध जितनी है, उतना जनता से प्रेम नही है । इसीलिए उसका मनोबल दृढ नही है और कभी-कभी उसे जब आगे बढना चाहिए, वह पीछे पैर हटाता है । प्रेमचद ने जान-बूझकर उसकी इन कमजोरियो को चित्रित किया है । एक ही वातावरण मे रहनेवाले स्त्री और पुरुष का वह भेद बतलाते हैं; एक ही देश मे रहनेवाले धनी और गरीब स्त्री-पुरुषो के भेद पर भी वह प्रकाश डालते है । अमरकात 'गबन' के रमा की तरह बोदा नहीं है । वह लडकपन से सार्वजनिक

कामो मे हिस्सा लेता रहा है । इसलिए उसके चरित्र मे दूसरी तरह की विशेषताएँ आ गई है । फिर भी कुछ बातो मे वह रमाकात से मिलता है जिनमे मन की दृढता का न होना मुख्य है । प्रेमचद ने उपन्यास के आरभ मे ही उसके लिए बहुत ठीक लिखा है—"और वह दिन तो अभी दूर, बहुत दूर था, जब उसके चित्त की वृत्ति ही बदल जाए ।" प्रेमचद ने परिस्थितियो के साथ उसकी वृत्ति को बदलते हुए दिखाया है, लेकिन वह दिन सचमुच बहुत ही दूर था, जब उसके चित्त की वृत्ति पूरी तरह बदल जाए । वह दिन इस उपन्यास के अत तक नही आ पाता । 'गबन' का रमा जैसे बहुत बदलने पर भी अत मे नदी के किनारे अपने सस्कार प्रकट कर ही देता है, उसी तरह 'कर्मभूमि' के अत तक भी अमरकात अपने चित्त की वृत्ति को बहुत-कुछ बदल चुकने पर भी उसे पूरी तरह नही बदल पाता । यह ध्यान मे रखना इसलिए आवश्यक है कि प्रेमचद का सदेश समझने के लिए अमरकात काफी नही है, हमे सुखदा, सकीना, सलीम, मुन्नी वगैरह की बातो पर भी ध्यान देना होगा ।

जज के सामने अपने बयान मे मुन्नी कहती है—"जो सदा दु ख भोगा करते है और रोटियो को तरसते हैं, उन्हे जीवन कुछ कम प्यारा नही होता ।" मुन्नी को भी जीवन प्यारा है, इस अर्थ मे नही कि उसे जान प्यारी है । वह जीना चाहती है, एक सुखी, समृद्ध जीवन, कर्म और आनद का जीवन । फिर भी वह पति के साथ जाने से इनकार कर देती है । इसका कारण यह है कि उसका पति ऊँची जाति का है । यही नही कि बिरादरीवाले उसे वापस लेने पर आपत्ति करेगे बल्कि यह भी कि उसके पति का हृदय पूरी तरह उसे स्वीकार न करेगा । उसका पति उसे वापस ले जाने की बडी कोशिशे करता है और शायद मुन्नी जरूरत से ज्यादा जाति-बिरादरी के बारे मे शका करती है । लेकिन यह सच है कि अगर वह अपने पति के पास फिर लौटकर नही जाती तो इसके मुख्य कारण जाति-प्रथा से पैदा होनेवाले कुसस्कार और भय है ।

मुन्नी को चमारो के गाँव मे आश्रय मिलता है और उसे उतना सुख मिलता है जितना पहले कभी न मिला था । इसका कारण यह है कि इन 'नीच' जाति के गरीब किसानो और खेत-मजदूरो मे जाति-प्रथा के वे बधन नही है जो 'ऊँची' जातिवालो मे पाए जाते है । उनका एक-दूसरे के प्रति हमदर्दी और भाईचारा ज्यादा है । जब अमरकात उसी गाँव मे पहुँचता है तो मुन्नी के हृदय मे सोते हुए जीवन के अकुर फूट निकलने के लिए फिर कसमसाते है । अमरकात को देखकर वह बुढिया सलोनी से कहती है—"ऐसे भोले-भाले पाहुने को तो मै अपने घर ले जाऊँगी ।"

मुन्नी की जिदादिली उसके नाच मे प्रकट होती है । यह स्त्री, जो पतिवियोग, बलात्कार, दर-दर भीख माँगने और गगा मे डूबने तक के कटु अनुभव कर चुकी है, हृदय मे जीवन की अमिट चाह छिपाए हुए है । जैसे कोई सजीवनी बूटी पाकर वह फिर नवयुवती हो गई हो । उसमे ऐसी सजीवता, ऐसी सप्राणता है जिसे ससार की

मुसीबतें बहुत कुचलने पर भी कुचल नही पाई ।

पढे-लिखे लोगो मे नृत्य वर्जित है, खासकर स्त्री-पुरुषो का एक साथ नाचना ! प्रेमचद ने इस नृत्यहीन सभ्यता की तुलना जन-सस्कृति से की है । उन्हे वहाँ श्री सुमित्रानदन पत की तरह हुडदग और अश्लीलता नहीं दिखाई देती । प्रेमचद जनसाधारण के कला-प्रेम की दाद देते है । ''युवक और युवतियो के जोडे बँधे हुए हैं । हर एक जोडा दस-पद्रह मिनट तक थिरककर चला जाता है । नाचने मे कितना उन्माद, कितना आनद है, अमर ने समझा था ।'' उसकी इच्छा होती है कि उसे नाचना आता तो वह भी उसके साथ नाचने लगता । लेकिन ज्यो ही वह मुन्नी को देखता है, नाच के लिए उसका सारा उत्साह हवा हो जाता है । उसमे इतना साहस नही है कि वह मुन्नी को स्वीकार करके गृहस्थी चलाए, न वह यह सहन कर सकता है कि मुन्नी दूसरो के सामने नाचे । ऐसी ही कायरता उसने सकीना के बारे मे दिखाई थी । उसमे प्रेम-निवेदन करता है लेकिन जब वह सामाजिक बधनो को तोडकर उसके साथ चलने को तैयार होती है, तब वह भाग खडा होता है । वह खुल्लमखुल्ला अपनी पत्नी से सारी बाते भी नहीं कहता । वह उन पुरुषो मे है जो अपने लिए पत्नी के अलावा दूसरी स्त्रियो से प्रेम करने की छूट चाहते है, लेकिन ऐसे अधिकारवादी है कि पत्नी ही नही, प्रेमिकाओ को भी किसी से हँसने-बोलने का अधिकार देना नही चाहते । मुन्नी को रगमच पर आते देखकर इसीलिए उसे बुरा लगता है । मुन्नी आत्म-विभोर होकर नाचती है, अमरकात के दुर्भाग्य से अकेले भी नही बल्कि एक दूसरे युवक के साथ ।

' युवक गठीला जवान है, चौडी छाती, उस पर सोने की मूहर, कछनी काछे हुए । युवती को देखकर अमर चौंक उठा । मुन्नी है । उसने घेरदार लहँगा पहना है, गुलाबी ओढनी ओढी है और पाँव मे पैजनियाँ बाँध ली है । गुलाबी घूँघट मे दोनो कपोल दो फूलो की भाँति खिले हुए है । दोनो कभी हाथ-मे-हाथ मिलाकर, कभी कमर पर हाथ रखकर, कभी कूल्हो को ताल से मटकाकर नाचने मे उन्मत्त हो रहे है । सभी मुग्ध नेत्रो से इन कलाविदो की कला देख रहे हैं । क्या फुर्ती है, क्या लचक है ! और उनकी एक-एक लचक मे, एक-एक गति मे, कितनी मार्मिकता, कितनी मादकता ! दोनो हाथ-मे-हाथ मिलाए, थिरकते हुए रगभूमि के उस सिरे तक चले जाते हैं और क्या मजाल कि एक गति भी बेताल हो !''

प्रेमचद ने अपने शब्दो से पूरी तस्वीर खींच दी है । वह खुद एक कलाविद् की तरह उस दृश्य का आनद लेते है । वह दिखलाते हैं कि हिंदुस्तान के इन मेहनत-मजूरी करनेवाले गरीबो मे कितना रस है । वह उपन्यास मे जिन पात्रो को लेकर कथा रचते हैं, उनके जीवन के सभी पहलुओ पर प्रकाश डालते हैं । वह जनता की आर्थिक और सामाजिक कठिनाइयो का चित्रण ही नही करते, वह उसकी सजीव सास्कृतिक परपराओ से सच्ची सहानुभूति भी रखते हैं और उसके नृत्य और संगीत में रस भी ले सकते है'। ऐसी सहृदयता बहुत कम साहित्यकारो में

देखने को मिलती है ।

अमरकात नाचने और अभिनय करने मे बिलकुल अनाडी न था । लेकिन उन धनी-मानियो की वह सस्कृति कुछ और थी, जन-साधारण की यह सस्कृति कुछ और है । प्रेमचद दोनो का अतर बतलाते हुए लिखते हैं—''कालेज के सम्मेलनो मे अमर कई ड्रामा खेल चुका था । स्टेज पर नाचा भी था, गाया भी था, पर उस नाच और इस नाच मे बडा अतर था । वह विलासियो की कामक्रीडा थी, यह श्रमिको की स्वच्छद केलि ।'' अमरकात जिस वातावरण मे पाला-पोसा गया है, उससे पैदा होनेवाले सस्कार अब भी इतने प्रबल है कि वह विलासियो की काम-क्रीड़ा मे भाग ले सकता था, लेकिन श्रमिको की यह स्वच्छद केलि देखकर 'उसका दिल सहमा जाता था ।'

इस तरह आनद के दिन इन गरीबो के जीवन मे कभी-कभी आते हैं । वे बडी कठिनाई मे दिन काटते है । अमरकात वहाँ शाति पाने के लिए पहुँचता है, लेकिन गरीबी देखकर उसका दिल दहल जाता है । ये समाज के वे लोग हैं जिन्हे 'ऊँची' जाति के लोग मनुष्य नही समझते,,जो मैकडो, हजारो साल से संपत्तिशाली लोगो की गुलामी करते चले आए है, मुर्दा मास पा जाते है तो उसे जिदगी की सबसे बडी न्यामत समझते है । इनके इलाके के मालिक एक महत जी हैं जिनके ठाकुरद्वारे मे कोई नित नया उत्सव होता रहता है । गाँव के असामियो को इन सब अवसरों पर बेगार करनी पडती है । धर्म ने उनका मुँह बद कर रखा है । ''धर्म-सकट सबसे बडा सकट है । फिर इलाके के काश्तकार सभी नीच जातियो के लोग थे ।'' जो थोडे-से ऊँची जाति के लोग थे, उनकी सहानुभूति महत जी के साथ थी । ''असामियो को उन्हे भी प्रसन्न रखना पडता था ।'' यानी ये अछूत दुहरी-तिहरी गुलामी के नीचे पिस रहे थे । सबसे ऊपर अग्रेज थे, उनके नीचे जमीदार महत जी और उनके नीचे ऊँची जाति के लोग ।

इन अछूतो की दशा का मार्मिक चित्र, उनके जीवन की बुनियादी समस्याओ की झाँकी हिदी-कथा-साहित्य मे हमे पहले 'कर्मभूमि' मे मिलती है । प्रेमचद ने लिखा है—''बेचारे एक तो गरीब, ऋण के बोझ से दबे हुए, दूसरे मूर्ख, न कायदा जाने न कानून । महत जी जितना चाहे इजाफा करे, जब चाहें बेदखल करे, किसी मे बोलने का साहस न था । अक्सर खेतो का लगान इतना बढ गया था कि सारी उपज लगान के बराबर भी न पहुँचती थी; किंतु लोग भाग्य को रोकर, भूखे-नगे रहकर, कुत्तो की मौत मरकर, खेत जोतते थे ।''

यह सन् '29-'30 की मदी का जमाना था जब सोवियत सघ को छोडकर तमाम दुनिया की आर्थिक व्यवस्था एक भारी सकट मे पड गई थी ।

लाखो आदमियो का जन-सहार कराने के बाद साम्राज्यवाद का सकट हल न हुआ था बल्कि और गहरा हो गया था । इस संकट का भार पड़ा सबसे ज्यादा गाँव के गरीब किसानो पर । प्रेमचद के सकट ने किसानो की बढ़ती हुई मुसीबतो का

यथार्थ वर्णन इस तरह किया है–

"लेकिन इस साल अनायास ही जिन्सो का भाव गिर गया । इतना गिर गया जितना चालीस साल पहले था । जब भाव तेज था, किसान अपनी उपज बेच-बाचकर लगान देता था; लेकिन जब दो और तीन के जिन्स एक मे बिके, तो किसान क्या करे ? कहाँ से लगान दे, कहाँ से दस्तूरियाँ दे, कहाँ से कर्ज चुकाए विकट समस्या आ खडी हुई; और यह दशा कुछ इस इलाके की न थी । सारे प्रात सारे देश, यहाँ तक कि सारे ससार मे यही मदी थी । चार सेर का गुड कोई दस सेर मे भी नही पूछता । आठ सेर का गेहूँ डेढ रुपए मन मे भी महँगा है । 30/- मन का कपास 10/- मे जाता है, 16/- मन का सन 4/- मे । किसानो ने एक-एक दाना बेच डाला, भूसे का एक तिनका भी न रखा, लेकिन यह सबकुछ करने पर भी चौथाई लगान से ज्यादा न अदा कर सके और ठाकुरद्वारे मे वही उत्सव थे, वही जल-विहार थे । नतीजा यह हुआ कि हलके मे हाहाकार मच गया ।"

इस वर्णन मे प्रेमचद के गभीर चिंतन और अध्ययन का पता लगता है । वह ससार के आर्थिक सकट से, हिंदुस्तान और अपने सूबे पर उसके प्रभाव से परिचित थे । उनमे वह वैज्ञानिक दृष्टि थी जो घटनाओ की परस्पर-सबद्धता देखकर अधिकार के साथ किसी घटना-क्रम का विवेचन करती है । इस दृष्टि के साथ प्रेमचंद को यथार्थ का गहरा अनुभव भी प्राप्त था । इसलिए वह यथार्थ का शुष्क विवेचन नही करते, वह एक श्रेष्ठ कलाकार की तरह उसका मार्मिक चित्रण करते हैं ।

इस मदी मे किसान कुत्तो की मौत मरने के लिए तैयार न थे । अमरकात और एक दूसरे नेता आत्मानद की कोशिशो से उस इलाके मे थोडा-बहुत विद्या का प्रचार हो चुका था । लोगो ने कुछ गाँवो मे दस्तूरी देना बद कर दिया था । आत्मानद के सभापतित्व मे गगा के किनारे सभा होती है । यहाँ पर दो तरह के नेतृत्व की टक्कर होती है । अमरकांत कहता है–"यह विपत्ति कुछ हमारे ही ऊपर नही पडी । सारे देश मे यही हाहाकार मचा हुआ है । हमारे नेता इस प्रश्न को हल करने की चेष्टा कर रहे हैं । उन्ही के साथ हमे भी चलना है ।"

प्रेमचद का चरित्र-चित्रण-कौशल देखते ही बनता है । अमरकात जैसे अपने परिवारिक जीवन में ढल-मल-यकीन है, वैसे ही राजनीति मे भी । जनता इस तरह के नेताओं से ऊबने लगी है । उसका लबा भाषण सुनकर वह उदासीन बैठी रहती है । "उसका सम्मान सभी करते थे, इसीलिए कोई ऊधम नही हुआ, कोई बमचख न मचा; पर जनता पर कोई असर न हुआ ।" ये शब्द जाहिर करते हैं कि जनता को अमरकात जैसे नेताओ की जरूरत नही थी । वह उन्हे बर्दाश्त कर रही थी, इसलिए कि व्यक्तिगत रूप से वह उनमे से कुछ का सम्मान करती थी । आत्मानद का कहना था कि महत का घर घेर लिया जाए और जब तक वह लगान न छोड दे, तब तक उनका कोई उत्सव न होने दिया जाए । इन दोनो नेताओ के मतभेद की

वजह से सभा मे कोई फ़ैसला न हुआ ।

अमर महत जी से सधि-वार्ता करने जाता है । यहाँ उसे एक दूसरी दुनिया दिखाई देती है । "सध्या का समय था । महत जी एक सोने की कुरसी पर बैठे हुए थे, जिस पर मखमली गद्दा था । उनके इर्द-गिर्द भीड लगी हुई थी, जिसमे महिलाओ की सख्या ही अधिक थी । सभी धुले हुए सगमर्मर के फर्श पर बैठी हुई थी । पुरुष दूसरी ओर बैठे थे । महत जी पूरे छह फीट के विशालकाय, सौम्य पुरुष थे । अवस्था कोई पैंतीस वर्ष की थी । गोरा रग, दुहरी देह, तेजस्वी मूर्ति, काषाय वस्त्र तो थे; किंतु रेशमी । वह पाँव लटकाए बैठे हुए थे । भक्त लोग जाकर उनके चरणों को आँखो से लगाते थे, पूजा चढ़ाते थे और अपनी जगह पर आ बैठते थे ।"

अमरकात से कहा गया कि यह आरती का वक्त है, इसलिए तीन घटे बाद आए । इस बीच अमर इधर-उधर घूमता है तो देखता है—"कही बडी-बडी कडाहियों मे पूरियाँ-कचौरियाँ बन रही हैं, कही भाँति-भाँति की शाक-भाजी चढी हुई है, कही दूध उबल रहा है, कही मलाई निकाली जा रही है ।" अगर महत जी किसानो का लगान माफ कर देते तो ये सब उत्सव कहाँ से होते ?

अमर के साथ अछूत गूदड भी गया है । उसने गोशाला और घुडसाल देखकर ही सतोष किया । जब आरती होने लगी तब सब लोग अदर दर्शन करने दौडे । गूदड बोला—"अब देखो भगवान् की आरती हो रही है और हम भीतर नही जा सकते । यहाँ के पडो-पुजारियो के चरित्र सुनो, तो दाँतो तले उँगली दबा लो; पर वे यहाँ के मालिक हैं और हम भीतर कदम नहीं रख सकते ।"

प्रेमचद ने जाति-प्रथा, धार्मिक अधविश्वासो और जमीदारी-प्रथा की बर्बरता को ऐसे उघाडकर रख दिया कि पुरान-पथी तिलमिला उठे । वे कहने लगे—"प्रेमचद घृणा के प्रचारक हैं ।" प्रेमचद जनता को सिखला रहे थे कि जब तक वह इस तरह की मानवता-विरोधी रीतियो को अपने यहाँ फलने-फूलने देगी, तब तक उसका सामाजिक और सास्कृतिक विकास रुका रहेगा ।

जब आरती समाप्त हुई, तब कोई रानी जी महत जी के दर्शन करने आई । अमर को फिर राह देखनी पडी । आध घंटे बाद कोशिश करने पर उसे सवेरे आने के लिए जवाब मिला । सवेरे अमर गया तो महत जी पूजा पर थे, फिर गया तो कलेऊ पर थे । उसे कारकुन से मिलकर ही सतोष करना पडा । कारकुन ने अर्जी माँगी । अमर ने कहा कि वह महत जी से मिलने आया है । इस पर कारकुन ने पूछा—नजराना लाए हो ? नजराना भी कम-से-कम एक अशर्फी चाहिए था । अमरकात को निराश होकर वापस लौट आना पडा । उसके साथ जो सुलूक हुआ, वह मानो अछूत किसानो की सभा मे उसके भाषण पर प्रेमचद की टिप्पणी थी । जनता का बल पीछे छोडकर गए, महंत जी की सहृदयता पर विश्वास जमाया, देखो क्या नतीजा निकला—मानो प्रेमचंद कह रहे हो ।

गाँव आकर उसे सच्ची बात कहने की हिम्मत न हुई । झूठ बोला कि अर्जी दे आया है और उस पर विचार हो रहा है । अमरकांत सत्य और अहिंसा मे विश्वास करता था । इसलिए जनता से झूठ बोलने मे उसे कोई बुराई मालूम नही हुई ।

अमर कारकुनो, मुहर्रिरो और चपरासियो तक की खुशामद करने लगा । उसकी अर्जी पर विचार हो रहा था । गाँव के लोग उसका मजाक उडाने लगे । कोई कहता—रुपए मे आठ आना छूट हो गई है । कोई कहता—महत जी ने इस साल पूरा लगान माफ कर दिया है । किसानों के नेता चुपचाप बैठे थे । यह वह जमाना था जब राष्ट्रीय सस्था काग्रेस से अलग यहाँ के किसान-मजदूर अपने वर्गसगठन बनाने लगे थे । "रोज बडी-बडी किसान-सभाओ की खबरे आती थी । जगह-जगह किसान-सभाएँ बन रही थी ।" 'प्रेमाश्रम' के दिनो मे कितना अतर हो गया था । लखनपुर के किसान अब अकेले नही थे । उनके साथ तमाम इलाके के किसान अपने सगठनो के अदर अपना एका मजबूत बना रहे थे ।

सात दिन के बाद अमर महत जी के दर्शन कर पाता है । सरकार से जल्द पत्र-व्यवहार करने और कार्रिदो द्वारा सख्ती न किए जाने का आश्वासन पाकर वह खुश-खुश लौट आता है । वह महत का पक्ष लेकर किसानो को समझाता है—"महत जी को तुम लोग व्यर्थ बदनाम कर रहे थे । ऐसी सज्जनता से मिले कि मै क्या कहूँ ।" अगर किसानो ने अर्जी-फरियाद का रास्ता छोडकर और कोई रास्ता अपनाया तो उसके परिणाम से उन्हे आतकित करने की कोशिश करता हुआ वह कहता है—"हुल्लड मचाओगे, तो कुछ न होगा, उल्टे और डडे पडेगे ।"

दो हफ्ते हो गए लेकिन कोई हुक्म न आया । अमर अपने दोस्त सलीम के साथ हाकिम-जिला गजनवी से मिला । वहाँ से उसे आश्वासन मिला—"भला छह महीने तो गुजरने दीजिए । अभी हम काश्तकारो की हालत की जाँच करेगे, उसकी रिपोर्ट भेजी जाएगी, रिपोर्ट पर गौर किया जाएगा, तब कही कोई हुक्म निकलेगा ।"

गजनवी साहब अमर को यह नेक सलाह और देते हैं—"मि सलीम आपकी बडी तारीफ करते है, मगर भाई, मैं तुम लोगो से डरता हूँ । खासकर तुम्हारे उस स्वामी से । बडा ही मुफसिद आदमी है । उसे फँसा क्यो नही देते ? मैंने सुना है, वह तुम्हे बदनाम करता फिरता है ।"

यह सलाह सुनकर अमरकात को गुस्सा नही आता । प्रेमचद अमरकांत के आतरिक विचारो का धरातल प्रकट करते हुए लिखते हैं—"इतना बडा अफसर अमर से इतनी बेतकल्लुफी से बाते कर रहा था, फिर उसे क्यो न नशा हो जाता ? सचमुच आत्मानद आग लगा रहा है । अगर वह गिरफ्तार हो जाए, तो इलाके मे शांति हो जाए । स्वामी साह्रसी है, यथार्थ वक्ता है, देश का सच्चा सेवक है, लेकिन इस वक्त उसका गिरफ्तार हो जाना ही अच्छा है ।"

यहाँ अमरकात ने 'गबन' के रमानाथ को भी मात कर दिया । रमानाथ

राजनीतिक कार्यकर्ता नहीं था। शतरज और सिनेमा का शौकीन था। पुलिस के चगुल में फँसकर उसने मुखबिरी की थी। अमरकांत राजनीतिक कार्यकर्ता है। वह क्रांति का समर्थक रह चुका है। (''विद्यालय में एक बार 'धर्म' पर विवाद हुआ। अमर ने उस अवसर पर जो भाषण किया, उसने सारे शहर मे धूम मचा दी। वह अब क्रांति ही मे देश का उद्धार समझता था—ऐसी क्रांति मे, जो सर्वव्यापक हो, जो जीवन के मिथ्या आदर्शो का, झूठे सिद्धात का, पारिपाटियो का अत कर दे, जो एक नए युग की प्रवर्तक हो, एक नयी सृष्टि खडी कर दे, जो मिट्टी के असंख्य देवताओ को तोड-फोडकर चकनाचूर कर दे, जो मनुष्य को धन और धर्म के आधार पर टिकनेवाले राज्य के पजे से मुक्त कर दे। उसके एक-एक अणु से 'क्रांति ! क्रांति !' की आवाज सदा निकलती रहती थी, लेकिन उदार हिंदू समाज उस वक्त तक किसी से नहीं बोलता, जब तक उसके लोकाचार पर खुल्लम-खुल्ला आघात न हो। कोई क्रांति नहीं, क्रांति के बाबा का ही उपदेश क्यो न करे, उसे परवाह नहीं होती, लेकिन उपदेश की सीमा के बाहर, व्यवहार-क्षेत्र में किसी ने पाँव निकाला और समाज ने उसकी गर्दन पकडी।'')

सर्वतोमुखी क्रांति का यह समर्थक अमल में हमेशा समझौता करता ह। सकीना के मामले मे वह दोहरा विश्वासघात करता है—एक तरफ अपनी स्त्री से, जो माँ बन चुकी है, दूसरी तरफ सकीना से, जो उसकी प्रेमिका है। किसानों के मामले मे भी वह दोहरी दगा करता है; एक तरफ आत्मानद से, जिन्हें फँसाने का निश्चय कर लेता है; दूसरी तरफ किसानो से जिनके सामने वह स्वच्छ देश-भक्त बना रहता है।

'प्रेमाश्रम' के ज्ञानशकर से उसका चरित्र ज्यादा पेचीदा है। ज्ञानशकर ने इशारो से दोस्तो को फँसाने और अपने अत:करण को सुरक्षित रखने मे वह कमाल हासिल न किया था जो अमर ने किया है। वह चाहता है कि गजनवी समझ भी ले कि वह चाहता है कि आत्मानद को गिरफ्तार कर लिया जाए, साथ ही उसे मुँह से कुछ कहना भी न पडे। प्रेमचद ने उसकी इस नाजुकबयानी के बारे में लिखा है—''उसने कुछ इस भाव से जवाब दिया कि उसके मनोभाव प्रकट न हो पर स्वामी पर वार चल जाये—मुझे तो उनसे कोई शिकायत नहीं है, उन्हे अख्तियार है, मुझे जितना चाहें बदनाम करे।''

कितने निर्दोष शब्द थे ! बेचारा दूसरो की बदनामी सहने के लिए तैयार था, खुद किसी के खिलाफ एक शब्द भी न कहना चाहता था। गजनवी उसका मतलब अच्छी तरह समझ गया—''तुम नोट कर लो मि. सलीम ! कल उसके हल्के के थानेदार को लिख दो, इस स्वामी की खबर ले। बस अब सरकारी काम खत्म। मैंने सुना है मि अमर कि आप औरतो को वश में करने का कोई मंत्र जानते हैं।'' और फिर देर तक उनमे औरतो के बारे मे चर्चा होती रहती है। प्रेमचंद की कला में व्यंग्य की ऐसी बारीकियाँ मिलेंगी जो मानो पाठक को झकझोरकर कह रही हों,

देखो क्रांतिकारी जी को, आत्मानद को सच्चा देश-भक्त मानते हुए भी कैसे उसे फँसा दिया और उसके बाद किस बेहयाई से हाकिमों के साथ औरतों की चर्चा करते रहे ।

गाँव आकर अमर सरकारी तहकीकात का भरोसा दिलाकर गाँववालो से खरीफ का काम शुरू करने को कहता है । आत्मानंद अकेले पडकर अमरकांत की चालों को समझे बिना उससे समझौता कर लेते हैं । महंत जी ने चार आने की छूट दे दी, लेकिन बकाया वसूल करने में असामियों के साथ सख्ती की गई । किसानों ने फिर सभा की । आत्मानद ने सरकारी छूट का आश्वासन दिलाया । तभी अमरकात को अपनी पत्नी की गिरफ्तारी का समाचार मिला । उसे ध्यान न रहा कि क्या कह रहा है । धुआँधार व्याख्यान दिया और लोगो से लगान बिलकुल न देने की अपील की । सभा की रिपोर्ट सुनकर गजनवी ने आत्मानद और अमरकांत को गिरफ्तार करने का हुक्म दिया और सलीम से बोला—"मैं इनके नेक इरादों की कद्र करता हूँ, लेकिन हम और वह दो कैंपों मे हैं । स्वराज हम भी चाहते हैं, मगर इन्कलाब की सूरत में नही ।"

आत्मानद अमर से कहते हैं कि बेदखली होने पर बहुत-से किसान साथ न देंगे । इस पर गरम होकर अमर कहता है—इसका अर्थ यह है कि आप इस आदोलन के नायक बनने योग्य नहीं हैं । नेता के आत्मविश्वास, साहस और धैर्य, ये मुख्य लक्षण हैं । लेकिन जब सलीम से मुलाकात होती है—और सलीम एक सरकारी अफसर है—तब अमर अपने भाषण की सारी जिम्मेदारी आत्मानंद पर डालते हुए कहता है—"महत जी ने मजबूर कर दिया । क्या करता !" सलीम उसे मोटर पर बिठाकर ले चलता है और उसे बतला देता है कि पुलिस के हाथों वह जलील न हो, इसलिए उसने ऐसा किया है । रास्ते मे मुन्नी मिलती है । अमर उससे असली बात नहीं कहता, शायद इस डर से कि लोगों को पता चल गया तो सलीम और उसकी मोटर की खैर न होगी ।

मुन्नी से यह छिपा नहीं रहता कि अमर गिरफ्तार होकर जा रहा है । वह शोर मचाती हुई सारे गाँव को इकट्ठा कर लेती है । पगडंडियो से भागते हुए लोग मोटर की राह रोककर खडे हो जाते हैं । अमर मोटर से सिर निकालकर 'बहनो और भाइयो' कहता हुआ उपदेशों और आशीर्वादो की एक बौछार करता है । अमर मोटर निकल जाने के लिए कहता है । मुन्नी ललकारकर कहती है, "उतार लो मोटर से," लेकिन जब कोई आगे नहीं बढ़ता तब मानो भविष्य देखती हुई वह कहती है—"जब पुलिस और फौज इलाके को खून से रंग देगी तभी ।" वह अंग्रेज़ी राज के खूनी आतंक को अच्छी तरह जानती है । लेकिन अमर उसे फटकारता है, अपने मुँह पर कालिख लगाए जाने की बात कहता है । फिर भी मुन्नी के कहने से जब लोग आगे बढ़ते हैं तब वह उन्हे फिर फटकारता है, धर्मयुद्ध, त्याग, बलिदान और सत्य की दहाई देकर उन्हें रास्ते से हटा देता है ।

इलाके पर फौजी क़ानून लागू कर दिया गया । सारे इलाके को पुलिस ने घेर लिया । पाँच आदमियो से ज्यादा कही इकट्ठे न हो सकते थे । शाम को आठ बजे के बाद घर से कोई निकल न सकता था । पुलिस को बताए बिना कोई घर में मेहमान भी न ठहरा सकता था । प्रेमचद ने खूनी आतक का हृदय-विदारक चित्र खीचते हुए लिखा है—"कितने ही घर जला दिए गए थे और उनके रहनेवाले हबूडों की भाँति वृक्षो के नीच बाल-बच्चो को लिए पडे हुए थे । पाठशाला मे भी आग लगा दी गई थी और उसकी आधी-आधी काली दीवारे मानो केश खोले मातम कर रही थी । स्वामी आत्मानद बाँस की छतरी लगाए अब भी वहाँ डटे हुए थे । जरा-सा मौका पाते ही इधर-उधर से दस-बीस आदमी आकर जमा हो जाते, पर सवारो को देखा और गायब ।" मुन्नी ने जो कुछ कहा था सब हो गया । जब अमर के पिता समरकात उस गाँव पहुँचे तब मुन्नी को भी जेल भेज दिया गया था । पुलिस के अत्याचारो का एक नमूना यह देखा—"सलोनी की सारी देह सूज उठी है और साडी पर लहू के दाग सूखकर कत्थई हो गए है । मुँह सूजा हुआ है । इस मुरदे पर इतना क्रोध !" समरकात बडे पूजा-पाठ करनेवाले आदमी थे, सलोनी की दशा देखकर अपना "सारा धर्मज्ञान उन्हे पाखड-सा प्रतीत हुआ ।"

समरकात जब सलीम के साथ फिर गाँव मे आते है तो सलोनी सलीम को धक्का देकर उसकी गरदन पकड लेती है । समरकात हाकिम के अपमान का तीव्र विरोध करत है और सलोनी मन मे कहती है—"यह लाला भी ठकुरसुहाती करते है । लडका पकडा गया है न, इसी से ।" आखिर समरकात गाँववालो को समझा-बुझाकर, आत्मानद को मुँहतोड जवाब देकर और दवा-दारू के लिए रुपए इकट्ठे करके वहाँ से चल देते है ।

मरहमपट्टी के बाद फिर दमन-चक्र चलता है, और भी तेजी से । आत्मानद बदहवास होकर सलीम को कई आदमियो के मारे जाने की खबर देते हैं और उसका रिवाल्वर लेकर आततायियो का मुकाबला करना चाहते है । हत्या और बलात्कार को खुली छूट मिली हुई थी । जब सलीम अहिराने पहुँचा तब उसने देखा—"रास्ते मे सभी द्वार बद थे । कुत्ते भी कही भागकर जा छिपे थे । यकायक एक घर का द्वार झोके के साथ खुला और एक युवती सिर खोले, अस्त-व्यस्त, कपडे खून से तर, भयातुर हिरनी-सी आकर उसके पैरो से चिपट गयी और सहमी हुई आँखो से द्वार की ओर ताकती हुई बोली—'मालिक, यह सिपाही मुझे मारे डालते हैं ।' यह युवती अनेक आततायियो से घिरकर, दो को मारकर सलीम की शरण आई थी । तभी दो बदूकधारियो ने घर से निकलकर उसके बाल पकड लिए और दरवाजे की तरफ घसीटने लगे । इस पर सिपाहियो ने अपने अफसर घोष से फरियाद की । घोष ने पहले बहस की, फिर तैश मे सलीम पर हटर चला दिया । सलीम ने घोष की टाँग पकडकर घसीट लिया और घूँसे से बेहोश कर दिया । इस पर सिपाहियो ने सलीम को पकड लिया ।

"अँधेरा हो गया था । आतक ने सारे गाँव को पिशाच की भाँति छाप लिया था । लोग शोक से मौन और आतक के भार से दबे मरनेवालो की लाशें उठा रहे थे । किसी के मुँह से रोने की आवाज न निकलती थी । जख्म ताजा था इसलिए टीस न थी । रोना पराजय का लक्षण है । इन प्राणियो को विजय का गर्व था । रोकर अपनी दीनता प्रकट न करना चाहते थे । बच्चे भी जैसे रोना भूल गये थे ।"

रात को चार अर्थियाँ गगा की तरफ चली और उनके आगे सलोनी गाती हुई जा रही थी । उपन्यास की मुख्य कथा यहाँ समाप्त हो जाती है ।

उधर शहर मे सत्याग्रह हुआ है, हडताल हुई है, अमरकात की बहन नैना शहीद हुई, अछूतो ने मदिर-प्रवेश किया और प्रेमचद के अनुसार उस दिन पुजारी को दक्षिणा मे सबसे ज्यादा पैसे मिले ।

'कर्मभूमि' मे प्रेमचद का यथार्थवाद और बुलदी पर पहुँचा है । अमरकात के चरित्र मे उन्होने अपनी मनोवैज्ञानिक सूझ-बूझ का अद्‌भुत परिचय दिया है । मुन्नी उनकी वीर नारियो मे सिरमौर है । मुन्नी और अन्य नारी-पात्रो के चित्रण मे आमतौर से प्रेमचद ने एक महान् कलाकार की सहृदयता का परिचय दिया है । सुखदा और नैना के त्याग और सच्ची देश-भक्ति के सामने अमरकात और समरकात क्षुद्र मालूम होते है । सलोनी और उसके गाँववाले पाठक की सारी करुणा, सारी सहानुभूति अपनी तरफ खीच लेते है । वह सोचता रह जाता है—इनकी तकलीफों का कैसे अत हो ? कौन-सा रास्ता है, जिससे आतक से इनकी रक्षा होगी ? प्रेमचद उसे यह सोचने पर विवश करते हैं, यह उनकी जबर्दस्त सफलता है ।

7. गोदान

बबई से प्रेमचद ने जैनेद्र जी को एक पत्र में लिखा था—''कर्जदार हो गया था, कर्ज पटा दूँगा, मगर और कोई लाभ नही । उपन्यास (गोदान) के अंतिम पृष्ठ लिखने बाकी हैं । उधर मन ही नही जाता । (जी चाहता है) यहाँ से छुट्टी पाकर अपने पुराने अड्डे पर जा बैठूँ । वहाँ धन नही है, मगर सतोष अवश्य है । यहाँ तो जान पडता है कि जीवन नष्ट कर रहा हूँ ।''

(*'हस'*, मई 1939, पृष्ठ 900)

प्रेमचद ने जब 'गोदान' लिखा था, तब वह खुद भी कर्ज के बोझ से दबे हुए थे । 'गोदान' की मूल समस्या ऋण की समस्या है । इस उपन्यास में किसानो के साथ मानो वह आपबीती भी कह रहे थे । किसानो के जीवन के अलग-अलग पहलुओ पर वह उपन्यास लिख चुके थे—'प्रेमाश्रम' मे बेदखली और इज़ाफा लगान पर, 'कर्मभूमि' मे बढते हुए आर्थिक सकट और किसानो की लगानबदी की लडाई पर—लेकिन कर्ज की समस्या पर उन्होने विस्तार से कोई उपन्यास न लिखा था । 'गोदान' लिखकर उन्होने किसान की उस समस्या पर प्रकाश डाला जो आए दिन उनके जीवन को सबसे ज्यादा स्पर्श करती है ।

'प्रेमाश्रम' और 'कर्मभूमि' के साथ 'गोदान' हिदुस्तानी किसानो के जीवन की बृहत्त्रयी समाप्त करता है ।

प्रेमचद ने 'गोदान' तब लिखा था जब वह बबई के फिल्म-संसार को अच्छी तरह देख चुके थे, जब सिनेमा पर पूँजीपतियो के अधिकार ने उन्हें लेखक की पराधीनता का कडवा अनुभव चखा दिया था, जब वह पुराने अड्डे पर आ बैठने के लिए व्याकुल हो रहे थे ।

'गोदान' का ससार और बबई का फिल्म-ससार दो बिलकुल अलग-अलग और दूर-दूर की चीजे थी । दोनो को देखकर अचानक यकीन भी न होगा कि वह एक ही देश के दो छोर हैं । बबई मे रहते हुए वह 'गोदान' लिखने में मन न लगा पाते थे । वहाँ की आबहवा ही दूसरी थी ।

इसलिए प्रेमचद ने 'गोदान' मे गाँवो की प्रकृति, वहाँ के किसानों और उनके

जीवन के बारे मे ऐसे प्रेम से लिखा है माना य अब बिछुडनेवाले हों और वह अब इन्हें बार-बार न देख पाएँगे । 'गोदान' के वर्णन और चित्रण में एक अपूर्व आत्मीयता और तल्लीनता है जो प्रेमचंद के उपन्यासों में भी कम मिलती है ।

इसके साथ ही मुनाफ़े की दुनिया और मेहनत की दुनिया के बीच की खाई उन्हें और गहरी होती दिखाई दे रही थी । उन्होंने 'प्रेमाश्रम', 'कर्मभूमि' वगैरह में दो संस्कृतियों का भेद बहुत साफ-साफ जाहिर किया था । 'गोदान' में भी वह भेद उन्होंने प्रकट किया है, पहले से भी ज्यादा कौशल से । एक तरफ़ ज़मींदार रायसाहब, मिल-मालिक खन्ना, मालती और मेहता की दुनिया है; दूसरी तरफ़ होरी, धनिया, गोबर, सोभा, हीरा वगैरह की दुनिया है । एक के बिना दूसरी का अस्तित्व संभव नहीं है, यानी अपने वर्तमान रूप में । इसलिए प्रेमचंद इन दोनों संसारों के चित्र खींचते हैं । इस चित्रण में जहाँ होरी और उसके भाईबदों के लिए उनकी सहृदयता और गहरी हो गई है, वहाँ रायसाहब खन्ना-सप्रदाय के लिए उन्होंने अपना व्यंग्य और भी पैना, और भी मर्म पर चोट करनेवाला बना लिया है ।

'गोदान' की रचना-शैली 'रगभूमि' से किसी हद तक मिलती-जुलती है । यहाँ उन्होंने बहुत-से किसान-पात्रो को उभारकर रखने के बदले होरी पर ध्यान केंद्रित किया है । वह उन तमाम ग़रीब किसानों की विशेषताएँ लिए हुए है जो जमींदारों और महाजनों की धीमे-धीमे लेकिन बिना रुके हुए चलनेवाली चक्की मे पिसा करते हैं । 'गोदान' की गति धीमी है, होरी के जीवन की गति की तरह । यहाँ सैलाब का वेग नहीं है, लहरों के थपेड़े नही हैं । यहाँ ऊपर से शात दिखनेवाली नदी की भँवरें हैं जो भीतर-ही-भीतर मनुष्य को दबाकर तलहटी से लगा देती हैं और दूसरों को वह तभी दिखाई देता है जब उसकी लाश उतराती हुई बहने लगे ।

होरी अकेला है, जैसा प्रेमचंद का किसान कभी अकेला नही रहा । 'प्रेमाश्रम' में लखनपुर के साथ दूसरे गाँव नहीं हैं, लेकिन यह गाँव इकट्ठा होकर चट्टान की तरह प्लेग और आगजनी, दमन और बलात्कार का मुकाबला करता है । लेकिन यहाँ होरी का साथ देनेवाले दूसरे गाँव के लोग तो दूर रहे, उसके गाँव के लोग भी ज़बानी जमा-ख़र्च के अलावा उसकी कोई मदद नही करते । होरी का अंत देखकर बरबस निर्मला की याद हो आती है, जिसका प्राण-पक्षी ''दिन-भर शिकारियो के निशानों, शिकारी चिड़ियों के पंजों और वायु के प्रचंड झोंकों से आहत और व्यथित अपने बसेरे की ओर उड़ गया ।''

तब क्या प्रेमचंद पीछे की तरफ़ लौट रहे थे ?

'गोदान' में किसानों के शोषण का रूप ही दूसरा है । यहाँ सीधे-सीधे रायसाहब के कारिंदे होरी का घर लूटने नहीं पहुँचते । लेकिन उसका घर लुट ज़रूर जाता है । यहाँ अंग्रेज़ी राज के कचहरी-क़ानून सीधे-सीधे उसकी ज़मीन छीनने नहीं पहुँचते । लेकिन जमीन छिन ज़रूर जाती है । होरी के विरोधी बड़े

सतर्क हैं । वे ऐसा काम करने में झिझकते हैं जिससे होरी दस-पाँच को इकट्ठा करके उनका मुक़ाबला करने को तैयार हो जाए । वह उनके चंगुल में फँसकर तिल-तिल कर मरता है लेकिन समझ नही पाता कि यह सब क्यों हो रहा है । वह तकदीर को दोष देकर रह जाता है; समझता है; यह सब भाग्य का खेल है, मनुष्य का इसमे कोई बस नही ।

होरी अकेला है तो इसकी जिम्मेदारी ऐतिहासिक परिस्थितियों पर है । उस समय तक किसान को कर्ज के बोझ से हल्का करने की समस्या किसान-आंदोलन का मुख्य अग न बन पाई थी । स्वाधीनता-आदोलन का अर्थ अग्रेज के झंडे को हिंदुस्तान के बाहर करना समझा जाता था । प्रेमचद चाहते थे, अग्रेज का झडा बाहर जाए, लेकिन जिस विलायती मशीन के नीचे किसान पिस रहा है, वह मशीन भी बाहर जाए । इसीलिए 'प्रेमाश्रम' से लेकर 'गोदान' तक उनकी कोशिश यही रही थी कि इस मशीन के तौर-तरीको को जनता के सामने जाहिर करें जिससे कि झडे के साथ वह विलायती शोषण की जड भी हिंदुस्तान से उखाड फेके ।

प्रेमचद समाज के प्रवाह को बहुत गहराई से देखते थे । उस जमाने मे, जब स्वराज का मतलब अग्रेजी साम्राज्य के अदर ही रहना था, प्रेमचद ने लगानबदी को स्वाधीनता-आदोलन की रीढ़ बतलाया था । उस समय, जब लोग कर्ज की समस्या को किसान-आदोलन की एक बुनियादी समस्या न समझते थे, प्रेमचद ने उस पर तेज रोशनी डाली थी । वह बराबर कोशिश कर रहे थे कि आजादी का आदोलन किसानो की बुनियादी समस्याओ को अपने अदर समेट ले, वह अग्रेजी राज के शोषण-चक्र पर वार्निश करने के बदले उसे जड से खोदकर फेंक दे ।

इस मशीन को तेल पिलानेवालो मे सेमरी के रायसाहब मुख्य हैं । किसानों की अटी से पैसा निकालने के लिए इन्होने जो दाव-पेच ईजाद किए हैं, उन्हे देखते हुए ज्ञानशकर, राय कमलानद, राजा विशालसिह अबोध बच्चे मालूम होते हैं । ज्ञानशकर एक भयकर खल पात्र है, लेकिन 'गोदान' के रायसाहब को खल कौन कहेगा ? सत्याग्रह-सग्राम मे बहुत यश कमा चुके हैं । कौंसिल की मेबरी तक छोड दी थी और जेल चले गए थे । इलाके के आदमी उन पर घोर श्रद्धा करने लगे थे । तब क्या इनके इलाके के किसानो का जीवन दूसरी जगह के किसानों से कुछ दूसरी तरह का था ? नहीं, प्रेमचद लिखते हैं—

"यह नही कि उनके इलाके मे असामियों के साथ कोई खास रिआयत की जाती हो, या डाँड और बेगार की कडाई कुछ कम हो, मगर यह सारी बदनामी मुख़तारो के सिर जाती थी । रायसाहब की कीर्ति पर कोई क़लक न लग सकता था । सिह का काम तो शिकार करना है, अगर वह गरजने और गुर्राने के बदले मीठी बोली बोल सकता, तो उसे घर बैठे मनमाना शिकार मिल जाता । शिकार की खोज मे उसे जगल मे न भटकना पड़ता ।"

रायसाहब उन हिंसक पशुओं में हैं जो गरजने और गुर्राने के बदले मीठी बोली

बोलना सीख गए हैं । शिकार अपनी जान से हाथ धोता है लेकिन मीठी बोली सुनता हुआ, अपाहिज होकर, गरजने और गुर्राने से सावधान होकर उस जंगली पशु से लड़ता हुआ नहीं ।

कुछ-कुछ इसी तरह का चरित्र 'कर्मभूमि' के महंत जी का भी है । अमरकांत से किसानों की दु:ख-कथा सुनकर उनकी आँख में आँसू आ जाते हैं । भगवान् का स्मरण करके कहते हैं—"यह तुम्हारी क्या लीला है !" लेकिन धर्म की चादर का रग फीका पडने लगा था । गूदड भी, जो बडा श्रद्धालु है, महंत जी के पंडों के कारनामे अच्छी तरह जानता है । रायसाहब ने एक दूसरी चादर ओढ़ रखी थी, जो भक्तो पर और भी ज्यादा असर डालती थी । यह चादर देश-भक्ति की थी ।

सत्याग्रह-सग्राम मे बडा यश कमाने के बाद भी रायसाहब और अंग्रेजी राज के संबधों में कोई अंतर न पडा था । प्रेमचद ने लिखा है—"रायसाहब राष्ट्रवादी होने पर भी हुक्काम से मेल-जोल बनाए रखते थे । उनकी नजरें और डालियाँ और कर्मचारियों की दस्तूरियाँ जैसी-की-तैसी चली आती थीं ।" यह ऐसा राष्ट्रवाद था, जो किसानो से भर-मुट्ठी रुपया भी वसूल करता था, अपने ऊपर उसके लिए बदनामी न आने देता था, अग्रेजी राज से अपने सबध भी बनाए रखता था ।

होरी से मिलने पर रायसाहब पहले तो उसे पुष्प-वाटिका के सीन मे माली बनकर सीता जी को गुलदस्ता भेट करने का आदेश देते हैं और फिर मानो कोई भूली बात याद करके कहते हैं—"और देख, असामियो से ताकीद करके कह देना कि सब-के-सब शगुन करने आएँ ।"

इतने से ही होरी का पिंड नही छूट जाता । रायसाहब असामियों से देर तक बातें करते हैं । उनका व्यवहार दूसरे अफसरो और रईसो-जैसा नही है । मानो इस तरह वह जताना चाहते हों कि वह असामियो को अपनी ही तरह का मनुष्य समझते हैं । होरी से कहते हैं—"कारकुन को तो जो कुछ करना है वह करेगा ही; लेकिन असामी जितने मन से असामी की बात सुनता है, कारकुन की नहीं ।"

रायसाहब के मानववाद का यही रहस्य है । कारकुन को तो जो कुछ करना है वह करेगा ही, उन्हें ऐसे आदमी की जरूरत है जो कारकुन के अलावा रायसाहब का काम बना दे । दूसरे शब्दों में, गरजने के बदले वह अपनी मीठी बोली होरी के जरिए किसानो तक पहुँचाना चाहते हैं । उनका दाँव यह है कि रुपए इकट्ठे करने के लिए किसानों के बीच मे होरी उनका अपना आदमी बनकर काम साधे । वह कहते हैं—"हमें इन्हीं पाँच-सात दिनों में बीस हजार का प्रबध करना है । कैसे होगा, समझ में नहीं आता । तुम सोचते होगे, मुझ टके के आदमी से मालिक क्यो अपना दुखड़ा ले बैठे । किससे अपने मन की कहूँ । न जाने क्यों तुम्हारे ऊपर विश्वास होता है ।"

रायसाहब होरी से क्यों घुल-घुलकर बातें करते हैं, क्यो उसे रामलीला में माली का पार्ट देते हैं, यह रहस्य रुपए इकट्ठे करने की बात से समझ में आ जाता

है । लेकिन उन्होंने 'अपना दुखड़ा' रोने के लिए होरी को ही चुना, इसका भी कारण है । वह चरित्र के पारखी हैं और होरी की कमज़ोर नस पहचानते हैं । उपन्यास के आरंभ ही में होरी धनिया से कहता है—"तुझे रस-पानी की पड़ी है, मुझे यह चिंता है कि अबेर हो गई तो मालिक से भेंट न होगी ।" और—"यह इसी मिलते-जुलते रहने का परसाद है कि अब तक जान बची हुई है, नहीं तो कहीं पता न लगता कि किधर गए । गाँव में इतने आदमी तो हैं, किस पर बेदख़ली नहीं आई, किस पर कुडकी नही आई । जब दूसरों के पाँवों-तले अपनी गरदन दबी हुई है, तब उनके पाँवो को सहलाने में ही कुशल है ।"

होरी के चरित्र की यह कमज़ोरी है जिससे रायसाहब फ़ायदा उठाते हैं । वह गाँव के किसानों में फूट डालने मे सफल हुए हैं । होरी के रक्षक का नकली पार्ट करके वह गाँव के आदमियों को बेदखली, कुड़की वगैरह जीवन के सभी सुखों का अनुभव करा देते हैं ।

रायसाहब होरी को समझाते हैं कि ज़मींदारों में वह एकमात्र नेक आदमी हैं । चारो तरफ वह दुश्मनों से घिरे हुए हैं । उनकी परेशानियों की कोई सीमा नहीं है । होरी सहानुभूति से कहता है—"हम समझते थे कि ऐसी-ऐसी बातें हमीं लोगों में होती हैं, पर जान पड़ता है, बडे आदमियों में भी उनकी कमी नहीं है ।" इस तरह अपनी कल्पित परेशानियों की भूमि पर रायसाहब होरी से भाईचारा कायम कर लेते हैं ।

होरी जब घर पहुँचता है, तब धनिया सवाल करती है—"मालिक से क्या बातचीत हुई ?"

होरी जवाब देता है—"यही तहसील वसूली की बात थी और क्या ? हम लोग समझते हैं, बड़े आदमी बहुत सुखी होंगे, लेकिन सच पूछो तो वह हमसे भी ज्यादा दुखी हैं । हमे अपने पेट की ही चिन्ता है, उन्हें हज़ारों चिंताएँ घेरे रहती हैं ।"

इस धारणा पर गोबर अपने व्यंग्य-बाण बरसाता है । 'प्रेमाश्रम' के बलराज के लहज़े मे कहता है—"तो फिर अपना इलाक़ा हमें क्यों नहीं दे देते ! हम अपने खेत, हल, बैल, कुदाल, सब उन्हें देने को तैयार हैं । करेंगे बदला ? यह सब धूर्तता है, निरी मोटमर्दी । जिसे दुःख होता है, वह दर्जनों मोटरें नहीं रखता, महलों में नहीं रहता, हलवा-पूरी नहीं खाता, और न नाच-रंग में लिप्त रहता है । मज़े से राज के सुख भोग रहे हैं; उस पर दुखी हैं !"

गोबर के तीक्ष्ण व्यंग्य और उसके अकाट्य तर्क से होरी झुँझला उठता है । वह जायदाद के मोह और किसान की मरजाद की बात करता है । फिर भगवान की दुहाई देता है—"छोटे-बड़े भगवान् के घर से बनकर आते हैं । संपत्ति बड़ी तपस्या से मिलती है । उन्होंने पूर्वजन्म में जैसे कर्म किये थे, उसका आनंद भोग रहे हैं । हमने कुछ नहीं संचा, तो भोगें क्या ?" गोबर इसे मन समझाने की बात कहकर काट देता है । उसके लिए दुनिया का अटल नियम यह है—"यहाँ जिसके हाथ लाठी

है, वह ग़रीबों को कुचलकर बड़ा आदमी बन जाता है ।" तब होरी रायसाहब के चार घंटे भगवान् के भजन की बात कहता है, लेकिन गोबर फिर उससे एक बड़े ही असमंजस का सवाल करता है—"किसके बल पर यह भजन-भाव और दान-धर्म होता है ।" होरी जवाब देता है—"अपने बल पर ।" लेकिन गोबर कहता है—"नहीं, किसानों के बल पर और मज़दूरों के बल पर । यह पाप का धन पचे कैसे ? इसलिए दान-धर्म करना पड़ता है एक दिन खेत में ऊख गोड़ना पड़े तो सारी भक्ति भूल जाए ।" होरी हार जाता है और यही कहकर सतोष करता है—"अब तुम्हारे मुँह कौन लगे भाई, तुम तो भगवान् की लीला में भी टाँग अड़ाते हो ।"

होरी और गोबर की बातचीत एक पिछड़े हुए किसान और अपने अधिकारों को पहचाननेवाले आगे बढ़े हुए एक नए किसान की चेतना की टक्कर है । यह टक्कर दिखाकर प्रेमचंद सूचित करते हैं कि रायसाहब की मीठी बोली का असर सभी किसानों पर एक-सा नहीं पड़ता और नई पीढ़ी उनकी हकीकत पहचानने लगी है ।

अमल का सवाल न हो तो रायसाहब अत्यंत प्रगतिशील विचारो के आदमी हैं । वह इंतज़ार कर रहे हैं कि कब सरकार उनके वर्ग की हस्ती मिटा दे । "मैं उस दिन का स्वागत करने को तैयार बैठा हूँ ।" वह यह भी कहते हैं कि जमींदारी-प्रथा के कारण हिंदुस्तान के लोग अपना विकास नहीं कर पाते और "जब तक सपत्ति की यह बेड़ी हमारे पैरों से न निकलेगी, जब तक यह अभिशाप हमारे सिर पर मँडराता रहेगा, हम मानवता का वह पद न पा सकेंगे, जिस पर पहुँचना ही जीवन का अन्तिम लक्ष्य है ।"

रायसाहब अभी नई गिलौरियों की बारूद मुँह में भर ही रहे थे कि चपरासी ने आकर सूचना दी कि बेगारों ने काम करना बंद कर दिया है । देखिए अंधेर कि वह खाने को माँगते हैं और धमकाए जाने पर उन्होंने काम भी छोड़ दिया है । रायसाहब भला इस 'अन्याय' को कैसे सहन करते ? माथे पर बल पड़ जाते हैं । आँखें निकालकर कहते हैं—"चलो, मैं इन दुष्टों को ठीक करता हूँ । जब कभी खाने को नहीं दिया, तो आज यह नई बात क्यों ? एक आने रोज के हिसाब से मजदूरी मिलेगी जो हमेशा मिलती रही है, और इस मजदूरी पर उन्हें काम करना होगा, सीधे करें या टेढ़े ।"

इसके बाद वह होरी को विदा कर देते हैं ।

प्रेमचंद ने उस समय, जब रायसाहब का भाषण अपने क्लाइमैक्स पर था, बेगारों की चर्चा छेड़कर अपनी कथा-निर्माण की कुशलता और व्यंग्य की प्रखरता का परिचय दिया है । गोबर आगे चलकर जो-कुछ उसके बारे में कहता है, वह उनके जीवन में प्रत्यक्ष दिखाई देता है ।

रायसाहब का एक आलोचक और है—प्रोफ़ेसर मेहता । यह क्वारा अध्यापक न मिस मालती-जैसी लेडी डॉक्टरों को बख्शता है न रायसाहब-जैसे रईसों को ।

वह उन बुद्धिजीवियो मे है जो जनता से प्रेम करते हैं, उसके शोषकों से घृणा करते हैं, लेकिन जिनकी सहानुभूति और घृणा ने अभी सक्रिय रूप नहीं लिया । गोबर की तरह वह भी रायसाहब के मानववाद का पर्दाफाश करते हुए कहता है—"मानता हूँ, आपका आपके असामियो के साथ बहुत अच्छा बर्ताव है, मगर प्रश्न यह है कि उसमे स्वार्थ है या नही । इसका एक कारण क्या यह नही हो सकता कि मद्धिम आँच मे भोजन स्वादिष्ट पकता है । गुड से मारनेवाला जहर से मारनेवाले की अपेक्षा कही सफल हो सकता है । मैं तो केवल इतना जानता हूँ हम या तो साम्यवादी हैं या नही हैं । हैं तो उसका व्यवहार करे, नही हैं तो बकना छोड दें ।"

इस तरह गोबर और मेहता—दोनों पात्रो से रायसाहब के बारे में एक ही निष्कर्ष निकलवाकर कि वह धूर्त है, प्रेमचद ने उसका दो बार पर्दाफ़ाश किया है । इससे जाहिर होता है कि वह रायसाहब-जैसे धूर्तो से जनता को सचेत करना कितना महत्त्वपूर्ण काम समझते थे । रायसाहब के शब्दो और व्यवहार के भेद पर प्रकाश डालकर प्रेमचद ने उस सभ्यता की आम कमजोरी की तरफ इशारा किया है जिसका आधार दूसरो की मेहनत है । रायसाहब होरी नही हैं कि दो-चार बातो मे परास्त हो जाएं । अपने वातावरण, विकास की मंजिलो और दूसरे के श्रम पर मोटे होने पर लानत भेजने के बारे मे वह एक लबा व्याख्यान देते हैं जिससे मामूली आदमी प्रभावित हुए बिना नही रहता । लेकिन मेहता जी भी गोबर नही है—हालाँकि गोबर नाम से ही गोबर है, वैसे है काफी चतुर—और वह एक ही वाक्य मे रायसाहब के व्याख्यान की धज्जियाँ उडा देते हैं—"आपकी जबान मे जितनी बुद्धि है, काश उसकी आधी भी मस्तिष्क मे होती ।"

मेहता का यह वाक्य—और रायसाहब के साथ उनकी सारी बहस—ज़ाहिर करते हैं कि बुद्धिजीवी लोग भी रायसाहब-जैसे रँगे सियारो की हकीकत पहचानने लगे हैं । मेहता किसानो के काफी नजदीक पहुँचते हैं । उनसे उन्हे सच्ची सहानुभूति है । फिर भी दोनों एक होकर आगे बढ़ने का रास्ता नही ढूँढ़ पाए । वे सब ताकते मौजूद है जो रायसाहब की धूर्तता, महाजनो के शोषण और इनके सरपरस्त विलायती साहबो के स्वार्थो से देश को मुक्त कर सकती हैं, लेकिन एकता न होने से होरी बेचारा अकेला पड जाता है । 'गोदान' के बाद अगला क़दम यही हो सकता है कि मेहता और होरी-जैसे लोग अपना एका मजबूत करके रायसाहब और उनके विलायती प्रभुओ के जाल को छिन्न-भिन्न कर दे ।

जिस वर्ग मे रायसाहब-जैसे लोग पैदा हुए है, वह इतना निकम्मा है, यह दिखाने के लिए प्रेमचद ने मेहता को पठान बनाकर उन सबको डराया है । रामलीला की तैयारी के वक्त मेहता एक पठान का भेस धरकर बंदूक लिए रायसाहब, खन्ना, मिर्जा साहब वगैरह को अकेले ही घेर लेते हैं, लुट जाने का बहाना करते हैं और रायसाहब से रुपया माँगते हैं । ऊपर से मालती के आशिक बनकर उसे उठा ले जाने की धमकी देते हैं ।

किसी में यह हिम्मत नही होती कि पठान की बदूक छीन ले । जब ये सब पस्त हो चुकते हैं तभी होरी रायसाहब को ढूँढता हुआ उधर आ पहुँचता है और उठाकर मेहता को दे मारता है । मेहता की नकली दाढ़ी अलग हो जाती है और इस स्वाँग का कारण बताते हुए वह मालती से कहते हैं—"जरा इन भले आदमियो की जवाँमर्दी की परीक्षा ले रहा था ।" जवाँमर्दी की परीक्षा मे सिर्फ होरी पास होता है, खेत मे कुदाल चलानेवाला किसान; और मानववाद पर लेक्चर झाडनेवाले वे सब सज्जन फेल होते हैं । मालती को पहली बार पता चलता है कि उस पर मँडरानेवाले पतगे सच्ची लौ से कितना डरते है । उनमे से एक भी उसकी रक्षा करने के लिए हाथ नही बढाता, भले ही वह पठान उसे उठा ले जाता । उसे मेहता से सहज स्नेह हो जाता है, कुछ-कुछ स्नेह तो उसे उस 'पठान' से भी हो गया था जो उसे उठा ले जाने की धमकी दे रहा था । सपादक तखा का व्यवहार देखकर वह उनसे कहती है—"आप लोग इतने कायर हैं, यह मै न समझती थी ।" और—"जब आप लोग मेरा अपमान देख सकते है, तो अपने घर की स्त्रियो का अपमान भी देख सकते होंगे ।"

मालती ने जो कुछ कहा था, उसमे जरा भी अत्युक्ति नही । इनके लिए वह विलास से ज्यादा और किसी उद्देश्य के लिए है भी नही । मेहता के अविवाहित रहने का एक कारण यह भी है कि उन्हे ऐसी स्त्रियाँ मिलती हैं जो स्वय विलास का साधन बनने के अलावा और कुछ बनना भी नही चाहती ।

रायसाहब के दोस्तों मे मिस्टर खन्ना हैं, एक बैंक के मैनेजर और शक्कर-मिल के मैनेजिंग डायरेक्टर । खन्ना हिंदुस्तान के उन पूँजीपतियो मे है जिनके कब्जे मे बैक है और जो इस बैक-पूँजी के बल पर उद्योग-धधो पर कब्जा कर लेते हैं । जैसा कि प्रेमचद ने दिखलाया है, मिल मे और भी हिस्सेदार है लेकिन वहाँ चलती है सिर्फ खन्ना की । एक बडे जमीदार से उनकी दोस्ती आकस्मिक नही है । इस तरह के पूँजीपति सामती हितो से बहुत नजदीकी सबध कायम रखते हैं । खन्ना की नैतिकता ऐसी है कि वह मिस मालती के उपासक हैं । उनका सबसे बडा धर्म यह है कि किस तरह ज्यादा-से ज्यादा रुपया इकट्ठा करे । प्रेमचद ने एक वाक्य मे उनके चरित्र की विशेषता जाहिर कर दी है । जब रायसाहब वगैरह शिकार खेलने चले तब—"खन्ना ने शिकारी सूट डाटा था, जो शायद आज ही के लिए बनवाया गया था, क्योंकि खन्ना को असामियो के शिकार से इतनी फुरसत कहाँ थी कि जानवरो का शिकार करते ।"

खन्ना के चरित्र पर इस वाक्य से ज़्यादा प्रकाश प्रेमचद ने उनके बारे मे और जो कुछ लिखा है, उससे नही पडता, फिर भी खन्ना-जैसी हस्तियों का निर्माण कैसे होता है, इस पर रोशनी ज़रूर पडती है । उनकी व्ययपूर्ण शैली भी देखते ही बनती है—"दो बार जेल हो आए थे । किसी से दबना न जानते थे, खद्दर पहनते थे और फ्रांस की शराब पीते थे ।"

खन्ना उन्हीं देश-भक्तों के प्रतिनिधि हैं जिनकी देश-सेवा और विलायती शराबें पीने पर 'गबन' के देवीदीन ने अपने दिल के फफोले फोड़े थे । प्रेमचंद को इन लोगों से कुछ विशेष प्रेम था; इसलिए वह 'गबन' से लेकर 'गोदान' तक उनकी तरफ अपने पाठको का ध्यान बराबर आकर्षिक करते रहे ।

खन्ना जाते हैं शिकार खेलने, लेकिन रायसाहब को शक्कर-मिल का हिस्सेदार बनाने के लिए बराबर जोड-तोड मिलाते रहते हैं । रायसाहब के पास रुपए नहीं हैं । खन्ना तरकीब बताते हैं । बैंक से रुपए उधार ले लीजिए । फिर खन्ना की बीमा-कंपनी से पॉलिसी खरीद लीजिए । रोजगार का रोजगार, बाल-बच्चो की हिफाजत अलग से । फिर उन्हें सट्टेबाजी की भी सलाह देते हैं । खन्ना असामियो का शिकार आसानी से कर लेते हैं; तेंदुए का नाम सुनकर उन्हे अपने हवास कायम रखने में कठिनाई होती है । रायसाहब को शिकार के वक्त कहना ही पड़ता है—"आप बडे डरपोक हैं मिस्टर खन्ना, सच !" मिस्टर खन्ना का दावा है—"मैं अहिंसावादी होना लज्जा की बात नहीं समझता ।"

जब उनकी मिल मे हड़ताल होती है, तो मजदूरों का यह काम उन्हें स्वाभाविक रूप से बेजा मालूम होता है । उन्हें इस बात पर शायद ख़ासतौर से एतराज है कि जब वह जनता के आदमी हैं, तब उनके साथ यह सलूक क्यों ?

प्रेमचद मिस्टर खन्ना के मनोभावों की छानबीन करते हुए लिखते हैं, "मिस्टर खन्ना को मज़दूरों की यह हड़ताल बिलकुल बेजा मालूम होती थी । उन्होंने हमेशा जनता के साथ मिले रहने की कोशिश की थी । वह अपने को जनता का ही आदमी समझते थे । पिछले कौमी आंदोलन मे उन्होंने बड़ा जोश दिखाया था । जिले के प्रमुख नेता रहे थे, दो बार जेल गए थे ।"

यद्यपि मिस्टर खन्ना अपने को जनता का आदमी मानते थे, लेकिन जनता उन्हें अपना आदमी मानने से इनकार कर रही थी । इसमें कोई आश्चर्य की बात भी नहीं थी । मज़दूरों के वेतन में कटौती का विरोध करते हुए मेहता ने उनसे कहा था—"आपके मजूर बिलों में रहते हैं—गंदे बदबूदार बिलों में, जहाँ आप एक मिनट भी रह जाएँ, तो आपकी कै हो जाए । कपडे जो वे पहनते हैं, उनसे आप अपने जूते भी न पोंछेंगे । खाना जो वे खाते हैं, वह आपका कुत्ता भी न खाएगा । मैंने उनके जीवन में भाग लिया है । आप उनकी रोटियाँ छीनकर अपने हिस्सेदारों का पेट भरना चाहते हैं ।"

यही सबब है कि मज़दूर मिस्टर खन्ना को अब अपना आदमी नहीं समझते । उनकी हडताल नाकामयाब रहती है । लोगों की बेकारी से फ़ायदा उठाकर वह दूसरे आदमियों की भर्ती कर लेते हैं । मज़दूर बहादुरी से लड़ते हैं लेकिन आख़िर उन्हें हड़ताल वापस लेनी पड़ती है । एक तरफ़ मज़दूर लड़ते हैं खन्ना से; दूसरी तरफ किसान सामना करते हैं रायसाहब के कारिंदों का । लेकिन जहाँ खन्ना और रायसाहब एक-दूसरे के नजदीकी दोस्त हैं और सट्टे और शक्कर के शेयरों की

स्कीमें बनाते हैं, वहाँ किसानों और मज़दूरों को एक-दूसरे का पता नहीं है । अपनी लड़ाइयाँ अलग-अलग चलाने की वजह से दोनों में किसी की भी दशा नहीं सुधर पाती । उनके बीच की कड़ी मेहता हैं । मजदूरों के जीवन में भाग ले चुके हैं और गाँव जाकर वहाँ के किसानों का हाल भी देखते हैं । एक तरह वह जनता में नई एकता के सूत्रधार बनने की तैयारी भी कर रहे हैं । मालती कहती है—"संसार में अन्याय की, आतंक की, भय की दुहाई मची हुई है । अंधविश्वास का, कपट-धर्म का, स्वार्थ का प्रकोप छाया हुआ है । तुमने वह आर्त्त पुकार सुनी है । तुम भी न सुनोगे, तो सुननेवाले कहाँ से आएँगे ! और असंख्य प्राणियों की तरह तुम भी उसकी ओर से अपने कान बंद नहीं कर सकते ।"

मालती के इन शब्दों में प्रेमचंद ने अपना संदेश व्यक्त किया है । पढ़े-लिखे लोगों को अन्याय और अत्याचार से पीड़ित जनता का साथ देना चाहिए । सबके प्रयत्नों से ही भय; आतंक और अंधविश्वासों का खात्मा हो सकता है । मेहता, अमरकांत और रमानाथ के वर्ग ही में पैदा हुए हैं, लेकिन उनमें चरित्र की दृढ़ता है । उन्होंने मज़दूरों के जीवन में भाग लिया है—जैसा कि वह खन्ना से कहते हैं । यह बात न 'कर्मभूमि' के अमरकांत में थी, न 'प्रेमाश्रम' के प्रेमशंकर में । वह स्वय शारीरिक परिश्रम कर सकते हैं और दूसरों के परिश्रम की इज़्ज़त करते हैं । समाज की झूठी मान-मर्यादा की उन्हें ज़रा भी चिंता नहीं है । वह अपने तीखे विश्लेषण से रायसाहब और खन्ना-जैसे लोगों की कलई खोल देते हैं । एक जंगली लड़की की अतिथि-सेवा से प्रभावित होकर वह मालती को भी फटकार देते हैं । मालती के चरित्र में जो परिवर्तन होता है, वह मेहता के उद्योग से । वह नारी की इज्जत करते हैं; मातृत्व का आदर करते हैं । इसलिए वह स्त्रियों को तितलियों की तरह जहाँ-तहाँ उड़ते देखना पसंद नहीं करते । मालती में इन तितलियों के अवगुण मौजूद हैं । वह जब उन्हें दूर कर लेती है, तभी वह उसे अपनाते हैं । मालती में उन्हें विश्वास है कि वह बदलेगी । इसलिए वह धैर्य से उस दिन की राह देखते हैं जब मालती खुद उनसे कहती है—"अपनी विद्या और बुद्धि को, अपनी जागी हुई मानवता को और भी उत्साह और ज़ोर के साथ उसी रास्ते पर ले जाओ ।"

मेहता के चरित्र में प्रेमचंद दिखना चाहते हैं कि उनकी निगाह में किस तरह के लोगों को जनता की सेवा के क्षेत्र में आगे बढ़ना चाहिए और कौन दरअसल उसकी सेवा कर सकते हैं । देश की उन्नति में उन्हें रायसाहब और खन्ना-जैसे लोगों की नकली देश-भक्ति एक बाधा की तरह दिखाई देती थी, इसीलिए उन्होंने तरह-तरह से, बार-बार, खासकर मेहता के ज़रिए ऐसे लोगों के चरित्र की वास्तविकता प्रकट कर दी है । मेहता बहुत अध्ययनशील व्यक्ति हैं । उनकी दर्शन-शास्त्र पर लिखी हुई पुस्तक का वर्णन पढ़कर यह याद हो आता है कि प्रेमचंद को स्वयं दर्शन से प्रेम था और बी. ए. की परीक्षा के लिए वह उनका एक विषय भी था । जब मेहता गाँवों में किसानों की दशा देखते हुए घूमते हैं, तब

प्रेमचंद की अंतिम आकांक्षा की याद हो आती है जो उन्होंने मृत्यु से तीन महीने पहले श्री उपेंद्रनाथ 'अश्क' को लिखे हुए अपने एक पत्र में ज़ाहिर की थी—"भाई, मनुष्य का बस हो तो कहीं देहात मे जा बसे, दो-चार जानवर पाल ले और जीवन को देहातियो की सेवा मे व्यतीत कर दे ।" ('हंस' मई, '39, पृष्ठ-810)

'गोदान' के किसी एक पात्र को प्रेमचंद का प्रतिनिधि नही कहा जा सकता, लेकिन अगर मेहता से होरी को जोडा जा सके तो जो व्यक्ति बनेगा, वह बहुत-कुछ प्रेमचंद से मिलता-जुलता होगा । मेहता को यदि उन्होंने अपने विचार दिए हैं तो होरी के बराबर परिश्रम करते रहने की दृढ़ इच्छा-शक्ति । लेकिन और बातों मे होरी प्रेमचंद से बहुत भिन्न है ।

मनोहर और बलराज की तरह वह एक सचेत किसान नही है । गाँव और कुनबे के बाहर उसकी नजर नहीं गई । अपनी खेती और परिवार की देखभाल ने उसे काफी स्वार्थी बना दिया । यह सोचकर वह खुश होता है कि दूसरों की बेदखली और कुड़की होती है, लेकिन मालिको की खुशामद करने की वजह से वह बचा रहा है । उसमे वे तमाम अंधविश्वास पाए जाते है जो अपने पुरखो से उसे विरासत के तौर पर मिले हैं । वह सिद्धातों में विश्वांस तो करता है लेकिन मौका पडने पर उन्हे काट-छाँटकर समझौता करने को भी बुरा नही समझता । स्त्रियों के बारे में उसके विचार बिलकुल पिछडे हुए हैं । धनिया उससे ज्यादा समझदार है । वह उसके भ्रातृ-प्रेम और मर्यादा के लिए सबकुछ खो देने का विरोध करती है । होरी ने जिन लोगो को समाज में इज्जत पाते देखा है, उन्हीं की 'मरजाद' की नकल खुद भी करना चाहता है । धनिया से उसकी नही बनती तो उसे पीटना भी शुरू कर देता है । (मानो यह दिखाने के लिए कि पिछडे हुए किसानो में औरत को पीटना आम बात है, प्रेमचद गोबर से कोदई की मुलाकात कराते हैं, जिसे स्त्री से दुर्व्यवहार करता देखकर गोबर उससे लड़ने को तैयार हो जाता है ।)

होरी जायदाद को जीवन का आधार मानता है । वह अपनी ही नहीं रायसाहब की 'जैजात' के बारे मे दलीले पेश कर सकता है । फिर भी उसकी सारी जायदाद छीन ली जाती है और वह ककड खोदते हुए जान देता है । होरी उन किसानों का प्रतिनिधि है जिनकी ज़मीन उनके हाथ से निकलती जाती है और वे मज़दूरी करने के लिए मजबूर किए जाते हैं । लेकिन मज़दूरी ऐसी कि चार ही दिन में आदमी की हड्डियो को चूर कर दे । वही होरी, जिसने मेहता को उठाकर दे मारा था, लू खाकर मैदान मे गिर पड़ता है ।

उसकी इच्छाएँ साधारण हैं । एक गाय लेकर खेती-बाड़ी करता हुआ जीना चाहता है । शहर के महाजन और पुरोहित उसकी यह साध भी पूरी नहीं होने देते । यही नही कि वह जो कमाता है; उनकी जेब में चला जाता है, उसे बाप-दादों से जो-कुछ मिला था, वह भी उन्हीं का हो जाता है ।

वह अपने भाई को पुलिस के हाथों से बचाना चाहता है । गो-हत्या के लिए

दूसरों के बदले उसे डाँड़ भरना पड़ता है । अस्सी रुपए में झिंगुरी सिंह के यहाँ उसे अपना घर गिरवी रखना पड़ता है । उसकी सारी-की-सारी फ़सल डाँड़ की भेंट हो जाती है । धीरे-धीरे उसके अंधविश्वासो को इतनी ठोकरें लगती हैं कि वह भी मान-मर्यादा के विचार छोड़ने लगता है । ध्यान सिंह ठाकुर के यहाँ आरती लेने के लिए जाए तो कुछ थाली मे डालने को ले जाए या खाली हाथ जाए, इस समस्या पर विचार करते-करते वह इस नतीजे पर पहुँचता है—"क्यो मर्यादा की गुलामी करे ? मर्यादा के पीछे आरती का पुण्य क्यो छोडे ? लोग हँसेंगे, हँस लें । उसे परवाह नही । भगवान उसे कुकर्म से बचाए रखें, और वह कुछ नही चाहता ।"

तीन बीघा जमीन की रक्षा के लिए वह जान लडा देता है, लेकिन महाजनों के पजो से उसकी रक्षा नहीं कर पाता । उस पर भी बेदखली का दावा होगा । महाजन उसे कन्या बेचने के लिए मजबूर करके उसे अभय दान करने के लिए तैयार हो जाता है । बडे सोच-विचार के बाद होरी इसके लिए भी तैयार हो जाता है । "आज तीस साल तक जीवन से लडते रहने के बाद वह परास्त हुआ है और ऐसा परास्त हुआ है कि मानो उसको नगर के द्वार पर खडा कर दिया गया है और जो आता है, उसके मुँह पर थूक देता है ।"

लेकिन वह सघर्ष मे पराजित नही हुआ । जब ककड खोदने का काम शुरू करता है तब मानो एक नया जीवन शुरू कर रहा हो । हीरा से मिलकर उसे बेहद खुशी होती है । जिस दिन वह लू लगने से मरने को होता है, उस दिन उसकी मानसिक दशा यह थी—"जीवन के सारे सकट, सारी निराशाएँ मानो उसके चरणो पर लोट रही थी । कौन कहता है, जीवन-सग्राम मे वह हारा है । यह उल्लास, यह गर्व, यह पुलक क्या हार के लक्षण हैं ? इन्ही हारो मे उसकी विजय है । उसके टूटे-फूटे अस्त्र उसकी विजय-पताकाएँ हैं ।" होरी का चरित्र भारत के अजेय किसान का चरित्र है । 'गोदान' उसके भगीरथ परिश्रम की गाथा है ।

इसलिए प्रेमचद 'निर्मला' की तरफ पीछे न लौट रहे थे । वह आगे बढ़ रहे थे, स्वाधीनता-आदोलन मे बढ़ने के लिए उन किसानो का आहवान करते हुए, जो अब तक पिछड़े थे । होरी के मुकाबले मे गाँव के महाजन ऐसे कलुषित और नीच लगते हैं जैसे जोक । उनमे मनुष्यत्व के प्रकाश का जैसे लोप हो गया है । वे केवल बूँद-बूँद करके होरी-जैसे मेहनतियो का खून पीना जानते हैं । होरी जबान से भी इनके अत्याचार का प्रतिकार नही करता, लेकिन सभी लोग उसकी तरह अन्याय सहने को तैयार नही हैं । धनिया का चरित्र उससे काफी भिन्न है । वह मर्दों के बराबर काम करती है, इसके सिवा घर का काम देखती है । उसे दूसरों का वह लिहाज नही है जो होरी को है । वह अन्याय के विरुद्ध पाठक और लेखक की भावनाओ को व्यक्त करने का एक माध्यम है । ऊपर से कठोर है, हृदय बहुत ही कोमल है । प्रेमचंद के नारी-पात्रो मे वह अन्यतम है । उसके बराबर न और कोई परिश्रम करनेवाली है, न और किसी पर सरस्वती की ऐसी कृपा है । वह दातादीन

को ऐसा डपटकर जवाब देती है जैसा कोई मज़दूर-स्त्री ही दे सकती थी—"भीख माँगो तुम, जो भिखमंगे की जात हो । हम तो मजूर ठहरे, जहाँ काम करेंगे, वहीं चार पैसे पाएँगे ।"

और होरी के लड़के गोबर में 'प्रेमाश्रम' के बलराज की-सी दृढ़ता न हो तब भी वह नए ज़माने की रोशनी देख चुका है । चाहे गाँव में खेती करे, चाहे शहर में मज़दूरी, वह दूसरों का अन्याय बर्दाश्त करने के लिए तैयार नहीं है । होरी के मरने के बाद गोबर मानो पिता के हत्यारों के लिए एक चुनौती की तरह जीवित रहता है वह गोबर जिसने—"राजनीतिक जलसों के पीछे खड़े होकर भाषण सुने हैं और उनसे अंग-अंग में बिंधा है । उसने सुना है और समझा है कि अपना भाग्य खुद बनाना होगा; अपनी बुद्धि और साहस से इन आफ़तों पर विजय पाना होगा ।"

8. कहानियाँ

यदि कहानीकार प्रेमचद और उपन्यासकार प्रेमचंद में एक को ही हिंदी-साहित्य के इतिहास मे जगह देने की बात हो तो शायद उपन्यासकार प्रेमचंद को ही उस जगह के लिए चुना जाएगा ।

उनकी कहानियाँ, कला और विषय-वस्तु के लिहाज से, काफ़ी ऊँचे-नीचे स्तरों की हैं । यह बात उनके उपन्यासों के बारे में भी कही जा सकती है । फिर भी उनके अच्छे-से-अच्छे और घटिया-से-घटिया उपन्यासो के बीच इतना बड़ा फासला न मिलेगा जितना उनकी बढ़िया और घटिया कहानियों के बीच मिलता है ।

प्रेमचंद की स्वाभाविक रुचि उपन्यास पढ़ने और लिखने की तरफ़ थी । बचपन से ही उन्होंने पुराणों और तिलिस्मे होशरूबा-जैसे बृहदाकार ग्रंथों का पारायण किया था । अंग्रेजी मे उन्होंने न सिर्फ इंगलैंड के डिकेंस और थैकरे-जैसे उपन्यासकारों को पढ़ा था, बल्कि उसके माध्यम से यूरोप के भी बहुत-से उपन्यासकारों की रचनाएँ पढ़ डाली थीं, जिनमें तोल्स्तोय और गोर्की का उन पर खास प्रभाव पडा था । उपन्यास पढ़ना और एक बड़े पैमाने पर कहानी सोचना उनके संस्कारों में शामिल हो गया था । उपन्यासों में उन्हें रस मिलता था । यहाँ उनकी कल्पना आकाश में मुक्त विहग-जैसी अपने पंख फैलाकर उड़ सकती थी । कहानी की परिधि उन्हें अपनी प्रतिभा का पूरा करतब दिखाने से रोकती थी ।

प्रेमचद भारतीय स्वाधीनता-आंदोलन के कथाकार थे । उनकी दृष्टि समाज के सभी वर्गों, सभी स्तरों की जनता की तरफ़ जाती थी, जो इस आंदोलन के बहाव मे अपनी जडता छोडकर नई तरह की हरकत कर रहे थे । यह सही है कि मज़दूरो से प्रेमचंद का संपर्क कम था । समाज के इस क्रांतिकारी वर्ग का जैसा चित्र इतने बडे उपन्यासकार की रचनाओं में मिलना चाहिए, वह वहाँ नहीं है । 'गोदान' मे मेहता के चरित्र से मालूम होता है कि प्रेमचंद इस कमी को महसूस करने लगे थे और अगर 'हंस' की चिंता ने, जिंदगी की गाड़ी खींचने के परिश्रम ने, साहित्यिक और राजनीतिक सस्थाओं की उदासीनता और कभी-कभी विश्वासघात ने उनको असमय ही शरीर-त्याग करने के लिए बाध्य न किया होता तो वह इस ख़ामी को दूर

करते हुए और भी सुदर उपन्यास हमे देते ।

प्रेमचद के उपन्यास कुछ-एक पात्रो की कहानियाँ नहीं हैं । उनमें उन्होंने जीवन-प्रवाह की ही झाँकी दिखलाई है । जागीरदार, जमींदार, कारिंदे, हाकिम, पुलिस के अफसर, प्रोफेसर, पढ़ी-लिखी और अपढ देवियाँ, धनी, मध्यम और गरीब किसान, खेत-मजदूर, अछूत, वेश्याएँ—इन सभी का सामाजिक जीवन, उनके मनोजगत् का इतिहास हमे प्रेमचद के उपन्यासो मे मिलता है । समाज की इस विविधता का चित्रण करने मे, इतने प्रसार और गहराई से चित्रण करने मे प्रेमचद ससार के बडे-से-बडे उपन्यासकारो के बराबर जगह पाते हैं ।

लेकिन एक कहानीकार की हैसियत से क्या उन्हे नि.सकोच ससार के बडे-से-बडे कहानीकारो मे गिना जा सकता है ? शायद नही । इसका यह मतलब नही कि प्रेमचद एक ऊँचे दर्जे के कहानीकार नही थे । ऊपर कही हुई बाते सच हैं, जब हम ससार के चोटी के कहानीकारो का ध्यान करे या स्वय उपन्यासकार प्रेमचद से कहानीकार प्रेमचद की तुलना करे । जब हम हिंदुस्तान की दूसरी भाषाओ की तरफ नजर डालते हैं, तब हम उन्हे अच्छे-से-अच्छे कहानीकारो की पाँति मे बैठने का हकदार पाते हैं और ब्रिटेन और अमेरिका के अच्छे-से-अच्छे कहानीकारो से किन्ही बातो मे आगे बढा हुआ भी पाते हैं ।

प्रेमचद की लगभग पचास कहानियाँ ऐसी होगी जो हिंदी मे अपना अमर स्थान बना चुकी है । हिंदुस्तान की जिन दूसरी भाषाओ मे उनकी कहानियो का अनुवाद हुआ है, उनमे भी उनकी लोकप्रियता मे सदेह नही रह गया ।

उपन्यासो की तरह कहानियो मे भी प्रेमचद कोई नियम-कायदे मानकर नही चले । एक बार जैनेद्र जी से उन्होने कहा था—"कहानी हृदय की वस्तु है, नियम की वस्तु नही है । नियम है और वे उपयोगी होने के लिए हैं । हृदय के दान मे जब वे अनुपयोगी हो जाएँ तब बेशक उन्हे उल्लघनीय मानना चाहिए ।"

प्रेमचद की कहानियो का सबसे बडा नियम यही है कि जब हृदय के दान मे नियम बाधक हो, तब उन्हे तोड देना चाहिए । इसीलिए उनकी कहानियो का गठन हर जगह एक-सा नही है ।

उनकी काफी कहानियाँ ऐसी है जिनमे ग्रामीण कथाओ का रस और उनकी शैली अपनाई गई है । आमतौर से उनकी कहानियो मे जो एक ठेठपन है, पाठक के हृदय मे अपनी बात को सीधे उतार देने की जो ताकत है, वह उन्होने हिंदुस्तान के अक्षय ग्रामीण कथा-भडार से सीखी है । उनकी कितनी ही कहानियाँ इस सीधे ढग से शुरू नही होती ?—"किसी गाँव मे शकर नाम का एक कुरमी किसान रहता था । सीधा-सादा गरीब आदमी था, अपने काम से काम, न किसी के लेने मे न देने मे । एक दिन सध्या समय एक महात्मा ने आकर उसके द्वार पर डेरा जमाया ।" ('सवा सेर गेहूँ')

कथा कहने का यह ठेठ ढग हिंदुस्तान के हर गाँव मे कहानी कहनेवाला और

सुननेवाला जानता है । यही सबब है कि किसानो और स्त्रियो मे उनकी कहानियाँ तुरंत लोकप्रिय हो गईं । कुछ कहना असंगत न होगा कि उनकी कहानियो में एक तरह का लोक-रस है कुछ यहाँ की धरती की सुगध, यहाँ की हवा की ताज़गी और महक—जो बडे-बडे टेकनीकवादियो के यहाँ बहुत तलाश करने पर भी नही मिलता ।

प्रेमचद ने ग्राम-कथाओ से कहानी कहना सीखा था, उनकी नकल न की थी । उनकी शैली आमतौर से व्यग्य-प्रधान होती है, उसमें एक तरह का कसाव होता है, एक काव्य-तत्त्व, जो ग्राम-कथाओ मे कभी-कभी मिलता है । "सिपाही को अपनी लाल पगडी पर, सुदरी को अपने गहनों पर और वैद्य को अपने सामने बैठे हुए रोगियो पर जो घमड होना है, वही किसान को अपने खेतो को लहराते हुए देखकर होता है ।" ('मुक्ति-मार्ग') यहाँ एक ही वाक्य मे प्रेमचद ने न जाने कितनो को घायल कर दिया है । इस तरह का पुजीभूत व्यग्य—शास्त्रकार इस प्रयोग के लिए क्षमा करे—प्रेमचद की शैली की अपनी विशेषता है ।

ग्राम-कथाओ की एक विशेषता और है कि उनमे कथा का काफी प्रसार रहता है । उनमे स्थान, समय और घटना की एकता का प्रसिद्ध यूरोपियन नियम लागू नही होता । ग्रामीण श्रोताओ के लिए रस उत्पन्न करनेवाली कहानी काफी लबी होनी चाहिए वर्ना वह बीरबल का चुटकुला हो जाएगी । प्रेमचद कभी-कभी चुटकुलेबाजी भी करते हैं, लेकिन कभी-कभी । कुछ पश्चिमी कहानीकारो की नकल करते हुए यहाँ के लेखक कहानी को ऐसी 'शार्ट स्टोरी' बना देते हैं कि पढ़नेवालो को उसमे आनद ही नही आ पाता । कुछ लोगो का विचार है कि हिंदुस्तान मे कहानी पश्चिम से आई । 'हितोपदेश' और 'कथा-सरित्सागर' के रहते हुए—'बैताल-पच्चीसी' और 'सिंहासन-बत्तीसी' का जिक्र न करे तो भी—ऐसा सोचना यूरोप-भक्ति का प्रमाण हो सकता है, वैज्ञानिक विवेचन का नही । 'जातको' और 'पचतत्र' के देश को यूरोपवाले कहानी कहना सिखलाने आए !

भारतीय कथा-साहित्य की जातीय परपरा से प्रेमचद की कहानियो का बहुत घनिष्ठ सबध है । कहानी फुरसत की चीज़ है, काम-धाम से छुट्टी पाकर सुनने की चीज़, और जल्दबाजी से काम बिगड जाता है । प्रेमचद के कहानी कहने में वह फुरसत का भाव मिलता है । वह कहानी सुनाते हैं, अक्सर लच्छेदार जबान मे, वाक्यों को स्वाभाविक गति से फैलने की आजादी देकर, अंग्रेजी बाग के माली की तरह उनकी डालियाँ और पत्ते कतरकर नही, फूलो और पत्तियों को हवा में बढ़ने और लहराने की आज़ादी देकर । जिंदगी के अनुभवो पर टीका-टिप्पणी भी साथ मे चला करती है; व्यग्य, अनूठी उपमाएँ और हास्य बीच-बीच में पाठक को गुदगुदाते रहते हैं ।

'दो बैलों की कथा' का पहला पैरा गधे के गुणों का वर्णन करता है । दूसरे पैरे

मे बैल और गधे के गुणों का तुलनात्मक अध्ययन है और फिर लेखक अपना निष्कर्ष प्रकट करता है—"कुछ लोग बैल को शायद बेवकूफों में सर्वश्रेष्ठ कहेंगे; मगर हमारा विचार ऐसा नहीं है । बैल कभी-कभी मारता भी है, कभी-कभी अड़ियल बैल भी देखने में आ जाता है । और भी कई रीतियों से वह अपना असंतोष प्रकट कर देता है; अतएव उसका स्थान गधे से नीचा है ।" यहाँ पर प्रेमचंद ने शैली में प्रसार और वर्णन में शब्द-चयन की सुघराई के साथ-साथ समाज में एक प्रचलित दृष्टिकोण पर—असंतोष को प्रकट न करके चुपचाप अन्याय सहने के दृष्टिकोण पर—व्यंग्य भी किया है ।

प्रेमचंद की कहानियाँ पढ़ते समय घटना-कुतूहल कम रहता है, चरित्र-चित्रण की बारीकियों में पाठक का मन ज़्यादा रमता है । उनकी कहानियों में घटनाओं का वैसा महत्त्व नहीं है जैसा चरित्र का । वह पाठक को सनसनीखेज घटनाओं से चौंका देना पसद नहीं करते । 'मुक्तिमार्ग' में बुद्धू झींगुर के खेत में आग लगा देता है, लेकिन यह घटना कहानी में बहुत ही गौण स्थान रखती है; मुख्य वस्तु झींगुर और बुद्धू का चरित्र और उनका जीवन है ।

प्रेमचंद में कहीं-कहीं घटना-वैचित्र्य भी आता है, लेकिन यह कहानी को कमज़ोर बना देता है । 'डामुल का कैदी' में पुनर्जन्म का आभास, हड़ताल से लेकर सेठ के काले पानी तक की घटनाएँ कहानी को अस्वाभाविक बना देती हैं, उसकी रोचकता खत्म हो जाती है । उनकी कुछ कहानियाँ ऐसी हैं, जो जीवन-चरित्र लिखने-जैसी हो गई हैं, मानो वह अपने नायक के बारे में सभी बातें पाठक को बतला देना चाहते हैं । उनकी सबसे असफल कहानियाँ वे हैं जिनमें उनका उद्देश्य हृदय-परिवर्तन दिखलाना है । इनमें उनका यथार्थवादी चित्रण अपनी चमक खो देता है और उसके बदले आदर्शवादी अस्वाभाविकता का मुलम्मा ही पल्ले पड़ता है । 'डामुल का कैदी' ऐसी ही कहानी है ।

प्रेमचद की कहानियों की विभिन्नता, विविध पात्रों का भारी जमाव आश्चर्यजनक है । उनकी कहानियों की विषय-वस्तु में जितनी विविधता है, उतनी कम कलाकारो के यहाँ मिलेगी । 'शतरंज के खिलाड़ी' के मिर्ज़ा और मीर साहब से लेकर 'दो बैलों की कथा' के दो बैलों तक उनके पात्रों मे ऐसी विविधता है कि प्रेमचद की स्मरण-शक्ति, उनकी सर्वग्राही दृष्टि, जिंदगी का विशद अनुभव पाठक को आश्चर्य में डाल देते हैं । उनके चरित्र-चित्रण की यह बहुत बड़ी सफलता है कि थोड़ी देर के संपर्क से ही उनके पात्र बहुत दिनों के परिचित-जैसे लगने लगते हैं और कहानी खत्म कर देने पर भी पाठक को बहुत दिनों तक याद रहते हैं ।

प्रेमचंद की कहानियाँ केवल मनोरंजन के उद्देश्य से नहीं लिखी गईं । उन सभी में कोई-न-कोई सुझाव, जीवन के प्रति नया दृष्टिकोण, किसी समस्या का हल जरूर मिलता है । यह उनकी खूबी है कि सारी बात वह ऐसा चित्र खींचकर कहते

हैं कि कहानी में उपदेशकों का रूखापन नहीं आने पाता । उनके चित्र बड़े ही सजीव होते हैं मानो घटना आँखों के सामने हो रही हो और प्रेमचंद उसे नोट करते जाते हों—

"झींगुर ने लड़के को तो गोद से उतार दिया, और अपना डंडा सँभालकर भेड़ों पर पिल पड़ा । धोबी भी इतनी निर्दयता से अपने गधे को न पीटता होगा । किसी भेड़ की टाँग टूटी, किसी की कमर टूटी । सबने बें-बें का शोर मचाना शुरू किया ।" ('मुक्ति-मार्ग')

"शाम हो गई । खंडहर के चमगादड़ों ने चीख़ना शुरू किया । अबाबीलें आ-आकर अपने-अपने घोंसलों में चिमटीं । पर दोनों खिलाड़ी डटे हुए थे, मानो दो खून के प्यासे सूरमा आपस में लड़ रहे हों ।" (*'शतरज के खिलाड़ी'*)

"भोंदू पसीने से तर, लकड़ी का एक गट्ठा सिर पर लिए आया और उसे ज़मीन पर पटककर बंटी के सामने खडा हो गया, मानो पूछ रहा हो—क्या अभी तेरा मिज़ाज ठीक नहीं हुआ ?"

"संध्या हो गई थी, फिर भी लू चलती थी और आकाश पर गर्द छाई हुई थी । प्रकृति रक्त-शून्य देह की भाँति शिथिल हो रही थी ।" (*'प्रेम का उदय'*)

कथा की यह चित्रमयता, पात्र को उसकी पृष्ठभूमि के साथ थोड़े-से शब्दों में आँक देने की यह खूबी प्रेमचंद की कला की सफलता का रहस्य है ।

प्रेमचंद इनका चरित्र-चित्रण खुद अपने शब्दों से, घटनाओं के द्वारा और दूसरों की सम्मति पेश करके ही नहीं करते; साधारणतः उनके पात्रों के संवाद उनके चरित्र को सबसे अच्छी तरह प्रकट करते हैं । यहाँ भाषा पर प्रेमचंद का असाधारण अधिकार दिखाई देता है । हिंदी भाषा कितनी समृद्ध है, इसका परिचय भी मिलता है ।

"प्राण शरीर में नही रहता, ब्रह्मांड में रहता है । मैं चाहूँ, तो योगबल से अभी प्राण-त्याग कर सकता हूँ । मैंने तुम्हें चेतावनी दे दी, अब तुम जानो तुम्हारा काम जाने । मेरा कहना मानोगे, तो तुम्हारा कल्याण होगा । न मानोगे, हत्या लगेगी, संसार में कहीं मुँह न दिखला सकोगे । बस, यह लो, मैं यहीं आसन जमाता हूँ ।"

यह 'सत्याग्रह' के मोटेराम हैं । जैसा भारी-भरकम उनका व्यक्तित्व, वैसे ही उनके शब्द हैं । जैसा ज्ञान-शून्य उनका मस्तिष्क है, वैसा ही निरर्थक उनका वाक्य-प्रवाह है ।

"मेरे दादा नवाबी में चकलेदार थे, हुजूर सात ज़िले के मालिक, जिसे चाहे तोप दम कर दें, फाँसी पर लटका दें । सूरज निकलने के पहले लाखों की थैलियाँ चढ़ जाती थीं हुजूर ! नवाब साहब भाई की तरह मानते थे । एक दिन वह था, एक दिन यह है कि हम आप लोगों की गुलामी कर रहे हैं । दिनों का फेर है ।"

यह 'तगादा' का इक्केवाला है । जितना तेज़ उसका इक्का नहीं, उतनी तेज़ उसकी ज़बान है । ज़मीन-आसमान के कुलाबे मिलाने में एक ही है ।

"कहीं ऐसा ग़जब न करना, नहीं तो सीधा भी जाए और थाली भी फूटे । बाबा थाली उठाकर पटक देंगे । उनको बड़ी जल्दी क्रोध चढ़ आता है । क्रोध में पंडिताइन तक को छोडते नहीं, लडके को ऐसा पीटा कि आज तक टूटा हाथ लिए फिरता है । पत्तल में सीधा भी देना, हाँ । मुदा तू छूना मत । झूरी गोंड़ की लड़की को लेकर साह की दुकान से सब चीज़ें ले आना ।"

यह 'सद्गति' का दुखी चमार है जो अपनी पत्नी झुरिया को पंडित घासीराम के स्वागत-सत्कार के लिए निर्देश दे रहा है ।

"मीर—क्या ! घास आपके अब्बाजान छीलते होगे, यहाँ तो पीढ़ियो से शतरंज खेलते चले आ रहे हैं ।

मिरजा—अजी जाइए भी, गाज़िउद्दीन हैदर के यहाँ बावरची का काम करते-करते उम्र गुजर गई, आज रईस बनने चले हैं । रईस बनना कुछ दिल्लगी नही है ।

मीर—क्यो अपने बुजुर्गों के मुँह मे कालिख लगाते हो—वे ही बावरची का काम करत आए होगे । यहाँ तो हमेशा बादशाह के दस्तरख्वान पर खाना खाते चले आए हैं ।"

ये 'शतरज के खिलाडी' हैं जो म्यान से तलवारें खींचने ही वाले हैं ।

सवाद, चरित्र-चित्रण, कथानक—कही भी प्रेमचद तटस्थ होकर कलम नही चलाते । वह जीवन-प्रवाह से अलग खडे हुए उस पर 'गंभीर' चिंतन करनेवाले लेखक नही हैं । वह उसमें भाग लेनेवाले, उसे गति देनवाले, उसकी लहरों को एक दिशा देनेवाले साहित्यकार हैं ।

मोटेराम का चित्रण करने मे समाज के इन निठल्लो और राज-भक्ति को परम धर्म माननेवालो के प्रति प्रेमचंद की घृणा उनके हर वाक्य से प्रकट होती है । उनकी शैली में ओज और व्यग्य की प्रखरता का कारण अन्याय से उनकी घृणा है । 'इस्तीफा' कहानी की व्यग्यपूर्ण परिस्थिति, साहब से गाली खाकर आका और पत्नी के सामने झूठ बोलना कि हम उसे पीट आए हैं और उससे शाबाशी पाने पर फिर जाकर साहब की खबर लेना, प्रेमचद के पक्षपात को अच्छी तरह प्रकट करते हैं । गाली देनेवाले साहब और गाली सुननेवाले क्लर्क के संघर्ष में वह तटस्थ नही हैं ।

'शतरज के खिलाडी' में वह 'कला कला के लिए' का खूब मज़ाक उड़ाते हैं । मिर्जा और मीर उन लोगों में हैं जिनके लिए अपना मनोरंजन ही सबकुछ है; देश भाड में जाए, उन्हें इससे मतलब नहीं । इसीलिए इस कहानी का व्यंग्य इतना तीखा है ।

प्रेमचंद को अपने देश की जनता से गहरा प्रेम और सहानुभूति है । जब वह साधारण किसानों और अछूतों का चित्रण करते हैं—'पूस की रात', 'कफ़न' वगैरह मे—तब उनकी सहानुभूति कथा के रचने में साफ झलकती है । प्रेमचंद गरीबी

और अंधविश्वासों को आदर्श कहकर चित्रित नही करते । वह दिखलाते हैं कि इतने अँधेरे में भी मनुष्यता का दीपक कैसे जल रहा है, उनकी लौ धनी आदमियों के घर से यहाँ कितनी ऊँची उठ रही है ।

'प्रेम का उदय' ऐसे लोगो की कहानी है जिन्हे जरायमपेशा कहा जाता है । इनमें भी पुलिस-अफ़सरों के मुकाबलो मे इन्सानियत किस हद तक जिंदा है, प्रेमचंद भोदू और उसकी पत्नी बंटी के झगडे और उनके प्रेम की कथा कहकर बतलाते हैं । भोंदू दूसरे कंजडों की तरह चोरी नहीं करता, इसलिए बटी उससे नाराज रहती है । गहनो और कपडों के लिए उसका शौक पूरा नही होता । भोदू बहुत ही पराक्रमी आदमी है, लेकिन बटी के सामने भीगी बिल्ली बना रहता है । उसका एकमात्र दु:ख का साथी उसका गधा है ।

"सूर्यास्त हो रहा था । उसने देखा, उसका गधा चरकर चुपचाप सिर झुकाए चला आ रहा है । भोंदू ने कभी उसकी खाने-पीने की चिंता न की थी; क्योंकि गधा कभी किसी और को अपना स्वामी बनाने की धमकी न दे सकता था । भोदू ने बाहर आकर आज गधे को पुचकारा, उसकी पीठ सहलाई और तुरत उसे पानी पिलाने के लिए डोल और रस्सी लेकर चल दिया ।"

भोंदू ने उसी रात चोरी की । बटी को सब मनचाहा सामान मिल गया, लेकिन जब रात को देवी को बलि चढ़ाने के लिए वह बकरा चुराने गया तो पकड लिया गया । थाने में उसे बुरी तरह पीटा गया, लेकिन वह इसे कजडों का धर्म समझता है कि चोरी कभी न कबूले । बटी को खबर लगती है तो वह थाने पहुँचती है । जब भोंदू के सामने मिर्चों की धूनी सुलगा दी गई, तब बटी ने चोरी कबूल की । भोदू ने हताश होकर पत्थर से माथा फोड़ लिया । बंटी लौटकर बची हुई फुलौरियाँ और शराब ख़त्म करती है । भोदू का इंतजार करती रहती है, लेकिन भोदू नही आता, उसका गधा आता दिखाई देता है ।

"बंटी आज उस अभागे-से गधे को देखकर ऐसी प्रसन्न हुई, मानो अपना भाई नैहर से बतासों की पोटली लिए थका-माँदा चला आता हो । उसने जाकर उसकी गर्दन सहलाई और उसके थूथन को अपने मुँह से लगा लिया ।"

आखिर भोंदू वापस आता है और बंटी सतुष्ट होकर उसके साथ रहने लगती है ।

'सवा सेर गेहूँ' में उन्होंने कर्ज़ की वजह से गुलामी करनेवाले शकर की करुण कथा लिखी है । वह एक बार सवा सेर गेहूँ उधार लेता है और उसे पटाते-पटाते बीस साल लग जाते हैं, फिर भी वह गुलामी करता हुआ मरता है । कहानी के अंत में प्रेमचंद कहते हैं—"पाठक ! इस वृत्तांत को कपोल-कल्पित न समझिए । यह सत्य घटना है । ऐसे शंकरों और ऐसे विप्रों से दुनिया ख़ाली नहीं है ।"

अपनी कई कहानियों में से उन्होंने कर्ज के विचित्र तरीकों, सूद लेने की अनोखी तरकीबों का चित्रण किया है । 'मुक्ति-धन' उनकी ऐसी ही एक कहानी है । वह

सामाजिक अन्याय के सभी रूपों को चित्रित करते हैं । महाजनों का अन्याय ऐसा था, जिसे समाज में बहुत-से लोग न्याय समझते थे । इसीलिए उस पर प्रेमचंद ने बड़ी चुभती हुई कहानियाँ लिखी हैं ।

'समरयात्रा' और उस तरह की दूसरी कहानियों में उन्होंने अंग्रेजी राज से लडनेवाली जनता का उत्साह और त्याग दिखलाया है । एक अंधा लड़का खंजरी बजा-बजाकर गाता है—दतन की देखिए तकदीर कब पलटती है । वह भी राष्ट्रीय आदोलन के लिए चदा देता है । चट्टियाँ और स्लीपर बेचनेवाला मैकू आज़ादी की लडाई को अपनी लड़ाई समझता है । कहता है—"बडे आदमी क्यो जलूस में आने लगे, उन्हे इस राज में कौन आराम नहीं है । मर तो हम लोग रहे हैं, जिन्हें रोटियो का ठिकाना नही । इस बखत कोई टेनिस खेलता होगा, कोई चाय पीता होगा, कोई ग्रामोफोन लिए गाना सुनता होगा, कोई पारिक की सैर करता होगा, यहाँ आएँ पुलिस के कोडे खाने के लिए, तुमने भी खूब कही ।"

प्रेमचद की अनेक कहानियों का सबध पारिवारिक समस्याओं से है । 'अलग्योझा' कहानी मे घर का बँटवारा होने से कितना नुकसान होता है, इसका परिचय दिया गया है । प्रेमचद सयुक्त परिवार के हामी थे, लेकिन आर्थिक कठिनाइयो से सयुक्त परिवार टूट रहा था । समझौतो से थोडे ही दिनों तक गाडी चल सकती थी । 'दो भाई' और 'वैर का अत' कहानियाँ भाइयो के आपसी झगडो का दुष्परिणाम दिखलाती हैं । 'गृह-दाह' में लड़के को विमाता की वजह से परदेस कमाने जाना पडता है और सारे परिवार को गृह-कलह की वजह से हानि उठानी पडती है । 'घर-जमाई' का हरिधन विमाताओ से इतना डरता है कि ससुराल ही मे रहने का निश्चय करता है । जब वहाँ उसका अपमान होने लगता है, तब झख मारकर विमाता के पास आता है और मिलकर परिवार चलाता है । इस तरह की कहानियो मे प्रेमचद हिंदुस्तानी परिवार के पुराने ढाँचे को आज की परिस्थितियो मे टूटता हुआ दिखलाते हैं । अक्सर वह दिखलाते हैं कि हृदय की भावनाएँ बदलने से परिवार की समस्या हल हो गई । लेकिन पारिवारिक झगड़ो का मूल कारण है आर्थिक—जमीन की कमी, लगान का बढ़ना, कर्ज का बोझ, स्त्रियों को काम न मिलना, मर्दों की बेकारी, एक का कमाना और दस को खिलाना—और जब तक लोगो की ये आर्थिक कठिनाइयाँ दूर नहीं होती तब तक उनका पारिवारिक जीवन भी सुखी नही हो सकता ।

प्रेमचंद के युग मे सदियो से चला आता हुआ संयुक्त परिवार टूट रहा था । अब एक नई तरह का परिवार ही बन सकता था, जिसमें सभी मेहनत करनेवाले हों और सभी का दर्जा बराबरी का हो । अंग्रेजी राज के शोषण-चक्र में पुराना ढाँचा तो टूट रहा था, लेकिन नया ढाँचा न बन पा रहा था जिसमें सभी को काम मिले और सभी समानता और सुख के साथ पारिवारिक जीवन बिता सकें । फिर भी कुछ कहानियों मे प्रेमचद ने यह दिखलाया है कि बहुत-सी समाज-सुधार की समस्याओं का

समाधान काम करने की सुविधा मिलने से प्राप्त हो सकता है ।

'सुभागी' कहानी की विधवा पिता के घर जाकर रहती है, लेकिन वहाँ उसके भाई-भौजाइयों से उसकी नहीं पटती । पिता के साथ वह खेती के काम मे हाथ बँटाती है और उसका कर्ज़ भी चुका देती है । उसे कमाते देखकर कुछ लोग उससे विवाह करने की इच्छा प्रकट करते हैं और अत में वह विवाह कर भी लेती है । इस तरह विधवा-विवाह की समस्या का समाधान बहुत कम कहानियों मे मिलेगा ।

विधवाओं के प्रति उनकी गहरी सहानुभूति है । उनके प्रति समाज का अन्याय उन्हें असहनीय मालूम पड़ता है । वह उनके सात खून माफ़ करने के लिए भी तैयार रहते हैं । 'बालक' कहानी की विधवा गोमती तीन-चार बार ब्याही जाने पर भी पति को छोड़कर भाग जाती है । विधवाश्रम से निकाली जाकर वह एक कोठरी लेकर रहने लगती है, जहाँ से गंगा ब्राह्मण उसका उद्धार करते हैं । फिर वह गगू को भी छोड़कर भाग जाती है । अस्पताल मे उसके बच्चा होता है और गंगू उसे बच्चे-सहित अपने घर ले आते हैं ।

दूसरे कहानीकारो की अपेक्षा प्रेमचंद की कहानियों मे कर्कशा स्त्रियो की संख्या बहुत कम है । इसका कारण यह है कि वह स्त्री की पराधीनता समझते थे और उससे उन्हें सच्ची सहानुभूति थी ।

'मृतक भोज'-जैसी कहानियों मे प्रेमचद ने समाज में प्रचलित कुरीतियो की धज्जियाँ उड़ाई हैं और दिखलाया है कि इनसे साधारण लोगों को कितना नुकसान होता है । साथ ही धार्मिक अधविश्वासों से पंडे-पुरोहित किस तरह लाभ उठाते हैं, यह भी वह अच्छी तरह स्पष्ट कर देते हैं ।

प्रेमचंद अपनी कहानियों में एक महान् शिक्षक के रूप मे नजर आते हैं । पारिवारिक समस्याओं से लेकर राजनीतिक आंदोलन तक—वह सभी क्षेत्रो से कहानी के लिए विषय-वस्तु लेते हैं । उनकी कहानियों का संबध उन समस्याओ से है, जिनका सामना आए दिन लोगो को अपने जीवन में करना पड़ता है ।

अच्छी कहानी लिखने के लिए विषय-वस्तु का महत्त्वपूर्ण होना जरूरी है । लेखक को जीवन की गहरी जानकारी होनी चाहिए । प्रेमचंद में ये सब बाते थी । इसलिए वे ऐसी कहानियाँ लिख सके जिनमें जनता ने अपने जीवन की झलक देखी । समाज की पीड़ित विधवाएँ, सौतेली माताओं से परेशान बालक, महंतो और पुरोहितों से ठगे जानेवाले किसान, दूसरो की गुलामी करके भी पेट न भर पानेवाले अछूत, महाजन का सूद भरते-भरते जिंदगी गारत करनेवाले किसान, ये और इस तरह के सभी लोग कहानीकार प्रेमचद में एक अच्छा दोस्त और सलाहकार पाते हैं । समाज के अन्यायी और अत्याचारी, निठल्ले और मुफ्तखोर, अंग्रेज़ी राज के वफ़ादार मददगार प्रेमचद मे अपनी वह असली सूरत देख सकते हैं जो जनता का पक्ष लेनेवाले एक सजग साहित्यकार को दिखाई देती थी ।

उनकी कहानियाँ कहीं हास्य-प्रधान हैं जैसे मोटेराम, जिनमें प्रेमचद को बच्चो

की तरह मोटी और बेढगी चीज देखकर हँसी आती है, कही कहानियो मे हास्य के साथ करुणा मिली हुई है, जैसे 'पूस की रात' की ठंडी हवा में बिना कंबल के रात काटनेवाले किसान और उसके कुत्ते की बातचीत, कही हास्य समाज-व्यवस्था पर क्रोध पैदा करनेवाला है, जैसे 'कफन' के किसानो की बातचीत, जो पाठक को बार-बार सोचने के लिए बाध्य करती है, समाज मे कौन-से लोग इन्हे इस तरह की जिंदगी बिताने पर मजबूर करते हैं । कही उनकी कहानियाँ जनता की शोचनीय दशा दिखाकर पाठक के हृदय को द्रवित कर देती हैं, कही वे जनता की शूरता का प्रदर्शन करके उसके मन को उत्साहित करती हैं ।

उनकी कहानियो मे एक महान् रचनाकार की प्रचुरता और विविधता है । सबसे बडी बात यह है कि वह अपनी बात को—किसी कथानक को—दोहराते नही । प्रेमचद हिंदुस्तान के उन थोडे-से कलाकारो मे हैं जो हिंदू और मुसलमान—दोनो पर समान अधिकार से लिख सकते हैं । वह बच्चो, बूढ़ो, विधवाओ, पढ़ी-लिखी स्त्रियो और अपढ किसान स्त्रियो का समान सफलता से चित्रण कर सके हैं । उनकी सबसे सफल कहानियाँ वे हैं जिनमे उन्होंने किसानो के जीवन का चित्रण किया है । किसानो मे भी अर्धविश्वास है, राग-द्वेष है, एक-दूसरे के खेत तक जला देते हैं, फिर भी इनमे मनुष्यता का प्रकाश कितना प्रखर है । प्रेमचद इस जनता मे विश्वास करना और उसके लिए अपना जीवन बिताना हमे सिखाते हैं ।

उनका कहानी-साहित्य हमारे जातीय जीवन का दर्पण है । हिंदी-भाषी जनता के उत्कृष्ट गण उनके पात्रो मे झलकते है । उनके अधिकाश पात्र हास्य-प्रेमी, जिंदादिल, कठिन परिस्थितियो का धीरज से मुकाबला करनेवाले, अन्याय के सामने सिर न झुकानेवाले होते हैं । प्रेमचद ने ये सब बाते जनता मे देखी थी, इसलिए कहानियो मे उन्हे चित्रित कर सके थे ।

उनकी शैली की चित्रमयता, भाषा पर असाधारण अधिकार, चरित्र-चित्रण का कौशल और हर जगह व्यग्य और हास्य ढूँढ लेने की क्षमता उन्हे एक प्रभावशाली कलाकार बनाती है । उनकी सहृदयता और मानव-प्रेम उन्हे जनता का प्रिय कलाकार बनाते हैं ।

9. संपादक, विचारक और समालोचक

प्रेमचद स्वय साहित्य-स्रष्टा तो थे ही, वह दूसरो मे साहित्य-रचना की प्रेरणा पैदा करनेवाले और नए लेखको को प्रोत्साहित करनेवाले साहित्यकार भी थे । वह भारतेदु, बालमुकुद गुप्त और महावीर प्रसाद द्विवेदी की शानदार परपरा मे उत्पन्न हुए थे और उन्होने इस परपरा को उन्नत किया था । 'माधुरी' और आगे चलकर विशष रूप से 'हस' के जरिए उन्होने हिंदी-साहित्य की शक्तियो को बटोरने का भगीरथ प्रयत्न किया था । उनके पत्र मे एक ओर निराला जी के छायावादी गीत प्रकाशित होते थे तो दूसरी ओर उनकी अपनी यथार्थवादी कहानियाँ भी छपती थी । लेकिन प्रेमचद तटस्थ सपादक नही थे । वह राष्ट्रीयता और जनतत्र की भावनाओ का विरोध करनेवाली रचनाओ को खुद छापना तो दूर, दूसरी जगह भी वे छपे, तो उनकी आलोचना करना न भूलते थे ।

'हस' के 'द्विवेदी-अभिनदनाक' मे सपादकीय कलम से जो शब्द द्विवदी जी के लिए लिखे गए हैं, वे कुछ घट-बढ़कर प्रेमचद पर भी लागू होते हैं ।

''स्वभाव से अत्यत दृढ-प्रतिज्ञ और हृदय से परम कोमल, ये हमारे अपने हैं, इस बात को हिंदी-जगत् उसी दिन मान गया था, जब ये 'सरस्वती' मे थे । उन दिनो ये हम सबको पिता की तरह शासित किया करते थे और माता की तरह प्यार ! ये हमारी गलतियो पर फटकारते थे, उन्हे प्रेमपूर्वक सुधार देते और हमारी सफलता पर हमे प्रेम के मोदक भी खिलाते थे । इन्होंने ठोक-ठोककर हमे सुधारा, पुचकार-पुचकारकर ठीक रास्ते पर चढ़ाया और उत्साह दे-देकर आगे बढ़ाया ।''

प्रेमचद के ये वाक्य अप्रैल सन् '33 मे प्रकाशित हुए थे, जब वह स्वय हिंदी मे चोटी के साहित्यकार माने जाते थे । दूसरो का सम्मान करने मे उनकी स्वाभाविक उदारता देखते ही बनती है ।

प्रेमचद की फटकार का नमूना देखिए । कथाकार सुदर्शन से कह रहे थे—''मैं तो समझता था आप फारग-उल-वाल होकर अदब की ज्यादा खिदमत कर सकेगे, मगर मेरा खयाल गलत निकला । अब महीनो गुजर जाते हैं और आपका कोई किस्सा किसी अखबार मे नजर नही आता । चार नही दो सही, दो नही एक सही लेकिन कुछ-न-कुछ तो हर महीने लिखते रहिए । इससे तो वह तगदस्ती ही अच्छी

थी जो आपसे कुछ-न-कुछ लिखवा लेती थी ।"

यह बात सन् '27 की है जब प्रेमचंद 'हंस' के संपादक न थे । उनके लिए यह ज़रूरी न था कि संपादक बनने पर ही किसी को फटकारें या उत्साहित करें । वह एक युग-निर्माता साहित्यकार थे और अपने कर्तव्य को अच्छी तरह पहचानते थे । वह ऐसे अहवादी नहीं थे कि समझते कि उन्हीं के लिखते रहने से हिंदी-साहित्य का उद्धार हो जाएगा । इसलिए किसी अच्छे लेखक को चुप्पी साधते देखकर वह बिगड उठते थे ।

उनके प्रोत्साहित करने की एक मिसाल श्री वीरेश्वर सिंह को लिखे हुए ख़त में है । दो महीने से प्रेमचंद खाट पर पड़े हुए थे । पेचिश की तकलीफ़ थी; लीवर भी खराब था । फिर भी लिखते हैं—"आज 'भारत' से तुम्हारा लेख पढ़वाकर सुना । बडी तकलीफ में था, लेकिन फिर भी कुछ आराम ही मिला । बड़ा अच्छा लेख है ।"

ऐसी बीमारी में 'हंस' के एक लेखक की रचना को—जो दूसरे पत्र में छपी थी—पढ़वाकर सुनना और उसकी दाद देना प्रेमचंद का ही काम था ।

प्रसाद जी का 'कंकाल' प्रकाशित होने पर प्रेमचंद ने उसकी प्रशंसा छापी थी और उनके असर से प्रसाद जी ने 'तितली' में एक नए ढंग की कथा रचने की कोशिश की थी ।

प्रेमचंद आमतौर से कटु शब्दावली का प्रयोग न करते थे । उनके विरुद्ध कई लेखकों ने गंदे लेख लिखे, इससे वह क्षुब्ध नहीं हुए । लेकिन जब वह किसी दूसरे लेखक पर कीचड उछाला जाता देखते थे, तब ज़रा भी मुलाहिज़ा न करके सीधा वार करते थे । 'सरस्वती' में पं. बनारसीदास जी चतुर्वेदी के संबंध में एक गंदा लेख निकला, तब 'हंस' में 'साहित्यिक गुंडापन' नाम से टिप्पणी देकर उन्होंने उसकी तीव्र आलोचना की ।

इस टिप्पणी के अंत में प्रेमचंद ने लिखा था—"श्रीनाथसिंह मुझसे मिल चुके हैं और कितने ही मनुष्यों के बारे में ऐसी बातें कर चुके हैं कि यदि मैं लिखूँ तो वह प्रयाग में बहुत हल्के हो जाएँगे; लेकिन ऐसी बातें करना जितनी बड़ी नीचता है, उसका ज़िक्र करना, उससे भी बडी नीचता है । इस तरह के प्रोपेगण्डे से श्रीनाथसिंहजी न साहित्य का उपकार कर रहे हैं, न 'सरस्वती' का, न अपना; वरन् संसार के सामने हिन्दी के सम्पादकों की भद्द करा रहे हैं, उन्हें कलंकित कर रहे हैं । आपकी यह कृति देखकर इसके सिवा और क्या होगा कि दुनिया कहेगी—जब 'सरस्वती'-जैसी प्रतिष्ठित पत्रिका का सम्पादक ऐसा लफ़ंगापन कर सकता है, तो फिर शायद यह आवा ही बिगडा हुआ है ।"

प्रेमचंद ने यहाँ सख्ती से काम लिया है, यह समझते हुए कि यह मर्ज़ मामूली दवा से भागनेवाला नहीं है । वह हिंदी-साहित्य और हिंदी-साहित्यकारों की प्रतिष्ठा की रक्षा करनेवाले पत्रकार थे । इसलिए उनकी कटु शब्दावली उन्हें

शोभा देती थी ।

प्रेमचंद पर यह आरोप लगाया गया था कि वह घृणा का प्रचार करते हैं । प्रेमचंद ने दिसबर 1933 के 'हस' मे 'जीवन मे घृणा का स्थान' नाम से इस विषय पर महत्त्वपूर्ण टिप्पणी लिखी थी । वह जीवन में घृणा के अस्तित्व को मानते थे । उनका मानवतावाद इतना व्यापक न था कि उसमे अन्यायी, अत्याचारी सभी घुल-मिलकर शुद्ध मानव बन जाएँ । उन्होंने इस टिप्पणी के शुरू मे लिखा था—"निंदा, क्रोध और घृणा ये सभी दुर्गुण हैं; लेकिन मानव-जीवन मे से अगर इन दुर्गुणों को निकाल दीजिए, तो ससार नरक हो जाएगा ।"

पेमचद के अनुसार घृणा के बिना बुराइयो से छुटकारा नही मिल सकता—"पाखड, धूर्तता, अन्याय, बलात्कार और ऐसी ही अन्य दुष्प्रवृत्तियो के प्रति हमारे अंदर जितनी ही प्रचंड घृणा हो, उतनी ही कल्याणकारी होगी ।"

प्रेमचंद की रचनाओं को समझने के लिए ये शब्द सूत्र की तरह उपयोगी हैं । उनका साहित्य पाखंड, धूर्तता, अन्याय और बलात्कार से घृणा करना सिखलाता है । यह साहित्य जीवन में तटस्थ नही है । वह धूर्तता, अन्याय और बलात्कार देखकर किसी शाश्वत सत्य के आँचल में मुँह नही छिपा लेता । वह पाठक से ललकारकर कहता है, आओ, इस अन्याय और अत्याचार से घृणा करो । इसे दुनिया से मिटा दो ।

पाखंड, धूर्तता, अन्याय आदि देशकाल से परे अदृश्य और अस्पृश्य वृत्तियाँ नहीं हैं । उनका सामयिक जीवन से घनिष्ठ सबंध है । प्रेमचद का साहित्य मनुष्य को सुसस्कृत बनाता है, लेकिन ज़माने से ऊपर उठकर नही । वह किसी विशेष धूर्तता, किसी विशेष अन्याय के विरुद्ध आवाज उठानेवाला साहित्य है; किसी निर्विशेष अन्याय, किसी चिरतन धूर्तता से काल्पनिक युद्ध करनेवाला साहित्य नही है । प्रेमचद मानव-आत्मा के शिल्पी हैं, इसलिए कि वह आत्मा अखड, अछेद्य और अनादि न होकर किन्हीं देशकाल की परिस्थितियो में दुख-सुख पाती है ।

जनता की तरफ़दारी करनेवाला लेखक सबका भला बनकर नहीं रह सकता । जब वह देशकाल की सीमाओं में बँधे हुए किन्ही ख़ास लोगों के अन्याय और पाखड का पर्दाफ़ाश करता है, तब यह स्वाभाविक हो जाता है कि उसकी चोट खाकर तिलमिला उठनेवाले लोग उसके ख़िलाफ़ जिहाद बोल दे । इस सिलसिले मे प्रेमचंद का अनुभव यह था—

"कई पंक्तियों के लेखक ही के विषय में एक कृपालु आलोचक ने आक्षेप किया है कि उसने अपनी रचनाओं में ब्राह्मणों के प्रति घृणा का प्रचार किया है ।"

ब्राह्मणत्व की आड़ में होनेवाले पाखंडाचरण की निंदा करते हुए प्रेमचद ने आगे लिखा है—"हरेक टकापंथी पुजारी को ब्राह्मण कहकर मैं इस पद का अपमान नहीं कर सकता । इस विकृत धर्मोपजीवी आचरण के हाथों हमारा सामाजिक अहित ही नहीं, कितना राष्ट्रीय अहित हो रहा है, यह वर्णाश्रम-स्वराज्य

सघ के हथकडो से जाहिर है । ऐसी असामाजिक, अराष्ट्रीय, अमानुषीय भावनाओ के प्रति जितनी भी घृणा फैलायी जाए, वह थोडी है; केवल भावनाओ के प्रति, व्यक्ति के प्रति नही क्योंकि वर्णाश्रम धर्म के सचालक हमारे वैसे ही भाई हैं जैसे आलोचक महोदय के ।''

प्रेमचद का मानववाद मनुष्य की तरफदारी करनेवाला मानववाद है । वह अमानुषीय भावनाओ को देखकर चुप नही रहता । प्रेमचद खुल्लमखुल्ला अपना उद्देश्य घोषित करते हैं कि ऐसी भावनाओ के प्रति जितनी भी घृणा फैलाई जाए, वह थोडी है । वह सोद्देश्य साहित्य के समर्थक हैं । 'कला कला के लिए' या निरुद्देश्य साहित्य से उनका वैर है । वह भावनाओ और व्यक्ति मे भेद करते हैं, लेकिन स्वय उनके उपन्यास अन्याय ही नही, अन्यायी के प्रति भी घृणा करना सिखाते हैं । ज्ञानशकर के चरित्र से कौन-सा पाठक क्रोध से विचलित नहीं हो उठता ? ज्ञानशकर को अलग रखकर उसका क्रोध कब सूक्ष्म भावनाओ पर केंद्रित होता है ? विचार-क्षेत्र मे प्रेमचद अन्याय और अन्यायी मे भेद करते हैं; इस तरह का भेद अस्वाभाविक है और जन-साधारण की प्रकृति के विरुद्ध है । असल मे अपने उपन्यासो मे वह अन्यायी और अत्याचारी से घृणा करना सिखाते हैं, जो उचित ही है ।

प्रेमचद सोद्देश्य साहित्य के हामी थे लेकिन हर तरह के उद्देश्य के नही । जैसा कि उन्होने सन् '30 मे 'विशाल भारत' मे घोषित किया था—''मेरी अभिलाषाएँ बहुत सीमित है । इस समय सबसे बडी अभिलाषा यही है कि हम अपने स्वतत्रता-सग्राम मे सफल हो । मैं दौलत और शोहरत का इच्छुक नही हूँ । खाने को मिल जाता है । मोटर और बँगले की मुझे हविस नही है । हाँ, यह जरूर चाहता हूँ कि दो-चार उच्च कोटि की रचनाएँ छोड जाऊँ, लेकिन उनका उद्देश्य भी स्वतत्रता-प्राप्ति ही हो ।'' (हसराज रहबर द्वारा 'प्रेमचद जीवन और कृतित्व' मे उद्धृत) ।

प्रेमचद ने अपने साहित्य का उद्देश्य घोषित किया था—स्वतत्रता-प्राप्ति । वह स्वाधीनता-सग्राम के सैनिक-साहित्यकार थे । अगर वह सोचते कि स्वाधीनता प्राप्ति तो क्षणिक ध्येय है, जब आजादी मिल जाएगी तब मेरी किताबो को कौन पूछेगा, यह उद्देश्य मुझे प्रगतिशील तो बनाएगा लेकिन यह प्रगतिशीलता किसी खास जमाने मे बँधकर रह जाएगी, इसलिए मुझे साहित्य का ऐसा उद्देश्य ढूँढ निकालना चाहिए जो व्यास और वाल्मीकि के लिए भी सच रहा हो और मेरे लिए भी सच हो, इसलिए मुझे ऐसा साहित्य रचना चाहिए जिससे अंग्रेज भी खुश रहे, पडे-पुजारी, जमीदार और महत भी खुश रहे—प्रेमचंद अगर इस तरह सोचते तो वह स्वाधीनता-सग्राम के सैनिक-साहित्यकार न बन पाते, वह हिंदुस्तानी जनता की जिंदगी मे नई हरकत न पैदा कर पाते, वह हमेशा के लिए जनता के हृदय मे अपना अपूर्व स्थान न बना पाते । उनका उद्देश्य सामयिकता, देशकाल की

विशेषता से परे न था, उनका साहित्य सामयिकता की सतह को छूनेवाला साहित्य नहीं था, उसमे गहराई मे डूबनेवाला, देशकाल की विशेषताओ के परस्पर संबंध को चित्रित करनेवाला साहित्य था । इसीलिए वह इतना सशक्त और प्रभावशाली है ।

प्रेमचद इस बात के कायल नही थे कि मनुष्य जो कुछ भी अनुभव करे, उस पर लिखे । साहित्य मे अनुभूति की दुहाई देना दूसरे शब्दो मे निरुद्देश्यता की घोषणा करना है । कविता निरुद्देश्य होती है कि सोद्देश्य, इस बात का जवाब देते हुए मई '36 के 'हस' मे प्रेमचद ने लिखा था—"इसलिए यह कहना कि कविता का कुछ उद्देश्य ही नही होता और उसको उपयोगिता के बधन मे बाँधना गलती है, एक सारहीन बात है ।" कवि किसी को क्यो रुलाता है और क्यो हँसाता है, इस बात का जवाब देत हुए उन्होने उसी टिप्पणी मे लिखा था—"उसका उद्देश्य है, हमारी करुण भावनाओ को उत्तेजित करना, हमारी मानवता को जगाना और यही उसकी उपयोगिता है, मगर हम तो कवि की सभी अनुभूतियो के कायल नही । अगर उसने अपनी प्रेयसी के नख-शिख के बखान मे वाणी का चमत्कार दिखाया है, तो हम देखेग कि उसने किन भावो से प्रेरित होकर यह रचना की है । अगर उससे हमारे मनोभावो का परिष्कार होता है, इसमे सौंदर्य की भावना सजग होती है, तो उसकी रचना ठीक, वरना गलत ।"

प्रेमचद के ये विचार नई पीढ़ी का मार्ग-दर्शन करते है । उनका महत्त्व जितना सन् 35 मे था, उससे कही ज्यादा आज है । अपने सामाजिक उत्तरदायित्व से बचने के लिए कई बुद्धिजीवी तरह-तरह के अनगढ तर्क पेश करते हैं । कोई कहता है, सामयिक उद्देश्य से साहित्य को बाँध देना उसकी चिरतन प्रगतिशीलता को खत्म कर देना है । कोई कहता है, साहित्यकार को सच्ची अनुभूति के अनुसार लिखना चाहिए, उद्देश्य की चिता छोड देनी चाहिए । इन सज्जनो के तुमुल कोलाहल मे प्रेमचद की दृढ आवाज सुनाई देती है—"मगर हम तो कवि की सभी अनुभूतियो के कायल नही ।"

प्रेमचद ने सौदर्य की भावना के सजग होने की बात लिखी थी । इस सौंदर्य की उस भावना के नाम पर कुछ दूसरे साहित्यकार अपने सामाजिक उद्देश्य से आँख चुराना चाहते है । लेकिन 'घृणा के प्रचारक प्रेमचद' का सौंदर्य इतना व्यापक नही था कि उसमे उच्च वर्गों का मनोरजन करनेवाला, जनता को बरगलानेवाला काम-साहित्य भी समेट लिया जाए । मई सन् '36 के ही 'हस' मे 'भारतीय साहित्य परिषद्' के नाम की टिप्पणी मे उन्होने लिखा था—"जो लोग दुनिया को अपनी मुट्ठी मे बद किए हुए हैं, उन्हे दिमागी ऐयाशी का अधिकार हो सकता है, पर जहाँ फाका है, नगनता है और पराधीनता है, वहाँ का साहित्य अगर नगी कामुकता और निर्लज्ज रति-वर्णन पर मुग्ध है, तो उसका यही आशय है कि अभी उसका प्रायश्चित पूरा नही हुआ, और शायद दो-चार सदियो तक उसे गुलामी मे और बसर करनी

पड़ेगी ।"

प्रेमचंद जब सौंदर्य की भावना को सजग करने की बात कहते हैं, तब उनका मतलब दिमाग़ी ऐयाशी और रीतिकालीन नायिका-भेद से नहीं होता । वह इस तरह के सौंदर्य-साहित्य की ज़ोरदार भर्त्सना करते हैं । उनका मतलब सौंदर्य की उस भावना से है, जो जन-साधारण के हृदय में है, जिसके सजग होने पर मनुष्य पराधीनता के घिनौनेपन को पहचान लेता है और उसे दूर करने के लिए युद्ध करता है ।

प्रेमचद कथाकार ही नहीं थे, पत्रकार भी थे । भारतेंदु से लेकर प्रेमचंद तक हिंदी-साहित्य की परंपरा में यह बात ध्यान देने की है कि हमारे सभी बड़े साहित्यकार पत्रकार भी थे । पत्रकारिता उनके जीवन का अभिन्न अंग बन गई थी । यह पत्रकारिता एक सजग और लड़ाकू पत्रकारिता थी, जो देश-विदेश के घटना-क्रम में दख़ल देती थी, जनता के जीवन और साहित्यकार के परस्पर संबंध को मजबूत करती थी ।

प्रेमचद अंतर्राष्ट्रीय जगत् की देखभाल रखते थे और अपने देश की ज़रूरतों को ध्यान में रखते हुए उस पर टीका-टिप्पणी करते थे । 'सोवियत रूस में प्रकाशन' नाम की टिप्पणी में उन्होने सन् '27 तक के आँकडे देते हुए लिखा था—"रूस की जनसख्या 12 लाख के लगभग है । इस जनसंख्या के लिए लगभग 8 करोड पुस्तकें प्रकाशित हुईं ।" फिर हिंदुस्तान के लोगों की उदासीनता और उनकी गुलामी का जिक्र करते हुए उन्होने लिखा था—"यहाँ 1930 में अंग्रेजी में 2,332 पुस्तकें, और हिंदुस्तानी भाषाओ मे 14,815 पुस्तके निकलीं । कहाँ 8 करोड़ और कहाँ 15 हजार !" प्रेमचद ने इस स्थिति के लिए गरीबों को दोषी नहीं ठहराया, क्योंकि "यहाँ साहित्य से थोड़ा-बहुत जो प्रेम है वह उन्हीं को है जो अभाव से पीड़ित हैं ।" उन्हे क्रोध आया है सपत्तिशाली लोगों की विरक्ति पर । उनका कहना है—"अगर हममें विरक्ति की यह भावना न होती तो आएदिन हमारे आंदोलनो का बासी कढ़ी के उबाल का-सा हाल न होता ।" दुनिया की गतिविधि देखकर प्रेमचंद इस नतीजे पर पहुँच रहे थे कि जिस आदोलन में संपत्तिशाली वर्गों का नेतृत्व होगा, उसका नतीजा बासी कढ़ी में उबाल के सिवा और कुछ नहीं हो सकता । इसलिए इस टिप्पणी में उन्होंने सोवियत प्रकाशन के आँकड़े देते हुए इन वर्गों की विरक्ति की आलोचना की है । साम्राज्यवादी पराधीनता, अंग्रेज़ी राज्य की हकीकत प्रेमचंद के दिए हुए आँकड़ों से ज़ाहिर हो जाती है—पैंतीस करोड़ हिंदुस्तानियों के लिए सिर्फ 15 हजार किताबें !

प्रेमचद सोवियत साहित्य के प्रकाशन-सबंधी आँकड़ों ही से प्रभावित न थे; वह रूसी साहित्य का आदर करनेवाले प्रमुख भारतीय साहित्यकार थे । यह ध्यान देने की बात है कि उन्होंने हत्या और बलात्कार के साहित्य की निंदा करते हुए रूसी साहित्य को उससे श्रेष्ठ ठहराया था । 'रूसी साहित्य और हिंदी' नाम की टिप्पणी

मे उन्होने लिखा था—"एक समय था कि हिंदी में रेनाल्ड के उपन्यासों की धूम थी । हिंदी और उर्दू दोनो ही रेनाल्ड की पुस्तको का अनुवाद करके अपने को धन्य समझ रही थीं । डिकेस, थैकरे, लैंब, रस्किन आदि को किसी ने पूछा तक नही; पर अब जनता की रुचि बदल गई, और यद्यपि अब भी ऐसे लोगों की कमी नही है, जो चोरी, जिना और डाके आदि के वृत्तातो में आनद पाते हैं; लेकिन साहित्य की रुचि मे कुछ परिष्कार अवश्य हुआ है, और रूसी साहित्य से कुछ लोगो को रुचि हो गई है ।"

प्रेमचंद ने यहाँ साफ-साफ शब्दो मे पश्चिम के पतित पूँजीवादी साहित्य की निंदा की है । उन्होने डिकेस आदि जनवादी साहित्यकारो को रेनाल्ड्स की परपरा से अलग करके दिखलाया है । वह डाके और ज़िनाकारी के साहित्य की निंदा करनेवालो मे थे । लेकिन उनकी मृत्यु को सोलह साल भी नही बीते, डाके और जिनाकारी का साहित्य रगीन कवरवाली किताबों मे छपकर एक बड़ी तादाद में हिंदुस्तान आने लगा है । यही नही, कुछ कलाकार जब तक जिनाकारी का वर्णन न कर ले, तब तक उनकी दशा "रस विशेष जाना तिन्ह नाही" की-सी रहती है । इस तरह का साहित्य प्रेमचद की परपरा पर पानी फेरता है और जनता को बरगलाकर गुलामी मे दिन बसर करना सिखलाता है । इस साहित्य के विरुद्ध प्रेमचद ने रूसी साहित्य का अभिनदन किया था ।

अपनी टिप्पणी के अत मे प्रेमचद ने लिखा था—"जिन लेखको ने रूस को उस मार्ग पर लगाया, जिस पर चलकर आज वह दुखी ससार के लिए आदर्श बना हुआ है, उनकी रचनाएँ क्यो न आदर पाएँ ?"

अमरीकी जनतत्र की असलियत प्रेमचद की 'अमेरिका में कृषक-विद्रोह' नाम की टिप्पणी मे जाहिर हो गई है । आर्थिक सकट से किसानो की तबाही का ज़िक्र करते हुए उन्होने लिखा था—"बरसो तक बेचारे अमेरिकन किसान गवर्नमेट से सहायता की आशा करते रहे । गवर्नमेट ने उनके उद्धार का प्रयत्न किया; पर ये सभी प्रयत्न असफल हो गए । अब मजबूर होकर उन्होंने अपने उपायों से काम लेना शुरू किया है, और ये उपाय ज्यादा सफल हो रहे हैं । उन्होने गुट बाँधकर कई शहरो की सडको की नाकाबदी कर दी और देहातो से जो सामान नगर मे आता था उसे रोक दिया । जहाँ जरूरत पडी, वहाँ पशु-बल से भी काम लिया । इसमे उन्हे पूरी सफलता तो नही मिली, पर वे बिलकुल असफल भी न रहे ।"

जहाँ पर मदी की वजह से किसान भूखे मरते हो, वहाँ की शासन-व्यवस्था को प्रेमचंद जनवादी कैसे मान लेते ? इसीलिए वह रूस और अमेरिका के बीच तटस्थ नही थे बल्कि तथ्य देकर दोनो की सस्कृति पर प्रकाश डालते थे ।

और न प्रेमचद अपने जमाने के खूनी फासिस्टवाद-हिटलरवाद के बारे मे तटस्थ थे । हिटलर द्वारा नाजी नेताओ की हत्या पर 'हिटलर की तानाशाही' नाम की टिप्पणी लिखते हुए प्रेमचद ने हिटलर का सही हुलिया भी बयान कर दिया

था—"हिटलर ने जर्मनी के पूँजीपतियो के हाथ की कठपुतली बनकर कुछ समय पूर्व यहूदियो पर जो अत्याचार किया था, उसी से उसकी ख्याति ससार मे हो गई और अब इस क्रूर कर्म ने तो विद्युत-प्रकाश डालकर उसके हृदय का रगरेशा तक साफ-साफ दिखला दिया है ।" प्रेमचद उन देशभक्तो मे नही थे जो हिटलर को साम्राज्य-विरोधी समझते थे या उसे हिंदुस्तान-जैसे गुलाम देशो का उद्धारक मानते थे । हिटलर पूँजीपतियो के हाथ की कठपुतली था—प्रेमचद ने उसके बारे मे यह अपना स्पष्ट मत दे दिया था ।

न प्रेमचद उन देशभक्तो में थे जिन्होने जापान से आशाएँ रखी थी । 'आतकवाद का उन्मूलन' नाम की टिप्पणी मे उन्होने लिखा था—"आज भारतवर्ष के द्वारा समस्त यूरोप अपने-अपने खजाने भर रहा है, जापान अपनी जेबे गरम कर रहा है । सभी मालामाल हो रहे हैं, और भारतीय बच्चे भूखे तडप रहे हैं ।" प्रेमचद विश्व-शाति के सजग प्रहरी थे । वह युद्ध के लिए अग्रसर होनेवाली ताकतो—जापान और जर्मनी—को पहचान गए थे । वह अमरीकी जनतत्र की असलियत से बेखबर नही थे और साम्राज्यवाद और सोवियत रूस के बीच म तटस्थ नही थे । ब्रिटिश साम्राज्यवाद के खिलाफ जनता को एकत्र करनेवाले वह एक कर्मठ साहित्यकार थे ।

सितबर 1936 के 'हस' मे—अपने जीवन-काल मे निकलनेवाले 'हस' के आखिरी अक मे—प्रेमचद का 'महाजनी सभ्यता' नाम का लेख छपा है । यह लेख प्रेमचद की प्रखर होती हुई क्रातिकारी चेतना का सबूत है । इसमे उन्होने तमाम दुनिया के मनुष्य-समाज को दो हिस्सो से बँटा हुआ दिखाया है—"बडा हिस्सा तो मरने और खपनेवालो का है, और बहुत ही छोटा हिस्सा उन लोगो का, जो अपनी शक्ति और प्रभाव से बडे समुदाय को अपने बस मे किए हुए हैं । उन्हे इस बडे भाग के साथ किसी तरह की हमदर्दी नही, जरा भी रू-रियायत नही । उसका अस्तित्व केवल इसलिए है कि अपने मालिको के लिए पसीना बहाए, खून गिराए और एक दिन चुपचाप इस दुनिया से विदा हो जाए ।"

महाजनी सभ्यता मे मनुष्यता को व्यापार और मुनाफे की वेदी पर किस तरह कुर्बान किया जाता है, इसकी मार्मिक व्याख्या करने के बाद प्रेमचद ने पूँजीवाद को खत्म करनेवाली सोवियत रूस की नई सभ्यता के बारे मे लिखा था—"परतु अब एक सभ्यता का सूर्य सुदूर पश्चिम से उदय हो रहा है, जिसने इस नारकीय महाजनवाद या पूँजीवाद की जड खोदकर फेक दी है ।" इस नई सभ्यता के खिलाफ दुनिया के महाजन किस तरह झूठा प्रचार कर रहे थे, प्रेमचद उससे बेखबर न थे, उन्होने इस झूठ का पर्दाफाश करना अपना कर्तव्य समझा । साम्राज्यवादी युद्धो की जड झूठ है । झूठे प्रचार के बिना लोगों को बरगलाकर युद्ध की भट्ठी में नही झोका जा सकता । प्रेमचद ने सोवियत-विरोधी झूठे प्रचार का पर्दाफाश करके एक सच्चे शाति-प्रचारक का काम किया । उन्होने खासकर इसी मसले को लिया कि सोवियत रूस मे आजादी है या नही । उन्होने नई सभ्यता के मूल सिद्धात का

उल्लेख करते हुए कहा—"जिसका मूल सिद्धात यह है कि प्रत्येक व्यक्ति, जो अपने शरीर या दिमाग से मेहनत करके कुछ पैदा कर सकता है, राज्य और समाज का परम सम्मानित सदस्य हो सकता है, और जो केवल दूसरो की मेहनत या बाप-दादो के जोडे हुए धन पर रईस बना फिरता है, वह पतिततम प्राणी है । उसे राज्य-प्रबध मे राय देने का हक नही और वह नागरिकता के अधिकारो का भी पात्र नही । महाजन इस नई लहर से अति उद्विग्न होकर बौखलाया हुआ फिर रहा है और सारी दुनिया के महाजनो की शामिल आवाज इस नई सभ्यता को कोस रही है, इसे शाप दे रही है । व्यक्ति-स्वातत्र्य, धर्म-विश्वास की स्वाधीनता और अतरात्मा के आदेश पर चलने की आजादी, वह इन सबकी घातक, गला घोट देनेवाली बताई जा रही है । उस पर नए-नए लाछन लगाए जा रहे है नई-नई हरमते तराशी जा रही हैं । वह काल-से-काले रग मे रँगी जा रही है, कल्पित-से-कल्पित रूप मे चित्रित की जा रही है । उन सभी साधनो से जो पैसेवालो के लिए सुलभ है, काम लेकर उसके विरुद्ध प्रचार किया जा रहा है, पर सचाई है, जो इस सारे अधकार को चीरकर दुनिया मे अपनी ज्योति का उजाला फैला रही है ।"

कैसे जोरदार शब्दो मे प्रेमचद ने साम्राज्यवादी प्रचार का पदाफाश किया है । कितनी दृढता और विश्वास के साथ सत्य और मनष्य के भविष्य का पक्ष लिया है । इन शब्दो को पढकर कौन कह सकता है कि महीनो के राग से जर्जर शरीरवाले, मृत्यु-शय्या पर पडे हुए प्रेमचद ने उन्हे लिखा होगा ? जिस सचाई ने अधकार को चीरकर दुनिया मे उजाला फैलाया था, उसने प्रेमचद के हृदय मे आशा और उत्साह का ज्वार पैदा कर दिया था । प्रेमचद के एक तरफ मौत और अँधेरा था, तो दूसरी तरफ यह सचाई और प्रकाश । मनष्य के बल और बुद्धि मे, उसके पुरुषार्थ मे उनकी आस्था और दृढ हो गई थी । इसीलिए व्यक्ति-स्वातत्र्य के नाम पर सोवियत रूस पर कीचड उछालनेवालो को उन्होने रगेद मारा था ।

प्रेमचद ने साम्राज्यवादी प्रचारकों को ललकारते हुए लिखा था—"नि:सदेह इस नई सभ्यता ने व्यक्ति-स्वातत्र्य के पजे नाखून और दाँत तोड दिए हैं । उसके राज्य मे अब एक पूँजीपति लाखो मजदूरो का खून पीकर मोटा नही हो सकता । उसे अब यह आजादी नही है कि अपने नफे के लिए साधारण आवश्यकता की वस्तुओ के दाम चढ़ा सके, दूसरे अपने माल की खपत कराने के लिए युद्ध करा दे, गोला-बारूद और युद्ध-सामग्री बनाकर दुर्बल राष्ट्रो का दलन कराए ।"

साम्राज्यवादियो के 'व्यक्ति-स्वातत्र्य' का सबध कितना ज्यादा युद्ध की तैयारियों से होता है, किस तरह उनकी स्वाधीनता चीजो के दाम बढ़ाकर मुनाफा कमाने की आजादी है, उनकी स्वाधीनता दूसरे देशो को गुलाम बनाने की आजादी है—प्रेमचद ने अपने ओजपूर्ण लेख मे इस तथ्य को अच्छी तरह जाहिर कर दिया । उन्होने दिखलाया कि इस लूट-मार की आजादी के बदले सोवियत रूस मे जनता को खुशहाल और सुसस्कृत जिदगी बसर करने की सच्ची आजादी है ।

प्रेमचद ने मानो आज के हिंदुस्तान को देखते हुए लिखा था—"हाँ, इस

समाज-व्यवस्था ने व्यक्ति को यह स्वाधीनता नही दी है कि वह जनसाधारण का अपनी महत्त्वाकाक्षाओं की तृप्ति का साधन बनाए और तरह-तरह के बहानों से उनकी मेहनत का फायदा उठाए, या सरकारी पद प्राप्त करके मोटी-मोटी रकमें उडाए, और मूँछों पर ताव देता फिरे।" प्रेमचद उस आजादी के विरोधी थे जिसके जरिए मुट्ठी-भर लोग जनता को ठगकर अपना घर भरते हैं और जब जनता असतुष्ट होकर अपनी माँगे पूरी कराने के लिए सगठित होती है, तब उसे शांति और अहिसा के उपदेश देते हैं।

अपने लेख के अत में प्रेमचंद ने इस दलील को भी लिया था कि यह सभ्यता विदेशी है, इसलिए हम उससे अपना दामन बचाकर चलेंगे। उन्होंने पूछा था कि एक समाज-व्यवस्था से अगर किसी एक देश के लोगों का भला हो सकता है, तो दूसरे देशो का क्यो नही हो सकता? उन्होंने ईसाई और बौद्ध मतों की मिसाल देते हुए लिखा था—"जो शासन-विधान और समाज-व्यवस्था एक देश के लिए कल्याणकारी है, वह दूसरे देशो के लिए भी हितकर होगी। हाँ, महाजनी सभ्यता और उसके गुरगे अपनी शक्ति-भर उसका विरोध करेंगे, उसके बारे में भ्रमजनक बातो का प्रचार करेगे, जनसाधारण को बहकायेगे, उसकी आँखो मे धूल झोंकेंगे, पर जो सत्य है, एक-न-एक दिन उसकी विजय होगी और अवश्य होगी।"

इस तरह सत्य और झूठ के सघर्ष मे प्रेमचद ने सत्य का पक्ष लिया और महाजनी सभ्यता के गुरगों की दलीलों को निस्सार साबित कर दिया। जिस समय उन्होने यह लेख लिखा था, फासिस्ट जर्मनी सोवियत-विरोधी प्रचार की वैसी ही धूम मचाए हुए था जैसी आज अमरीका। प्रेमचद ने इस युद्ध-प्रचार का भंडाफोड करके शांति के पक्ष को मजबूत किया, हिंदी-पाठको की अतर्राष्ट्रीयता और उनकी स्वाधीनता-प्रेमी चेतना को और परिष्कृत किया।

प्रेमचद का झुकाव शुरू से ही यथार्थ जीवन की तरफ था। दिन-पर-दिन उनके यथार्थवादी चित्रण में गहराई आती गई। 'जीवन मे साहित्य का स्थान' नाम के लेख मे उनका पहला ही वाक्य है—"साहित्य का आधार जीवन है।" साहित्य का आधार कल्पना नही है, उसका स्रोत मनुष्य का अवचेतन नहीं है, बल्कि उसका जीवन है। साहित्य की अटारियो, मीनारो और गुंबदों की नींव, प्रेमचंद के शब्दों में, "मिट्टी के नीचे दबी पडी है।" उन्होंने इस लेख मे आनंद और सुंदरता के स्वाभाविक और बनावटी रूपो मे भेद किया है। महलों मे स्वाभाविक सुंदरता और आनद के दर्शन नही होते। शृगार को सुदर का पर्यायवाची मानते हुए प्रेमचंद ने लिखा है—"साहित्य मे केवल एक रस है और वह शृगार है।" शृगार से उनका वह मतलब नही है जो आमतौर से समझा जाता है; फिर भी उनका जोर आनंद पर है और वह कहते हैं—"और साहित्य का विषय केवल आनद का संबंध है।" फिर जीवन की व्याख्या करते हुए वह पशुओ से मनुष्य का भेद इस बात से बतलाते हैं कि मनुष्य मे अच्छी-बुरी मनोवृत्तियाँ होती हैं।

इस लेख मे प्रकट किए हुए अनेक विचार ''कला कला के लिए' वाले सिद्धात से बहुत मिलते-जुलते हैं। यदि साहित्य का विषय केवल आनद है, तो विषय-वस्तु का उतना महत्त्व नही रहता जितना आनद का। यदि मनुष्य और पशु का आपसी भेद मनोवृत्तियो का है, तो साहित्य की मीनारो की नीवे मिट्टी के नीचे दबी पडी है, यह बात बेमानी हो जाती है। लेकिन प्रेमचद इसी लेख मे आगे कहते हैं—''साहित्यकार बहुधा अपने देशकाल से प्रभावित होता है। जब कोई लहर देश मे उठती है, तो साहित्यकार के लिए उससे अविचलित रहना असभव हो जाता है। उसकी विशाल आत्मा अपने देश-बधुओ के कष्टो से विकल हो उठती है और इस तीव्र विकलता मे वह रो उठता है, पर उसके रुदन मे भी व्यापकता होती है। वह स्वदेश का होकर भी सार्वभौमिक रहता है।'

प्रेमचद ने इस समस्या का खुद अच्छी तरह समाधान कर दिया है कि साहित्य का सबध किसी चिरतन आनद और सुदरता से है या युग की परिस्थितियो से। अगर साहित्यकार 'कला कला के लिए' का सिद्धात मानकर चलता है, तो उसके लिए देश-बधुओ के कष्टो से विकल हो उठने का सवाल नही उठता। साहित्यकार की विशेषता यह है कि वह स्वदेश का होकर भी सार्वभौमिक रहता है। आज तक कोई ऐसा साहित्यकार नही देखा गया जो स्वदेश का हुए बिना सार्वभौमिक बन गया हो। यह कहना गलत न होगा कि साहित्यकार स्वदेश का होकर ही सार्वभौमिक बनता है। प्रेमचद की रचनाएँ स्वय इस सत्य की मिसाल है। वे स्वदेशपन मे डूबी हुई है उनका रचयिता अपने देश-बधुओ के कष्टो से विकल हो उठा है। उसकी महत्ता का यही सबसे बडा कारण है।

प्रेमचद साहित्य की उपयोगिता का सवाल उठाते है। कहते है—''जीवन म साहित्य की उपयोगिता के विषय मे कभी-कभी सदेह किया जाता है।'' प्रेमचद यह नही मानते कि मनुष्य का स्वभाव बदल नही सकता। स्वभाव बदलता है और साहित्य उसे बदलने का साधन है। किसी देश की जनता और उसके चरित्र की विशेषताओ से साहित्य का क्या सबध है, इस पर वह कहते है—''विश्व की आत्मा के अतर्गत भी राष्ट्र या देश की आत्मा होती है। इसी आत्मा की प्रतिध्वनि है—साहित्य।'' प्रेमचद की यह धारणा साम्राज्यवादियो के इस प्रचार का खडन करती है कि साहित्य की राष्ट्रीय या जातीय विशेषताएँ नही होती। अमरीका और ब्रिटेन के साम्राज्यवादी और उनके भाडे के लेखक विश्व-सस्कृति और विश्व-सरकार की लबी-चौडी बाते करते है। वे दूसरे देशो को गुलाम बनाते है, उनकी भाषा और सस्कृति को दबाते है, उनके जातीय चरित्र को नष्ट करते हैं। इस निदनीय काम को छिपाने के लिए विश्व-सस्कृति की बाते नकाब का काम करती है। प्रेमचद साहित्य की इमारत हवा मे खडी न करके उसकी नीव धरती मे मानते हैं, वह उसे देश की आत्मा की प्रतिध्वनि कहते है। उनका देश, जैसा कि इस लेख से ही जाहिर है, महलो मे बद नही है, देश का मतलब है देश की साधारण जनता।

यूरोप के पतित पूँजीवादी साहित्य की तरफ से प्रेमचद ने यहाँ भी पाठक को आगाह किया है, खूनी काडो के प्रदर्शन और जासूसी कमाल की निंदा की है। उनके अनसार सामाजिक आदर्श साहित्य से उत्पन्न होते हैं। इसलिए वह साहित्यकार का दर्जा बहुत ऊँचा मानते हैं।

किसी जाति के चरित्र-निर्माण मे साहित्य का कितना बडा हाथ रहता है प्रेमचद इस बात को जानते थे। इसलिए वह सास्कृतिक विरासत की कद्र करते थे। उन्होने 'रामायण' और 'महाभारत' के रचयिताओ के बारे मे लिखा था—"व्यास और वाल्मीकि न जिन आदर्शो की सृष्टि की, वे आज भी भारत का सर ऊँचा किए हुए है। राम अगर वाल्मीकि के साँचे मे न ढलते, तो राम न रहते। सीता भी उसी साँचे मे ढलकर सीता हुई।" व्यास और वाल्मीकि के सामने सिर झुकाते हुए प्रेमचद ने उनके चरणो मे कलम नही रख दी। उन्होने यह नही कहा कि यह सास्कृतिक विरासत ही प्रगतिशील साहित्य है, इसलिए या तो मैं कुछ लिखूँगा नही, या लिखूंगा तो देशकाल की सीमाओ से ऊपर उठकर शाश्वत सौंदर्य के सिद्धातो के अनसार लिखूंगा। वह मानते थे कि "साहित्य का उत्थान अब राष्ट्र का उत्थान है।" इसलिए इस परम अशाश्वत काम को पूरा करने के लिए वे कमर कसकर जट गए। प्रेमचद का साहित्य राष्ट्रीय उत्थान का साहित्य है, वह भारत की नवजाग्रत मानवता और उसके आत्मसम्मान का साहित्य है। उन्होने वाल्मीकि, व्यास, तलसी, सूर और कबीर से साधना करना, अपने देश और अपनी सस्कृति की उन्नति के लिए कष्ट सहना सीखा था। उन्होने भारत के इन अमर कवियो के बारे मे लिखा था—"वाल्मीकि और व्यास दोनो तपस्वी थे। सूर और तुलसी भी विलासिता के उपासक न थे। कबीर भी तपस्वी ही थे।" प्रेमचद इन तपस्वियो की विरासत को आगे बढानेवाले साहित्यकार थे, वह बीसवी सदी मे भारतीय सस्कृति का एक नया आगे बढा हुआ चरण थे।

प्रेमचद अपने देश की सस्कृति के उपासक थे, उसका परिष्कार करके उसे आगे विकसित करना चाहते थे, इसलिए वह दूसरे देशो और जातियो की सस्कृति को घृणा की दृष्टि से न देखते थे। उन्होने इगलैंड, फ्रास, रूस आदि के साहित्य का, विशेष रूप से वहाँ के कथा-साहित्य का, गभीर अध्ययन किया था। फ्रासीसी कथाकारो मे वह बाल्जाक और मोपासाँ को बहुत ऊँचे दर्जे का कलाकार मानते थे। रूसी भाषा मे तोल्स्तोय की कहानियाँ उन्हे विशेष प्रिय थी। दोस्तोयेव्स्की के बारे मे उन्होने ठीक कहा था कि उसकी कहानियो मे "मनोभावो की दुर्बलता दिखाने की चेष्टा की गई है," लेकिन शायद चेखोव के बारे मे उन्होने अत्युक्ति की है कि उसकी कहानियो मे "रूस के विलास-प्रिय समाज के जीवन-चित्रो के सिवा और कोई विशेषता नही।"

प्रेमचद का विचार था कि हिंदुस्तान मे कहानी-कला यहाँ की परपराओ, यहाँ की विशेषताओ को देखते हुए विकसित हो। मित्रो की बातचीत या पुलिस-कोर्ट के

दृश्य स कहानी शुरू करना वे गलत समझते थे। डायरी और टिप्पणियों द्वारा कहानी लिखने को उन्होने यूरोपवालो की नकल करना कहा था। जिन कहानियों का कोई अत न हो, उन्हे भी वह बुरा समझते थे। कहानी मे वह कहानीपन के पक्षपाती थे। उनका विचार था कि कहानी के साथ यह अनुचित व्यवहार यथार्थवाद के नाम पर होता है, इसलिए कथाकार को आदर्शवादी होना चाहिए। लेकिन यथार्थवादी कलाकार के लिए यह जरूरी नही है कि वह कहानी को बिगाड दे और न सभी आदर्शवादी कलाकार उसे सँवार ही लेते हैं। प्रेमचद स्वयं यथार्थवादी लेखक थे। उनका यथार्थवाद फोटो खीचकर चुप रह जानेवाला यथार्थवाद नही था। वे एक उद्देश्य लेकर चलनेवाले कलाकार थे।

प्रेमचद बहुत-सी असगतियो के बीच से गुजरते हुए क्रातिकारी यथार्थवाद की तरफ आ रहे थे—एक ऐसे यथार्थवाद की तरफ, जो जीवन का सही चित्र देते हुए पाठक मे अपने जीवन की परिस्थितियो को बदलने की, एक नया जनवादी और स्वाधीन जीवन निर्माण करने की प्रेरणा भी दे। प्राचीन अध्यात्मवाद का प्रभाव जहाँ-तहाँ उन पर दिखाई देता है, लेकिन क्रमश वह क्षीण होता जाता है। कहानी-कला-सबधी एक लेख मे वह कहते हैं—"मानव-सस्कृति का विकास ही इसलिए हुआ है कि मनुष्य अपने को समझे। अध्यात्म और दर्शन की भाँति साहित्य भी इसी सत्य की खोज मे लगा हुआ है—अतर इतना ही है कि वह इस उद्योग मे रस का मिश्रण करके उसे आनदप्रद बना देता है, इसीलिए अध्यात्म और दर्शन केवल ज्ञानियो के लिए हैं, साहित्य मनुष्य-मात्र के लिए।"

मनुष्य अपने को समझे— यह धारणा इस अर्थ मे सत्य नही है कि मनुष्य मे अखड सत्य छिपा हुआ है और उसे केवल समझाना बाकी रह गया है। मनुष्य का अपने को समझना उसके भौतिक विकास के साथ जुडा हुआ है। इस विकास-क्रम मे मनुष्य अपने को समझता ही नही है अपने को परिवर्तित भी करता है। कहानी-कला-सबधी एक और दूसरे लेख मे वह कहते हैं—"कितने ही सिद्धात, जो एक जमाने मे सत्य समझे जाते थे, आज असत्य सिद्ध हो गए हैं, पर कथाएँ आज भी उतनी ही सत्य हैं, क्योंकि उनका सबध मनोभावो से है और मनोभावो मे कभी परिवर्तन नही होता।" (प्रेमचद *'कुछ विचार'*, पृष्ठ 67)। अगर मनोभावो मे कभी पविर्तन न हो तो कहानियो की विषय-वस्तु बहुत-कुछ आज भी वही हो जो चार हजार साल पहले थी। प्रेमचद का साहित्य बीसवी सदी के हिदुस्तान का साहित्य है। 'कथासरित्सागर' या 'अलिफ लैला' की दुनिया मे उसकी कल्पना नही की जा सकती। फिर भी वह 'कथासरित्सागर' और 'अलिफ लैला' की दुनिया से किन्ही बातो मे जुडा भी है और उन कथाओ के बिना प्रेमचद की नई रचनाओ की कल्पना करना कठिन होगा। वे रचनाएँ ऐसे समाज की उपज हैं जो 'कथासरित्सागर' और 'अलिफ लैला' के जमाने को बहुत पीछे छोड आया है हालाँकि उस जमाने के कुछ सस्कार अब भी बाकी हैं। इसलिए यह कहना सही न

होगा कि मनोभावो मे कभी परिवर्तन नही होना।

उपन्यास-सबधी अपने एक निबध मे प्रेमचद कहते हैं—"मैं उपन्यास को मानव-चरित्र का चित्र-मात्र समझता हूं। मानव-चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यो को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्त्व है।" (प्रेमचद *'कुछ विचार'*, पृष्ठ 71)। इस लेख मे उन्होने यह स्पष्ट नही किया कि चरित्र विकासमान हो या अपरिवर्तनशील। यहाँ वह उपन्यासकारो को दो दलो मे बाँट देते है। एक दल उन लोगो का है जो यथार्थ को नग्न रूप मे रख देते हैं, दूसरा दल उन लोगो का है जो गर्म कोठरी मे काम करते-करते थकनेवालो को बाग मे ले जाकर निर्मल स्वच्छ हवा खिलाते हैं। फिर वह आदर्शवादियो के लिए इस खतरे की शका प्रकट करते है कि उनके पात्र सिद्धातो की मूर्ति-मात्र न बन जाएँ। इसलिए उनकी राय मे ऊँचे दर्जे के उपन्यास वे है जिनमे आदर्श और यथार्थ का समावेश हो। जब हमारा उद्देश्य गर्म कोठरी मे काम करनेवाले को बाग की हवा खिलाना हो जाता है, तब हम उससे यह भी कहे बिना नही रहते कुछ देर के लिए कोठरी को भूल जा, आखिर तो उसी मे तुझे सडकर मरना है यहाँ बुलबुल के तराने भी सुन ले। नग्न यथार्थवाद गलत चीज है, यथार्थवाद को सोद्देश्य होना चाहिए लेकिन बाग मे हवा खिलाने से तो यथार्थवाद की जड ही कट जाती है, उसे सोद्देश्य बनाने का सवाल नही उठता। (यहाँ बाग का प्रयोग आलकारिक है, इसका यह मतलब नही है कि बाग की सैर करना यथार्थवाद की हत्या करना है।)

प्रेमचद इसी निबध मे आगे कहते है--"साहित्य का सबसे ऊँचा आदर्श यह है कि उसकी रचना केवल कला की पूर्ति के लिए की जाए। 'कला के लिए कला' के सिद्धात पर किसी को आपत्ति नही हो सकती। वह साहित्य चिरायु हो सकता है जो मनुष्य की मौलिक प्रवृत्तियो पर अवलबित हो" इत्यादि। इस धारणा का यहाँ खडन करना जरूरी नही है, प्रेमचद का समूचा साहित्य उसका खडन करता है। उसकी तरफ ध्यान दिलाना सिर्फ इसलिए जरूरी है कि हम उनके विचारो की असगतियो को भी समझ सकें और उनके हरेक वाक्य को वेद-वाक्य मानकर न दोहराने लगे।

इसी लेख मे प्रेमचद कहते है—"हमारा खयाल है कि क्यो न कुशल साहित्यकार कोई विचार-प्रधान रचना भी इतनी सुदरता से करे जिसमे मनुष्य की मौलिक प्रवृत्तियो का सघर्ष निभता रहे? 'कला के लिए कला' का समय वह होता है जब देश सपन्न और सुखी हो। जब हम देखते हैं कि हम भाँति-भाँति के राजनीतिक और सामाजिक बधनो मे जकडे हुए है, जिधर निगाह उठती है दु ख और दरिद्रता के भीषण दृश्य दिखाई देते हैं, विपत्ति का करुण क्रदन सुनाई देता है, तो कैसे सभव है कि किसी विचारशील प्राणी का हृदय दहल न उठे। हाँ, उपन्यासकार को इसका प्रयत्न अवश्य करना चाहिए कि उसके विचार परोक्ष रूप मे व्यक्त हो, उपन्यास की स्वाभाविकता मे उस विचार के समावेश से कोई विघ्न न

पडने पाए, अन्यथा उपन्यास नीरस हो जाएगा।''

देश के सुखी और सपन्न होने की दशा मे 'कला कला के लिए' के सिद्धात को बाँधकर प्रेमचद ने उसकी सनातनता को खत्म कर दिया है। वह अपने जमाने के राजनीतिक और सामाजिक बधनो की तरफ देखते हैं और अपनी पिछली विचारधारा को चुनौती देते हुए कहते है—यह कैसे सभव है कि इन्हे देख-सुनकर किसी विचारशील प्राणी का हृदय न दहल उठे? प्रेमचद को एक तरफ सामती-पूँजीवादी विचारधारा खीचती है—साहित्य का सबसे ऊँचा आदर्श यह है कि उसकी रचना कला की पूर्ति के लिए की जाए। दूसरी तरफ उसकी सहृदयता, उनका सामाजिक ज्ञान उन्हे साहित्य से समाज को बदलने की तरफ खीचता है—इस अन्याय को देखकर किस विचारशील प्राणी का हृदय न दहल उठेगा?

इस द्वद्व को वह विचार-जगत् मे उतना हल नही कर पाए जितना अपने कथा-साहित्य के रचनात्मक ससार मे। वहाँ उनके सामने वे परिचित पात्र रहते थे जो अपने जीवन की वास्तविक समस्याओ का समाधान चाहते थे। प्रेमचद ने उन्हे भी एकाध बार 'प्रेमाश्रम' के सपनो से बहलाया, लेकिन उनकी चली नही। उनकी कला पर दिन-पर-दिन यथार्थवाद का रग चढता गया और उनका साहित्य राष्ट्रीय और जातीय उत्थान का साहित्य बन गया।

10. प्रगतिशील साहित्य और भाषा की समस्या

अप्रैल 1936 के 'हस' मे प्रेमचद ने अखिल भारतीय प्रगतिशील लेखक सघ के बारे मे एक सपादकीय टिप्पणी लिखी है, जिसमे वह कहते हैं—"जैसा इसके नाम से जाहिर है, सघ उस साहित्य और कला-प्रवृत्ति का पोषक है जो समाज मे जागृति और स्फूर्ति लाए, जो जीवन की यथार्थ समस्याओ पर प्रकाश डाले।"

मई 1936 के 'हस' मे वह फिर उस पर एक टिप्पणी मे कहते है—"इस सघ का उद्देश्य, जैसा हम पहले लिख चुके हैं, साहित्य और कला मे प्रगति पैदा करना, जीवन की यथार्थताओ का चित्रण करना और जनता के दुख-सुख और कशमकश की पूर्ण रूप से अभिव्यक्ति करके उस उज्ज्वल भविष्य की ओर ले जाना है, जिसके लिए आज विश्व का मानव-समाज कोशिश कर रहा है।"

सितबर 1936 के 'हस' मे 'साहित्य मे प्रगति का अर्थ' नाम की टिप्पणी मे वह कहते हैं—"हमारे साहित्य को जनता के हृदय के साथ एक कर देने की अत्यत आवश्यकता है, जिससे वह सार्वजनिक जीवन से प्रेरित जनता की आत्मा के साथ जी सके।" फिर इसी टिप्पणी मे प्रगतिशील लेखक सघ के बारे मे वह कहते है—"गत नौ और दस अप्रैल को लखनऊ मे उसने अपना वार्षिक अधिवेशन इन पक्तियो के लेखक के सभापतित्व मे मनाया था, जिसमे भारत के सभी प्रातो के कलाकारो ने भाग लिया था। यह निर्विवाद साहित्य मे प्रगतिमान परिवर्तन का द्योतक था।"

प्रगतिशील साहित्य के आदोलन मे प्रेमचद का शामिल होना कोई आकस्मिक घटना नही थी। उससे उनका सबध एक अधिवेशन की सदारत कर देने-भर का न था। बीमारी और आर्थिक कठिनाइयो के बावजूद वह अपने स्वाभाविक उत्साह से इस आदोलन मे हिस्सा लेने लगे थे। वह समाज की प्रगति मे बाधा डालनेवाले साहित्य का सगठित होकर मुकाबला करने और समाज की प्रगति मे सहायक होनेवाले साहित्य का सगठित होकर प्रचार और प्रसार करने की आवश्यकता अनुभव करने लगे थे।

प्रगतिशील लेखक-सघ की नीव डालने मे प्रेमचद का सक्रिय सहयोग था।

इस सिलसिले मे 'हस' के 'प्रेमचद-स्मृति-अक' से अहमद अली की ये पक्तियाँ उद्धृत करने योग्य हैं—

"दो दिन बाद वह चौदहवी फरवरी आई जो इतिहास मे लोगो को बहुत दिनो तक याद रहेगी। आगे चलकर जब कुछ बरसो के बाद हमारे साहित्य का इतिहास लिखा जाएगा तब वह दिन एक विशेष महत्त्व का माना जाएगा। उस दिन हम सब लोग अपने देश मे प्रगतिशील लेखको के आदोलन का सगठन करने के लिए फिर सज्जाद जहीर साहब के मकान पर इकट्ठे हुए थे। वहाँ मुशी प्रेमचद, मौलाना अब्दुल हक और मुशी दयानारायण निगम सरीखे ऐसे बडे-बडे लोग मौजूद थे जिन्होने साहित्य की उन्नति के लिए बहुत बडे-बडे काम किए थे और हममे से नई पीढीवाले कुछ ऐसे लोग भी थे जिनके कधो पर नए और अधिक दृढ साहित्यिक आदोलन चलाने का भार आ पडा था, और ज्यो-ज्यो दिन बीतते जाएँगे त्यो-त्यो उनके कधो पर का यह भार बराबर बढता जाएगा। हम सब लोगो ने एकमत होकर 'प्रोग्रेसिव राइटर्स एसोसिएशन' या 'प्रगतिशील लेखक सघ' स्थापित करना निश्चित किया। मु दयानारायण निगम को इस सबध मे कुछ निराशा और सदेह-सा हो रहा था, लेकिन प्रेमचद जी ने उस समय एक बहुत मार्के की बात यह कही कि प्रगतिशील लेखको के आदोलन के लिए हमारा देश तैयार हो गया है और हम लोग एक बहुत ही उपयुक्त और शुभ अवसर पर इस एसोसिएशन का आरभ कर रहे हैं।"

प्रेमचद ने देश की किन्ही खास परिस्थितियो मे प्रगतिशील लेखको का आदोलन उपयोगी समझा था। यह सन् '36 का जमाना था जब काग्रेसी नेता काले कानून के मातहत मत्रिमडल बनाने की तैयारी कर रहे थे, जब किसानो और मजदूरो के अपने सगठन अधिक सक्रिय रूप मे आगे आ रहे थे, जब हिंदी-साहित्य छायावाद की देहरी पार करके एक नई मजिल की तरफ कदम उठा रहा था। प्रेमचद को जनता की ताकत और नए लेखको की लगन मे विश्वास था। इसीलिए उन्होने उस अवसर को 'उपयुक्त' और 'शुभ' बतलाया था।

9 और 10 अप्रैल को लखनऊ मे होनेवाले अखिल भारतीय प्रगतिशील लेखक-सघ के पहले अधिवेशन मे प्रेमचद ने सभापति-पद से जो भाषण दिया था, वह उनके निबधो और भाषणो मे ही श्रेष्ठ नही था, हिंदी और उर्दू मे प्रगतिशील साहित्य पर जितने भाषण और निबध लिखे-पढे गए हैं, सभी मे उसका अन्यतम स्थान है।

इस भाषण मे उन्होने रीतिकालीन साहित्य, सामती परपराओ और दरबारो की सस्कृति पर करारा हमला किया और जनता के साहित्य के लिए अपनी जबर्दस्त आवाज बुलद की। इस भाषण मे उन्होने सीधे-सीधे काम-शास्त्रियो और अध्यात्मवादियो को कडी फटकार बतलाई और अपना वह स्मरणीय वाक्य कहा—"ऐसे पतन के काल मे लोग या तो आशिकी करते हैं, या अध्यात्म और

वैराग्य मे मन रमाते हैं।" इस भाषण मे उन्होने सौंदर्य की कसौटी को बदल देने की माँग की, साहित्यकार से मैदान मे आकर समाज का नेतृत्व करने के लिए कहा, उन्होने नए साहित्य के लिए माँग की कि उसमे "उच्च चिंतन हो, स्वाधीनता का भाव हो, सौदर्य का सार हो, सृजन की आत्मा हो, जीवन की सचाइयो का प्रकाश हो, जो हममे गति, सघर्ष और बेचैनी पैदा करे, सुलाए नही, क्योंकि अब और ज्यादा सोना मृत्यु का लक्षण है।"

प्रेमचद के जमाने मे साहित्यकारो की कमी नही थी, लेकिन उनमे कितने ऐसे थे जो इस कसौटी पर खरे उतरते ? इसीलिए प्रगतिशील लेखक-सघ का सगठन करने की जरूरत थी।

प्रेमचद ने साहित्य की बडी सुदर व्याख्या की है—"साहित्य उसी रचना को कहेगे जिसमे कोई सचाई प्रकट की गई हो, जिसकी भाषा प्रौढ, परिमार्जित और सुदर हो और जिसमे दिल और दिमाग पर असर डालने का गुण हो। और साहित्य मे यह गुण पूर्ण रूप मे उसी अवस्था मे उत्पन्न होता है, जब उसमे जीवन की सचाइयाँ और अनुभूतियाँ व्यक्त की गई हो।" प्रेमचद जिस साहित्य का प्रसार चाहते थे, वह नई तरह का साहित्य था, जिसमे जीवन की सचाइयाँ प्रकट की गई हो। इस नए साहित्य से प्रमचद उस पराने साहित्य को अलग करते हैं जिसमे 'तिलिस्माती कहानियो, भूत-प्रेत की कथाओ और प्रेम-वियोग के आख्यानो" से पाठक का मनोरजन किया जाता था। जाहिर है, इन कहानियो मे भी जीवन की कोई-न-कोई सचाई जरूर झलकती थी, लेकिन उस सचाई से तो प्रेमचद सतुष्ट होनेवाले नही थे। यह 'फिसानए अजायब' और 'बोस्ताने खयाल' की दुनिया के खोखलेपन की तरफ इशारा करते है। वह उस कविता का खडन करते हैं जिसमे प्रेम का आदर्श वासनाओ को तृप्त करना था। वह उन अनुभूतियो की व्यजना के कायल नही थे जहाँ आशियाने, कफस, बर्क और खिरमन की कल्पनाओ से पाठक और श्रोता दिल थाम लेते थे। उन्होने शृगारिक मनोभावो को मानव-जीवन का अग मानते हुए उन्हे देशकाल की आवश्यकताओ के लिए नाकाफी बताया।

हिंदी और उर्दू—दोनो ही की सामती परपराओ पर प्रेमचद ने आक्रमण किया। उन्होने कहा—"क्या हिंदी और क्या उर्दू—कविता मे दोनो की एक ही हालत थी।" इन दरबारी काव्य-परपराओ के विरुद्ध उन्होने जन-रुचि को बदलता हुआ बताया। उन्होने साहित्य के नए पाठक के लिए ठीक कहा कि वह "जीवन की समस्याओ पर भी विचार करता है, और उन्हे हल करता है।"

प्रेमचद ने साहित्य की उपयोगिता पर जोर दिया। वह अपने जमाने के पहले ऊँचे साहित्यकार थे, जिन्होने अपनी दबग आवाज मे कहा—"मुझे यह कहने मे हिचक नही है कि मैं और चीजो की तरह कला को भी उपयोगिता की तुला पर तौलता हूँ।" उनके लिए उपयोगिता और सौंदर्य-प्रेम मे कोई वैर नही था। साहित्य जो उपयोगी कार्य करता है, वह सौंदर्य-प्रेम के ही माध्यम से। लेकिन

सौंदर्य-प्रेम का मतलब क्या है ? क्या साहित्यकार यथार्थ जीवन के चित्रण से मुँह मोड ले ? प्रेमचद कहते हैं—"प्रकृति-निरीक्षण और अपनी अनुभूति की तीक्ष्णता की बदौलत उसके सौंदर्य-बोध मे इतनी तीव्रता आ जाती है कि जो-कुछ असुदर है, अभद्र है, मनुष्यता से रहित है, वह उसके लिए असहय हो जाता है।" आजकल के कुछ सौंदर्य-प्रेमियो का यह हाल है कि उन्हे कुछ भी असहय नही है, केवल साहित्य मे उनके सामाजिक उत्तरदायित्व की याद दिलाना उन्हे असहय है। देश मे लोग भूखो मरे, ससार मे युद्ध की आग सुलगाई जाए, जनता पर दमन-चक्र चले, जातियो की भाषा और सस्कृति को कुचला जाए, उसक शाश्वत सिद्धातो को आँच नही आती। उनका सौंदर्य-प्रेम ऐसा कमाल है जिस पर जीवन का छीटा नही पडता और उसकी शाश्वत सुगध से दिशाएँ महका करती है। प्रेमचद का सौंदर्य-प्रेमी साहित्यकार दूसरी तरह का है। "जो दलित है, पीडित है, वचित है—चाहे वह व्यक्ति हो या समूह उसकी हिमायत और वकालत करना उसका फर्ज है।" प्रेमचद का तकाजा था कि लेखक जनता की तरफदारी कर। वह दलित और पीडित का साथ दे। उत्पीडक और अत्याचारी का भी साथ दे या दोनो के बीच तटस्थ रहे, प्रेमचद इस मँझधारवाद के कायल नही थे। प्रेमचद जिस साहित्य का झडा लेकर आगे बढ रहे थे, वह जनता की तरफदारी का साहित्य था।

प्रेमचद ने इस बात की तरफ से भी आगाह किया था कि जनता की वकालत का मतलब उसकी झूठी तारीफ करना नही है। उन्होने अतिरजित बातो से बचने के लिए कहा। उन्होने समाज की अदालत के सामने आनेवाले साहित्यकार वकील को सलाह दी—"आप सत्य से तनिक भी विमुख न हो।" उन्होने कथाकार के लिए कहा—"वह कहानी लिखता है पर वास्तविकता का ध्यान रखते हुए।" अक्सर होता यह है कि यथार्थ जीवन का अनुभव पास न होने पर साहित्यकार वास्तविकता का ध्यान छोडकर शब्दो की झडी लगाकर अत्युक्ति से जोश पैदा करने की कोशिश करता है। वह क्राति की लपटो से दसो दिशाएँ लाल कर देता है, भूकप और प्रलय से धरती-आकाश एक कर देता है, उसके वर्णन से जनता की दशा का तो पता नही चलता, लेकिन अपने शब्दजाल से वह पाठक को यह विश्वास दिलाने की कोशिश करता है कि क्रातिकारी यथार्थवाद यही है। इसलिए प्रेमचद ने अतिरजित बातो से बचने के बारे मे और सत्य से जरा भी विमुख न होने के बारे मे जो दलीलें दी हैं, वे आज तब से भी ज्यादा महत्त्वपूर्ण हैं जब वे दी गई थी।

प्रेमचद लेखक से माँग करते हैं कि वस्तुस्थिति का चित्रण करे, साथ ही पाठक की दृष्टि और मानसिक परिधि को विस्तृत करे। लेखक उनके लिए जनता का शिक्षक है; साहित्य का काम जनता को शिक्षित और सुसस्कृत बनाना है। "वह हममे वफादारी, सचाई, सहानुभूति, न्यायप्रियता और समता के भावो की पुष्टि करता है।" इस तरह साहित्य नई इसानियत गढता है, मनुष्य के विकास मे सहायक होता है।

प्रेमचद ने ये बाते उस जमाने मे कही थी जब सामती सस्कृति का असर आज से ज्यादा था, जब राष्ट्रीयता और देश-भक्ति के भाव-जगत् मे जन-साधारण को जगह कम मिली थी। साहित्य मे पस्ती और निराशावाद की धाराएँ प्रवाहित थी। वह जब साहित्यकार की बात करते थे तो उनका लक्ष्य पुरानी सडी-गली सास्कृतिक परपराओ से नाता तोडनेवाले साहित्यकार से होता था।

इसी भाषण मे उन्होने कहा था—"प्रगतिशील लेखक सघ, यह नाम ही मेरे विचार से गलत है। साहित्यकार या कलाकार स्वभावत प्रगतिशील होता है अगर यह उसका स्वभाव न होता, तो शायद वह साहित्यकार ही न होता।" लेकिन प्रेमचद जिस साहित्य का विरोध कर रहे थे, उसके रचनेवाले क्या साहित्यकार नही थे? अगर सभी साहित्यकार प्रगतिशील होने और उनका साहित्य प्रगतिशील होता तो प्रेमचद इसी भाषण मे यह न कहते—"जब साहित्य पर ससार की नश्वरता का रग चढा हो, और उसका एक-एक शब्द नैराश्य मे डूबा, समय की प्रतिकूलता के रोने से भरा और शृगारिक भावो का प्रतिबिब बना हो, तो समझ लीजिए कि जाति जडता और ह्रास के पजे मे फँस चुकी है और उसमे उद्योग तथा सघर्ष का बल बाकी नही रहा।" इस वाक्य से बिलकुल साफ जाहिर है कि प्रेमचद के सामने दो तरह के साहित्य थे—एक ऐसा साहित्य, जो जाति की जडता और ह्रास का प्रतिबिब था और दूसरा वह जो जाति के उत्थान और प्रगति मे सहायक था। वह इस दूसरी तरह के साहित्य के ही समर्थक थे, पहली तरह के साहित्य के विरोधी थे।

अगर ऐसे साहित्य को हम साहित्य कह सकते हैं जिस पर नश्वरता का रग चढ़ा हो, जिसका एक-एक शब्द नैराश्य मे डूबा हुआ हो, तो उसके रचनेवाले ही को साहित्यकार कहने पर क्या एतराज हो सकता है? लेकिन ऐसे साहित्यकार को प्रगतिशील कौन कहेगा? ज्यादा-से-ज्यादा यही कहा जा सकता है कि उसकी रचनाएँ सच्चा साहित्य नही हैं या वह सच्चा साहित्यकार नही है। लेकिन प्रेमचद खुद उसकी रचनाओ को साहित्य की सज्ञा दे चुके हैं। इसलिए एक तरफ जाति के ह्रास को प्रतिबिबित करनेवाले साहित्य का विरोध, दूसरी तरफ हर साहित्यकार को स्वभावत प्रगतिशील मानना—प्रेमचद की विचारधारा मे यह एक असगति है। इससे प्रगतिशील साहित्य का वह विरोध करते थे, यह समझना भूल होगी।

प्रेमचद ने आगे कहा है कि "प्रगति या उन्नति से प्रत्येक लेखक या ग्रथकार एक ही अर्थ नही ग्रहण करता।" इसलिए उन्होने प्रगति या उन्नति की अपनी व्याख्या भी दे दी है। वह इस प्रकार है—"उन्नति से हमारा तात्पर्य उस स्थिति से है जिससे हममे दृढता और कर्म-शक्ति उत्पन्न हो, जिसमे हमे अपनी दु खावस्था की अनुभूति हो, हम देखे कि किन अतर्बाह्य कारणो से हम इस निर्जीवता और ह्रास की अवस्था को पहुँच गए, और उन्हे दूर करने की कोशिश करे।" एक तरफ दृढ़ता और कर्म-शक्ति, दूसरी तरफ शिथिलता और निराशा, एक तरफ दु खावस्था की

अनुभूति, दूसरी तरफ़ जनता को अफीम की घूँटी, एक तरफ़ जागरण और प्रगति, दूसरी तरफ निर्जीवता और ह्रास—प्रगतिशील साहित्य और प्रतिक्रियावादी साहित्य का यह भेद प्रेमचद के सामने मौजूद था। इसीलिए वह अपने "स्वभावत प्रगतिशील साहित्यकार" के लिए कहते हैं—"उसका दर्द से भरा हृदय इसे सहन नही कर सकता कि एक समुदाय क्यो सामाजिक नियमो और रूढ़ियो के बधन मे पडकर कष्ट भोगता रहे, क्यो न ऐसे सामान इकट्ठे किए जाएँ कि वह गुलामी और गरीबी से छुटकारा पा जाए? वह इस वेदना को जितनी बेचैनी के साथ अनुभव करता है, उतना ही उसकी रचना मे जोर और सचाई पैदा होती है।" जो सज्जन साहित्यकार को स्वभावत प्रगतिशील मानते हैं, अपने दिल पर हाथ रखकर देखे, सामाजिक अन्याय को देखकर कही उसमे गर्मी पैदा होती है? अपने अमल को देखकर सोचे, गुलामी और गरीबी से छुटकारा पाने के लिए वह कोई सामान जुटा रहे हैं?

प्रेमचद की साफ आवाज सुनिए—"हमारे लिए कविता के वे भाव निरर्थक हैं, जिनसे ससार की नश्वरता का आधिपत्य हमारे हृदय पर और दृढ़ हो जाए, जिनसे हमारे हृदयो मे नैराश्य छा जाए। वे प्रेम-कहानियाँ, जिनसे हमारे मासिक-पत्रो के पृष्ठ भरे रहते हैं, हमारे लिए अर्थहीन हैं अगर वे हममे हरकत और गरमी पैदा नही करती।" प्रेमचद की सलाह माननेवाले लेखको का क्या यह फर्ज नही है कि वे निरर्थक भावोवाली कविता का विरोध करे, सार्थक भावोवाली कविता की तरफदारी करे? लेकिन निरुद्देश्य साहित्य के समर्थक ऐसा विराट सयुक्त मोर्चा बनाते हैं कि उसमे निरर्थक और सार्थक भाव सब घुल-मिलकर एक हो जाते हैं। प्रेमचद ऐसी कला की माँग करते हैं "जिसमे कर्म का सदेश हो।" वह सौंदर्य को सापेक्ष बतलाते हुए कहते है कि "एक रईस के लिए जो वस्तु सुख का साधन है, वही दूसरे के लिए दु ख का कारण हो सकती है।" वह सुदरता की कसौटी को बदलने की बात करते है। वह अमीरो पर निर्भर रहनेवाले कलाकारो की निंदा करते हैं। वह कला के वर्गगत आधार की तरफ इशारा करते हुए कहते हैं—"कला नाम था और अब भी है, सकुचित रूप-पूजा का, शब्द-योजना का, भाव-निबधन का।" ऐसे कला के रचनेवालो को कौन प्रगतिशील कहेगा? प्रेमचद कहते हैं कि जो सुदरता साधारण जनता मे है, उसकी तरफ इस जमाने के कलाकार को ध्यान देना चाहिए।

प्रेमचद साहित्यकार से यही माँग नही करते कि वह साहित्य रचे, वह उसे सघर्ष के मैदान मे उतरने की दावत भी देते हैं। वह कहते हैं—"हम जब ऐसी व्यवस्था को सहन न कर सकेगे कि हजारो आदमी कुछ अत्याचारियो की गुलामी करे, तभी हम केवल कागज के पृष्ठो पर सृष्टि करके ही सतुष्ट न रह जाएँगे, किंतु उस विधान की सृष्टि करेगे जो सौंदर्य, सुरुचि, आत्मसम्मान और मनुष्यता का विरोधी न हो।" यहाँ उन्होंने कर्म और वचन की एकता के महत्त्वपूर्ण सिद्धात का

प्रतिपादन किया है। साहित्य के विकास की यह नई दिशा थी। साहित्यकार से एक नई माँग की गई थी कि वह जो कुछ लिखे जीवन मे उस पर अमल करके भी दिखलाए।

प्रेमचद समाज मे साहित्यकार को बहुत ऊँची जगह देते हैं। वह महफिल जुटानेवाला नही है, न वह दूसरो के पीछे चलनेवाला खेमा-बरदार है। वह समाज का नेता और पथ-प्रदर्शक है। उनके स्मरणीय शब्द हैं—"साहित्यकार का लक्ष्य केवल महफिल सजाना और मनोरजन का सामान जुटाना नही है—उसका दरजा इतना न गिराइए। वह देश-भक्ति और राजनीति के पीछे चलनेवाली इकाई भी नही, बल्कि उनके आगे मशाल दिखाती हुई चलनेवाली सचाई है।" इस तरह का साहित्यकार ही सही अर्थ मे प्रगतिशील होता है। प्रेमचद हिंदी-उर्दू के देश-भक्त लेखको से ऐसा ही साहित्यकार बनने की अपील कर रहे थे। वह उनसे कह रहे थे कि उठकर समाज मे अपनी सम्मानपूर्ण जगह हासिल करो। अहवाद और व्यक्तिवाद का विरोध करते हुए उन्होने साहित्य के सामाजिक पक्ष पर ज़ोर दिया। उन्होन साहित्यकार की अपनी शिक्षा पर जोर दिया जिससे वह जनता की और ज्यादा सवा कर सके। उन्होने साहित्य के मंदिर मे आने के लिए उन लोगो का आहवान किया जिनके दिल मे दर्द हो और मुहब्बत का जोश हो।

अत मे 'प्रगतिशील लेखक सघ' के उद्देश्यो के बारे मे उन्होने कहा— 'हमारी परिषद् ने कुछ इसी प्रकार के सिद्धातो के साथ कर्म-क्षेत्र मे प्रवेश किया है। साहित्य का शराब-कवाब और राग-रग के मुखापेक्षी बना रहना उसे पसद नही। वह उसे उद्योग और कर्म का सदेश-वाहक बनाने का दावेदार है। हमारा उद्देश्य देश मे ऐसा वायुमडल उत्पन्न कर देना है, जिसमे अभीष्ट प्रकार का साहित्य उत्पन्न हो सके और पनप सके। हम चाहते हैं कि साहित्य-केद्रो मे हमारी परिषदे स्थापित हो और वहाँ साहित्य की रचनात्मक प्रवृत्तियो पर नियमपूर्वक चर्चा हो, नियम पढे जाएँ, बहस हो, आलोचना-प्रत्यालोचना हो। तभी यह वायुमडल तैयार होगा। तभी साहित्य मे नए युग का आविर्भाव होगा।"

प्रेमचद सगठन के महत्त्व को समझते थे। इसीलिए उन्होने सगठित होकर नए रास्ते पर बढने का आदेश दिया था। वे चाहते थे कि इस तरह की परिषदे जगह-जगह स्थापित हो। वहाँ पर आलोचना-प्रत्यालोचना से, रचनात्मक प्रवृत्तियो की चर्चा से हिंदी-साहित्य मे एक नया युग आए। प्रगतिशील लेखको ने बहुत हद तक प्रेमचद के इस आदेश को पूरा किया है।

प्रगतिशील साहित्य देश की स्वाधीनता और जनतत्र का साहित्य है। सन् '30 ही मे प्रेमचद ने कहा था कि उनकी रचनाओ का ध्येय स्वाधीनता-प्राप्ति है। अपने अमल से उन्होंने तमाम साहित्यकारो को प्रेरणा दी थी कि वे भी स्वाधीनता-प्राप्ति को अपनी रचनाओं का लक्ष्य बनाएँ। साथ ही स्वाधीनता का मतलब 'जॉन' की जगह 'गोविद' को बिठाना नहीं था। वह देश मे एक नए ढग का जनतत्र चाहते थे,

जिसमे शक्ति आम जनता के हाथ मे हो। इसीलिए उन्होने किसानो की समस्या को इतने तीखे ढग से उठाया था और किसानो की लडाई को स्वाधीनता-आंदोलन का अभिन्न अग बना दिया था। देश पूरी आजादी और नए जनतत्र को हासिल करने के लिए किस रास्ते पर आगे बढ, किन उपायो से काम ले, इसके बारे मे प्रेमचद की सूझ-बूझ की एक झलक हम 'गोदान' मे देख चुके है। वह उस रास्ते की तरफ आ रहे थे जिस पर जनता का विशाल सयक्त मोर्चा साम्राज्यवाद से अपने हक लेने के लिए आगे बढता है। इस सयक्त मोर्चे मे मजदूरो और किसानो की एकता प्रमुख शक्ति है, इसकी झलक वह मेहता के चरित्र मे देते हैं, जो मजदूर के जीवन मे भाग लेता है और किसानो से भी अपना सबध कायम करता है। वह सघर्ष के पुराने तरीको को नाकाफी समझते थे यह बात उनके आखिरी उपन्यास 'मगलसूत्र' से जाहिर होती है। उन्होने किसान-सबधी प्राय अपने सभी उपन्यासो मे दिखलाया था कि विदेशी हकूमत हिंदुस्तान की जनता को खूनी आतक व जोरा दबाती है। 'कर्मभूमि' मे उन्होने इस आतक का नग्न रूप प्रकट किया था। इस आतक का कैसे खत्म किया जाए, इस समस्या को हल करने के लिए उन्होने मानो 'मगलसूत्र' की रचना की थी। यद्यपि यह उपन्यास पूरा नही हुआ फिर भी उसमे प्रेमचद की यह धारणा साफ झलकती है कि बुद्धिजीवियो को जनता का साथ देना चाहिए और साम्राज्यवादी पशुओ के साथ दया का व्यवहार न करके उनके शासन को खत्म कर देना चाहिए।

फिर भी सन् '36 तक हिंदुस्तान की जनता का एका काफी मजबूत न हुआ था और स्वाधीनता-आदोलन मे बहुत-सी खामियाँ थी। तब तक मजदूर-वर्ग सगठित होकर तमाम जनता के आदोलन की अगवाई करने के लिए आगे न आया था। यह कमजोरी प्रेमचद की रचनाओ मे झलकती है। 'मगलसूत्र' का नायक लगभग अकेला है, 'गोदान' का होरी अकेला जीवन-सग्राम मे जूझकर प्राण दे देता है। प्रेमचद ने सामती परपराओ का विरोध किया, पूँजीवादियो द्वारा साहित्य के नेतृत्व करने का भी विरोध किया। प्रगतिशील साहित्य का आदोलन हिंदुस्तान के पिछले सभी साहित्यिक आदोलनो से भिन्न था, वह पुरानी साहित्यिक परपरा की अगली कडी ही न थी बल्कि एक नए स्तर पर उस परपरा का नया विकास था। इसका कारण यह था कि आदोलन एक नई वैज्ञानिक विचारधारा से प्रभावित था। यह विचारधारा मार्क्सवाद की थी। प्रगतिशील साहित्य की शक्ति का यह एक बडा कारण था। प्रेमचद के विचारो पर जहाँ-तहाँ इस वैज्ञानिक विचारधारा की छाप दिखाई देती है, लेकिन उसकी क्रातिकारी भूमिका, उसका युगातरकारी महत्त्व उनके सामने स्पष्ट नही था।

जिस नए साहित्य के सृजन और प्रचार के लिए प्रेमचद आदोलन कर रहे थे, वह एक विशेष युग की आवश्यकताओ की पूर्ति करनेवाला साहित्य था। वह युग साम्राज्यवादी पराधीनता का युग था, किसानो की सामती दासता का युग था, बडे

पूँजीपतियो और उनके प्रतिनिधियों की कूटनीति का युग था। इस युग मे जनता को स्वाधीनता और जनतत्र के लक्ष्य तक ले जानेवाले साहित्य का नाम—विशिष्ट अर्थ मे—प्रगतिशील साहित्य है। उसकी विशेषता यह है कि वह जनता की सेवा करनेवाला साहित्य है और वैज्ञानिक विचारधारा से प्रभावित है। ये सब बाते बहुत धीरे-धीरे स्पष्ट होकर हमारे सामने आई हैं; इसलिए किन्ही प्रश्नो पर प्रेमचद मे असगतियाँ मिले तो आश्चर्य की बात नही। एक बात निर्विवाद है और वह यह कि प्रेमचद के बाद एक भी लेखक हिंदी मे ऐसा नही आया जो किसानो की जिंदगी को इतने नजदीक से जानता हो। प्रेमचद की शक्ति का यह बहुत बडा, शायद सबसे बडा, कारण था। वह हिंदुस्तान की बहुसख्यक जनता—खेतो मे काम करनेवाली जनता—की जिंदगी को बहुत अच्छी तरह जानते थे और यह समझना चाहिए कि मार्क्सवाद की वैज्ञानिक विचारधारा हमारे गले से नही उतरी, अगर प्रेमचद की तरह हमने अपनी जनता से घनिष्ठ मेल-जोल नही पैदा किया।

प्रेमचद एक नए ढग के साहित्य की माँग कर रहे थे, उसके रचनेवाले साहित्यकार से एक नए ढग का लेखक बनने की माँग कर रहे थे। अप्रैल सन् '36 के 'हस' मे उन्होने 'दिल्ली मे हिंदुस्तानी सभा' नाम की टिप्पणी मे जो विचार प्रकट किए हैं, उनसे मालूम होता है कि वे प्रगतिशील साहित्य के आदोलन की तरफ किन दृढ कदमो से बढ रहे थे। इसमे हिंदी और उर्दू के दरबारी साहित्य की आलोचना करते हुए उन्होने लिखा था—"हिंदी और उर्दू-साहित्य बदकिस्मती से ऐसे जमाने से गुजरे, जब साहित्य ने आम जिंदगी से नाता तोड-सा लिया था, और उनकी सारी ताकत विरह और विलाप के दुखडे रोने मे कटती थी, या बहुत हुआ तो शराब की तारीफ की और दुनिया की अनित्यता पर फिलासफी बघारी, लेकिन दुनिया मे जो साहित्य जीते-जागते हैं, उन्होने कौम की तारीख बनाई है, उसकी सस्कृति बनाई है। अदीब ही कौम का पथ-प्रदर्शक होता है। उसका दिल प्रेम की ज्योति से भरा होता है। उसमे तास्सुब और तगखयाली के लिए जगह नही होती। आज युद्धवाद से लडनेवाले कौन लोग हैं? यही अदीब। ऐसी कौन-सी क्राति है, जिसका बीजारोपण अदीबो ने न किया हो?"

युद्धवाद का विरोध करनेवाले लेखको का जिक्र करके प्रेमचद ने उनसे हिंदुस्तान के स्वाधीनता-प्रेमी लेखको का सबध जोडा है। वह दिन-पर-दिन दुनिया की जनता का और जनता के लेखको का भाईचारा मजबूत होता हुआ देख रहे थे। बीमारी की हालत मे वह गोर्की की शोक-सभा के लिए भाषण लिख रहे थे। जब उनकी पत्नी ने कहा—"वह कौन हिंदुस्तानी थे?"तब प्रेमचद ने जवाब दिया—"गोर्की इतना बडा लेखक था कि उसके बारे मे देश या जाति का सवाल ही पैदा नही होता।" और जब सभा से लौटकर आए तब कहा—"कमजोरी आए या चाहे जो कुछ। कही इस तरह बैठा जाता है?" प्रेमचद के लिए मशहूर है कि वह भीड-भाड और जलसो से दूर रहते थे, लेकिन अपने अतिम दिनो मे एक नया जोश

उन्हे रोग-शय्या से उठाकर सभाओ मै ले जाता था । वह जिस कमंठता का प्रचार कर रहे थे, अपने जीवन मे स्वय उसका आचरण भी कर रहे थे ।

प्रेमचद ने साहित्यकारो के लिए लिखा था कि उन्होने कौम की तारीख बनाई है, उसकी सस्कृति बनाई है । प्रेमचद किस कौम की तारीख बनानेवाले साहित्यकार थे ? वैसे तो उनके साहित्य का आदर सारे हिदुस्तान मे हुआ है, लेकिन वह खासतौर से हिंदी-भाषी जाति के लेखक थे । वह हिदुस्तानी कौम की तारीख बनानेवाले साहित्यकार थे । उन्होने हिंदी और उर्दू दोनो ही मे रचनाएँ की । हिंदी और उर्दू के लेखको को नजदीक लाने मे, हिंदी और उर्दू के सामती साहित्य का मुकाबला करने मे, हिंदी और उर्दू के नए साहित्य मे आजादी और जनतत्र के भाव और विचार भरने मे प्रेमचद ने हमारी जाति की अद्वितीय सेवा की है । तुलसीदास के बाद हिंदी के वह सबसे बडे साहित्यकार थे जिन्हे हमारी किसान-जनता ने अपनाया । जहाँ-जहाँ हिंदी-उर्दू पढनेवालो ने प्रेमचद की रचनाओ मे रस लिया, वहाँ-वहाँ जातीय एकता का भाव और मजबूत हुआ ।

हिंदुस्तानी कौम की एकता मे हिंदी-उर्दू का विवाद बहत बडी बाधा बना हुआ था । प्रेमचद इनके लिखनेवालो को दो कौमो का लेखक न मानते थे । वह उन्हे नजदीक लाना चाहते थे जिससे कि एक मिली-जली साहित्यिक भाषा का चलन हो सके । दिल्ली मे हिंदुस्तानी सभा के स्थापित होने पर उन्होने उसका स्वागत किया था, क्योकि उसमे हिंदी और उर्दू के लेखक एक साथ बैठते और बहस करते थे । हिंदी-उर्दू के लेखको का परस्पर मिलना-जुलना और एक साथ भाषा और साहित्य की समस्याओ पर विचार करना उनकी नजरो मे कितना जरूरी था, यह 'हिंदुस्तानी सभा' पर उनकी टिप्पणी से जाहिर होता है । इसमे उन्होने लिखा था—"जब उर्दू का एक अदीब अपनी कोई रचना ऐसे समाज के सामने पढ़ेगा, जिसमे हिंदी के लेखक भी शरीक हैं तो वह ऐसी भाषा लिखने की कोशिश करेगा, जो हिंदी वालो की समझ मे आए । इसी तरह हिंदी का लेखक उर्दू के अदीबो की मडली मे अपनी भाषा को सुबोध रखने पर मजबूर होगा ।" इस तरह के परस्पर प्रभाव और आदान-प्रदान से वह एक मिली-जली साहित्यिक शैली के विकास की आशा करते थे ।

इस तरह के प्रयोग की सफलता एक दूसरी बात पर भी निर्भर है और वह यह कि इस तरह की सभाओ मे शामिल होनेवाले लेखक किस हद तक जनता के लिए लिखते है और किस हद तक अपने जीवन मे जनता के नजदीक हैं । जनता के लिए न लिखने पर साहित्यकार पुरानी लफ्फाजी और पुराने अलकारो की दुनिया मे चक्कर लगाता रहता है और तब हिंदी और उर्दू के लेखक एक-दूसरे से सीखने के बदले एक-दूसरे के कठिन शब्द ढूँढने मे लग जाते हैं । एक मिली-जुली साहित्यिक भाषा के जरिए कौम की सेवा करने और उसको सगठित करने का सवाल पीछे पड जाता है । जहाँ हिंदी-उर्दू लेखको के मिलकर काम करने और सभाएँ चलाने क

काम पूरी तरह सफल नही हुए, वहाँ असफलता का मुख्य कारण जनता के लेखको का अलगाव समझना चाहिए।

एक मिली-जुली साहित्यिक शैली गढने के पक्ष मे होते हुए भी प्रेमचद उसे गढने की कठिनाइयाँ जानते थे। 'भारतीय साहित्य परिषद्' मे हिंदुस्तानी को जगह न देने पर मौलाना अब्दुल हक की आलोचना का जवाब देते हुए उन्होंने जून सन् '36 के 'हस' मे लिखा था—"और जो हिंदुस्तानी अभी व्यवहार मे नही आई, और ज्यादा हिमायती नही निकले तो कोई ताज्जुब नही। जो लोग 'हिंदुस्तानी' का वकालतनामा लिये हुए है, और उनमे एक इन पक्तियो का लेखक भी है, वह भी अभी तक 'हिंदुस्तानी' का कोई रूप खडा नही कर सके। केवल उसकी कल्पना-मात्र कर सके हैं, यानी वह ऐसी भाषा हो, जो उर्दू और हिंदी दोनो ही के सगम की सरल मे हो, जो सुबोध हो और आम बोल-चाल की हो।"

इससे नतीजा यही निकलता था कि एक मिली-जुली साहित्यिक शैली की जरूरत थी। हिंदी को बहुत ज्यादा सस्कृतमय और उर्दू को फारसी-अरबीमय बनाने का विरोध करना सही था, लेकिन हिंदी और उर्दू की जो शैलियाँ चल रही थी उन्हे एकाएक छोडा नही जा सकता था। प्रेमचद हिंदी और उर्दू दोनो मे लिखते थे और उनकी हिंदी-उर्दू मे भेद भी रहता था इस पर कुछ लोगो ने उन पर यह तोहमत लगाई कि वह मुँह मे तो हिंदुस्तानी की हिमायत करते हैं, अमल मे हिंदी का प्रचार करते है।

'हस' के 'प्रेमचद-स्मृति-अक' मे भी अशफाक हुसेन ने एक दिलचस्प घटना का जिक्र किया है। "अलीगढ मे 'सुहैल' नाम का एक उर्दू अखबार निकलता है। उसमे छपने के लिए प्रमचद जी ने अपनी दो रचनाएँ भेजी थी, जिनमे से एक तो हिंदी मे थी और दूसरी उर्दू मे। इसके लिए एक साहब ने प्रेमचद के बारे मे बहुत-सी उल्टी-सीधी बाते लिख डाली थी। उनकी हिंदीवाली रचना मे तो सस्कृत के कई शब्द थे और उर्दू वाली रचना मे उससे भी अधिक फारसी के शब्द थे। इसकी आलोचना जिस तरह के लोगो को करनी चाहिए थी, उसी तरह के लोगो ने की थी और कहा था कि 'प्रेमचद जी दो-रुखी चाले चलते हैं, दोनो तरफ से मिले रहना चाहते है और दोनो तरफ से अच्छे बने रहना चाहते हैं।'"

अगर प्रेमचद का यह दावा होता कि हिंदी-उर्दू का बायकाट करके तुरत हिंदुस्तानी रायज की जा सकती है, तो शायद इस आलोचना मे कुछ तथ्य होता। लेकिन जैसा कि हम देख चुके हैं, प्रेमचद हवाई सिद्धातकार नही थे, वह अमल मे तुरत एक मिली-जुली भाषा-शैली ईजाद करने की कठिनाइयाँ जानते थे। इसलिए हिंदी और उर्दू दोनो मे कुछ हेर-फेर के साथ लिखने की उनकी नीति सही थी, बोलचाल की कौमी जबान हिंदुस्तानी का समर्थन करना भी ठीक था।

'प्रेमचद-स्मृति-अक' मे श्री मोहम्मद आकिल ने इस तरह की दूसरी घटना का जिक्र किया है। "इस सिलसिले मे देहली के रिसाले 'साकी' ने जो तनकीद की थी

कि प्रेमचद जी उर्दू के लिए मरहूम हो चुके हैं, उसके बारे मे हँसकर कहने लगे कि 'साकी' के एडीटर को मैने लिखा है कि मैं उर्दू के लिए न सिर्फ जिंदा हूँ बल्कि ज्यादा जोरो से जी रहा हूँ।" प्रेमचद ने अपने अमल से दिखलाया कि साहित्य का जातीय रूप समृद्ध करने मे, उसमे जनवादी विचारो का समावेश करने मे भाषा की समस्या हल करने मे मदद मिलती है। उनके जल्दबाज आलोचक, जो तुरत हिंदुस्तानी रायज करना चाहते थे, इस दशा मे ऐसा कोई बडा काम नही कर पाए।

प्रेमचद को देश के सामाजिक और सास्कृतिक जीवन मे अग्रेजी भाषा की प्रभुता खलती थी। यह उनकी साम्राज्य-विरोधी राष्ट्रीय चेतना, उनके आत्मसम्मान की भावना का जबरदस्त सबूत था। किसी ने साम्राज्यवादियो को अग्रेजी लादने की नीति के खिलाफ, बुद्धिजीवियो मे इस नीति के सामने सिर झुकाने की नीति के खिलाफ इतने रोष और तर्क के साथ बगावत न की थी, जैसे प्रेमचद ने। सन् 34 मे बबई के राष्ट्रभाषा सम्मेलन मे उन्होने पशुओ और मनुष्यो मे यह भेद बतलाया कि मनुष्य भाषा इस्तेमाल करते हैं, पशु नही करते। "समाज की बुनियाद भाषा है।" इस महत्त्व की जगह मे अग्रेजी यहाँ की भाषाओ को हटाने की कोशिश करती रही थी। सारे देश के लोग आपस मे किस भाषा का व्यवहार करे, इस बारे मे नेताओ वगैरह की उदासीनता का जिक्र करते हुए उन्होने इस सम्मेलन मे कहा था—"इस लापरवाही का खास सबब है—अग्रेजी जबान का बढ़ता हुआ प्रचार और हममे आत्मसम्मान की वह कमी, जो गुलामी की शर्म को नही महसूस करती।"

प्रेमचद ने जैसे 'सेवासदन' मे नारी के आत्मसम्मान को सूत्र रूप मे पकड लिया था, वैसे ही उनके भाषा-सबधी व्याख्यानो मे राष्ट्रीय आत्मसम्मान की भावना सूत्र की तरह मौजूद है। अपने देश के कामकाज मे दूसरो की भाषा इस्तेमाल करना—वह भी साम्राज्यवादी शासको द्वारा लादी हुई भाषा का इस्तेमाल करना—कितनी बडी गुलामी है, कितना बडा राष्ट्रीय अपमान है, इस बात को कम लोग समझते हैं। किसी भी देश और जाति की उन्नति मे यह आत्मसम्मान की भावना जनता मे जोश भर देती है, उसे सगठित होकर नए-नए मोर्चे फतह करने मे बेहद मदद देती है। प्रेमचद का स्वाभिमान यह देखकर तिलमिला उठता था कि गुलाम देश के बुद्धिजीवी अपने मालिको की भाषा पर अभिमान करते हैं। अग्रेजी भाषा के प्रभुत्व को उन्होने साम्राज्यवादी प्रभुत्व का ही अटूट हिस्सा बतलाते हुए कहा था—"अग्रेजी राजनीति का, व्यापार का, साम्राज्यवाद का, हमारे ऊपर जैसा आतक है, उससे कही ज्यादा अग्रेजी भाषा का है। अग्रेजी राजनीति से, व्यापार से, साम्राज्यवाद से तो आप बगावत करते हैं, लेकिन अग्रेजी भाषा को आप गुलामी के तौक की तरह गर्दन मे डाले हुए हैं।"

प्रेमचद के इन उचित क्रोध से भरे हुए वाक्यो के सामने कोई दलील कारगर नही हो सकती। सवाल है, राष्ट्रीय आत्मसम्मान का। कौन-सा देश, जो स्वाधीन

है या स्वाधीनता के लिए लड रहा है, हमारी तरह दूसरो की जबान को अपन राजकाज की जबान बनाए हुए है ? प्रेमचद ने उन लोगो को कडी फटकार बतलाई थी जो इस गुलामी पर नाज करते थे । उन्होने तमाम अग्रेज-भक्तो पर घडो पानी उँडलते हुए कहा था—"अग्रेजी राज्य की जगह आप स्वराज्य चाहते हैं । उनके व्यापार की जगह अपना व्यापार चाहते है, लेकिन अग्रेजी भाषा का सिक्का हमारे दिलो पर बैठ गया है, उसके बगैर हमारा पढा-लिखा समाज अनाथ हो जाएगा । पुराने समय मे आर्य और अनार्य का भेद था, आज अग्रेजीदाँ और गैर-अग्रेजीदाँ का भेद है । अग्रेजीदाँ आर्य है । उसके हाथ मे, अपने स्वामियो की कृपादृष्टि की बदौलत कुछ अख्तियार है, रौब है, सम्मान है, गैर-अग्रेजीदाँ अनार्य है और उसका काम केवल आर्यो की सेवा-टहल करना है और उनके भोग-विलास और भोजन के लिए सामग्री जुटाना है ।" प्रेमचद ने भारत के अग्रेजी-प्रेमी आर्यो के लिए ये शब्द अठारह साल पहले कहे थे । उनका महत्त्व आज भी कम नही हुआ ।

प्रेमचद ने इन अग्रेजी-भक्तो की सबसे बडी कमजोरी पकड ली थी—जनता से उनकी दूरी । जितना ही ये लोग जनता से दूर थे, उतनी ही प्रमचद को जनता मे जबरदस्त आस्था थी । "और जनता को आप जो चाहे इलजाम दे ले, वह बेवकूफ नही है । आपने समझदारी का जो तराजू अपने दिल मे बना रखा है, उस पर वह चाहे पूरी न उतरे, लेकिन हम दावे से कह सकते हैं कि कितनी ही बातो मे वह आपसे और हमसे कही ज्यादा समझदार है ।" जनता मे यह दृढ विश्वास लिए हुए प्रेमचद अपने जमाने के अधिकाश राजनीतिक नेताओ और साहित्यकारो से ऊपर उठे हुए नजर आते हैं । जब और लोग जनता के पिछडेपन और अशिक्षा का रोना रो रहे थे, तब यह मनस्वी लखक अपने देश की महान् जनता के सामने सिर झुकाकर उससे कुछ सीखने के लिए आगे आता था ।

जनता के लिए प्रेमचद के दिल मे जहाँ इतनी इज्जत थी, वहाँ यह भी देखते ही बनता है कि वह जनता के कर्णधारो से किस शैली मे बात करते है । दिसबर सन् '34 मे दक्षिण भारत हिदी-प्रचार-सभा के अधिवेशन मे उन्होने कहा था—"जो राष्ट्र के अगुआ हैं, जो इलेक्शनो मे खडे होते हैं और फतह पाते हैं, उनसे मैं बडे अदब के साथ गुजारिश करूँगा कि हजरत, इस तरह के एक सौ इलेक्शन आएँगे और निकल जाएँगे, आप कभी हारेगे, कभी जीतेगे, लेकिन स्वराज्य आपसे उतनी ही दूर रहेगा, जितनी दूर स्वर्ग है । अग्रेजी मे आप अपने मस्तिष्क का गूदा निकालकर रख दे, लेकिन आपकी आवाज मे राष्ट्र का बल न होने के कारण कोई आपकी उतनी भी परवाह न करेगा, जितनी बच्चो के रोने की करता है । बच्चो के रोने पर खिलौने और मिठाइयाँ मिलती हैं । वे शायद आपको भी मिल जाएँ, जिससे आपकी चिल्ल-पो से माता-पिता के काम मे विघ्न न पडे ।"

प्रेमचद के इन शब्दो से जाहिर होता है कि कितने निडर होकर वह जनता के पक्ष का समर्थन करते थे, कितनी गहराई से वह नकली और असली देश-भक्ति को

परख रहे थ, कैसे मर्मबेधी वाक्यो से वह दभी और पाखडी मनुष्यो के कवच तोडकर रख देते थे। अग्रेज माता-पिता के काम मे विघ्न न पडे, इसलिए वे खिलौने और मिठाइयाँ दे देगे—मालूम होता है, ये वाक्य उन्होने आज ही कहे हैं, उनकी ताजगी मे इतना कम फर्क आया है।

प्रेमचद हिंदी-उर्दू को एक जबान मानते थे। राष्ट्रभाषा-सम्मेलनवाले भाषण मे उन्होने हिंदी-उर्दू का भेद सस्कृत और फारसी शब्दो के प्रयोग पर निर्भर बतलाया था। अग्रेजी की मिसाल देते हुए उन्होने कहा था कि उसमे लैटिन, ग्रीक या एग्लो-सैक्सन शब्दो की बहुतायत से भाषा नही बदल जाती, वैसे ही फारसी या सस्कृत शब्दो की बहुतायत से हिंदुस्तानी भाषा भी नही बदल जाती। इस भाषण मे उन्होने हिंदी की बोलियो के स्वभाव की तरफ ध्यान दिलाया था, किस तरह वे सस्कृत शब्दो को ज्यो-का-त्यो नही लेती। उन्होने इस कुतर्क का जोरो से खडन किया कि हिंदी मे सस्कृत शब्दो की भरमार करने से वह सभी प्रातो के लिए आसान हो जाएगी। उन्होने फारसी के लिए भी कहा था कि उसे देशी उच्चारण के अनुकूल बनना पडेगा और उसके शब्दो मे जो शीनकाफ की कैद लगी हुई है, उसे ढीला करना होगा। वह हिंदी-उर्दू को उच्च वर्गो के हाथ से छीनकर जन-साधारण के काम-काज मे डालकर उसे एक कर देना चाहते थे जो वह वास्तव मे पहले से ही थी, सिर्फ साहित्य मे उसकी यह एकता पनप न पाई थी।

हिंदी-उर्दू की बुनियादी एकता के बारे मे प्रेमचद कहते हैं—"हमारे सूबे के देहातो मे रहने वाले मुसलमान प्राय देहातियो की भाषा ही बोलते हैं। जो बहुत-से मुसलमान देहातो से आकार शहरो मे आबाद हो गए हैं, वे भी अपने घरो मे देहाती जबान ही बोलते है। बोलचाल की हिंदी समझने मे न तो साधारण मुसलमानो को ही कोई कठिनाई होती है और न बोलचाल की उर्दू समझने मे साधारण हिंदुओ को ही। बोल-चाल की हिंदी और उर्दू प्राय एक-सी ही हैं।"

यहाँ प्रेमचद ने इस अवैज्ञानिक सिद्धात का खडन किया है कि भाषा का आधार धर्म है और इसलिए हिंदुओ की भाषा हिंदी है और मुसलमानो की भाषा उर्दू है। प्रेमचद की यह धारणा बालमुकुद गुप्त जैसे जनवादी लेखको के विचारो के अनुकूल थी। उन्होने धर्म के नाम पर भाषा और कौम का बँटवारा करनेवाले साम्राज्यवादी और सामती भाषा-वैज्ञानिको के मत का खडन किया और हिंदुस्तानी जाति की भाषा और संस्कृति के विकास मे बहुत बडी मदद दी। इस जाति की भाषा के लिए वह देवनागरी लिपि के पक्षपाती थे। राष्ट्रभाषा-सम्मेलन मे उन्होने कहा था—"प्रातीय भाषाओ को हम प्रातीय लिपियो मे लिखते जाएँ, कोई एतराज नही, लेकिन हिंदुस्तानी भाषा के लिए हिंदी लिपि रखना सुविधा की बात है, इसलिए नही कि हमे हिंदी लिपि से खास मोह है, बल्कि हिंदी लिपि का प्रचार बहुत ज्यादा है और उसके सीखने मे भी किसी को दिक्कत नही हो सकती। और जो लोग उर्दू लिपि के आदी हैं, उन्हे हिंदी लिपि का व्यवहार करने के लिए मजबूर नही किया जा सकता।

अगर जबान एक हो जाए, तो लिपि का भेद कोई महत्त्व नही रखता।"

यहाँ प्रेमचद ने बहस और झगडे की जड की तरफ इशारा किया है—शब्दो का चुनाव, फारसी से या सस्कृत से। जो लोग इस मूल झगडे को भूलकर हिंदी-उर्दू-विवाद को लिपि का विवाद समझ बैठते हैं, उन्हे प्रेमचद ने सचेत किया है। शब्दो के चुनाव के बारे मे वह जानते थे कि सस्कृत और फारसी के बहुत-से शब्द घुल-मिलकर कौमी जबान मे एक हो जाएँगे, लेकिन लिपियाँ तो घुल-मिलकर एक नही हो सकती। उन दो लिपियो मे से एक लिपि चुनी ही जाएगी। प्रेमचद की राय थी—और सही राय थी कि यह लिपि देवनागरी होनी चाहिए। साथ ही वह उर्दू लिपि का व्यवहार करनेवालो को इस बारे मे पूरी आजादी देना चाहते थे जिससे कि वे स्वेच्छा से अपनी कौमी जबान के लिए एक लिपि की जरूरत को समझकर उसे अपना सके।

साहित्यिक भाषा को एक करने की जिम्मेदारी प्रेमचद ने साहित्यकारो पर डाली थी। लाहौर के 'आर्य भाषा-सम्मेलन' मे उन्होने इस विषय मे राजनीतिक नेताओ की गफलत पर उन्हे कडी फटकार बतलाई थी। अग्रेजो की नकल करनेवालो के लिए उन्होने कहा—"वह इतनी बुलदी पर पहुँच गए है कि नीचे की धूल और गर्मी उन पर कोई असर नही कर सकती।" बुद्धिजीवियो से उन्होने कहा था—"Intelligensia मे जो कुछ शक्ति और प्रभाव है, वह जनता ही से आता है।" जनता से साहित्यकार ताकत पाता है, इसलिए अपनी ताकत पहचानकर प्रेमचद ने उसे जातीय पुनर्जीवन के काम मे आगे बढने के लिए निमंत्रित किया। साहित्य के लिए उन्होने उसी लाहौरवाले भाषण मे कहा—"साहित्य राजनीति के पीछे चलने वाली चीज नही, उसके आगे-आगे चलने वाला 'एडवास गार्ड' है। वह उस विद्रोह का नाम है जो मनुष्य के हृदय मे अन्याय, अनीति और कुरुचि से होता है।"

हिंदी-उर्दू को एक करने, कौमी भाषा और सस्कृति का नया विकास करने की जिम्मेदारी प्रेमचद अगली पीढी पर छोड गए थे। उनके बताए हुए रास्ते पर चलकर ही हम उस जिम्मेदारी को पूरा कर सकते है।

11. युगनिर्माता प्रेमचंद

प्रगतिशील लेखक-सम्मेलन के पहले अधिवेशन मे सभापति पद से भाषण देते हुए प्रेमचद ने साहित्यकार के लिए कहा था कि "वह देश-भक्ति और राजनीति के पीछे चलनेवाली सचाई भी नही, बल्कि उसके आगे मशाल दिखाती हुई चलनेवाली सचाइ है।

प्रमचद ऐसी ही सचाइ थे। देश-भक्ति और राजनीति के पीछे चलनेवाली सचाइ नही, उसके आगे मशाल दिखाती हुई चलनेवाली सचाई थ। केवल महफिल सजाने और मनोरजन का सामान जटानेवाले साहित्यकार हरगिज नही। वह एक युगनिर्माता साहित्यकार थे, केवल साहित्य मे युग को नाम देनेवाल नही बल्कि अपने समय के सामाजिक जीवन को एक नई गति और एक नई दिशा प्रदान करनेवाले। जिस समय विधवा-विवाह को भी एक क्रातिकारी सधार समझा जाता था, उस समय नारी-मात्र की पराधीनता पर उन्होने 'सेवासदन' लिखा और वेश्यावृत्ति के सामती आधार को उघारकर पाठको के सामने रख दिया। जिस समय जलियाँवाला बाग और रौलट ऐक्ट मे भारत का पद-दलित आत्मसम्मान जाग उठा था, उस समय प्रमचद ने 'प्रेमाश्रम' लिखकर किसानो पर अग्रजी राज्य और उसके दलालो के अत्याचार दिखाकर बतलाया कि स्वाधीनता आदोलन की पूरी ताकत इनकी समस्याओ को लेकर आगे बढने मे मिलेगी। जिस समय देश मे बडे पैमाने पर राष्ट्रीय आदोलन न चल रहा था, प्रेमचद ने 'रगभूमि' मे दिखलाया कि जनता अब भी लड रही है, वह हारी नही है, वह जीतेगी। 'गोदान' मे उन्होने पढे-लिखे नौजवानो और किसानो की एकता की तरफ सकेत किया और किसानो के महाजनी शोषण का चित्र खीचा, जिसे किसान-आदोलन मे तब जगह न दी गई थी। उन दिनो जब मदिर-प्रवेश को अछूत-समस्या हल करने का सबसे बडा साधन माना जाता था, उन्होने 'कर्मभूमि' मे अछूत किसानो और खेत-मजदूरो की भूमि-समस्या पर दृष्टि केंद्रित की और उसमे लगानबदी की लडाई को उनकी मुख्य लडाई बनाया। प्रेमचद ने अपने उपन्यासो मे जो सघर्ष, स्वाधीनता-आदोलन के जो रूप दिखाए, वे सब हमारे सामने आए। यह इस बात का सबूत है कि वह

देशभक्ति और राजनीति के आगे मशाल दिखाती हुई चलनेवाली सचाई थे।

प्रेमचद भविष्य-द्रष्टा थे। उन्होने 'गबन', 'कर्मभूमि', 'कायाकल्प', 'रगभूमि' तथा 'गोदान' मे ऐसे देश-भक्तो का रूप दिखाया जो वक्त आने पर जनता से विश्वासघात कर जाते थे, जिनके लिए अपना हित, अपने मालिको का हित जनता के हितो से बढ़कर था। प्रेमचद ने इन पात्रो के द्वारा जनता के महान् शिक्षक का काम किया, उसकी चेतना को निखारने मे बहुत बडा योग दिया।

प्रेमचद किसी पार्टी के साथ नही थे। वह मानो किसी आनेवाली पार्टी का इतजार कर रहे थे, जो जनता मे नई राजनीतिक चेतना फैलाए। उन्होने मुशी दयानारायण निगम को लिखा था—"आपने मुझसे पूछा था कि मैं किस पार्टी के साथ हूँ, मैं किसी पार्टी से नही हूँ। इसलिए कि इस वक्त दोनो मे से कोई पार्टी असली काम नही कर रही है। मैं उस आने वाली पार्टी का मेबर हूँ, जो अवामअलनास (जन-साधारण) की सियासी तालीम को अपना दस्तूरुल-अमल (विधान) बनाएगी।" (हसराज 'रहबर' द्वारा *'प्रेमचद जीवन और कृतित्व'* मे उद्धृत)।

यह पत्र उन्होने सन् '23 मे लिखा था। सात साल बाद 'विशाल भारत' मे उन्होने घोषित किया था—"हाँ, यह जरूर चाहता हूँ कि दो-चार उच्चकोटि की रचनाएँ छोड जाऊँ, लेकिन उनका उद्देश्य भी स्वतत्रता-प्राप्ति ही हो।"

प्रेमचद कलाकार की तटस्थता मे विश्वास न करते थे। वह जनता के दुख-सुख मे भाग लेनेवाले कलाकार थे। इसलिए उनकी कथाएँ इतनी प्रभावशाली हैं।

वह एक यथार्थवादी कलाकार थे। वह जीवन की सचाई आँकना चाहते थे, जीवन के भ्रमो का खडन करना चाहते थे। 'सेवासदन' से 'गोदान' तक उन्होने कथा-साहित्य मे यथार्थवाद को इस तरह विकसित किया जिस तरह एक ही साहित्यकार बहुत कम कर पाता है। अपने यथार्थवाद से उन्होने हिंदी-कथा-साहित्य के लिए वह राज-मार्ग बना दिया है, जिस पर नई पीढी के लेखक निर्भय होकर आगे बढ सकते है।

प्रेमचद का साहित्य बीसवी सदी के हिंदुस्तान का सच्चा इतिहास है। हमारी जनता की सहृदयता, सहनशीलता और वीरता उनकी रचनाओ मे फूल की तरह खिली हुई हैं। अग्रेजो का बर्बर पुलिस-राज, खूनी आतक और उनके मित्रो का जनता से विश्वासघात उनकी रचनाओ मे काले कुहरे की तरह छाया हुआ है।

हिंदुस्तान के लोग एक भरा-पूरा, सुखी, ससस्कृत, समृद्ध जीवन बिताना चाहते हैं- यह साध उनकी रचनाओ मे बार-बार झलकती है। इस साध को पूरा करने के लिए वे कैसा पराक्रम दिखाते हैं, इसकी कथा प्रेमचद का साहित्य है।

प्रेमचद नाटककार भी थे, लेकिन वहाँ उन्हे इतनी सफलता नही मिली। वह एक सफल सपादक थे और 'हस' के जरिए उन्होंने साहित्यकारो की एक नई पीढी

को शिक्षित किया। 'मगलसूत्र' मे—जो उनका अधूरा और आखिरी उपन्यास है—उन्होने एक साहित्यकार को ही नायक बनाया है जो 'गोदान' के मेहता की तरह देश-सेवा का व्रत लेता है। वह हिंदी-लेखको से बडी-बडी आशाएँ रखते थे जिन्हे पूरा करना नई पीढी का कर्तव्य है। प्रेमचद को बीमारी की हालत मे लिखते देखकर श्री जनार्दन राय ने उनसे कहा था—"यदि कही कुछ हो गया तो क्या होगा?" और प्रेमचद ने जवाब दिया—"क्या होगा, मर ही तो जाऊँगा। तुम लोग हो। और फिर कौन जाने मै मरूँगा भी।"

नही, प्रेमचद मरे नही हैं। उनकी आवाज हिंदी-भाषी प्रदेश की जनता को आज भी एक कर रही है। उसे अपने कर्तव्यो की याद दिलाती हुई आगे बढने के लिए हिम्मत दिलाती है। उनकी आवाज सुदूर दक्षिण तक पहुँचकर उत्तर और दक्षिण को नजदीक लाती है। कलकत्ता और बबई के मजदूर उनकी आवाज सुनकर एक दूसर के पास आते हैं।

प्रेमचद की आवाज सुनकर हमे अपने देश और जनता पर गर्व होता है, उस जातीय सस्कृति पर गर्व होता है, जिसे प्रेमचद सँवार रहे थे। प्रेमचद की आवाज उस समय उठी थी जब पहले महायुद्ध मे मानव-ध्वसी तोपो की गडगडाहट हवा मे गूँज रही थी। आज भी जब विश्व पर तीसरे महायुद्ध के बादल छाए हुए हैं, उस स्वाधीनता-सग्राम के सैनिक की वाणी विश्व-शाति की रक्षा के लिए जनता का आहवान करती है। प्रेमचद की आवाज भारत की अजेय जनता की आवाज है। इसलिए प्रेमचद आज भी हमारे साथ हैं।

12. समस्याएँ

प्रेमचद, महात्मा गाँधी, तोल्स्तोय—इनकी विचारधारा का आपस मे क्या सबध है ?

ऊपर से देखने मे लगता है कि इन तीनो की विचारधारा मे बडा गहरा सबध है। गाँधी जी तोल्स्तोय से प्रभावित थे, इन दोनो महात्माओ मे परस्पर पत्र-व्यवहार हुआ था। गाँधी जी अहिंसात्मक प्रतिरोध की नीति मे तोल्स्तोय को अपना शिक्षक मानते थे। गाँधी जी और उनके नेतृत्व मे चलनेवाले राष्ट्रीय स्वाधीनता आदोलन के प्रभाव से प्रेमचद ने सरकारी नौकरी छोडी। भारत के राजनीतिक जीवन पर गाँधी जी का इतना गहरा प्रभाव था कि उनके विरोधी भी उससे मुक्त नही है। फिर प्रेमचद तो राष्ट्रीय आदोलन के साथ थे, अपने युग के प्रतिनिधि लेखक थे। उन पर गाँधी जी के जीवन और विचारधारा का प्रभाव कही-न-कही होना ही चाहिए।

तोल्स्तोय का युग कौन-सा था ? उस युग की कौन-सी विशेषताएँ थी ? उन विशेषताओ से तोल्स्तोय की विचारधारा का क्या सबध है ?

तोल्स्तोय पर अपने प्रसिद्ध लेखो मे लेनिन ने कहा था कि तोल्स्तोय का युग 1861 से 1904 तक का युग है। इस युग मे विश्व-पैमाने पर पूँजीवाद का भारी विकास हो चुका था। रूस मे भी पूँजीवाद का विकास हुआ था। किसानो के जीवन मे पूँजीवादी क्रांति हो रही थी। उसका मुख्य उद्देश्य जारशाही और जमीदारी प्रथा का खात्मा करना था, पूँजीपति-वर्ग का उच्छेद करना नही। इस युग मे पुरानी दास-प्रथा के अवशेष कायम थे, साथ ही देहात मे पूँजीवाद का विकास भी तेजी से हो रहा था। "1861 के बाद, पुरानपथी रूस का ढाँचा विश्व-पूँजीवाद के प्रभाव के कारण तेजी से टूटने लगा। किसान भुखमरी से जान देने लगे। उन्हे ऐसी तबाही के दिन देखने पडे जैसे उन्होने पहले कभी नही देखे थे। वे अपनी जमीन छोडकर शहरो की ओर भागने लगे। तबाह किसानो को सस्ती मजदूरी पर लगाने से रेलो और कल-कारखानो का निर्माण तेजी से होने लगा। रूस मे बडी महाजनी पूँजी, बडे पैमाने के व्यापार और उद्योग-धधो का विस्तार हुआ।"

भारत मे भी किसान तबाह हो रहे थे। उनमे बहुत-से शहरो की ओर भाग रहे थे। लाखो किसान साल-दर-साल अकाल और भुखमरी के शिकार हुए। किंतु क्या भारत मे बडी महाजनी पूँजी का विकास हो रहा था? क्या यहाँ रूस की तरह बडे पैमाने पर व्यापार और उद्योग-धधो का प्रसार हो रहा था? उत्तर है, नही। भारत मे पूँजीवाद का विकास हो रहा था, अस्वाभाविक रूप से, रुक-रुककर, अग्रेजी राज के दलाल के रूप मे और उसके विरोध मे भी। भारतीय पूँजीवाद रूस की तुलना मे अविकसित था, बडी महाजनी पूँजी के विकसित होने का सवाल न था।

रूस के गाँवो मे पूँजीवादी क्राति हो रही थी। भारत के गाँवो मे अग्रेजो ने यहाँ के राजाओ, ताल्लुकेदारो और जमीदारो को अपना सहयोगी बनाकर सामती अवशेषो को मजबूत कर दिया था। यदि अग्रेजी राज के सहयोगियो पर नजर डाले तो उसकी तथाकथित प्रगतिशील भूमिका बहुत जल्दी स्पष्ट हो जाए। कश्मीर, हैदराबाद, राजस्थान के राजाओ और नवाबो को किसने पाल-पोसकर नया जीवन दिया था? सन् सत्तावन की लडाई से सबक सीखकर अग्रेजो ने अवध के ताल्लुकेदारो को अपना मित्र बनाया था। वे तमाम जमीदार और महाजन, जो किसानो का खून चूस रहे थे, अग्रेजी कानून द्वारा ही सुरक्षित थे।

रूस के गाँवो मे पूँजीवादी क्राति हो रही थी, यहाँ सामती अवशेष मजबूत किए गए थे। रूस मे व्यापार, उद्योग-धधे और महाजनी पूँजी अपना विकास कर रहे थे। भारत मे देशी पूँजीवाद विदेशी पूँजीवाद के आश्रय और विरोध की परिस्थिति मे बहुत रुक-रुककर विकसित हो रहा था। भारतीय जनता का मुख्य शोषक यहाँ रूस की तरह देशी पूँजीवाद नही था, वरन् विदेशी साम्राज्यवाद था। दोनो देशो की परिस्थितियो मे भारी अतर था।

लेनिन ने लिखा था कि 1905 से तोल्स्तोय-युग समाप्त हो गया। 1905 मे रूसी मजदूरो ने क्रांतिकारी सघर्ष किया और इस तरह समाजवादी क्रातियो का नया युग आरभ हुआ। 1917 मे रूसी मजदूरो ने लेनिन और उनकी बोल्शेविक पार्टी के नेतृत्व मे अपनी क्राति मे विजय पाई। ससार के इतिहास मे एक नया मोड आया। विश्व-साम्राज्यवाद का घेरा धरती के एक छोटे भाग मे टूट गया।

कालक्रम की दृष्टि से तोल्स्तोय-युग 1905 मे समाप्त हो गया। गाँधी जी भारतीय राजनीति मे प्रवेश 1905 के बाद करते हैं। उनके नेतृत्व मे चलनेवाला राष्ट्रीय स्वाधीनता आदोलन 1917 के बाद का है, उससे पहले का नही। विश्व-इतिहास की दृष्टि से उन्नीसवी सदी के तोल्स्तोय और सन् '20, '30 के गाँधी जी दो भिन्न युगो के प्रतिनिधि हैं। प्रेमचद का मुख्य रचनाकाल भी लगभग वही है जो राष्ट्रीय आदोलन का है।

तोल्स्तोय-युग का प्रभाव उन पर किस रूप मे पड़ा? उनकी विचारधारा अपने युग का प्रतिनिधित्व किस तरह करती है?

लेनिन ने अपने लेखों में बताया है कि रूस मे थोडे-से किसान अपने शत्रुओ से लडे; उनमें अधिकाश रोते-गिडगिडाते रहे, तोल्स्तोय-पथ का अनुसरण करते हुए अर्जियाँ भेजते रहे। "राजनीति से इस तोल्स्तोय-पथी किनाराकशी, राजनीति मे दिलचस्पी की कमी, राजनीतिक समझ-बूझ की कमी का नतीजा यह हुआ कि थोडे-से किसानो ने ही वर्गचेतन मजदूरो का साथ दिया।"

क्या हम गाँधी जी के लिए कह सकते हैं कि उन्होने लोगों को राजनीति से अलग रहने का पाठ पढ़ाया? क्या उन्होने लोगो को रोने-गिडगिडाने का रास्ता दिखाया? गाँधी जी ने इससे ठीक उल्टे काम किए। उन्होने काग्रेस की उस पुरानी नीति को बदला जो अग्रेजो के सामने रोना और गिडगिडाना ही जानती थी। अर्जीनवीस लोग काग्रेस छोडकर अलग गुटबद हुए। गाँधी जी का यह युगातरकारी महत्त्व था कि रूस से लगभग दुगुनी आबादी के विशाल देश—सयुक्त भारत—की करोडो जनता को उन्होने राजनीतिक जीवन की दीक्षा दी। क्रातिकारी और भी थे, आज भी हैं। लेकिन गाँधी जी से अधिक जनता को राजनीतिक जीवन मे खीचकर कौन लाया है?

गाँधी जी भारतीय जनता के शोषण का कारण खूब अच्छी तरह समझते थे। वे ब्रिटिश साम्राज्यवाद के शोषणतत्र का भीतरी हाल अच्छी तरह जानते थे। उनके स्वदेशी आदोलन से उस शोषणतत्र को भारी धक्का लगा। वे अग्रेजी राज की छत्रछाया मे पलनेवाले राजा-रईसो की भूमिका भी खूब पहचानते थे। उनका सारा प्रयत्न यह था कि राजाओ, ताल्लुकेदारो, साप्रदायिक नेताओ को धकियाते हुए काग्रेस को आम जनता का प्रतिनिधि बनाएँ। इस प्रकार गाँधी जी और तोल्स्तोय की राजनीतिक समझ-बूझ मे बडा अतर था।

तोल्स्तोय पादरियो की धूर्तता की आलोचना करते थे, किंतु धर्म को सभी सामाजिक समस्याओ का समाधान मानते थे। उनकी धर्म-सबधी—यानी धार्मिक रूढियो की—आलोचना से चिढकर पादरियो ने उन्हे धर्म-बहिष्कृत घोषित कर दिया था। भारत मे पडे-पुरोहित, धर्म के नाम पर ठग-विद्या चलानेवाले आचार्य लोग गाँधी जी के अछूतोद्धार से बेहद नाराज थे, गालियो से लेकर जूतो तक की बौछार उन्होने गाँधी जी पर की। किंतु गाँधी जी के लिए धर्म और राजनीति मे कोई मौलिक अतर्विरोध नही था। धर्म को व्यापक अर्थ मे ग्रहण करके, धर्म के सहारे, उन्होने करोडो आदमियो को सक्रिय राजनीति मे खीचा।

तोल्स्ताय के निष्क्रिय प्रतिरोध और अहिंसावाद की चर्चा लेनिन ने की है गाँधी जी तोल्स्तोय की तरह अहिंसावादी थे। किंतु उनकी अहिंसा हमेशा एक-सी नही रही। सन् '14 की लडाई मे वह अग्रेज़ो की मदद के लिए रगरूट भर्ती कर रहे थे। सन् '20 के आदोलन मे उन्होने अग्रेजी राज्य से असहयोग किया; आदोलन के दौरान जनता द्वारा दो-एक जगह हिसात्मक कार्यवाही होने पर उन्होने आदोलन बद कर दिया। सन् '30 मे उन्होने दूसरा आदोलन चलाया जिसमें अंग्रेजों के बनाए

हुए कानून तोड़े गए। दूसरा महायुद्ध छिडने पर उन्होने साम्राज्यवाद से असहयोग की नीति अपनाई। सन् '42 मे उन्होने 'भारत छोडो' का नारा दिया। इस आदोलन मे अग्रेजी कानून के अलावा और दूसरी चीजे भी तोडी गई। भारत के स्वाधीन होने पर जब पाकिस्तान ने कश्मीर पर हमला किया, तब कश्मीर की रक्षा के लिए भारतीय सैन्य-शक्ति के व्यवहार को उचित ठहराया। इस प्रकार सन् '14 से सन् '48 तक गाँधी जी की अहिंसा मे अनेक परिवर्तन हुए। इस बात को बहुत-से लोग जानते और मानते हैं कि किन्ही विशेष परिस्थितियो मे गाँधी जी अहिंसा के प्रयोग को उचित ठहराते थे।

गाँधी जी और तोल्स्तोय की अहिंसा मे दो युगो का अतर है, दोनो को एक-जैसा अहिंसावादी मानना गलत होगा।

लेनिन के अनुसार तोल्स्तोय की विचारधारा निराशावाद मे डूबी हुई है। ससार क्षणभगुर है, जो कुछ भी दिखाई देता है, सब मिट जाएगा—इस तरह के विचार जनता मे पैदा होते है जब पुरानी व्यवस्था टूटती है और लोगो को तबाही से बचने का रास्ता दिखाई नही देता।

गाँधी जी ने लोगो को बताया कि अकाल, भुखमरी और अशिक्षा का कारण है अग्रेज़ी राज। उसके शोषण से मुक्ति पाने का तरीका है असहयोग, सत्याग्रह, सविनय अवज्ञा आदोलन। गाँधी जी की विचारधारा निराशावाद में डूबी हुई नही है। निराशा मे डूबी हुई जनता को उसने आशा दी, उसे सगठित होकर राजनीतिक एकता की शक्ति पहचानना सिखाया।

लेनिन ने स्त्रियो के बारे मे तोल्स्तोय की यह राय उद्धृत की थी कि उनके उद्धार का स्थान शयनागार है न कि कालेज और पार्लियामेट। गाँधी जी ने पर्दे और बुर्के के इस देश मे—विशेषकर उत्तर भारत मे—स्त्रियो को भी राजनीतिक जीवन मे शामिल करके भारी सामाजिक क्रांति की। यहाँ के सामाजिक जीवन मे सन् '20 और '30 के आदोलनो से बडे-बडे परिवर्तन हुए। जो काम सौ उपदेशो से न होते, वे राजनीतिक आदोलन ने कुछ ही दिनो मे कर दिखाए। वर्षो के बधन क्षणो मे टूट गए।

हर दृष्टि से गाँधी जी और तोल्स्तोय के विचारो मे भारी अतर दिखाई देता है।

यदि तोल्स्तोय का कथा-साहित्य उनकी विचारधारा से ही प्रेरित होता या उसमे केवल विचारो का ही प्रतिपादन होता, तो उसकी चर्चा आज अनावश्यक होती। किंतु कलाकार केवल विचार नही देता, वह जीवन-चित्र देता है। जो बात उसके विचारो से प्रकट नही होती वह उसके कथाचित्रो से प्रकट होती है। तोल्स्तोय ने बडी सहानुभूति से रूसी जनता का चित्रण किया है। उनके अनेक नारी-पात्र उनकी विचारधारा की सीमाएँ लाँघकर अपने साहस और स्वाधीनता-प्रेम से पाठक को मुग्ध कर लेते हैं। उसके निबधो मे धर्म और अहिंसा के पक्ष मे जितनी दलीले दी गई है, वे उनके कथाचित्रो मे खडित हो जाती हैं। तोल्स्तोय

अहिंसावादी थे, लेकिन उनका सबसे बडा, सबसे मूल्यवान, सबसे प्रसिद्ध, कुछ लोगो के अनुसार ससार का सर्वश्रेष्ठ उपन्यास 'युद्ध और शाति' नेपोलियन के विरुद्ध रूसी जनता के प्रतिरोध को लेकर लिखा गया है।

इस उपन्यास मे निष्क्रिय प्रतिरोध के समर्थक तोल्स्तोय कहते है "फ्रासीसी लोग शिकायत करते थे कि रूसी लडाके (छापेमार-युद्ध मे) नियम-कायदो का पालन नही करते। ऊँचे ओहदोवाले रूसी भी लाठी लेकर लडने से कुछ शरमाते थे। वे चाहते थे कि लडाई के पैंतरे, दाव-पेच सब नियमानुसार इस्तेमाल किए जाएँ। लेकिन इस सबके बावजूद जन-सग्राम की लाठी विनाश और भव्यता लिए हुए उठी, लोगो की नफासत-नजाकत, कायदे-कानून की परवाह न करके, बहुत ही भोडी सादगी से, लगातार, बिना थमे हुए उठी और गिरी और फ्रासीसी फौज की तब तक धुनाई की जब तक सारे हमलावर देश से बाहर नही खदेड दिए गए।" (भाग 14, अध्याय 1)

कथाकार तोल्स्तोय धर्माचार्यो के कटु आलोचक है, वह नारी की गरिमा के चितेरे है, वह रूसी जनता के सक्रिय प्रतिरोध का अनुपम चित्र खीचनेवाले कलाकार है। इस दृष्टि से वह गाँधी जी और प्रेमचद दोनो के बहुत निकट हैं। राजनीति से पराङ्मुख, स्त्री पराधीनता के हामी धर्म के समर्थक, अहिंसावाद के पुजारी विचारक तोल्स्तोय से गाँधी जी काफी दूर हैं, प्रेमचद और भी दूर।

यहाँ तक तोल्स्तोय और उनसे गाँधी जी और प्रेमचद के सबध की बात हुई। अब गाँधी जी की विचारधारा और प्रेमचद के साहित्य का सबध देखना चाहिए।

गाँधी जी की विचारधारा का मूल्य पहचानने के लिए यह याद रखना चाहिए कि भारतीय समाज का मुख्य अतर्विरोध श्रमिक वर्ग और पूँजीपतियो का नही था वरन् साम्राज्यवाद और समस्त भारतीय जनता का था। इस समस्त भारतीय जनता मे पूँजीपति भी शामिल थे।

गाँधी जी का नाम भारतीय राजनीति के दक्षिणपथी नेताओ के साथ जोडा जाता है। उनकी नरम नीति के कारण कांग्रेस के अदर ही एक वामपथी दल उत्पन्न हुआ जिसके नेता स्वर्गीय सुभाष चद्र बोस, जवाहरलाल नेहरू आदि थे। कांग्रेस के अदर सामाजवादी विचारधारा फैल रही थी, जिसके फलस्वरूप सोशलिस्ट और कम्युनिस्ट नेताओ का दल कांग्रेस के भीतर और बाहर सगठित हुआ। सन् '20 और '30 के आदोलनो को जिस तरह चलाया गया, उससे बहुत लोग असतुष्ट हुए। यह असतोष नेहरू जी की आत्मकथा मे झलकता है। गाँधी जी किसानो को लगानबदी आदोलन से दूर रखकर—या इस तरह के आदोलन को सीमित रखकर—अग्रेजो से अधिकार लेना चाहते थे। यह उनकी विचारधारा और कार्यनीति की सबसे बडी कमजोरी थी। इसी कारण अपने तमाम सद्प्रयत्नो के बावजूद वह न हिंदू-मुस्लिम एकता कायम कर सके, न देश के विभाजन को रोक सके। देश की अखडता का आधार यहाँ के किसान-मजदूर हैं, न कि शिक्षित

मध्यम या उच्च वर्गों के लोग। गाँधी जी मजदूर-सघर्षों को भी शक की निगाह से देखते थे। पूँजीपतियो को ट्रस्टी मानकर वह वर्ग-सघर्ष की समस्या हल करना चाहते थे।

गाँधीवाद का प्रतिक्रियावादी पक्ष अहिंसावाद नही है। वास्तव मे अहिंसावाद के कारण गाँधी जी करोडो आदमियो को राजनीतिक जीवन मे खीच लाए और इस दृष्टि से अन्य दलो के—तथा काग्रेस के—शेष सभी नेता गाँधी जी का मुकाबला नही कर सकते। उनकी विचारधारा और कार्यनीति का प्रतिक्रियावादी पक्ष वह है जहाँ वह किसानो को सामत-विरोधी सघर्ष से रोकते है, भले ही इस सघर्ष मे अहिंसावादी उपायो से ही काम लिया जाए। गाँधी जी एक ओर जहाँ जनजागरण के अग्रदूत थे, वहाँ दूसरी ओर वे स्वाधीनता-आदोलन को किसान-क्रांति का व्यापक रूप लेने से रोकनेवाली शक्ति भी थे।

हिंदी-भाषी क्षेत्र मे किसान-आदोलन बढ रहा था। निर्धन किसान साम्राज्यवाद से टक्कर लेने के अलावा उसके सहायको—जमीदारो और महाजनो से भी सघर्ष कर रहे थे। प्रेमचद इस सघर्ष को रोकना तो दूर, उसका स्वागत करनेवाले लेखक थे। यह गाँधीवाद और प्रेमचद-साहित्य का मूल्य भेद है। किसान-जमीदार सघर्ष का अत 'प्रेमाश्रम' बनाकर होता है। इसे गाँधीवाद का असर कहा जा सकता है। किंतु मूल्य कसौटी यह नही है। मूल्य कसौटी यह है कि प्रेमचद किसान-जमीदार सघर्ष को स्वाधीनता-आदोलन के लिए आवश्यक समझते है या अनावश्यक। इस कसौटी पर उनके उपन्यासो को परखने से किसान-सघर्षो के प्रति प्रेमचद और गाँधी जी के दृष्टिकोण अलग-अलग दिखाई देगे।

गाँधी जी धर्म मे राजनीति का सबध जोडते थे। भारतीय समाज की बहुत-सी रूढियो का विरोध करते हुए भी वे अक्सर उनसे समझौता कर लेते थे। प्रेमचद धार्मिक ढकोसलो और रूढियो—विशेषकर जाति-प्रथा—के कट्टर विरोधी थे। उनकी विचारधारा मे असगतियां है और कभी-कभी वे भाग्यवादी की तरह बाते करते हैं। किंतु यह सत्य है कि उनकी विचारधारा पर भौतिकवाद का गहरा असर था। जब बिहार के भूकप के लिए गाँधी जी ने पहले के पापो को कारण बताया तो प्रेमचद ने उनका नाम लेकर 'हस' मे उनके विचारो का विरोध किया।

जनवरी सन् '34 के 'हस' मे बिहार के भूकप पर प्रेमचद ने सपादकीय लेख लिखा—'वह प्रलयकर दिवस!' आधुनिक विज्ञान से धार्मिक अधविश्वास मिट रहे हैं, इस प्रसग मे उन्होन लिखा, "अभी उस दिन महात्मा जी ने ही कहा कि हमारे पापो के कारण ही यह भूकप हुआ है और उनकी धारणा मे अछूत कहलानेवाले मनुष्यो के साथ दुर्व्यवहार ही महापाप है। इसी प्रकार वर्णाश्रम स्वराज्य सघवाले महात्मा जी को कोसते हैं और कहते हैं कि अछूतो को मंदिर मे प्रवेश कराने के पाप का ही परिणाम यह भूकप है। यदि आस्तिकता भूकप का कारण पाप बतलाती है

तो यह प्रश्न हो सकता है कि क्या सचमुच परमात्मा ने बिहार मे वास्तविक पापियो को ही दड दिया है ? जितने प्राणी भूकप मे मरे, क्या वे सभी महान् पापी थे ? और यहाँ, इस देश मे जो बडे-बडे पापाचारी और गरीबो का रक्त चूस जानेवाले, बडी-बडी तोदवाले, बडे-बडे तिलकधारी ढोगी पडे हुए हैं, क्या परमात्मा उन्हे नही देख पाता ? अस्तु, ये सब व्यर्थ की बाते हैं। भली-भाँति विचार करने पर मालूम हो जाता है कि भूकप किसी पाप-पुण्य के कारण नही हुआ, वह प्रकृति की एक लीला है और भूगर्भ की वैज्ञानिक प्रक्रिया का एक परिणाम है।''

यह सब उन्होने सन् '33 के अत मे लिखा था। इससे पहले के उपन्यासो और कहानियो मे वह धार्मिक रूढियो की तीव्र आलोचना करते हुए देखे जा सकते हैं। 'प्रेमाश्रम' मे प्रेमचद ने यही नही लिखा था कि ''सत्याग्रह मे अन्याय का दमन करने की शक्ति है, यह सिद्धात भ्रातिपूर्ण सिद्ध हो गया'', वरन् दुखरन भगत से शालिगराम की बटिया भी फिकवा दी, क्योकि ईश्वर मे उसका विश्वास उठ गया था।

प्रेमचद गाँधी जी के कारण राजनीति मे दिलचस्पी नही लेने लगे, न समाजवाद के प्रति उनका आकर्षण कम्युनिस्ट या सोशलिस्ट पार्टी के कारण उत्पन्न हुआ। उन्होने फरवरी 1919 के 'जमाना' मे लिखा था, ''आनेवाला जमाना अब किसानो और मजदूरो का है। दुनिया की रफ्तार इसका साफ सबूत दे रही है।'' इस लेख मे उन्होने रूसी क्राति की भी चर्चा की थी ''इकलाब के पहले कौन जानता था कि रूस की पीडित जनता मे इतनी ताकत छिपी हुई है ?'' किसान-सगठन की आवश्यकता पर उन्होने इसी लेख मे कहा था, ''क्या यह शर्म की बात नही कि जिस देश मे नब्बे फीसदी आबादी किसानो की हो उस देश मे कोई किसान-सभा, कोई किसानो की भलाई का आदोलन, कोई खेती का विद्यालय, किसानो की भलाई का कोई व्यवस्थित प्रयत्न न हो।'' (*'विविध प्रसग'*, खड 1, अमृतराय द्वारा सपादित, पृ 268)

इन्ही दिनो उन्होने 'जमाना' के सपादक को सूचित किया था, ''मै अब करीब-करीब बोल्शेविस्ट उसूलो का कायल हो गया हूँ।'' (*'चिट्ठी-पत्री,'* खड 1, पृ 93)

1923 मे उन्होने दयानारायण निगम को लिखा था, ''मै तो उस आनेवाली पार्टी का मेबर हूँ जो कोतहुन्नास (छोटे लोगो) की सियासी तालीम को अपना दस्तूर-उल-अमल बनाए।'' (उप , पृ 130)

यदि प्रेमचद को सन् '23 मे काग्रेसी नेतृत्व पर पूरा भरोसा होता तो वे आनेवाली पार्टी की बात न करते।

जो लोग प्रेमचद को सुधारवादी कहकर उनकी आलोचना करते हैं उन्हे इस बात पर ध्यान देना चाहिए कि सत्याग्रह और भूख-हडताल के अस्त्रो को मजदूर आदोलन मे आज भी इस्तेमाल किया जाता है और इन्हे इस्तेमाल करनेवालो मे

'सशोधनवादी' ही नही हैं वरन् वे भी हैं जो अपने को 'मार्क्सवादी कम्युनिस्ट कहते हैं।

जहाँ तक नैतिकता का प्रश्न है, प्रेमचद जीवन और साहित्य मे घृणा को आवश्यक मानत थे। दिसबर '33 के 'हस' मे उन्होने सपादकीय लेख 'जीवन मे घृणा का स्थान' इस वाक्य से आरभ किया था, "निंदा, क्रोध और घृणा ये सभी दुर्गुण है, लेकिन मानव-जीवन मे से अगर इन दुर्गुणो को निकाल दीजिए, तो ससार नरक हो जाएगा।" इस लेख का अंतिम वाक्य दिलचस्प है, "महात्मा गाँधी इसीलिए अछूतपन को मिटाने के लिए अपने जीवन का बलिदान कर रहे हैं कि उन्हे अछूतपन से प्रचड घृणा है।"

उसी अक मे दूसरा सपादकीय लेख है, 'साहित्य और कला मे घृणा की उपयोगिता'। इसमे उन्होने लिखा था, "प्राचीन साहित्य धर्म और ईश्वर के द्रोहियो के प्रति घृणा और उनके अनुयाइयो के प्रति श्रद्धा और भक्ति के भावो की सृष्टि करता रहा। नवीन साहित्य समाज का खून चूसनेवालो, रँगे सियारो, हथकडेबाजो और जनता के अज्ञान से अपना स्वार्थ सिद्ध करनेवालो के विरुद्ध उतने ही जोर से आवाज उठा रहा है, और दीनो, दलितो, अन्याय के हाथ सताए हुओ के प्रति उतने ही जोर से सहानुभूति उत्पन्न करने का प्रयत्न कर रहा है।"

स्पष्ट है कि प्रेमचद ने शोषको के प्रति जो घृणा को उभारने की बात की है, गाँधीवाद मे उसका अभाव है।

जहाँ तक स्वाधीनता-आदोलन मे मजदूरो की भूमिका का सबध है, प्रेमचद इस ओर बढ रहे थे। वे न तो उद्योगीकरण के विरोधी थे, न मजदूर वर्ग की बढती को समाज के लिए व्यर्थ मानते थे। उनके उपन्यासो मे ऐसे पात्रो की आलोचना मिलती है जो राष्ट्रीयता का व्यवसाय करके जनता को ठगते हैं। 'गबन' मे साम्राज्यवाद से समझौता करनेवाले नेताओ की तीव्र निंदा की गई है।

यहाँ यह लिख देना जरूरी है कि जहाँ भी समझौता और धोखेबाजी हो वहाँ गाँधीवाद का प्रभाव देखना गलत है। स्वाधीन भारत की राजनीति पर नजर डालने से गाँधी जी का व्यक्तित्व और भी गौरवशाली मालूम होता है। भारत के विभाजन को उन नेताओ ने स्वीकार किया जो गद्दी पाने के लिए लालायित थे, जो जनता मे आस्था खो चुके थे, जो सप्रदायवाद और साम्राज्यवाद से आतंकित थे। इन सबमे गाँधी जी महान् योद्धा दिखाई देते हैं जो अत तक अपने निश्चय पर अटल रहे। काग्रेसी नेताओ ने गाँधी जी को स्वाधीनता-प्राप्ति के मार्ग मे बाधा के रूप मे देखा, उन्होने और उनके सलाहकार माउटबैटन ने गाँधी जी को सत्ता-सबधी वार्ता से अलग कर दिया। गाँधी जी ने अपने जीवन की चिंता न करके कलकत्ता के गली-कूचो मे घूमकर बगाल को पजाब के रास्ते पर चलने से बचाया। गाँधी जी भारत मे राजभाषा अग्रेजी के सबसे प्रबल विरोधी थे, वे अतिम दिनों में काग्रेस की भाषा-नीति से असतुष्ट थे। गाँधी जी ने अकेले अग्रेज़ी का प्रभुत्व खत्म करने के

लिए जितना किया, उतना करने के लिए वापपथी नेताओ को कई बार जन्म लेना होगा।

प्रेमचद अग्रेजी भाषा के प्रभुत्व के उतने ही विरोधी थे, जितने गाँधी जी।

गाँधी जी और प्रेमचद ने भारतीय सस्कृति मे जो सबसे मूल्यवान वस्तु पाई थी, वह कर्मयोगी की स्थितप्रज्ञता थी। गाँधी जी पर गीता का प्रभाव स्पष्ट है। उन्होने अपने जीवन मे एक मृत्युजयी वीर की शूरता का परिचय दिया। प्रेमचद ने सन् '23 मे लिखा था, "खेल के मैदान मे वही शख्स तारीफ का मुस्तहक होना है जो जीत से फूलता नही, हार से रोता नही, जीते तब भी खेलता है, हारे तब भी खेलता है। हमारा काम तो सिर्फ खेलना है, खूब दिल लगाकर खेलना, खूब जी तोडकर खेलना, अपने को हार से इस तरह बचाना गोया हम कोनैन (इहलोक-परलोक) की दौलत खो बैठेगे, लेकिन हारने के बाद, पटखनी खाने के बाद, गर्द झाडकर खडे हो जाना चाहिए और फिर खम ठोककर हरीफ से कहना चाहिए कि एक बार और।" (*'चिट्ठी-पत्री,'* खड 1, पृ 133-4)

यही जीवन-दर्शन 'रगभूमि' के नायक सूरदास का है। यदि इसे कोई गाँधीवादी विचारधारा कहकर उसका तिरस्कार करता है तो वह प्रेमचद और गाँधी जी दोनो के प्रति अन्याय करता है।

श्री इद्रनाथ मदान ने प्रेमचद के लिए लिखा है, "उन्होने युग की गूढ समस्याओ का तो चित्रण किया, परतु वे उसकी उलझनो को पूरी तरह से समझ नही पाए। वे और भी महान् बने होते यदि उन्होने विकास के मार्गो को भी समझा होता।" (*'प्रेमचद, चिंतन और कला'*, सपादक श्री इद्रनाथ मदान, पृ 4)

हर आदमी की समझ की सीमा होती है। प्रेमचद की समझ की भी सीमा थी। यदि वाल्मीकि, होमर, शेक्सपियर थोडा और समझदार होते तो और भी महान् होते। समझ की सीमा है, महत्ता की नही। लेकिन विद्वान् आलोचक के विश्लेषण से यह स्पष्ट नही होता कि विकास के वे मार्ग कौन-से हैं जिनसे प्रेमचद अपरिचित थे।

आगे 'रगभूमि' के लिए लिखा है, "इस उपन्यास मे लेखक का विरोध उस पूँजीवाद और उद्योगीकरण के विरुद्ध व्यक्त हुआ है जिसने आपस के सहयोग पर आधारित गाँव की व्यवस्था को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया है। ऐसा प्रतीत होता है कि तोल्स्तोय और गाँधी जी ने उनके दृष्टिकोण को निश्चित किया और मस्तिष्क को प्रभावित किया है।" (उप)

तोल्स्तोय और गाँधी जी से प्रभावित होना कोई अपने-आपमे बुरी चीज नही है। सवाल यह है कि सूरदास ने अपनी जमीन के लिए लडकर ठीक किया या नही। यदि वह चुपचाप अपनी जमीन पूँजीपति के हवाले कर देता तो क्या यह उसका प्रगतिशील कार्य होता? औद्योगिक विकास के दो रास्ते हैं। एक यह कि विकास का बोझ सपत्तिशील वर्गो पर पडे; दूसरा यह कि उसका बोझ गरीबों पर पडे। यदि

'रगभूमि' के पूँजीपति इतने प्रगतिशील थे तो वे जमीदारो की जमीन क्यो न छीन रहे थे ? तब वह वास्तव मे एक सामत-विरोधी काम होता । मगर नही, राजाओ और जमीदारो से तो उनकी दोस्ती है । अपनी औद्योगिक प्रगतिशीलता का शिकार बना रहे हैं वे गरीब किसानो को । इस सघर्ष मे प्रेमचद की सहानुभूति किसानों के साथ है। जिन अति-प्रगतिशील आलोचको की सूक्ष्म दृष्टि मे सूरदास प्रतिक्रियावादी है, वे इस बात पर विचार करें कि उसकी जमीन के ग्राहक ब्रिटिश राज के मित्र हैं, राजाओ और जमीदारो से उनकी मैत्री है। सूरदास के प्रति विरोध-भावना का अर्थ है अग्रेजी राज और उसके सहायक सामतो से सहानुभूति

कुछ दूसरे गरमदली आलोचक है जो सूरदास से इसलिए असतुष्ट है कि वह सत्याग्रह करता है, उत्तेजित भीड को सशक्त गोरखा सैनिको पर ईंटे-पत्थर बरसाने से रोकता है । ये आलोचक शायद समझते है कि हथियारबद फौज पर ईट-पत्थर बरसाना बडा क्रातिकारी काम है । इसके लिए जनता को कितनी बडी कीमत चुकानी पडेगी, इसका राजनीतिक परिणाम क्या होगा, इस पर ठहरकर विचार करने की फुरसत उन्हे नही है ।

श्री मन्मथनाथ गुप्त का विचार है कि प्रमचद 'गोदान' मे ही वस्तवादी दृष्टिकोण अपना सके । 'रगभूमि' मे वह 'असहयोग के आदर्शो से ओतप्रोत' है । ''अभी तो प्रेमचद की आँखो मे गाँधीवाद के खुमार की लाली अवशिष्ट है, बल्कि सच कहा जाए तो 'रगभूमि' उसके भरपूर नशे मे विभोर अवस्था मे लिखित उपन्यास है ।'' (उप . पृ 47)

गुप्त जी की निगाह मे प्रेमचद के समय मे भारतीय समाज का मुख्य अतर्विरोध क्या था ? उन्होने लिखा है, ''रगभूमि मे नैतिक जीत भी नही हुई । नैतिक जीत हम तभी मानते जब हारकर भी पाडेपरवालो का सगठन हो जाता, वे इस बात को समझ जाते कि स्वदेशी पूँजीवाद और साम्राज्यवाद एक-दूसरे के मित्र है, और इस बात को समझकर वे आगे के सग्राम के लिए तैयार हो जाते ।'' (उप)

स्वदेशी पूँजीवाद और विदेशी साम्राज्यवाद मे कोई अतर्विरोध नही है । उनमे मैत्री-ही-मैत्री है ।

औपनिवेशिक पूँजीवाद की नीति दोरुखी होती है । एक ओर वह साम्राज्यवाद से साठगाँठ करता है, दूसरी ओर वह उसका विरोध भी करता है । जो वामपथी विचारक इस दोरुखी नीति को नही समझते वे या तो साम्राज्यवाद के मुकाबिले भारतीय पूँजीवाद को पूर्णत प्रतिक्रियावादी मानकर एक ही सपाट मे साम्राज्य-विरोधी और पूँजी-विरोधी क्रांतियाँ पूरी कर लेना चाहते हैं या फिर पस्त होकर वे पूँजीवाद के पिछलगुए बन जाते है और उनकी क्रातिकारिता सरकारी अखबारो के दफ्तरो मे पत्रकारिता का रूप ले लेती है ।

सौभाग्य से यद्यपि ''प्रेमचद सामन्तवाद, पूँजीवाद आदि शब्दावलियो के सबध मे सज्ञान न थे,'' फिर भी ''कही अहिंसा आदि से आँख लडाते रहने पर भी वे

हर हालत मे अपने वस्तुवादी लगोटे के प्रति सच्चे रहे।" (उप, पृ 48)। प्रेमचद वस्तुवाद के प्रति सच्चे इसलिए नही हैं कि वे साम्राज्यवाद-विरोधी और पूँजी-विरोधी क्रातियो को मिला देते है, वरन् वे महान् इसलिए हैं कि उनका वार मुख्य शत्रु ब्रिटिश साम्राज्यवाद और उसके देशी सहायको पर होता है।

सूरदास "विद्रोही जनता को विद्रोह से रोकता हुआ मजिस्ट्रेट की गोली से मारा जाता है। फिर क्या न गाँधीवादीगण उस पर निसार हो।" सूरदास "पूँजीवाद के विरुद्ध असगठित, भावुकता पर आधारित, धर्म का मलम्मायुक्त विद्रोह का प्रतीक है।" क्या प्रेमचद के समय म पूँजीवाद के विरुद्ध कही सगठित क्राति की तैयारी हो रही थी जो वे उसे छोडकर भावुकतापूर्ण असगठित विद्रोह की ओर बढ गए? गुप्त जी को 'रगभूमि' मे पराजय-ही-पराजय नजर आती है। इसका कारण यह है कि सूरदास न तो साम्राज्य-विरोधी क्राति कर पाता है, न पूँजीवाद का नाश कर पाता है। यद्यपि वह खेल मे हार-जीत की बात कहता है, हारने के बाद फिर जीतने के लिए खेल की तैयारी मे विश्वास करता है, किंतु मन्मथनाथ जी एक ही बार मे दोनो क्रातियो के फल पा लेना चाहते है और जब ये फल हाथ नही लगते तो महनामथ मचाते है। फिर भी भावुकता का दोष मढते है प्रेमचद के माथे।

प्रमचद सत्याग्रह का आवश्यक समझते थे, साथ ही उसकी सीमाएँ भी जानते थे। 'प्रेमाश्रम' मे जैसे उन्होने सत्याग्रह की असफलता के बारे मे लिखा था वैसे ही 'रगभूमि' मे उन्होने लिखा था "गोली सूरदास के कधे मे लगी, सिर लटक गया, रक्त-प्रवाह होने लगा। भैरो उसे सँभाल न सका, वह भूमि पर गिर पडा। आत्मबल, पशबल का प्रतिकार न कर सका।" (*रगभूमि*, भाग 2, 1955, पृ 367)

सत्याग्रह के बाद सघर्ष की और भी मजिले है, लेकिन भारत की परिस्थितियो मे सत्याग्रह भी आवश्यक मजिल है। सूरदास का आत्मबल ब्रिटिश राज के पशबल का प्रतिकार न कर सका, यह यथार्थ सत्य है। इसमे भावुकता नही, धर्म का मलम्मा नही। लेकिन इसका यह अर्थ नही कि सूरदास को नैतिक विजय भी न मिली या मिली तो उसका महत्त्व नही। सघर्ष मे कठिनाइयाँ आने पर कमजोर अनयायी नेता पर गुस्सा उतारते है। 'प्रेमाश्रम' मे कई लोग मनोहर की आलोचना करते है। इसी तरह मिठुआ सूरदास से कहता है "मुझे तो तुमने मलियामेट कर दिया कही का न रखा। दुनिया-भर के लिए अच्छे होगे, मेरी गरदन पर तो तुमने छुरी फेर दी। हलाल कर डाला।" (पृ 387)। मिठुआ अभी लडका है, कच्ची अक्ल है। उसकी बात समझ मे आती है। लेकिन क्रातिकारी आलोचक मिठुआ की तरह सूरदास की निदा करे, यह उन्हे शोभा नही देता।

सूरदास की नैतिक और राजनीतिक विजय यह है

"सध्या-समय प्रीतिभोज हुआ, छूत और अछूत साथ बैठकर एक ही पक्ति मे खा रहे थे। यह सूरदास की सबसे बडी विजय थी।" (पृ 428)

''अभी तक धन का प्राधान्य था, महाजनो और रईसो का राज्य था। जनसत्ता के अनुयायी शक्तिहीन थे। उन्हे सिर उठाने का साहस न होता था। राजा महेद्रकुमार की ऐसी धाक बँधी हुई थी कि कोई उनका विरोध न कर सकता था। पर पाडेपुर के सत्याग्रह ने जनसत्तावादियो मे एक नई सगठन-शक्ति पैदा कर दी। उस दुर्घटना का सारा इलजाम राजा साहब के सिर मढा जाने लगा। यह आदोलन शुरू हुआ कि उन पर अविश्वास का प्रस्ताव उपस्थित किया जाए। दिन-दिन आदोलन जोर पकडने लगा। लोकमतवादियो ने निश्चय कर लिया कि वर्तमान व्यवस्था का अत कर देना चाहिए, जिसके द्वारा जनता को इतनी विपत्ति सहनी पडी।' (पृ 420)

पुरानी समाज-व्यवस्था का अत नही हो गया किंतु लोगो मे नई चेतना पैदा हुई, नई सगठन-शक्ति आई, दोबारा सघर्ष के लिए तैयारी शुरू हुई। यह सूरदास की विजय है। जॉन सेवक का हृदय-परिवर्तन नही हुआ। ''धन मे उन्हे नि:स्वार्थ प्रेम है, कुछ वही अनुराग, जो भक्तो को अपने उपास्य से होता है।'' इसलिए ''वह अब पटना मे एक तबाकू की मिल खोलने का आयोजन कर रहे हैं, क्योंकि बिहार प्रात मे तबाकू कसरत से पैदा होना है। उनकी धन-कामना विद्या-व्यसन की भाँति तृप्त नही होती।'' (पृ 436)

इसका अर्थ है, समस्या का अतिम समाधान शेष है। अभी आगे भी सघर्ष होगा।

श्री रामदीन गुप्त ने एक वृहद्-ग्रथ प्रस्तुत किया है जिसका नाम है 'प्रेमचद और गाँधीवाद'। उन्हे सूरदास के चरित्र पर यह आपत्ति है कि ''एक ओर तो वह औरत की आबरू तक को 'हँसी-खेल' मानने के लिए तैयार नही है और उसके पीछे खून की नदी तक बहाने को तैयार है, पर दूसरी ओर वह जीवन की गभीरतम सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक आदि समस्याओ को भी खेल की उपमा देकर उनका महत्त्व कम करने की कोशिश करता है। कहना न होगा कि सूरदास का यह आत्म-विरोध उसके स्रष्टा का ही आत्म-विरोध है। अपने मध्यवर्गीय स्वभाव के कारण प्रेमचद 'औरत की आबरू' को जीवन की अन्य किसी भी 'आबरू' से कही अधिक महत्त्व दे देते है। हम यह नही कहते कि 'औरत की आबरू' को कोई महत्त्व ही नही दिया जाना चाहिए, या उसकी रक्षा नही की जानी चाहिए, हमारा तात्पर्य केवल इतना है कि जीवन के दूसरे प्रश्नो तथा पक्षो के मुकाबले उसे इतना अधिक महत्त्व नही दिया जाना चाहिए।''

आज जब समाजवाद की रचना हो रही हो, पचवर्षीय योजनाएँ कार्यान्वित की जा रही हो, तब किसी औरत की आबरू की क्या कीमत? सूरदास को भी चाहिए था कि अपनी जमीन सेवक महोदय को सौंप देता; औरतो की बेइज्जती होती तो इसे गौण समस्या मानकर आर्थिक और राजनीतिक समस्याएँ हल करने में लग जाता। लेकिन प्रेमचंद ठहरे मध्यवर्गीय सस्कारो के लेखक। 'प्रेमाश्रम' मे एक औरत की

आबरू के पीछे गौस खाँ का कत्ल कर डाला । इससे भी जी न भरा तो 'कर्मभूमि' मे बलात्कार से त्रस्त नारी से दो अग्रेज सिपाहियो का वध करा दिया । वही आबरू का पँवारा 'रगभूमि' मे । इस दकियानूसी भारत की राह ही न्यारी है । रावण सीता को उठा ले गया । दडकारण्य का आर्थिक विकास करने के बदले रामचद्र पहुँच गए लका-निवासियो का नाश करने । वाल्मीकि ने इस पर महाकाव्य लिख डाला । उधर दु शासन ने द्रौपदी की साडी खीच ली । पाडवगण खाडव वन का विकास करने के बदले कौरवो से भिड गए । जब श्रीकृष्ण दुर्योधन से सधिवार्ता के लिए चलने लगे तो द्रौपदी बाल खोलकर सामने आ गई और बालो के खींचे जाने की याद दिलाकर उन्हे भडकाने लगी । समरभूमि मे जब अर्जुन को ज्ञान हुआ कि युद्ध न करना चाहिए, तब वहाँ से रथ को भगा ले जाने के बदले ये भगवान् कहलानेवाले श्रीकृष्ण उलटा अर्जुन को युद्ध करने के लिए उपदेश देने लगे । बताइए, है न अधर ! उसी परपरा मे आ गए प्रेमचद । सूरदास से कहला बैठे कि औरत की आबरू के लिए खून की नदी बह चलेगी !

दूसरा अत्याचार यह कि खेल की उपमा देकर सूरदास जीवन की गभीरतम समस्याओ का महत्त्व कम करता है । एक थे रवीद्रनाथ जो विश्व-परिवार के तट पर मानवता को खेलता हुआ दिखाकर समस्त मानव-जाति के ही महत्त्व पर घडो पानी डाल गए । प्रेमचद मे सजीदगी का एकदम अभाव था । हर वक्त उन्हे खेलने की ही सूझती थी !

पाठको को यह स्पष्ट समझ लेना चाहिए कि "मध्यवर्गीय प्रेमचद को क्रांति के सही स्वरूप तथा उद्देश्य के सबध मे गभीर गलतफहमी थी । अपने मध्यवर्गीय सस्कारो के कारण वे आतकवादी तोड-फोड और ध्वस को ही क्रांति समझ लेते है । प्रेमचद यह भूल जाते हैं कि क्रांति का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण पहलू निर्माण है, मात्र ध्वस नही । क्रांति का ध्येय एक ऐसी नवीन समाज-व्यवस्था का निर्माण करना होता है जिसमे उत्पादन और विनिमय के साधनो पर किसी श्रेणी विशेष का नही बल्कि पूरे समाज का अधिकार हो" इत्यादि । (पृ 200) । अपने उपन्यासो मे इस समाजवादी निर्माण के चित्र देने के बदले प्रेमचद इस ऊहापोह में पड जाते हैं कि जमीदारो से किसान किस तरह सघर्ष करे तो उन्हे सफलता मिले । सलाह जरा देर से मिली । रामदीन जी गुप्त का यह ग्रथ पच्चीस साल पहले निकला होता तो शायद प्रेमचद को भी लाभ होता । अब उससे केवल आलोचको को लाभ हो सकता है । सो वह काम श्री मन्मथनाथ गुप्त ने पहले ही कर दिया था ।

प्रेमचदकालीन भारतीय समाज की विशेषता श्री रामदीन गुप्त के अनुसार यह है, "गोदान का समाज शुद्ध पूँजीवादी या प्रेमचद के शब्दो मे महाजनी समाज है ।" (पृ 260) रामदीन जी का विचार है कि जहाँ भी महाजन होगे, वहाँ महाजनी समाज होगा । सामती समाज मे तो शायद महाजन होते नहीं हैं । उन्हें सामती समाज की सूदखोरी और आधुनिक समाज की महाजनी पूँजी में कोई विशेष अतर

नही दिखाई देता। जरूर राजा, जमीदार हैं लेकिन इनका कोई स्वतंत्र अस्तित्व नही है। वे भी बैंकरो के कर्जदार हैं। इस प्रकार प्रेमचद-काल में पूँजीवाद के विरुद्ध गाँवो तक मे समाजवादी क्राति के लिए जमीन तैयार हो गई थी। फिर भी न तो समाजवादी क्राति हुई, न प्रेमचद ने उसका चित्रण किया। करते कहाँ से? मजदूर वर्ग से तो उन्हे घृणा थी।" 'बिजली' सपादक प ओकारनाथ जैसे अवसरवादी व्यक्तियो के हाथो मे मजदूरो का नेतृत्व सौपकर प्रेमचद ने मजदूर-आदोलन का मानो एक प्रकार से मजाक उडाया है। लगता है कि प्रेमचद अभी भी औद्योगिक या मशीनी सभ्यता के प्रति अपनी पुरानी अरुचि का शमन नही कर पाए थे।" (पृ 273)

और भी—"हिसक हडतालो की निस्सारता और धन की निदा गोदान-युग मे भी प्रेमचद पर गाँधी-दर्शन के प्रभाव की सूचक है।" (पृ 274)

मन्मथनाथ गुप्त जी की राय मे "गोदान के समय प्रेमचद गाँधीवादी प्रभाव से मुक्त हो चुके थे", किंतु रामदीन गुप्त जी के अनुसार वह अब भी उसी नरक मे फँसे हुए थे। प्रेमचद अच्छे लेखक बन रहे थे, 'गोदान' लिखते समय तक "अपनी कच्ची भावुकता को करीब-करीब त्याग चुके थे", लेकिन दुर्भाग्य कि "ऐसे समय मे प्रेमचद की मृत्यु हो गई।" (पृ 277)

सन् '19 मे प्रेमचद 'जमाना' मे लिख चुके थे—"आनेवाला जमाना अब किसानो और मजदूरो का है।"

'प्रेमाश्रम' के बलराज को मालूम था कि रूस के पास कोई और देश बलगारी है जहाँ "किसानो और मजदूरो की पचायत राज करती है।"

'गबन' का देवीदीन जानता है कि भविष्य मे "बहुमत किसानो और मजूरो का ही होगा।"

मिलो पर किसका ज्यादा हक है, पूँजीपतियो का या मजदूरो का? 'गोदान' के मेहता का विचार है, "जो अपनी जान खपाते हैं, उनका हक उन लोगो से ज्यादा है, जो केवल रुपया लगाते हैं।"

प्रेमचद ने यह नही कहा कि आगे चलकर कारखाने न रहेगे, इसलिए मजदूर भी न रहेगे, केवल किसान बच रहेगे, वही नए समाज की रचना करेगे। तब यह कैसे मान लिया जाए कि प्रेमचद उद्योगीकरण के विरुद्ध थे?

मजदूरो की हडताल असफल रही। सूरदास भी अपनी लडाई मे असफल रहा। लेकिन सघर्ष का असर जनता की चेतना पर क्या पडा? 'बिजली' के जिन सपादक महोदय ने धोखेबाजी की नीति अपनाई थी, उनके बारे मे मजदूर क्या सोचते हैं? प्रेमचद कहते हैं, "पडित ओकारनाथ पर तो उन्हे अब रत्ती-भर भी विश्वास नहीं है। उन्हे वे अकेले-दुकेले पाएँ तो शायद उनकी बुरी गत बनाएँ, पर पंडित जी बहुत बचे हुए रहते है। चिराग जलने के बाद अपने कार्यालय से बाहर नहीं निकलते और अफसरो की खुशामद करने लगे हैं।"

मजदूरो मे यह चेतना फैली हडताल से या पहले ही उन्हे यह ज्ञान हो गया था ?

हर उपन्यास मे प्रेमचद जनता को अपने असफल सघर्षों से नए सबक सीखते दिखाते हैं। यही बात 'गोदान' मे भी होती है। तब यह कैसे कहा जा सकता है कि प्रेमचद मजदूर-आदोलन का मजाक उडाते हैं ? मेहता, गोबिंदी आदि सभी को मज़दूरो से सहानुभूति है। आश्चर्य की बात होगी यदि प्रेमचद के ही हृदय मे उनके लिए सहानुभूति न हो। जिन्हे हडताल बेजा मालूम होती थी, वह प्रेमचद नही, मिल-मालिक है। राष्ट्रीयता के नाम पर मजदूरो के सघर्ष का विरोध करनेवाले खन्ना के बारे मे प्रेमचद ने लिखा था, "मिस्टर खन्ना को मजदूरो की यह हडताल बिल्कुल बेजा मालूम होती थी। उन्होने हमेशा जनता के साथ मिले रहने की कोशिश की थी। वह अपने को जनता का ही आदमी समझते थे। पिछले कौमी आदोलन मे उन्होने बडा जोश दिखाया था। अब भी वह मजूरो की शिकायते सुनने को तैयार रहते थे, लेकिन यह तो नही हो सकता कि वह शक्कर मिल के हिस्सेदारो के हित का विचार न करे। यह तो व्यापार है, कोई सदाकत नही कि सब कुछ मजूरो को ही बाँट दिया जाए।"

मेहता से खन्ना की उक्तियो का खडन कराके प्रेमचद ने व्यग्य के अलावा भी स्पष्ट कर दिया है कि मजदूर-आदोलन के विरोधियो को वे क्या समझते थे। उन्होने शिवरानी देवी जी से कहा था कि हर जगह शहजोर कमजोर को चूसते है "हाँ, रूस है, जहाँ पर कि बडो को मार-मारकर दुरुस्त कर दिया गया, अब वहाँ गरीबो का आनद है। शायद यहाँ भी कुछ दिनो के बाद रूस जैसा ही हो।" जब पत्नी ने पूछा कि क्राति हुई तो वे किसका साथ देगे, तब प्रेमचद ने उत्तर दिया, "मजदूरो और काश्तकारो का। मै पहले ही सबसे कह दूँगा कि मैं तो मजदूर हूँ। तुम फावडा चलाते हो, मै कलम चलाता हूँ। हम दोनो बराबर हैं।"

('*प्रेमचद घर मे*,' दिल्ली, 1956, पृ 110)

आश्चर्य की बात है कि कुछ आलोचको को कलम के मजदूर प्रेमचद मजदूर वर्ग के विरोधी दिखाई देते है।

प्रेमचद के सबध मे श्री शिवदान सिह चौहान की मान्यताएँ इस प्रकार हैं—

"प्रेमचद मूलत गाँधी जी के ही अनुयायी थे।"

"और चूँकि प्रेमचद की कला यथार्थवाद की ओर निरतर विकासशील रही, इस कारण अपनी अनेक रचनाओ मे वे गाँधीवाद की सीमाओ का अतिक्रमण करते भी दीखते है।"

इससे यह तो समझ मे आया कि गाँधीवाद और यथार्थवाद दो परस्पर-विरोधी चीजे है। जो बात स्पष्ट नही है, वह यह कि मूलत गाँधीवादी—यानी यथार्थवाद-विरोधी—होते हुए भी प्रेमचद निरतर यथार्थवाद की ओर विकासशील कैसे होते गए।

प्रेमचद को बहुत जल्दी ख्याति मिल गई, लेकिन चौहान जी ने चेतावनी दी है

कि "तत्काल प्रसिद्धि पा जाना कोई महानता का लक्षण नही है।" हिंदी-उर्दू मे कुछ नही है तो प्रेमचद ही बहुत बडे कलाकार हैं, लेकिन "विश्व मे ही क्यो भारत मे भी उनसे बडे-बडे लेखक हुए हैं, इस युग मे ही।" जहाँ तक विश्व के महान् कलाकारो का सबध है "प्रेमचद के अधिकतर उपन्यास कला की दृष्टि से इतने कमजोर और शिथिल है कि वे कभी भी विश्व-साहित्य मे गोर्की के समकक्ष क्लासिक दर्जा पा सकेगे, इसमे सदेह है।"

और भी—"विश्व-साहित्य मे, या भारतीय उपन्यास-साहित्य मे ही उन्होने कोई नया विकास किया हो, यह कहना कदाचित् सभव नही है।"

चौहान जी ने ये सब बाते सन् '54 मे लिखी थी। (देखिए, उनका निबध सग्रह '*साहित्य की समस्याएँ*,' पृ 115-17)। इससे पहले मार्च सन् '37 के 'विशाल भारत' मे उनका एक युगातरकारी निबध प्रकाशित हुआ था जिसका शीर्षक था 'भारत मे प्रगतिशील साहित्य की आवश्यकता'। सन् '37 से सन् '54 तक और उसके बाद भी श्री शिवदान सिंह चौहान ने अपनी काफी शक्ति यह साबित करने मे लगाई कि आधुनिक भारतीय साहित्य आमतौर से और हिंदी साहित्य खासतौर से विश्व-साहित्य के सामने नगण्य है। 'विशाल भारत' मे उन्होने लिखा था, "हिंदी के साहित्यकारो ने विदेशो के साहित्यकारो या कलाकारो की तरह न किसी स्वतत्र विचारधारा को अपनाया और न उसका साथ दिया, यह हमारे एक सपादक की राय है।" सपादक की राय उद्धृत करने के बाद उन्होने स्वय प्रश्न उठाया है—"अब मैं पुन इस प्रश्न को उठाऊँगा"—कि "हिंदी-साहित्य या अन्य किसी भारतीय साहित्य ने कभी किसी तत्कालीन प्रचलित सामाजिक यथार्थवादी विचारधारा का दामन क्यो नही पकडा।" उन्होने समस्या का अत्यत गभीर विश्लेषण प्रस्तुत करते हुए यह दूसरा प्रश्न भी उठा लिया है कि "आखिर यहाँ का समाज क्यो इतनी अर्द्ध-सभ्य दशा मे ही पडा दम तोडता रहा, हजारो वर्षो मे राम और रावण यही दो नाम सीख पाया और आगे की एक मजिल भी पूरी न की।"

तुलसीदास, सूरदास, चडीदास, तुकाराम आदि तो राम-राम, कृष्ण-कृष्ण जपते रहे, उनके बाद आए रवीद्रनाथ। बडा नाम कमाया, नोबेल पुरस्कार भी न जाने कैसे उनके हाथ लग गया। लेकिन थे वास्तव मे वह भी पुरानपथी। निगाह भूत की ओर ही थी, भविष्य की ओर नही। चौहान जी ने उनके घातक प्रभाव के बारे मे लिखा था, "चारो ओर से 'पुन वैदिक काल की ओर' की आवाज आने लगी। बगाल मे जिस प्रकार बकिम बाबू और रवीद्र बाबू ने इस आवाज को ऊँचा किया, हिंदी मे गुप्त जी (यानी श्री मैथिलीशरण गुप्त) ने यही आवाज बुलद की।" असल मे भारतीय साहित्यकारो मे 'छुटपन या विद्वेष की भावना' थी। इसलिए वे विश्व-साहित्य का न तो महत्त्व समझ पाते थे, न 'एड्री जीड' या 'मेलराक्स' कविता, कहानी या उपन्यास लिख पाते थे।

भारतीय साहित्य को आवश्यकता थी 'साम्यवादी यथार्थवाद' की, लेकिन

यहाँ के लेखक देते चले गए 'पूँजीवादी यथार्थवाद'। यह किस तरह का यथार्थवाद है? चौहान जी ने उसकी व्याख्या इस प्रकार की है, "निष्पक्ष यथार्थवाद का चोगा पहनकर प्रतिक्रियावादी 'पूँजीवाद यथार्थवाद' दलित श्रेणी मे अपनी धाक और विश्वास जमाता फिरता है।" इस घृणित विचारधारा से भारतीय साहित्य आमतौर से और हिंदी-साहित्य खास तौर से प्रभावित रहा। इस धारा के नेता थे प्रेमचद।

चौहान जी का कथन है, "भारत मे और खासकर हिंदी मे इसी प्रकार के यथार्थवाद की धारा बही। प्रेमचद जी के उपन्यासो मे अधिकतर यही 'पूँजीवादी यथार्थवाद' मिलता है। मुशी जी वास्तविक दशा का वर्णन तो सही-सही करते हैं, लेकिन वह वास्तविक दशा जिन कारणो से उत्पन्न हुई, यह वे ठीक नही बता पाते तथा वे श्रेणी-सघर्ष को अस्वीकार कर उच्च श्रेणियो के 'विशेष हक' मानकर अत मे समझौता करा देते हैं। यह समझौता सुधारवादी होता है, जिसमे गाँधी जी के रामराज्य की तरह एक राजकुमार और नरककाल के हक सुरक्षित किए जाते हैं। राजकुमार का राजकुमारपन और नरककाल का भूख से तडपता जीर्णशीर्ण नरककाल! हजारो वर्षो से अधिकार-च्युत, पद-दलित, अत्याचार-पीडित स्त्रियो के लिए 'सेवासदन' और कर्ज और नौकरशाही के आतक मे रहनेवाले किसानों के लिए 'प्रेमाश्रम' खोलकर वे सतुष्ट है। समाज की तह मे उनका यथार्थवाद नहीं उतरता। वे उदाराशय, परोपकारी और सुधारवादी हैं।"

इतने पाप करने पर भी प्रेमचद को प्रगतिशील लेखक सम्मेलन का सभापति बना दिया गया, इसे श्री चौहान या उनके गुरु जी सज्जाद जहीर की उदारता ही समझना चाहिए। बेशक गोदान-काल मे प्रेमचद कलम पकडना सीख रहे थे। लेकिन अफसोस! "क्रातिकारी प्रेमचद का जीवन अभी शैशव मे ही था कि उनका निधन हो गया। दिल की हसरते साथ ही चली गयीं।"

प्रेमचद को अपने जीवन-काल मे हिंदी-भाषी जनता का प्रबल समर्थन मिला। प्रथम महायुद्ध के दौरान उनकी कहानियाँ 'सरस्वती' मे प्रकाशित करके द्विवेदी जी ने उन्हे हिंदी-पाठको मे लोकप्रिय बनाया। 'सेवासदन' और 'प्रेमाश्रम' के प्रकाशन से हिंदी मे धूम मच गई। प्रेमचद के हर उपन्यास का प्रकाशन—विशेषकर 'गबन' 'कर्मभूमि', रगभूमि' और 'गोदान' का प्रकाशन— साहित्य के इतिहास की स्मरणीय घटना बन गया। हिंदी-भाषी प्रदेश के बाहर तमिलनाडु, महाराष्ट्र, गुजरात आदि प्रदेशो मे उन्हे बहुत बडी लोकप्रियता मिली। भारत के बाहर सबसे पहले सोवियत सघ के लेखको ने उनका महत्त्व पहचाना। 1926 मे ही स्वर्गीय बरान्निकोव ने उनकी 'सौत' कहानी का अनुवाद उक्रेनी भाषा मे किया था। तब से उनकी रचनाओ के अनुवाद वहाँ बराबर प्रकाशित होते रहे; उन पर आलोचनात्मक पुस्तके प्रकाशित हुई। सोवियत लेखको ने पहचाना कि कृषि-प्रधान भारत देश के प्रतिनिधि लेखक प्रेमचद हैं। बेस्क्रोवनी के शब्दों मे,

''भारतीय साहित्य में किसानों की सही जिंदगी की जीती-जागती और बोलती हुइ तस्वीरे देनेवाले वे पहले लेखक हैं।'' और भी ''प्रेमचद की कृतियो से हिंदुस्तान के बारे मे जो जानकारी मिलती है उसके महत्त्व को जितना भी बढाकर कहा जाए थोडा है। हिंदुस्तान ने जो बहुत-सी प्रतिभाएँ पैदा की हैं उनमे इस कलाकार की अपनी एक खास जगह है।'' ('*हस*,' अक्तूबर 1951)

भारतीय समाज के प्रतिक्रियावादी तत्व प्रेमचद के सबसे बडे विरोधी थे। वे जैसे गाँधी जी के अछूतोद्धार से घृणा करते थे, वैसे ही वे प्रेमचद के साहित्य से घृणा करते थे। उनका दावा था कि प्रेमचद का साहित्य सामयिकता से प्रभावित है, उसमे शाश्वत साहित्य के गुण नही हैं, प्रेमचद को कथा-वस्तु गठित करना नही आता। जब कुछ तथाकथित प्रगतिवादी लेखक हिंदी-आलोचना के क्षेत्र मे अवतरित हुए तो उन्होने कभी विश्व-साहित्य के नाम पर, कभी साम्यवादी यथार्थवाद के नाम पर प्रेमचद की भर्त्सना आरभ की। जो काम दक्षिणपथी प्रतिक्रियावादी कर रहे थे, वही काम इन वामपथी अवसरवादियो ने किया। विश्व-साहित्य के जिन रचनाकारो से वे प्रेमचद की तुलना कर रहे थे, उनका साबित नाम लेने की तमीज भी उन्हे नही थी। स्वय प्रेमचद के बारे मे उन्हे इतना मालूम न था कि उनका असली नाम नवाबराय था या धनपतराय। (''प्रेमचद का असली नाम नवाबराय था।''—'*हिंदी साहित्य के अस्सी वष*,' पृ 152) न उन्हे यह मालूम था कि प्रेमचद के गाँव का नाम पाडेपुर था, या लमही या और कुछ। ''इसका (यानी 'रगभूमि का') घटनास्थल काशी और उसके पास का गाँव पाडेपुर है, स्वय प्रेमचद जहाँ के निवासी थे।'' (उप , पृ 153)। विश्व-साहित्य के रचनाकारो के नाम गिनाकर भारतीय साहित्य—और विशेषकर हिंदी साहित्य—को नीचा दिखाने से इन मनीषियों को अपने महत्त्व का बोध होता था। विश्व-साहित्यकार तो दूर, इसमे सदेह है कि उन्होंने प्रेमचद के उपन्यास भी पढे थे या नहीं। दूसरो की राय उद्धृत करके काम चल जाए तो पढ़ने की तकलीफ क्यो गवारा की जाए?

''प्रेमचंद के पहले उपन्यास 'रूठी रानी' के बारे मे उनका कहना है ''

(यद्यपि यह प्रेमचद का पहला उपन्यास नही है, लेकिन यहाँ प्रश्न सम्मतियाँ उद्धृत करने का है।)

'' 'वरदान' के बारे में उनकी राय है ।''

'' 'प्रतिज्ञा' के बारे मे उनका कहना है ।''

'प्रेमचद का 'सेवासदन' पहला महत्त्वपूर्ण उपन्यास है, उसके बारे में 'रहबर' का कहना है ।''

'' 'निर्मला' के बारे मे उनका विचार है कि ।''

'' 'कायाकल्प' के बारे मे और आलोचकों की राय का उल्लेख करते हुए 'रहबर' इस परिणाम पर पहुँचे हैं कि ।''

" 'गबन' के बारे मे उनका मत है कि ।"

" 'कर्मभूमि' की खामियो के बारे मे टिप्पणी करते हुए 'रहबर' ने प्रेमचद की कला की मौलिक कमजोरी की ओर इशारा किया है कि ।"

" 'गोदान' की आद्यत प्रशसा करते हुए भी 'रहबर' को प्रेमचद के विश्वबोध की सीमाओ को स्वीकार करके लिखना पडा है "

"अब रह गए केवल दो उपन्यास—'प्रेमाश्रम' और 'रगभूमि'। इनमें प्रेमचद का सुधारवादी दृष्टिकोण उनकी कला पर कितना हावी हुआ इसकी ओर भी रहबर' ने सकेत किया है, यद्यपि स्पष्टत नही। प्रेमचद के नाटको को रहबर सर्वथा 'असफल' मानते हैं और उनकी कहानियो के बारे मे तो स्वय अमृतराय का कहना है ।" (*'साहित्य की समस्याएँ'*, पृ. 115-17)

स्वय अमृतराय ! बेटा ही बाप की निंदा करे, इससे बडा प्रमाण प्रेमचद के निकम्मेपन का और क्या होगा ? सम्मतियो का पिटारा। उसी के आधार पर 'साहित्य की समस्याएँ', 'हिंदी गद्य साहित्य', 'हिंदी साहित्य के अस्सी वर्ष', चाहे जितनी किताबे लिखते चले जाइए और विश्व-साहित्य के रजिस्टर से प्रेमचद का नाम बराबर काटते चलिए !

" 'निर्मला' वृद्ध-विवाह के दुष्परिणाम और विमाता की मनोवैज्ञानिक समस्याओ का चित्र है। 'प्रतिज्ञा' की समस्या विधवा-विवाह से सबंधित है। गबन' मे प्रेमचद ने पुन निम्न-मध्यवर्ग की विडबनाओ का चित्रण किया—आभूषणो की लालसा, गृह-कलह, पतन।" (*'हिंदी गद्य साहित्य'*, पृ 60; *'हिंदी साहित्य के अस्सी वर्ष,'* पृ 153)। इस तरह की कथावस्तु का विवेचन दूसरो की राय पढ़कर भी आसानी से किया जा सकता है।

जिन लोगो का विश्व-साहित्य से परिचय है—जिन्होने केवल नाम गिनाना नही सीखा—जिन्होने प्रेमचद की रचनाएँ पढी है और जो आलोचना की वैज्ञानिक पद्धति से परिचित हैं, वे न तो भारत की तत्कालीन औपनिवेशिक परिस्थितियो मे प्रेमचद से साम्यवादी यथार्थवाद की माँग करते हैं, न उनके अतर्विरोधो को समझते हुए उन्हे पूँजीवादी यथार्थवाद का चोगा पहननेवाला घोषित करते हैं। उनके लेखो मे साहित्य के प्रति सच्चा प्रेम झलकता है और उनके चरित्र की विनम्रता भी प्रकट होती है।

'गोदान' के रूसी अनुवाद की भूमिका मे श्री ई कोपात्सेव ने भारतीय स्वाधीनता आदोलन की चर्चा करने के बाद लिखा है—"यह थी वह परिस्थिति जिसमे आधुनिक हिंदी-उर्दू साहित्य के निर्माता, भारत के महान् लेखक, शब्दों के अनुपम जौहरी प्रेमचद की ज्वलत मौलिक प्रतिभा असाधारण शक्ति से विकसित हुई।"

और विश्व-साहित्य के बारे मे—"विश्वविद्यालय मे शिक्षा न पा सकने के बावजूद वह अपने समय के अत्यत सुपठित व्यक्तियों मे थे। वह विश्व-साहित्य से

भलीभाँति परिचित थे और उसके विकास में उन्होने महत्त्वपूर्ण योग दिया।"

मार्क्सवाद सच्चा मानवतावाद है; वह कला और सम्कृति से गहरा प्यार है, अहंभाव और हीनभावना दोनो से कोसों दूर है। भारत के दु:खी-दरिद्र किसानों के अनूठे चित्रकार प्रेमचद को विश्व-साहित्य मे जगह न मिलेगी तो किसे मिलेगी? वामपथी अवसरवाद मार्क्सवाद नही है, वह केवल मार्क्सवाद का मुलम्मा है। यह अवसरवाद गरम लफ्फाज़ी से अपने को छिपाता है, वस्तुगत रूप से काम वही करता है जो दक्षिणपथी प्रतिक्रियावाद करता है। प्रेमचद का विरोध घृणा का प्रचारक कहकर कीजिए तो, और विश्व-साहित्य मे जगह पाने के अयोग्य कहकर कीजिए तो, नतीजा एक ही निकलता है। पाठक मार्क्सवाद और वामपथी अवसरवाद का यह भेद पहचान ले।

13. कलम का सिपाही : प्रेमचंद

अमृतराय की लिखी हुई पुस्तक 'कलम का सिपाही' प्रेमचद की पहली, साधिकार लिखी हुई जीवनी है। यह हिंदी में बडे पैमाने पर लिखी हुई किसी भी साहित्यकार या अन्य महान् व्यक्ति की पहली जीवनी है। इस पुस्तक का प्रकाशन जहाँ एक ओर हिंदी के अभाव की पूर्ति करता है, वहाँ इस अप्रिय सत्य की ओर सकेत भी करता है कि हमारे लेखको का ध्यान जीवनी लिखने की ओर बहुत ही कम गया है।

अमृतराय ने यथाशक्ति प्रेमचद के पत्रो का सकलन किया है। इस सकलन मे सबसे बडा जखीरा दयानारायण निगम को लिखे प्रेमचद के पत्रो का है जिससे उनके साहित्यिक और पारिवारिक जीवन की बहुत नजदीकी तस्वीरें मिलती हैं। उन्होने उर्दू और हिंदी दोनो में प्रेमचद की समस्त प्रकाशन-सामग्री को समेटकर रचनाओं का काल-निर्धारण आदि प्रामाणिक ढग से किया है। प्रेमचंद-साहित्य को लेकर जीवन-काल मे जो वाद-विवाद उठे थे, उनको भी उन्होने बटोरा है। पुरानी पत्र-पत्रिकाओ से यह सब सामग्री ढूँढ़ निकालना आसान काम नहीं है। यह पुस्तक लगातार कई वर्षों के घोर परिश्रम का परिणाम है।

पुस्तक का महत्त्व केवल जीवन-चरित के रूप मे नही है। इसमें प्रेमचंद के जीवन से संबंधित बहुत बडी अध्ययन-सामग्री एकत्र की गई है। इस दृष्टि से प्रेमचद-साहित्य का अध्ययन करनेवालो के लिए इसका महत्त्व कभी कम न होगा। पुस्तक मे दी हुई सामग्री के आधार पर प्रेमचद का जो व्यक्तित्व उभरकर आता है, वह एक जबर्दस्त जीवटवाले सूरमा का है और उसका महत्त्व उनके साहित्य से किसी तरह कम नही है।

प्रेमचंद का व्यक्तित्व असाधारण था। उन्होंने न केवल हिंदी-उर्दू में, वरन् समग्र भारतीय साहित्य मे एक जबर्दस्त क्रांति की। भारत के बाहर यदि रूस, ब्रिटेन या फ्रास के कथाकारो को ले तो किसानो के जीवन का चित्रण करने में उनका सानी नही है। उनसे बडे-बडे कलाकार तो हैं लेकिन उन जैसा किसानों का कोई आत्मीय नही है। यदि वह व्यक्तित्व की असाधारणता नहीं है तो असाधारणता और कहते किसे हैं?

प्रेमचद इतने बडे हैं कि उन पर जो काम किया जाए, वह छोटा लगता है। उस

बड़प्पन को नापना या उसकी भीतरी पेचीदगियों को पहचानना आसान काम नहीं है। इसलिए 'कलम का सिपाही' के पाठक के मन मे लेखक को दाद देने के साथ असतोष भी उत्पन्न हो, तो आश्चर्य नही।

प्रेमचद के पत्र अभी और बहुत-से होंगे—उनके घरेलू पत्र, 'माधुरी', 'हस और 'जागरण' के सपादक-रूप मे लिखे हुए लोगो को पत्र, उर्दू के बहुत-से साहित्यकारो को लिखे हुए पत्र। अमृतराय के हाथ जो चीजे लगी हैं, वे मुश्किल से पूरे पत्र-सचय का एक-चौथाई होगी। लेकिन पत्रो को दूसरो के यहाँ से निकालना बहुत ही मुश्किल काम है, जो पत्र नष्ट हो गए, उनका जिक्र ही क्या, जो बच रहे हैं, वे भी सग्रहकर्त्ताओ की सावधानी या असावधानी के कारण लोगो के सामने नही आ पाते। जिन लोगो के पास प्रेमचद के पत्र हो, उनसे विनय है कि उन्हे प्रकाशित करा दे (या अमृतराय के पास भेज दे) जिससे प्रेमचद के प्रकाशित पत्र-सग्रह और भरे-पूरे हो सके।

प्रेमचद के सबंध मे उर्दू-पत्रिकाओ मे बहुत-सी सामग्री होगी, हिंदी-पत्रिकाओ मे निश्चित रूप से है। यह सामग्री इस बात को प्रमाणित करती है कि प्रेमचद को हिंदी-ससार के विशाल जनमत का प्रबल समर्थन प्राप्त था, उनका विरोध करनेवाले दो-चार—एक क्षीण अल्पमत—के प्रतिनिधि ही थे। इन पत्रिकाओं के पन्ने पलटने से यह बात भी स्पष्ट हो जाएगी कि सामाजिक रूढिवाद से सघर्ष करनेवाले और नई समाजवादी चेतना का प्रसार करनेवाले प्रेमचद अकेले नही थे, उनके साथ और भी अनेक समर्थ प्रतिभासपन्न लेखक थे। अमृतराय ने 'हस' और 'जागरण' के लेखो का उपयोग किया है, 'मर्यादा' और 'माधुरी' मे प्रेमचद के सपादन-कौशल का विवरण छोड दिया है।

अमृतराय ने प्रेमचद पर किए गए आक्षेपो का उल्लेख काफी विस्तार से किया है। उनके समर्थन मे प्रकाशित होनेवाले लेखो का हवाला बहुत ही कम है। इससे यह गलत तस्वीर सामने आती है कि प्रेमचद का विरोध बहुत ज्यादा था, समर्थन बहुत कम। विरोधी लेखो का विवरण अधूरा है। उदाहरण के लिए, 'अप्सरा' को लेकर 'हस' और 'सुधा' मे बहस चली थी जिसमे प्रेमचद पर काफी आक्षेप किए गए थे और उनके समर्थन मे दूसरे लेख भी निकले थे। उर्दू मे भी प्रेमचद का विरोध हुआ था। अमृतराय ने उसका साराश उस तरह नही दिया जिस तरह हिंदीवाले विरोध का दिया है।

तात्पर्य यह है कि प्रेमचद के जीवनचरित को भरा-पूरा बनाने के लिए सामग्री-सकलन की गुजाइश अब भी बहुत काफी है।

'कलम का सिपाही' मे प्रेमचद के जीवन की बहुत-सी दिलचस्प और नजदीकी तस्वीरे मिलती हैं। कही वह चुराकर गुड खा रहे हैं, कही दयानारायण निगम से अपनी लिखाई के पारिश्रमिक-स्वरूप जूते और घडी माँग रहे हैं, कही पुराने स्लीपर की कील ठोक रहे हैं। बबई जाने तक उन्होंने कभी फाउटेनपेन ही न

खरीदा था। बीडी पीते थे, बाद को सिगरेट भी। 'प्रेमचद स्मृति अक' और शिवरानी जी की पुस्तक 'प्रेमचद घर में' दुर्लभ सामग्री का पिटारा है। 'कलम का सिपाही' का काफी हिस्सा इन पर निर्भर है। अमृतराय ने प्रेमचद के पुराने छात्रो को ढूँढकर और उनके कुछ पुराने मुलाकातियो का पता लगाकर कुछ और सस्मरण इकट्ठे किए हैं। पुरानी सामग्री मे यह महत्त्वपूर्ण इजाफा है। फिर भी पुरानी सामग्री की तुलना मे मात्रा और गुण दोनो के विचार से यह नई सामग्री अल्प ही है।

प्रेमचद के पारिवारिक परिवेश मे उनके भाई महताबराय, पिता, चाची, पत्नी, पुत्र आदि के चित्र उभरकर आते हैं यद्यपि इन पात्रो को बाहर से ही ज्यादा देखा गया है, भीतर से कम। 'प्रेमचद घर मे' पढ़कर प्रेमचद के जीवन का ज्यादा गहरा चित्र मन पर उतरता है। यदि शिवरानी जी और जैनेद्र जी वाले सस्मरण 'कलम का सिपाही' से निकाल दिए जाएँ तो पता चले कि अमृतराय के अपने सस्मरण नही के बराबर है। अमृतराय ने पिता के साथ अपने दोस्ताना ताल्लुकात का जिक्र किया है, इसलिए उनके सस्मरणो का अभाव और भी खटकता है। शिवरानी जी की भी जैसी तस्वीर उनके अपने सस्मरणो मे उभरकर आती है, वैसी इस पुस्तक मे नही उभरती। प्रेमचद के जीवन-चरित मे उनकी जीवनसगिनी को कुछ और जगह मिलनी चाहिए थी। प्रेमचद के बडे भाई का उल्लेख मात्र हुआ है, उनके बारे मे कुछ भी विवरण नही दिया गया। पुत्रो मे एक बार धुन्नू की पिटाई का जिक्र है। उस पिटाई का मजा लेने के बाद मानो छोटे भाई ने बडे भाई को चित्रपट से गायब ही कर दिया।

कई जगह अमृतराय ने अपनी सौतेली माँ का जिक्र किया है। देखते ही शक्ल से नफरत हो गई—भद्दी, थुलथुल, फूहड। इतना ही नही, उनके चेहरे पर चेचक के गहरे-गहरे दाग थे और एक टाँग कुछ छोटी थी जिसके कारण गरीब को भचककर चलना पडता था। महीने मे एकाध बार हहुआती भी जरूर थी, जब उन पर भूत-प्रेत आते थे। सुनते हैं दिमाग मे कुछ खलल भी था, क्योकि लडाई होने पर अपने पति से कहती थी—"हम तुम्हे गदहा छानने के पगहे से बँधवाकर मँगा लेगे। ऐसे-ऐसे जादू-टोने है हमारे पास।" जायसी के मुँह पर भी चेचक के दाग थे। हँसनेवाले से उन्होने कहा था—"मुझ पर हँसता है या कुम्हार पर।" भद्दी और थुलथुल देह डॉ जानसन की थी। जादू-टोने पर यकीन करने के कारण अग्रेजी गद्य के अन्यतम लेखक टामस ब्राउन ने बूढी स्त्रियो को डायन होने के अपराध मे जिन्दा जलवा दिया था। उनसे तो यह प्रेमचद की परित्यक्ता परिणीता भली थी; पगहा से बँधवा मँगाने की धमकी ही तो देती थी। पाँव छोटा था। बायरन और पोप भी थोडा-सा लँगडाते थे। दिमाग मे खलल ? बहुत-से लेखको के रहा है। बदशक्ल, फूहड, झगडालू—इस तरह के विशेषणो का प्रयोग अमृतराय ने एक से अधिक बार किया है। जब वह प्रेमचद के घर से आखिरी बार बिदा हुई, "तो नवाब के लिए वह सचमुच मर गई—गो मरी बहुत बाद को।" बेशक जल्दी मरना चाहिए था। तब

शायद मरने के बाद उन्हे बदशक्ल और फूहड कहकर बार-बार कोसने की जरूरत न पडती। कसूर उनका भी नही। प्रेमचद के शब्दों में "हमारी मखदूमा ने जल-भुनकर गले मे फाँसी लगाई। माँ ने आधी रात को भाँपा, दौडी, उसको रिहा किया।" (*'कलम का सिपाही'*, पृ 69)। मरने की कोशिश करके भी बेचारी मर न पाई।

प्रेमचद की चाची यानी सौतेली माँ बहुत झगडालू थी। उनके कारण प्रेमचद की अपनी पहली पत्नी से न पटी। उनके कारण प्रेमचद की दूसरी पत्नी से भी उनकी कई साल तक न पटी, यानी मियाँ-बीवी के झगडो का एक कारण सौतेली माँ थी। शिवरानी जी ने इस गृह-कलह का उल्लेख करते हुए लिखा है, "मुझसे उनसे कोई आठ साल तक नही पटी, क्योकि उनके घर मे बमचख बहुत था। मैं बमचख की आदी न थी। वे चाहते थे कि मैं अपने लिए खुद स्थान तैयार करूँ।"

अमृतराय ने इस महत्त्वपूर्ण बात का जिक्र नही किया कि उनके माता-पिता मे आठ वर्ष तक नही पटी। यह आठ वर्ष विवाह के बाद भरी जवानी के आठ वर्ष थे। प्रेमचद घर सँभाल न पाते थे और गुस्सा बीवी पर उतारते थे। गृह-कलह के सिलसिले मे झगडा हुआ। शिवरानी जी अपनी बात पर अडी रही। "इस पर उन्होने मुझे दो चपत लगाए और बाहर चले गए।" यह कल्पना करना आसान है कि इस तरह पहलीवाली ने बहुत बार चपते खाई होगी। सारा कसूर उसी का न था। मुख्य अपराधी सौतेली माँ का कुछ बिगाड न पाने के कारण अशत प्रेमचद स्वय भी अपराधी थे।

अमृतराय के लिए उचित था कि जहाँ शिवरानी जी की पुस्तक से उन्होने और तमाम बाते ली हैं, वहाँ प्रेमचद की पहली पत्नी से शिवरानी जी के सबध का भी उल्लेख कर देते। शिवरानी जी और उनके पिता—दोनो मे किसी को प्रेमचद की इस पहली शादी के बारे मे मालूम न था। एक दिन घर के बाहर जब प्रेमचद साले से बाते कर रहे थे, तब शिवरानी जी ने आड से उनकी बाते सुनी और प्रेमचद को आडे हाथो लिया—"एक आदमी का जीवन मिट्टी मे मिलाने का आपको क्या हक है?" शिवरानी जी ने अपनी सौत को 'प्रिय बहन' करके पत्र लिखा। उन्हे अपने साथ रहने के लिए बुलाया। उन्होने पत्र का उत्तर भी दिया। कैथी लिख लेती थी। वह आने को तैयार थी। शर्त यह थी कि प्रेमचद उन्हे लिवाने जाएँ। प्रेमचद इसके लिए तैयार न थे।

एक बार प्रेमचद ने कहा—"अब तो आपको मैंने मालिक बना दिया।"

शिवरानी जी ने उत्तर दिया—"मुझे मालिक बना दिया। एक की मिट्टी पलीद कर दी जिसकी कुरेदन मुझे हमेशा होती है। जिसे मैं बुरा समझती हूँ, वह हमारे ही यहाँ हो और हमारे हाथो हो। मैं स्वय तकलीफ सहने को तैयार हूँ, परन्तु स्त्री जाति की तकलीफ मैं नही देख सकती। उसी का प्रायश्चित शायद मुझे भी करना पडेगा, हालाँकि मैं बेगुनाह हूँ। मेरे पिता को मालूम होता तो आपके साथ

मेरी शादी हर्गिज न करते।"

जब प्रेमचद ने उनकी बदसूरती और तेज ज़बान की शिकायत की तो शिवरानी जी ने कहा—"आप दावे के साथ कह सकते हैं कि आपका अपना चरित अच्छा था ? खामोश ! जब आदमी खुद वैसा न हो तो दूसरे से आशा करना व्यर्थ है।"

इस पहले विवाह और पत्नी के त्याग के प्रति शिवरानी देवी का दृष्टिकोण सही है और वह प्रेमचद की साहित्यिक परपरा के अनुकूल है। अमृतराय का दृष्टिकोण इससे भिन्न है।

प्रेमचद की पचीसो कहानियो का सबध पुराने ढग के संयुक्त परिवार और उसके टूटने से है। उन्हे इस सयुक्त परिवार से मोह था। वह स्वय एक बडे परिवार मे पैदा हुए थे। यह परिवार उनके देखते-देखते टूटा। बडे भाई से प्रेम था। वह भी प्रेमचद से इतनी आत्मीयता मानते थे कि जो काम प्रेमचद से न करा सकते थे, वह शिवरानी जी से करा लेते थे। उनके क्रोध की बौछार भी शिवरानी जी को सहनी पडी। दोनो भाइयो मे बँटवारा हुआ। अमृतराय ने महताबराय से मनमुटाव का चित्र खीचा है, प्रेमचद की सारी कमजोरियाँ पेश करते हुए विस्तार से। लेकिन यह कोई क्षणिक मनमुटाव न था। पूरे परिवार का पुराना ढाँचा टूट रहा था। इस सिलसिले मे बडे भाई से बँटवारे का जिक्र भी करना चाहिए था। इस मामले मे प्रेमचद और शिवरानी जी के दृष्टिकोण मे वैसे ही भेद था जैसे होरी और धनिया के दृष्टिकोण मे।

अमृतराय ने प्रेमचद को कलम के सिपाही के रूप मे चित्रित किया है। कलम के सिपाही वह थे यानी देश की आजादी के लिए कलम लेकर लडते थे। लेकिन यह उनके साहित्य का एक पहलू है। अमृतराय ने उनक व्यक्तित्व और साहित्य को बहुत सरल और समतल बनाकर पेश किया है। हर आदमी मे अतर्विरोध होते हैं। अतर्विरोध न हो तो उसका व्यक्तित्व गतिशील न होकर स्थिर और जड हो जाए। जब अतर्विरोध एक हद तक सतुलित रहते हैं तब वे गतिशीलता प्रदान करते हैं, जब उनका असतुलन सीमा पार कर जाता है, तब व्यक्तित्व भीतर से टूट जाता है। व्यक्तित्व की पेचीदगियो को भुलाकर अमृतराय कुछ मोटे सूत्रो को बार-बार दोहराकर अति सरल चित्र प्रस्तुत करते हैं जो यथार्थ से दूर है।

प्रेमचद अपने युग की नवीन चेतना से प्रभावित थे, वह स्वय उसके निर्माता थे। अनेक राजनीतिज्ञो की तुलना मे वह वर्तमान और भविष्य—दोनो को ज्यादा स्पष्टता से देखते थे। फिर भी प्राचीन सयुक्त परिवार से उन्हे मोह था। इस मोह के बावजूद इस प्राचीन परिवार-प्रथा के दोषों का जैसा विशद चित्रण उन्होंने किया है, वैसा किसी दूसरे कलाकार ने नही किया। पुरानी प्रथा का विघटन उन्होंने अपने घर मे देखा था; इसीलिए उनके जीवन-चरित मे उस विघटन का चित्र आना जरूरी था और इस चित्र से उनकी पचीसो पारिवारिक जीवन-सबंधी कहानियों का सूत्र

जोडना आवश्यक था। 'कलम का सिपाही' कहने से पारिवारिक जीवन के विघटन का मोहपूर्ण किंतु यथार्थ चित्रण करनेवाले प्रेमचद पाठक की दृष्टि से ओझल हो जाते है।

प्रेमचद के यथार्थ चित्रण की गहराई का एक बहुत बडा कारण उनकी पारिवारिक जीवन की पकड है। वे चाहे किसी जमीदार का चित्रण करे, चाहे किसी किसान का, वे कभी अपने को राजनीतिक या आर्थिक सघर्ष तक सीमित नही रखते। जहाँ रखते हैं, वहाँ कमजोर पडते है और यह बात उनकी कुछ कहानियो मे ही देखने को मिलती है। उनका उपन्यास तो एक भी नही है जिसमे विभिन्न पात्रो के पारिवारिक जीवन का चित्रण न किया गया हो। प्रेमचद की कला की गहरी जडे इस पारिवारिक परिवेश मे है और राजनीतिक आदोलनो के उतार-चढाव का चित्र खीचने मे कलाकार की जीवनी-शक्ति के मूल स्रोत का बिलकुल पता नही चलता।

हर कोई जानता है कि प्रेमचद ने समाज के सभी वर्गो की अपेक्षा किसानो के चित्रण मे सबसे अधिक सफलता पाई है। वे हर तरह के किसानो को पहचानते थे उनके विभिन्न आर्थिक स्तर, उनकी विभिन्न विचारधाराएँ, उनकी विभिन्न सामाजिक समस्याएँ—वे किसान-जीवन के हर कोने से परिचित थे। जैसी उनकी जानकारी असाधारण थी वैसा ही किसानो से उनका स्नेह भी गहरा था। किसानो के सपर्क में आनेवाली शोषण की जगी मशीन के हर कल-पुर्जे से वे वाकिफ थे। अमृतराय ने प्रेमचद के राजनीतिक परिवेश का चित्रण करने मे पचीसो पन्ने रँग डाले है, पट्टाभि सीतारमैया के इतिहास और पडित जवाहरलाल नहरू की आत्मकथा से लबे उद्धरण दिए हैं, आत्मकथावाले उद्धरण तो सख्या और लबाई मे उबा देनेवाले हैं। अपने शब्दो मे राजनीतिक घटनाक्रम का वर्णन अलग है, काफी विस्तार से, और इस वर्णन मे न कोई कलात्मक सौंदर्य है, न चिंतन की मौलिकता। जिन किसानो के बीच बैठकर प्रेमचद ने अपने विशाल कलात्मक साहित्य की सामग्री इकट्ठी की थी, उनकी जिंदगी की तस्वीर पर सामाजिक परिवेश के चित्रण मे कोई ध्यान नही दिया गया।

प्रेमचद-साहित्य मे किसानो की सीधी टक्कर अग्रेजी राज से कम होती है। उनकी सीधी टक्कर होती है महाजनो, सूदखोरो, जमीदारो और पडे-पुरोहितो से। अग्रेजी राज इनके सहायक के रूप मे सामने आता है। अमृतराय ने सामाजिक परिवेश का चित्रण करने मे राजनीतिक आदोलनो—साम्राज्यवाद से उच्च और मध्यवर्गीय जनता के उतार-चढाववाले सघर्ष—का वर्णन किया है, अग्रेजो की छत्रछाया में पलनेवाले सामतवाद का हवाला देना आवश्यक नही समझा। प्रेमचद की बहुत बडी विशेषता यह है कि वे भारतीय समाज के अदरूनी सघर्ष को समझते थे, उस पर पाठको का ध्यान केंद्रित करते थे, इस सघर्ष से साम्राज्य-विरोधी सग्राम का संबंध जोडते थे। इसलिए उनके सामाजिक परिवेश के चित्रण मे भारतीय

समाज के अतर्विरोधो—उसके सामती अवशेषो—का विवरण देना आवश्यक है।

प्रेमचद जिस विचार-भूमि से समाज के भीतरी द्वद्व को देखते थे, वह साधारण खाते-पीते किसान की है। उनको जीवन-भर यह लालसा रही कि उनके पास अपनी जमीन हो और वह आजादी से खेती करके—या कराके—जिदगी बसर करे। लेकिन उनकी यह लालसा पूरी न हुई। जिदगी ने उन्हे देहात के सर्वहारा वर्ग के नजदीक ला पटका। उनकी विचारधारा पर सर्वहारा वर्ग—न केवल देहाती, वरन् शहरी सर्वहारा वर्ग—की नई चेतना का रग भी चढा हुआ है। उनका साहित्य-सृजन अधिकतर सोवियत क्राति के बाद के युग मे हुआ जब हमारे राष्ट्रीय आदोलन पर समाजवादी विचारधारा का गहरा असर पडा। किंतु सन् '17 से पहले और बाद को उन्होने जो साहित्य रचा, उसके सूत्र अलग न होकर आपस मे जुडे हुए है। उन्होने रूढिवाद के विरोध मे अपना सघर्ष पहले ही आरभ कर दिया था, उस सघर्ष मे विकास हुआ, किंतु उसका सूत्रपात सन् '17 से पहले ही हो चुका था।

प्रेमचद को पुराने सयुक्त परिवार से मोह था और वह स्वय उसकी चक्की मे पिस भी चुके थे। पूँजीवाद के मुकाबले मे उन्हे सामती-सबध किसी कदर भले मालूम होते थे। 'महाजनी सभ्यता' के आरभ मे सामती शोषण के साथ सामतवाद के गुणो का जिक्र करते हुए उन्होने लिखा था—"राजा और सम्राट् जनसाधारण को अपने स्वार्थ-साधन और धन-शोषण की भट्ठी का ईधन न समझते थे, किंतु उनके दु ख-सुख मे शरीक होते थे और उनके गुणो की कद्र करते थे।" इस सामत-वर्ग की सबसे निर्मम आलोचना भी प्रेमचद ने की है। वह न केवल मजदूर-वर्ग की हिमायत करते थे वरन् अपने को भी मजदूर कहते थे। कलम के सिपाही थे और कलम के मजदूर भी। गाँधी जी के प्रति उन्हे बहुत श्रद्धा थी और 'प्रेमाश्रम' मे ही उन्होने गाँधी जी के आदोलन की सीमाओ की आलोचना भी शुरू कर दी थी। वह एक तरफ धार्मिक अधविश्वासो के कट्टर आलोचक थे, दूसरी तरफ पुनर्जन्म, भूत-प्रेत और भाग्य पर विश्वास की ओर भी झुकते थे। प्रेमचद के व्यक्तित्व के ये अतर्विरोध भारतीय समाज की तत्कालीन परिस्थितियो से उत्पन्न होते हैं, उनकी व्याख्या कांग्रेसी आदोलन की मोटी रूपरेखा देने से नही होती।

प्रेमचद के सामाजिक परिवेश की तरह उनके सास्कृतिक परिवेश के चित्रण मे बहुत-सी खामियाँ है। प्रेमचद ने तिलिस्म और ऐयारी की किताबे पढी थी, लेकिन उन्होने उनका अनुसरण नही किया। अमृतराय ने लिखा है—"कोई ताकत जो खुद उससे बडी थी, उसका हाथ पकडकर उसे सामाजिकता के उस रास्ते पर ले गई जिसे भविष्य मे उसका अपना खास रास्ता बनना था।" यह ताकत एक तरफ तो समाज की बदलती हुई परिस्थितियो के दबाव से पैदा हुई थी, दूसरी तरफ वह उन्हे साहित्य की विरासत के तौर पर मिली थी। हिंदी मे तिलस्म और ऐयारी के अलावा भी बहुत-कुछ और था। प्रेमचद ने बालमुकुद गुप्त को भी पढ़ा था, उनसे मिले थे, उनकी शैली से उनकी अपनी हिंदी-शैली काफी मिलती-जुलती है। बालमुकुद

गुप्त उर्दू के लेखक भी थे और प्रेमचद को हिंदी-उर्दू से अपना सबध देखते हुए उनकी याद भी आती थी।

प्रेमचद ने "अपनी मिट्टी से सस्पर्श बनाए रखकर" यूरोप के साहित्य को पढ़ा और "उससे पहले, सादी के लतीफो और हाफिज की गजलो ने अच्छी तरह उनके मन को रँगा है। वह शोखी, वह चुलबुलापन, वह रगीनी, वह हाजिर जवाबी, जो फारसी की जान है, मुशी जी के खून मे भी घुल गई है।"

शोखी, चलबुलापन और रगीनी—इनका जानी दुश्मन कोई था तो प्रेमचद। वह उर्दू काव्य की आलोचना करते थे तो इन्ही गुणो या दुर्गुणो के कारण। वह हाजिर-जवाब थे, लेकिन उनका व्यग्य शोषण की चक्की मे पिसे हुए लेखक का मर्म-व्यथा प्रकट करनेवाला व्यग्य होता था। फोटो देखकर उनका यह कहना—' मेरा मुँह टेढा आया है। क्या करे, नसीब ही टेढा है।" निराला जी की याद दिलाता है।

नवीन जी का लिखा हुआ जो सस्मरण अमृतराय ने उद्धृत किया है, उसमे प्रेमचद की हास्यप्रियता नफासत लिए हुए नही है, उसमे किसान की सहज बुद्धि और अद्भुत रस की भावना छिपी हुई है। कोई कह रहा था, मुसलमान तभी रास्ते पर आएँगे जब ईट का जवाब पत्थर से दिया जाएगा। प्रेमचद ने कहा कि पागलो के साथ पागल बनना ठीक नही। इस पर उन सज्जन ने कहा—अगर पागल हमारे सामने पेशाब कर तो हम क्या करे? प्रेमचद—जरा दूर हटकर खड़े हो जाओ। वह—अगर वहाँ भी आकर वह वही हरकत करे तो? प्रेमचद—जरा और दूर हट जाओ। वह—और जो वहाँ भी आकर वह यही हरकत करे? प्रेमचद—अमाँ, यह कैसे हो सकता है, वह भलामानस कोई मशक थोडे ही बाँधे है जो यहाँ-वहाँ सब जगह मूतता ही जाएगा।

इस तरह का मजाक फारसी की नफासत से कोसो दूर है। मोटेराम शास्त्री इसी हास्यप्रियता की उपज है, शोखी और चुलबुलेपनवाली परपरा से उनका कोई सबध नही है।

अमृतराय ने फारसी के सास्कृतिक प्रभाव पर जोर दिया है, सस्कृत साहित्य की परपरा से उन्हे अपरिचित दिखलाया है। प्रेमचद ने अनुवादो के माध्यम से सस्कृत साहित्य का काफी ज्ञान प्राप्त किया था। अमृतराय ने 'मेघदूत', 'विक्रमोर्वशीय' आदि पर प्रेमचद की आलोचना का जिक्र किया है। कालिदास की रचनाओ से फारसी काव्य की तुलना करते हुए उन्होने लिखा था, "फारस का पौधा हिंदुस्तान मे लगाया गया, न वह जमीन न वह आबहवा, देखने से आँखो को न ताजगी होती है न दिल को खुशी। सरो, शमशाद और सनोवर के मुकाबले मे कदब, नीम और केतकी कैसे अपने जान पडते है।' तब यह कैसे मान ले कि फारसी साहित्य का रस प्रेमचद के खून मे घुल-मिल गया था?

एक जगह अमृतराय ने स्वर्गीय शिवपूजन सहाय को प्रेमचद का 'अतरग

सखा' कहा है। किंतु इस अतरग सखा पर उन्होने इन दो शब्दो के अलावा दो वाक्य भी नही लिखे। जब अतरग सखा का कोई विवरण नही, तब और हिंदी लेखको का जिक्र सिर्फ इसलिए आता है कि प्रेमचद ने उन्हे पत्र लिखे थे, आखिरी दिनो मे उन्हे प्रोत्साहन दिया था या उन लेखको ने प्रेमचद के सस्मरण लिखे थे। प्रेमचद के निर्माण मे हिंदी-साहित्य की परपरा और हिंदी-साहित्यकारो का भी हाथ था, इसका गमान भी अमृतराय की पुस्तक से पाठक को नही होता।

आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी का इतना ही ज़िक्र है कि उन्होने प्रेमचद की 'पचायत' कहानी छापते समय उसका नाम बदलकर 'पच परमेश्वर' कर दिया था।

प्रेमचद ने 'हस' का 'द्विवेदी अभिनदनाक' निकाला था। इसके सपादकीय स्तभ मे उन्होने लिखा था, "वे हमारी गलतियो पर फटकारते थे, उन्हे प्रेमपूर्वक सुधार देते थे और हमारी सफलता पर हमे प्रेम के मोदक भी खिलाते थे। इन्होंने ठोक-ठोककर हमे सुधारा, पुचकार-पुचकारकर ठीक रास्ते पर चढ़ाया और उत्साह दे-देकर आगे बढाया।"

अमृतराय ने न द्विवेदी-अभिनदन अक का जिक्र किया है, न द्विवेदी जी से प्रेमचद के सबधो पर एक लाइन लिखी है। उनकी पुस्तक मे प्रेमचद हिंदी साहित्य की परपरा स विच्छिन्न, अपने विकास मे हिंदी साहित्य के प्रभाव से अछूते दिखाई देते हैं। हकीकत कुछ और ही है :

प्रेमचद के पूर्ववर्ती और समकालीन हिंदी-उर्दू साहित्य—विशेष रूप से हिंदी साहित्य—से परिचित न होने के कारण अमृतराय को प्रेमचद समरभूमि मे बढ़ते हुए अकेले कलम के सिपाही मालूम होते हैं। अकेले बढने के कारण यदि थोडा सनकी भी लगते हो तो यह स्वाभाविक है।

प्रेमचद ने हिंदू सप्रदायवाद का विरोध किया। इस सिलसिले मे अमृतराय ने लिखा है—"सख्त-सुस्त जो उन्हे अपनी बिरादरी को कहना था, उन्होंने कह लिया। लेकिन उससे होता क्या है, खूँखार नफरत का वह अजदहा अब भी वैसे ही मुँह बाए खडा था और अपनी गर्म-गर्म जहरीली साँसो के बगूले छोड रहा था।"

यह सही है कि हमारे लेखक और समाज-सुधारक सप्रदायवाद को मिटा नही पाए, लेकिन यह भी सही है कि पाकिस्तान और इगलिस्तान से भिन्न हिंदुस्तान मे धर्म-निरपेक्ष राज्य अपने-आप कायम नही हो गया। इसके पीछे प्रेमचद जैसे लोगो का सघर्ष है। "लेकिन उससे होता क्या है?"—इस टुकडे में लेखक के अकेलेपन की तस्वीर साफ नजर आती है। प्रेमचद ने मानो हिंदू-बिरादरी को सख्त-सुस्त कहकर अपने दिल की भडाँस निकाली हो, न कि समानधर्मा लेखकों के साथ मिलकर सप्रदायवाद के खिलाफ जमकर सघर्ष किया हो। यह बात याद रखने योग्य है कि प्रेमचद ने केवल हिंदुओ के रूढिवाद का विरोध नही किया, उन्होंने मुसलमानो के अधविश्वासो की भी तीव्र आलोचना की है। इसके यथेष्ट प्रमाण मैं

'आस्था और सौंदर्य' नाम की पुस्तक के एक निबध मे दे चुका हूँ।

"और योजना शूर तो मुशी जी पुराने हैं

"बस खयाली पुलाव पककर रह गया।

"मुशी जी ने बहुत दुनिया देखी थी लेकिन यह मोटी बात उनकी समझ मे न आई। (प्रेस का धधा करने मे साझेदारी का खतरा समझ मे न आया।)

"मुशी जी ने गले की ढोल बजाई, और जी तोडकर बजाई लेकिन अभी उनको यह समझना बाकी था कि दुनिया मे कुछ काम ऐसे भी हैं जो केवल भीष्म प्रतिज्ञा के बल पर पूरे नही किए जा सकते। प्रेस चलाना भी उनमे एक है। फटी हुई ढोल थी, बहुत ही कर्कश बोलती थी, गर्दन कटी जा रही थी, लेकिन मरते दम तक वह उसे बजाते रहे—इतनी-सी बात उनकी समझ मे न आई कि ढोल को गले से निकालकर फेका भी जा सकता है।"

ये सब नसीहतें प्रेमचद के जीते हुए उन्हे मिली होती तो कलम के सिपाही को लडने मे कुछ मदद मिलती। मरने के बाद वे उनसे फायदा उठा नही सकते, न हिंदी लेखक अब इतने मूर्ख हैं कि 'हस' और 'जागरण'-जैसे पर्चों पर व्यर्थ पैसा खर्च करे। लेकिन प्रेमचद व्यवहार-कुशलता से उतनी दूर न थे जितना अमृतराय ने उन्हे दिखलाया है। साझेदारी का प्रेस घाटा भले देता हो, अत मे रह गया वह केवल प्रेमचद का। वह अपने भाई को भी यह घाटेवाला प्रेस बेचने को तैयार न थे। उन्होने गाँव मे मकान बनवाया था और रक्षा-बधन के अवसर पर—उस जमाने मे—एक सौ पैंतीस रुपए की लौंग बेटी के लिए, पैंतालीस-पैंतालीस की घडियाँ बेटो के लिए लाए थे। (देखिए, शिवरानी देवी, *'प्रेमचद घर मे'*)। अमृतराय ने इस घटना का जिक्र नही किया, न यह लिखा है कि प्रमचद अपनी पुस्तको के रूप मे जो सपत्ति छोड गए, उससे उनके बेटो को कितना मुनाफा हुआ।

प्रेमचद व्यवहारकुशल थे, फिर भी ठगे जाते थे। लोग उनकी सहानभूति जगाकर उनसे पैसे ले जाते थे, इसका विस्तृत विवरण पुस्तक मे है। किंतु प्रकाशक उन्हे कितना ठगते थे, इसका कही जिक्र नही है। प्रेमचद की किताबे छप रही हैं, चारो तरफ यश फैल रहा है, प्रकाशक पैसे लिए उनके पीछे घूम रहे हैं। अमृतराय ने इस प्रसन्न जीवन का यह चित्र खीचा है, "अच्छा लगता है मुशी जी को यह सब, और क्यो न अच्छा लगे! लेखक को इससे ज्यादा और चाहिए भी क्या—दिल मे लिखने की उमग है, कलम तेजी मे चल रहा है, छापनेवाला पैसे लिए दरवाजे पर बैठा है, कीर्ति एक भाषा की सीमा को लाँघकर दूसरी भाषाओ मे पहुँच रही है।"

पूँजीवादी प्रकाशन-व्यवस्था मे प्रेमचद मजे से फल-फूल रहे थे, लेकिन उन पर पागलपन सवार हुआ प्रेस के मालिक बनने का! पास मे पूँजी नही। "ऐसा नदी के ढहते हुए कगार पर खडा बिजनेस मुशी जी ही कर सकते थे—और उम्मीद मुनाफे की फिर भी पूरी बाँधे थे।" प्रेस आ गया लेकिन "क्या खूब, सारी लेई-पूँजी प्रेस खडा करने मे ही उड गई, अब उसे चलाने के लिए एक कौडी हाथ मे नहीं।"

नतीजा यह—"पैसे की कमी। काम की कमी। घाटे पर घाटा होता रहा।" प्रेस खोलकर प्रमचद ने कितना शेखचिल्लीपन दिखाया था, इसका वर्णन अपनी सरस व्यग्य-मिश्रित शैली मे अमृतराय ने बहुत विस्तार से किया है। लेकिन प्रेमचद-जैसे व्यवहार-कुशल आदमी ने ऐसा काम क्यो उठाया—इस सवाल का जवाब नही मिलता। या तो उन्हे मालिक बनकर मुनाफा कमाने का लोभ था या बस, सिर पर पागलपन सवार था।

प्रेमचद के इस पागलपन का रहस्य प्रकाशको से उनके सबध पर ध्यान दिए बिना समझ मे नही आ सकता। 'प्रेमाश्रम' कही से, 'रगभूमि' कही से अलग-अलग प्रकाशको के यहाँ से पुस्तके छपने का राज क्या था? शिवरानी जी ने अपनी पुस्तक मे लिखा है, "अभी इसी महीने मे मालूम हुआ है कि अभी आठ साल के अदर कोई बीस हजार की किताबे बिकी। अगर इन किताबो की रायल्टी ही मिली होती तो कोई 12000) बिना किसी मेहनत के घर आ गए होते।" खुद प्रकाशक बनने से बीस हजार की बिक्री का पता चलता है। आठ साल मे रायल्टी के बारह हजार का हिसाब लगाया जा सकता है। किंतु प्रकाशको के यहाँ तो बात कुछ सैकडो तक ही पहुँचती थी। प्रेमचद प्रकाशको के शोषण को अच्छी तरह पहचान गए थे, इसीलिए घाटे पर साझे मे प्रेस चलाने को तैयार थे। करार पर बिजनेस करने का रहस्य यह था।

मशी दयानारायण निगम को लिखा था—"सिर्फ गुजारा चाहता हूँ और गुजारा साठ रुपए से कम नही हो सकता।"

उन्ही को फिर—"आपसे दरख्वास्त है कि आप अजराहे करम जितने मजामीन या नोट शाया करे उनकी उजरत किसी एक शरह से मसलन आठ आने फी कॉलम मुकर्रर फर्मा दीजिए।" यह उजरत उन्हे नही मिली।

'आज' को हर हफ्ते अग्रलेख और टिप्पणियाँ भेजने का भार वह लेने को तैयार थे, इसके लिए वह पचास रुपए चाहते थे, 'आज' वाले कुल तीस देने को तैयार थे।

इससे अदाज लगाया जा सकता है कि उन्हे कहानियो, लेखो और उपन्यासो के लिए कितना कम पैसा मिला होगा। 'सेवासदन' के उर्दू सस्करण के बारे मे उन्होने लिखा था—"मेरे खयाल मे पहले एडीशन के लिए बीस फीसदी रखे और बकिया दो एडीशनो के लिए दस फीसदी। यानी कुल रकम साढे तीन सौ रुपए होती है।" यह रकम भी मिलनेवाली नही थी।

प्रकाशको के शोषण के अलावा वे अपने पत्रो द्वारा जनता मे नए साहित्य और नई राजनीतिक चेतना का प्रसार भी करना चाहते थे। इसलिए वह 'हस' के पीछे अपने को बरबाद किए चले जा रहे थे। शिवरानी जी ने लिखा है, "वे अपनी कठिन बीमारी के समय भी 'हस' को नही भूले थे।" प्रेमचद के जीवन की आखिरी रात का विवरण देते हुए जैनेद्र जी ने लिखा था, "रात के बारह बजे 'हस' की बात हो चुकी थी। चिंता का केद्र यही था कि 'हस' कैसे चलेगा, नही चलेगा तो क्या होगा?

'हस' के लिए तब भी जीने की आस उनके मन मे थी और 'हस' न जिएगा यह कल्पना उन्हे असहय थी।''

अमृतराय ने जैनेद्र जी के सस्मरणो के आधार पर प्रेमचद के अतिम क्षणो का विवरण दिया है। उसमे 'हस' सबधी उनकी चिंता का हवाला उन्होने निकाल दिया है। वह स्वय 'हस' न निकाले, किंतु प्रेमचद के जीवन-इतिहास मे उनकी इस अतिम इच्छा का जिक्र तो करना चाहिए था। प्रेमचद के जीवन के लिए 'हस' का क्या महत्त्व था, पाठक यह न समझे तो उसका जजाल उसे उनके पागलपन के अलावा कुछ न मालूम होगा।

प्रेमचद कलम के सिपाही थे लेकिन अकेले लडनेवाले सिपाही न थे। वह न केवल दूसरे लेखको के साथ मिलकर लडते थे वरन् जनता के साथ मिलकर लडते थे। अमृतराय ने बार-बार उन्हे लोगो से दूर, ज्यादातर घर पर रहनेवाले, बहुत कम दोस्तो, मुलाकातियोवाले लेखक के रूप मे चित्रित किया है। प्रेमचद का जीवन अलगाव का जीवन न था। उनके कथा-साहित्य मे जो सैकडो सजीव पात्र हैं, वे जिंदगी से लिए गए हैं, घर मे बैठकर कल्पना के कारखाने मे नही ढाले गए।

कलम के सिपाही के अलावा प्रेमचद बहुत अच्छे पति और पिता थे। शिवरानी जी की पुस्तक मे पति-पत्नी का अगाध स्नेह उनके जीवन के प्रेरणास्रोत के रूप मे प्रवाहित होता दीख पडता है। अमृतराय ने शिवरानी जी को शामिका-रूप मे ही ज्यादा दिखलाया है। 'प्रेमचद घर मे' का एक बहुत करुण प्रसग वह है जहाँ होरी की मृत्यु का विवरण पढते हुए वह फूट-फूटकर रोने लगती है और प्रेमचद उन्हे ढाँढस बँधाते हुए कमरे से बाहर ले जाते हैं। 'कलम का सिपाही' पढनेवाले को 'प्रेमचद घर मे' जरूर पढना चाहिए। अमृतराय ने अपनी किताब का ढाँचा और बहुत-सा रक्त-मास शिवरानी जी की पुस्तक से लिया है, लेकिन कुछ महत्त्वपूर्ण बाते छोड भी गए है।

होली के दिन प्रेमचंद मिठाई के साथ भग भी लाते थे। खुद गाते थे और कभी-कभी पत्नी के साथ मिलकर गाते थे। बच्चे को दूध पिलाने के लिए बकरी अपने हाथ से दुहते थे। खाना भी जरूरत पडने पर बनाते थे, कभी-कभी बर्तन भी माँज लेते थे। कभी पत्नी रोटी बेलती थी और वह सेकते थे। कभी खुद गेहूँ बीनकर सूखने के लिए डालते थे। गाँव मे अपने दरवाजे पर खुद झाडू लगाते थे। लडको के खेलने के लिए खुद मिट्टी इकट्ठा कर देते थे और उन्हे खेलना सिखाते थे। ओले गिरने पर बच्चो के ऊपर पत्नी के साथ लिहाफ तानकर खडे हो गए, लेकिन 'हम दोनो के सिर पर पत्थर लगे।' आखिर शिवरानी जी के कहने से नौकर पत्नी और बच्चो के साथ तख्त के नीचे छिपे। एक बार अमृतराय बचपन मे खो गए थे, तब प्रेमचद ने पत्नी से कहा था—आज यह अगर न मिलता तो मैं भी न लौटता।

रात को पानी बरसा, कमरे की छत फट गई, किताबो के बरबाद हो जाने का डर था। कटोरी मे कडुए तेल का दीया जलाया गया और पति-पत्नी भीगते हुए

किताबे उठाने रहे। शिवरानी जी को भीगने से बुखार चढ़ आया। वह स्वय अपने स्वास्थ्य का ध्यान न रखती थी, बुखार की कमजोरी मे भी काग्रेस का काम करने यानी स्त्रियो मे राजनीतिक प्रचार के लिए जाती थी, किंतु प्रेमचद को जरूरत से ज्यादा काम करने पर बराबर डॉटती थी। प्रेमचद से वही कह सकती थी—फिर भी आप न माने तो कलम तोडकर फेक दूँगी।

और वही अपने बच्चे के लिए कह सकती थी—बच्चो को भी आप-सरीखा बनना चाहिए। अगर ये ऐसे न बने तो मैं समझ लूँगी ये मेरे बच्चे हुई नही हैं।

'कलम का सिपाही' जब पढना शुरू किया तब आश्चर्य हुआ कि प्रेमचद के बचपन और युवावस्था की इतनी बाते अमृतराय को कहाँ से मालूम हुईं। इसके बाद 'प्रेमचद घर मे' दोबारा पढा। पता चला, शिवरानी जी का नाम दिए बिना ढेरो सामग्री वहाँ से लेकर यहाँ सजाई गई है। पुस्तक के अंतिम अंशो मे शिवरानी जी के उद्धरण दिए गए है, उनका नाम दिया गया है, यह काम पहले के हिस्सो मे भी किया जा सकता था। अजनबी पाठक को इसके अभाव मे पुस्तक की प्रामाणिकता मे सदेह होने लगता है। अमृतराय ने भूमिका मे लिखा है कि यह जीवनी भी एक उपन्यास है। उपन्यास की तरह यह जीवनी सब जगह रोचक नही है। साढ़े छह सौ पृष्ठो की यह सामग्री तीन सौ पृष्ठो मे मजे से सक्षिप्त की जा सकती है। पंडित जवाहरलाल नेहरू की आत्मकथा के उद्धरण निकाल दीजिए, उपन्यासो-कहानियो के उद्धरण या उनके साराश काट दीजिए, दूसरे लेखकों से जो लबे उद्धरण दिए गए है, उन्हे सक्षिप्त कर दीजिए, राजनीतिक टिप्पणियाँ छाँट दीजिए और खास तौर से प्रेमचद के स्वगत-कथन निकाल दीजिए, तो दो-ढाई सौ पन्नों की सामग्री जरूर कम हो जाएगी। प्रेमचद के सोचने का तरीका अमृतराय से कुछ भिन्न था, दोनो की भाषा-शैली मे भी अतर है। इसीलिए प्रेमचद के स्वगत-कथन फालतू और अस्वाभाविक लगते हैं। कही-कही उद्धरणो की आवृत्ति हुई है।

पृ 363-364 पर हजारीप्रसाद जी द्विवेदी के पत्र से तीन-चौथाई पृष्ठ की सामग्री उद्धृत हो गई है। पृ 606-607 पर इसको फिर उद्धृत किया गया है। बहुत जगह उद्धरणो के साथ मूल स्रोत का हवाला नही है। पृ. 628 पर लिखा है कि खुले अधिवेशन मे एक प्रस्ताव का विरोध करते हुए मौलवी अब्दुलहक और मुहम्मद आकिल ने कहा—इसके बाद जो कहा उसका उद्धरण है। दोनो एक साथ ही बोले या अलग-अलग या सयुक्त वक्तव्य दिया—कुछ स्पष्ट नही होता। न इस उद्धरण के स्रोत का पता दिया गया है।

इस तरह के दोषो की सूची काफी लबी हो सकती है। फिर भी यह प्रेमचंद की पहली प्रामाणिक जीवनी है और इस लेख के आरभ मे उसका जो महत्त्व बतलाया गया है, वह असंदिग्ध है।

14. श्री मदनगोपालकृत 'मुंशी प्रेमचंद'

श्री अमृतराय द्वारा लिखी हुई प्रेमचंद की जीवनी 1962 में प्रकाशित हुई। श्री मदनगोपाल की पुस्तक प्रकाशित हुई 1964 में, लेकिन उसकी भूमिका में तारीख पड़ी है 29 मई, 1962। लगता है कि दोनों पुस्तकें साथ-साथ लिखी जा रही थीं। किन्हीं कारणों से मदनगोपाल जी की पुस्तक के छपने में विलंब हुआ।

दोनों पुस्तकों में काफी साम्य है। अमृतराय जी की पुस्तक में लगभग साढ़े सात सौ सफ़े हैं, मदनगोपाल जी की पुस्तक में लगभग साढ़े चार सौ। अमृतराय जी ने जवाहरलाल नेहरू, पट्टाभि सीतारमैया आदि के आधार पर जो राजनीतिक पृष्ठभूमि चित्रित की है, उसे निकाल दिया जाए तो उनकी पुस्तक भी लगभग साढ़े चार सौ पृष्ठों की हो जाए।

दोनों सज्जनों ने प्रेमचंद की कहानियों और उपन्यासों के साराश दिए हैं। यदि ये अश निकाल दिए जाएँ तो पुस्तकों का लगभग अर्द्धांश और निकल जाए।

दोनों लेखकों ने पुस्तक के रोचक अंश शिवरानी देवी जी की पुस्तक 'प्रेमचंद घर में' के आधार पर लिखे हैं। यह पुस्तक सुलभ है। उसमें उधार लिए हुए अंश निकाल दिए जाएँ तो पुस्तकें पाकेट बुक साइज की हो जाएँ।

दोनों पुस्तकों में जो नई सामग्री है वह प्रेमचंद जी के अप्रकाशित पत्र हैं, विशेषकर मुंशी दयानारायण निगम को लिखे हुए पत्र। अमृतराय जी ने जीवनी के लिए इन पत्रों का उपयोग करने के अलावा उन्हें अलग से भी पुस्तक-रूप में प्रकाशित कर दिया है।

पत्रों के संग्रह में दोनों सज्जनों ने बड़ा परिश्रम किया है। 'चिट्ठी-पत्री' के दोनों भागों की भूमिका में अमृतराय जी ने अपनी खोज का ब्यौरा दिया है। दयानारायण जी के मकान के "ढहे हुए हिस्से की एक गिरी-पड़ी कोठरी में, दुनिया-भर के काठ-कबाड़ और रद्दी-सद्दी कागजों के बीच खोई हुई मिली—बाकायदा तरतीबवार सजी हुई, 1905 से लेकर 1936 तक फाइल के भीतर बंद।"

लगता है, चिट्ठियों की यह फाइल पूरी नहीं थी, कुछ पत्र मदनगोपाल जी के पास पहुँच गए थे। भूमिका में अमृतराय जी ने मदनगोपाल जी को भी धन्यवाद दिया है "जिनकी कृपा से मुझे इस संग्रह के वे पत्र मिले, जो निगम साहब के यहाँ

नही थे।" लेकिन मदनगोपाल जी की पुस्तक पढकर लगता है कि मुशी दयानारायण को लिखे हुए प्रेमचद के प्राय सभी महत्त्वपूर्ण पत्र उन्हे सुलभ थे।

'चिट्ठी-पत्री' के दूसरे खड की भूमिका मे अमृतराय जी न पत्र-सग्रह के प्रयत्नो के सदर्भ मे मदनगोपाल जी के बारे मे लिखा है, "दिल्ली के मेरे बध मदनगोपाल जी ने इस सबध मे काफी जागरूकता का परिचय दिया और कुछ पत्रो का सग्रह भी किया पर अधिक सफलता उन्हे भी नही मिली।"

लेकिन मदनगोपाल जी ने अपनी भूमिका मे लिखा है कि उन्होने अमृतराय जी को टाइप किए हुए लगभग 300 पृष्ठो की पत्र-सामग्री दी।

अवश्य ही प्रेमचद के बहुत-से पत्र नष्ट हो गए है, या इस समय अप्राप्य है। अमृतराय जी ने ठीक ही लिखा है कि फिराक गोरखपुरी ने "मशी जी की चिट्ठियाँ सँभालकर रखी होती तो आज उनक पास एक बडा-सा पुलिदा होता।"

आश्चर्य की बात है, इस पत्र-सग्रह मे अमृतराय जी या श्रीपतराय जी को लिखा हुआ प्रेमचद का एक भी पत्र नही है। यह देखकर मुशी दयानारायण निगम, जैनेद्र जी और महताबराय के प्रति कृतज्ञता प्रकट करने की इच्छा होती है कि वे प्रेमचद के कुछ बहुत ही महत्त्वपूर्ण पत्र बचाए रहे।

दोनो विद्वानो ने पत्रो की तिथि आदि का पता लगाने मे यथेष्ट परिश्रम किया है। इस परिश्रम का फल सदा पाठक को सुलभ नही हुआ। 'चिट्ठी-पत्री' खड 2 मे पत्र न 136 महताबराय का है। इस पर तारीख 24 अप्रैल दी गई है, लेकिन सन् नदारद है। पत्र न 137 मे न तारीख है, न सन्। पत्र न 138, 139 मे केवल तारीखे है, सन् नही दिए गए।

मदनगोपाल जी ने भूमिका मे लिखा है कि प्रमचद की बहुत-सी चिट्ठियो मे पता-ठिकाना, तारीख वगैरह नही थी, उन्होने डाकमुहर या खत का मजमून देखकर या पुरानी पत्र-पत्रिकाओ से जोड-तोड मिलाकर स्थान-तिथि आदि निश्चित की। इसमे उन्हे कितना परिश्रम करना पडा होगा, इसका अनुमान पाठक आसानी से कर सकते है। लेकिन इस परिश्रम का फल उन्होने पाठक को नही दिया।

"In one of his letters, he says" (पृ 47)

"In a letter he told Nigam" (पृ 98)

'Premchand wrote to Mahtabrai from Gorakhpur' (पृ 194)

इस तरह के बहुत-से स्थल है जहाँ सन्-सवत् का उल्लेख नही है। पत्रो के अलावा भी साधारणत मदनगोपाल जी ने जो तथ्य दिए है, उनके उद्गम की चर्चा नही की। उन्होने लिखा है कि अपनी पहली पत्नी से अलग होने के बाद प्रेमचद का सबध एक स्त्री से रहा और मृत्यु-शय्या पर ही उन्होने यह भेद प्रकट किया था। (पृ 58)। इस तथ्य के स्रोत का उल्लेख नही है।

प्रेमचद के पिता उन्हे नवाब कहकर सबोधित करते हैं, "Are you composing something Navab?" (पृ 17)। अभी तक लोग जानते थे कि प्रेमचद का असली नाम धनपतराय था। नवाबराय के नाम से वे कहानियाँ और लेख लिखते थे। लेकिन मदनगोपाल जी के लिखने से मालूम होता है कि प्रेमचद के पिता उन्हे नवाब कहकर पकारते थे। दर्भाग्य से यहाँ भी उन्होने अपनी जानकारी का आधार नही बताया।

प्रेमचद के अध्यापक-जीवन के बारे मे मुशी मजरूल हक कलीम के विवरण का हवाला है। अमृतराय जी की पुस्तक मे भी "उनका एक छात्र मजरूल हक लिखता है" (पृ 167)। कहाँ लिखता है, इसकी चर्चा नही है।

कुछ दिलचस्प सूचनाएँ है, जैसे यह कि 'आनद मठ' मे जो वदे मातरम् गीत है वह "India's antham" है (पृ 30)।

'शतरज के खिलाडी' की चर्चा मे उन्होने बताया है कि अवध और लखनऊ के दो राज्य थे—"The British were making inroads into kingdoms of Oudh and Lucknow" (पृ 221)।

कुल मिलाकर मदनगोपाल जी ने अमृतराय जी से अधिक परिश्रम किया है। अमृतराय जी ने केवल प्रेमचद की कहानियो के साराश दिए है, मदनगोपाल जी ने शिवरानी जी की कहानियो के साराश भी दे दिए है। अगले सस्करण मे वे अमृतराय जी की कथा-कहानियो के भी साराश दे दे तो परिवार का साहित्यिक इतिहास पूरा हो जाए।

मदनगोपाल जी की पुस्तक अग्रेजी मे है। हिंदी-उर्दू मे लिखी हुई कहानियो, उपन्यासो और लेखो का साराश हिंदी मे देना आसान है, अग्रेजी मे अधिक श्रमसाध्य। अमृतराय जी ने अपने पत्र-सग्रह मे प्रेमचद के अग्रेजी मे लिखे हुए कुछ पत्रो का अनुवाद दिया है। मदनगोपाल जी को ऐसे कुछ पत्रो के अलावा शेष हिंदी-उर्दू मे लिखे सभी पत्रो का अनुवाद—यानी उद्धृत अशो का अनुवाद—अग्रेजी मे करना पडा है। वैसे प्रेमचद की शिकस्त को हिंदी मे करना अग्रेजी मे अनुवाद करने से कम मुश्किल नही है।

प्रेमचद ने लिखा था, 'अहसन साहब से अच्छी गजले चुनवाकर शामिल कर दीजिए।" ('चिट्ठी-पत्री' खड 1, पृ 149)। मदनगोपाल जी ने इस पत्र के अनुवादित रूप मे लिखा है, "You can ask Hussain to select other poems and include them" (पृ 237)। अहसन साहब हुसैन हो गए!

उधर अमृतराय जी के पाठ मे एक जगह अहसन साहब हसन ही रह गए है—"हाँ हजरत हसन के मुताल्लिक कुछ अर्ज करना चाहता हूँ।" (पृ 146)। मदनगोपाल जी ने अपने अनुवाद मे इसी जगह अहसन ठीक लिखा है (पृ 235)।

अपनी अनुवाद-नीति के बारे मे मदनगोपाल जी ने लिखा है, "The rendering from Urdu and Hindi into English in most cases is

free." (भूमिका)।

'प्रेमाश्रम' मे बलराज रूस के साथ बल्गारिया का जिक्र करता है। मदनगोपाल जी ने अपने अनुवाद मे बल्गारिया का नाम छोड दिया है।

(पृ 166)।

प्रेमचद ने प्रेस के बारे मे लिखा था, "अब तो गले का ढोल बजाना ही पडेगा।" मदनगोपाल जी ने पत्र के अनुवाद मे यह वाक्य छोड दिया है।

वाक्य छूटने के अलावा कई जगह अंग्रेजी लिबास में प्रेमचद के विचार काफी बदले हुए नजर आते हैं। शिवरानी जी ने लिखा "इस तरह कहने से काम नही चलेगा। वह तुम्हारा विश्वास नही करेगे।" ('प्रेमचद घर मे', आत्माराम एड सस, दिल्ली, पृ 110)। मदनगोपाल जी ने इन वाक्यो को प्रश्नवाचक बना दिया है, "Would they believe you? And will it be all that easy?"

प्रेमचद ने अपनी पहली पत्नी की बिदाई के सिलसिले मे लिखा था, "बिल्ली बरुशे, मुर्गा लँडूरा ही रहेगा।" मदनगोपाल जी ने अपने अनुवाद मे मुर्गे को मुर्गी बना दिया है। (पृ 56)

प्रेमचद ने लिखा, "कोठे पर आग बरसती है।" मदनगोपाल जी ने लिखा, 'On the roof there is a rain of fire". (पृ. 55)। कोठे के बदले मे उन्होने छत को ज्यादा उपयोगी समझा। प्रेमचद ने लिखा, "मौके और फुर्सत के लिहाज से कुछ थोडा-बहुत लिटरेरी काम करता रहूँगा।" मौके और फुर्सत से सतुष्ट न होकर मदनगोपाल जी ने लिटररी काम प्रेमचद के 'रुटीन' मे दाखिल कर दिया "As a routine I'll continue doing a bit of writing' (पृ 108)

प्रेमचद ने लिखा, "मैं किस बूढ़े से कम हूँ!" मदनगोपाल जी ने वाक्य को और जोरदार बनाया—मेरी बराबर बूढ़ा और कौन है? "Is there one who is as aged as myself?" (पृ 108)

प्रेमचद ने लिखा, "शायद उस वक्त तक बाबू रघुपति सहाय का मौजा फरोख्त हो जाए।" मदनगोपाल जी ने मौजे को बदलकर "Raghupati Sahai's plot of land" कर दिया (पृ 196)।

प्रेमचद ने महताबराय को लिखा था, "तुमने कमरा बनवाने की तजवीज भाई साहब से की थी।" मदनगोपाल जी ने कमरे के बदले मकान की मरम्मत की चर्चा करना ज्यादा मुनासिब समझा। "You asked Bhai Saheb for repairs to the house" (पृ 201)

प्रेमचद ने दयानारायण निगम को लिखा था, "मैं अखबारात और रिसालो से मुनासिब और दिलचस्प तर्जुमे कर दिया करूँगा।" मदनगोपाल जी ने निगम साहब को इन सब अखबारात और रिसालो का मालिक बनाकर प्रेमचद से कहलाया है कि वे उनके लिए अनुवादित सामग्री भेजेगे "I shall translate important, useful and interesting items for your journals and

newspapers" (पृ 103)।

अंग्रेजी में 'आइवरी टावर' का मुहावरा उन लोगों के लिए इस्तेमाल होता है जो दुनिया के संघर्षों से भागकर विशुद्ध कला की साधना में अपना समय लगाते हैं। मदनगोपाल जी के लिखने से मालूम होता है कि प्रेमचंद भी इस 'आइवरी टावर' में शरण पाने के इच्छुक थे। उनकी पुस्तक में प्रेमचंद कहते हैं, "My object was to start something which could yield a little steady income, so that I could sit in my ivory tower to devote myself to literature" (पृ 388) मूल वाक्य यह था "मकसद यह था कि थोड़ी-सी मुस्तकिल आमदनी होती रहे और मैं अपने गोशाए आफियत में बैठकर कुछ थोड़ा-सा लिटरेरी काम कर लिया करूँ।" (*'चिट्ठी-पत्री'*, खंड 1, पृ 209)।

'फ्री' अनुवाद के अलावा बहुत जगह मदनगोपाल जी ने प्रेमचंद के वाक्यों का शब्दशः अनुवाद भी किया है।

प्रेमचंद ने 'प्रेमपचीसी' के प्रकाशन की कठिनाइयों में परेशान होकर लिखा था, "और यह भी न हो सका तो शहद और घी लगाकर औराक (उसके पन्नों) को चाटूँगा।" मदनगोपाल जी ने अनुवाद किया "And if even this is not feasible, I'll like it" (पृ 84)। घी और शहद जरूर छूट गए हैं लेकिन मुख्य क्रिया 'लिक' के रूप में विद्यमान है।

घी और शहद चाटने के अलावा प्रेमचंद को गूँगे का गुड़ और चुप की मिठाई भी पसंद थी। लिखा था, "कहाँ हँसी-मजाक में दिन कटता था, कहाँ चुप की मिठाई या गूँगे का गुड़ खाकर बैठना पड़ता है।" मदनगोपाल जी के अनुवाद के प्रेमचंद कहते हैं "Here I eat the dessert of silence, or the sweet of dumbness" (पृ 56)।

इसीलिए मैंने कहा, कुल मिलाकर अपनी पुस्तक लिखने में मदनगोपाल जी को अमृतराय जी से अधिक परिश्रम करना पड़ा है।

15. प्रेमाश्रम और गोदान : कुछ अन्य समस्याएँ

1. प्रेमाश्रम : पाश्चात्य संस्कृति, भारतीय संस्कृति

साठोत्तरी पीढ़ी जिस समय हिंदी में नई कविता का विकास कर रही थी, उस समय आलोचना-क्षेत्र में कुछ लेखक विशुद्ध भारतीय संस्कृति के आधार पर प्रेमचंद के उपन्यासों की नई व्याख्या प्रस्तुत कर रहे थे। कमलकिशोर गोयनका ने अपना शोधकार्य 1963 में आरंभ किया था, उनका शोधग्रंथ **प्रेमचंद के उपन्यासों का शिल्प-विधान** 1973 में प्रकाशित हुआ। **प्रेमाश्रम** किसान जीवन से संबंधित प्रेमचंद का पहला उपन्यास है, **गोदान** इस कोटि का अंतिम उपन्यास है। यहाँ इन्हीं दोनों उपन्यासों के बारे में कुछ बातें कहनी हैं।

क्या **प्रेमाश्रम** में किसान-जमींदार संघर्ष की कथा है? गोयनका का विचार है कि इस उपन्यास में पाश्चात्य संस्कृति और भारतीय संस्कृति, पाश्चात्य शिक्षा और भारतीय शिक्षा, भौतिकवाद और अध्यात्मवाद का संघर्ष चित्रित किया गया है। गोयनका ने अमृतराय द्वारा संपादित **विविध प्रसंग** से प्रेमचंद के लेख 'पुराना जमाना नया जमाना' (1919) का हवाला देते हुए लिखा, "प्रेमचंद ने इस लेख में पुराने जमाने के रूप में भारतीय और नये जमाने के रूप में पश्चिमी सभ्यता एवं संस्कृति का विवेचन किया। लेखक के अनुसार भारतीय सभ्यता आत्मा और आचार की सभ्यता है, और उसमें नैतिक, आध्यात्मिक तथा हार्दिक गुणों की प्रधानता है। इसके विपरीत, भौतिकता एवं स्वार्थपरता पश्चिमी सभ्यता की आत्मा है जिसमें स्वार्थ, आडंबर, शारीरिक बनाव-शृंगार, व्यवसाय, मानवीय गुणों की मनमानी व्याख्या आदि अनेक दुर्बलताएँ हैं।" (*प्रेमचंद के उपन्यासों का शिल्प-विधान*, पृ. 181)। एक ओर आध्यात्मिकता और उसका साथ देनेवाले गुण हैं, दूसरी ओर भौतिकता और उसका साथ देनेवाले अवगुण हैं। कहना चाहिए कि **प्रेमाश्रम** अध्यात्मवाद और भौतिकवाद के संघर्ष की कथा है। इनके प्रतिनिधि दो जमींदार हैं। "ज्ञानशंकर पाश्चात्य जीवनमूल्यों की उपज हैं, और प्रेमशंकर भारतीय जीवनमूल्यों की।" (उप., पृ. 182)। अन्य पात्र गौण हैं, इसलिए यह कहना भी असंगत न होगा कि **प्रेमाश्रम** जमींदार वर्ग के अंतर्विरोधों की कथा है।

जीवन मूल्य प्राप्त होते हैं शिक्षा से। पाश्चात्य शिक्षा का प्रतिनिधि है ज्ञानशकर। प्रेमचद इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि "अग्रेजी शिक्षा-दीक्षा के कारण ही भारतीय जीवन मे बिखराव और परिवर्तन आ रहा है।" (उप., पृ 214)। अत "भारतीय मानस मे अग्रेजी शिक्षा-दीक्षा प्राप्त नवयुवको की जीवन-दृष्टि मे होनेवाल सभावित परिवर्तनो को दिखाने के लिए लेखक ने ज्ञानशकर की सृष्टि की है।" (उप)। प्रेमचद गाँधी जी के विचारो से प्रभावित हैं। "गाँधी जी इस बात से बहुत दु खी है कि देश के विद्यालयो से प्राचीन ऋषि-मुनियो के वारिस उत्पन्न नही होते।" (उप , पृ 210)। ऐसा कोई वारिस **प्रेमाश्रम** मे नही है। ज्ञानशकर के मुकाबले जो पात्र खडा किया गया है, वह अमरीका से वैज्ञानिक खेती करना सीखकर आया है। उपन्यास के छब्बीसवे अध्याय मे प्रेमचद ने विशेष रूप से जता दिया है कि "प्रेमशकर को हिंदी भाषा का अभ्यास न था।" ऐसा व्यक्ति भारतीय शिक्षा-पद्धति की देन कैसे माना जा सकता है? **प्रेमाश्रम** मे विशुद्ध भारतीय शिक्षा-पद्धति का प्रतिनिधि कोई है ही नही, इसलिए उसमे भारतीय शिक्षा और पाश्चात्य शिक्षा की टक्कर के चित्रण की कल्पना करना व्यर्थ है।

प्रेमचद पर गाँधी जी के विचारो का प्रभाव दिखाते हुए गोयनका ने लिखा है, "'प्रेमाश्रम' मे गाँधी जी के ट्रस्टीशिप सिद्धात, अहिंसात्मक सुधार, हृदय-परिवर्तन, रामराज्य आदि अनेक विचारो को भी ग्रहण किया गया है।" (उप पृ 211)। गाँधी जी पर अग्रेज लेखक रस्किन और रूसी लेखक तोल्स्तोय का गहरा असर था। अहिंसा और निष्क्रिय प्रतिरोध के जरिए सामाजिक समस्याएँ हल की जाएँ, वर्ग-सघर्ष को वर्ग-सहयोग मे बदल दिया जाए, इस तरह की विचारधारा का प्रसार भारत मे बाहर अधिक था। भारतीय जनमानस पर रामायण और महाभारत का गहरा असर है। राम और कृष्ण इन दो महानायको मे अहिंसावादी कोई नही है।

गाँधी जी की जीवनी मे तेंदुलकर ने लिखा था "स्वदेशवासियो मे आतकवादी प्रवृत्तियाँ फैलते देखकर गाँधी चिंतित थे भारत के हिंसावादी सप्रदाय और दक्खिन अफ्रीका मे उसके पूर्व रूप को उत्तर देने के लिए उन्होने **हिंद स्वराज** की रचना की।" (डी जी तेंदुलकर, *महात्मा*, खड 1, पृ 105-6)। इस पुस्तक मे गाँधी जी ने हिंसावाद के समर्थक, अपनी पुस्तक के कल्पित पाठक, से कहा—क्रांतिकारियो को बताओ कि हिंसा से आजादी न मिलेगी। वे अपना सुधार करें और सच्चे भारतीय बने। "तब अग्रेज शासक मालिक न रहकर सेवक बन जायेगे, अत्याचारी न रहकर ट्रस्टी बन जायेगे और वे भारत के निवासियो के साथ पूर्ण शान्ति के साथ रहेगे।" (उप , पृ 108)। पहले अग्रेज फिर सामत ट्रस्टी बने।

अग्रेजी राज के मुख्य आधार राजा और जमीदार थे। तेंदुलकर के अनुसार 1929 मे गाँधी जी सयुक्त प्रात मे किसानो और जमीदारो की समस्या से चिंतित

थे। गाँधी-इर्विन समझौते का विरोध करते हुए उन्होने कहा था, "वैयक्तिक आतकवाद हमारा पथ नही है। हम समझौते के बारे मे अपने विरोध पर डटे हुए हैं, क्योकि हमारा विश्वास है कि यह समझौता हमे भारत मे मजदूरो और किसानो के स्वतत्र गणतत्र की ओर कभी नही ले जायेगा।" (उप, खड 45, पृ 376)। मूल बात यह थी मजदूरो और किसानो का स्वाधीन गणतत्र बने या अग्रेजो से समझौता करनेवाले पूँजीपतियो का कामनवेल्थी गणतत्र बने। भारत आज जिस स्थिति मे है, वह उसी समझौतावादी नीति का परिणाम है।

सयक्त प्रात मे किसानो का सघर्ष तेज हुआ, तब गाँधी जी ने जमीदारो को प्रजा का ट्रस्टी बनाया। **प्रेमाश्रम** की रचना उससे बहुत पहले हो चुकी थी। प्रेमचद ने ट्रस्टीशिप के सिद्धात से प्रभावित होकर यह उपन्यास लिखा हो, इसकी सभावना नही है। भारतीय राजनीति मे जैसे-जैसे वामपक्ष का प्रभाव बढा वैसे-वैसे पूँजीपति वर्ग के लिए ट्रस्टीशिप के सिद्धात का महत्त्व बढता गया। सन् 29 मे स्वय घनश्यामदास बिडला ने एक व्याख्यान मे यह मत प्रकट किया था "आधुनिक पूँजीपति को पिछले कुछ दिनो से काफी कुछ भला-बुरा कहा जा रहा है। वास्तव मे इस वक्त उसे एक अलग जाति का प्राणी ही माना जा रहा है। प्राचीनकाल मे बात इससे बिलकुल अलग थी। यदि हम प्राचीन काल के वैश्य के कर्तव्यो का विश्लेषण करे तो हमे पता लगेगा कि उसे उत्पादन और वितरण का कर्तव्य सौंपा गया था—निजी लाभ के लिए नही बल्कि सर्वसाधारण के हित के लिए। वह अपने द्वारा सचित सारी सपत्ति राष्ट्र की धरोहर के रूप मे अपने पास रखता था। पूँजीपतियो को यदि अपना सच्चा कर्तव्य निभाना है तो उन्हे शोषक बनकर नही बल्कि समाज के सेवक बनकर रहना होगा।" बिडला जी के ये शब्द अपने अनुमोदन सहित गाँधी जी ने 'यग इडिया' मे उद्धृत किए थे। (उप, खड 42, पृ 303-04)।

समाज के सेवक बनकर अपना सच्चा कर्तव्य निभाते हुए बिडला जी ने जो सपत्ति सचित की उस पर राष्ट्र का अधिकार नही है, यह तथ्य किसी से छिपा नही है। शोषण के विरुद्ध जनता का आक्रोश जितना ही बढता है, उतना ही पूँजीपति वर्ग के लिए आवश्यक होता है कि वह साहित्य को इस आक्रोश से मुक्त रखे। प्रेमचद-साहित्य मे यह आक्रोश काफी मात्रा मे है। इसीलिए आवश्यकता हुई कि **प्रेमाश्रम** मे ट्रस्टीशिप का प्रभाव दिखाया जाए।

प्रेमाश्रम मे भारतीय सभ्यता और बनियो-व्यापारियो की पश्चिमी सभ्यता के अलावा एक तीसरी सभ्यता और है—रूस के मजदूरो और किसानो की नई सभ्यता। प्रेमचद ने पाश्चात्य जीवनादर्शों एव मूल्यो को हीन और निम्नकोटि का माना और भारतीय मूल्यो की श्रेष्ठता की स्थापना की; "इसके साथ ही लेखक रूस की बोल्शेविक क्राति से भी प्रभावित है, क्योकि उसने किसानो और मजदूरो के पीडित वर्गों को अत्याचार एव शोषण का मुकाबला करने की शक्ति प्रदान की

है।" (*प्रेमचद के उपन्यासो का शिल्प-विधान*, पृ 182)। प्रेमचद विशुद्ध गाँधीवादी नहीं हैं, वह बोल्शेविक क्रांति से प्रभावित हुए थे और इस तरह प्रभावित हुए थे जिस तरह गाँधी जी न हुए थे, क्योंकि बोल्शेविक क्रांति ने किसानो और मजदूरो को अत्याचार एव शोषण का मुकाबला करने की शक्ति प्रदान की थी। बोल्शेविक क्रांति के विरोध का मतलब है अत्याचार एव शोषण का मुकाबला करनेवाली मजदूरो और किसानो की शक्ति को कमजोर करना। लेकिन भारत मे अभी लडाई समाजवाद के लिए न हो रही थी, लडाई राष्ट्रीय स्वाधीनता के लिए थी। जमींदारो से किसानो का सघर्ष भी इसी लडाई के अतर्गत है। यह बात कमलकिशोर गोयनका बहुत अच्छी तरह समझते हैं। कहते हैं, "लेखक अग्रेजो द्वारा स्थापित जमींदारी-प्रथा का विरोधी है, और वह कृषको की मुक्ति एव विकास के लिए उसका मूलोच्छेद चाहता है। इस प्रकार ग्रामीण क्षेत्र को अग्रेजी सत्ता से बचाने की यह लेखकीय आकाक्षा, उपन्यास के मूल उद्देश्य को और भी सशक्त और व्यापक बना देती है।" (उप , पृ 217)।

वर्तमान जमींदारी प्रथा अग्रेजो ने स्थापित की है। ग्रामीण क्षेत्र को अग्रेजी सत्ता से बचाने के लिए क्या करना चाहिए? जमींदारी प्रथा का मूलोच्छेद करना चाहिए। बोल्शेविक क्रांति का प्रभाव भारतीय किसानो पर किस रूप मे पडता है? वह अत्याचारी जमींदारो से उन्हे लडना सिखाता है। क्रांति का यह प्रभाव बलराज के चरित्र मे व्यक्त हुआ है। गोयनका की राय है, "बलराज बोल्शेविक क्राति की उपज है, जो जमींदारो और सरकारी हाकिमो के अत्याचार-शोषणो का समान रूप से विरोध करता है।" (उप , पृ 182)। बोल्शेविक क्रांति के प्रभाव को कम करने का मतलब है अग्रेजी राज के विरुद्ध किसानो के प्रतिरोध को कम करना, जमींदारो और सरकारी हाकिमो के अत्याचार और शोषण को कायम रखना।

किसानो का जमींदार-विरोधी सघर्ष स्वाधीनता सग्राम का ही अग है। गोयनका जानते है कि "उपन्यास मे जमींदारी प्रथा की अनिष्टकारिता दिखाने मे लेखक अग्रेजी शासनतत्र और उसकी प्रणाली का ही विरोध करता है।" (उप , पृ 217)। फिर भी उन्होंने राष्ट्रीय स्वाधीनता सग्राम के गौरवपूर्ण सदर्भ से **प्रेमाश्रम** को हटाकर उसे अध्यात्मवाद और भौतिकवाद की टक्कर के चौखटे मे फिट किया है। उद्देश्य स्पष्ट है—ठीक उसी चीज का विरोध करना जिससे स्वाधीनता सग्राम शक्तिशाली बनता था। **प्रेमाश्रम** भौतिकवाद पर अध्यात्मवाद की विजय की गाथा है। "बलराज आदि की विरोधशक्ति आगे चलकर प्रेमशकर के जीवन मूल्यो की क्रियात्मक धारा मे घुलमिल जाती है।" (उप)। किंतु 'प्रेमाश्रम' का खलनायक बलराज नही है, ज्ञानशकर है। प्रेमशकर का अध्यात्मवाद ज्ञानशकर के भौतिकवाद पर विजयी हो सकता है, बलराज के भौतिकवाद पर नहीं। प्रेमशकर बलराज के मित्र हैं, शत्रु नही। बलराज जिस उद्देश्य को यथार्थ जगत मे प्राप्त करना चाहता है, उसे प्रेमशकर कल्पनालोक मे प्राप्त करा देते हैं।

यथार्थवाद और काल्पनिक इच्छापूर्ति के विरोध को गोयनका ने गाँधीवाद और मार्क्सवाद का विरोध बना दिया है। किसानो मे गाँधीवाद के प्रतिनिधि कादिर मियाँ हैं और वह गाँववालो की आलोचना के विरुद्ध बलराज के पिता मनोहर का समर्थन करते है।

ट्रस्टीशिप सिद्धान्त के उल्लेख के बाद गोयनका कहते हैं, "प्रेमचद ने इन विचारो को उपन्यास मे चित्रित करके यह भी स्पष्ट कर दिया है कि वह बोल्शेविक (उसूलो) के 'कायल' होने की घोषणा करने पर भी उसे (उन्हे) पूर्ण रूप से ग्रहण नही कर पाए है। प्रेमचद द्वारा हृदय-परिवर्तन, अहिंसात्मक सुधार, रामराज्य आदि के समर्थक बनकर (आदि का समर्थन), वास्तव मे, बोल्शेविज्म के प्रभाव से मुक्ति की चेष्टा ही कही जाएगी, क्योंकि बोल्शेविज्म इन सभी सिद्धातो और विचारधाराओ का समर्थन नही करता।" (उप , पृ 211)। **प्रेमाश्रम** बोल्शेविज्म के प्रभाव से मुक्ति की चेष्टा का इतिहास है, वह अग्रेजीराज और उसके समर्थक जमीदारो के अत्याचार से किसानो की मुक्ति की चेष्टा का इतिहास नही है। देहात मे अनेक जमीदार और ताल्लुकेदार हैं "लेकिन सघर्ष की कथा ज्ञानशकर के गाँवो मे ही उत्पन्न होती है।" (उप , पृ 218)। इससे निष्कर्ष यह निकाला कि **प्रेमाश्रम** की मूल कथा किसान-जमीदार सघर्ष की कथा नही है वरन् "पश्चिमी जीवनदृष्टि, सस्कार और मूल्यो की अनिष्टकारिता और भारतीय जीवनदृष्टि, सस्कार और मूल्यो की श्रेष्ठता दिखाना ही लेखक का उद्देश्य रहा है।" (उप)।

ट्रस्टीशिप का सिद्धात भारतीय नही है, इसलिए भारतीय और पश्चिमी जीवन-दृष्टियो की बात करना व्यर्थ है। सभी जमीदारो के विरुद्ध सघर्ष क्यो नही होता, यह प्रश्न महत्त्वपूर्ण है। इसका उत्तर बीज रूप मे इस स्थापना मे विद्यमान है "लेखक अग्रेजो द्वारा स्थापित जमीदारी प्रथा का विरोधी है।" (उप ,पृ 217)। किस जमीदार का कहाँ कितना विरोध किया जाता है, यह अग्रेजीराज से उसके सबधो पर और उसके शोषण, अत्याचार की मात्रा पर निर्भर है। यहाँ दो तरह के जमीदार है। एक तरह के वे हैं जो पुरानी सामती परपरा के अनुसार किसानो से व्यवहार करते है, उनका शोषण अनियत्रित नही है, वह कानून अथवा पुराने जमाने से चले आते नियमो की सीमा मे रहता है। दूसरी तरह के जमीदार वे हैं जो अग्रेजो का समर्थन पाकर गैरकानूनी तरीको से किसानो का शोषण करते हैं। अंग्रेजीराज मे इन जमीदारो के अनियंत्रित शोषण से किसान सबसे ज्यादा तबाह हुए। सवाल पाश्चात्य और भारतीय शिक्षा का नही है, नए और पुराने, दो तरह के सामतवाद के भेद का है। किसान यह भेद खूब अच्छी तरह समझते हैं। "सुक्खू 'बडे सरकार' और 'छोटे सरकार' (ज्ञानशकर) के जमाने के अतर को स्पष्ट करता है। वह छोटे सरकार के उपद्रवो (इजाफा लगान, बेदखली, अखराज आदि) का भी उल्लेख करता है। तीसरे अध्याय मे मनोहर पुन बडे सरकार के प्रजापालन और उनके कार्यो का उल्लेख कर ज्ञानशकर से उनके अतर को स्पष्ट करता है।"

(उप , पृ 214-15)। दो तरह के सामंतवाद का अतर बार-बार स्पष्ट किया गया है।

उपन्यास के चित्रफलक से अग्रेजी राज को हटा दीजिए, दो तरह के सामतवाद का भेद खत्म हो जाएगा। तब यह सवाल बहुत वाजिब होगा कि प्रेमचद जमीदारी प्रथा मिटाना चाहते हैं तो सभी जमीदारो के खिलाफ किसानो को सघर्ष करते क्यो नही दिखाते। नही दिखाते, इसलिए सुधारवादी हैं—यह कहना भी वाजिब होगा। लेकिन जो 'क्रांतिकारी' लेखक **प्रेमाश्रम** पर इस ढग से विचार करते हैं, वे अग्रेजी राज की भूमिका आँखो से ओझल कर देते है। उनके लिए अग्रेजो से लडाई मुख्य नही है, जमीदारो से लडाई मुख्य है, वे जमीदार चाहे अग्रेजी राज के समर्थक हो, चाहे विरोधी। **प्रेमाश्रम** मे किसानो की लडाई ज्ञानशंकर से इसलिए नही होती कि वह अग्रेजी पढे हैं, वरन् इसलिए कि उन्हे अग्रेजीराज मे इजाफा लगान, बेदखली, अखराज आदि की छूट है।

प्रेमाश्रम मे अध्यात्मवाद और भौतिकवाद की टक्कर नही है, भारतीय शिक्षा और पाश्चात्य शिक्षा की टक्कर नही है, गाँधीवाद और बोल्शेविज्म की टक्कर भी नही है। यहाँ किसानो की टक्कर अग्रेजी राज से है, उसके अत्याचारी हाकिमो तथा उनके भरोसे किसानों को सतानेवाले जमीदारो से है। हाकिमो और जमीदारो के अत्याचार का मुकाबला उसे सहकर किया जा सकता है, उसके विरुद्ध बल-प्रयोग द्वारा किया जा सकता है, और कानूनी लडाई लडकर भी किया जा सकता है। अत्याचार को सहने की नीति कादिर खाँ और प्रेमशकर की है। कादिर के लिए प्रेमचद ने लिखा है, "दीन-रक्षा उसका लक्ष्य था, किंतु क्रोध और द्वेष को उभाडकर नही, वरन् सद्व्यवहार तथा सत्य-प्रेरणा से।" (**प्रेमाश्रम**, इलाहाबाद 1962, पृ 49)। सरकारी अफसर ने हुक्म दिया कि टेनिस कोर्ट तैयार करने के लिए किसान घास छीलकर मैदान साफ करे। इस काम के लिए "वे लोग भी पकडे गये जो अब तक अपनी वृद्धावस्था या जाति-सम्मान के कारण बचे हुए थे।" (उप , पृ 178)। दुखरन भगत ने विरोध किया, चपरासी ने ढकेला तो भागकर घर मे घुस गए और किवाड बद कर लिए। कादिर ने उन्हे समझा-बुझाकर घास छीलने पर राजी किया, लेकिन जब जमीन लीपने का हुक्म हुआ तो दुखरन भगत अड गए। तहसीलदार ने ताव मे आकर कहा, "है कोई चपरासी, जरा लगाओ तो बदमाश को पचास जूते, मिजाज ठंढा हो जाय।" (उप , पृ 181)। एक चपरासी ने भगत को धक्का दिया और उन्हे जूते मारने लगा। "कादिर खाँ कुएँ पर से दौडे हुए आये और उस निर्दय चपरासी के सामने सिर झुकाकर बोले, सेख जी, इनके बदले मुझे जितना चाहिए मार लीजिए, अब बहुत हो गया।" (उप)। चपरासी ने कादिर को ढकेल दिया और फिर जूता उठाया, तभी इक्के से कूदकर प्रेमशकर ने कहा, "खबरदार जो फिर हाथ लगाया।" (उप)।

बलप्रयोग की नौबत आ सकती थी पर आई नही। किसानो के बीच एक भद्र

पुरुष को देखकर "चपरासी सकते मे आ गया।" (उप.)। फिर तहसीलदार से बहस हुई। तहसीलदार ने प्रेमशकर को धमकाया, "आप यहाँ से चले जाएँ, वरना आपके हक मे अच्छा न होगा।" (उप , पृ 182)। फिर नाजिर को हुक्म दिया, "चपरासियो से कहिए, इन चमारो की अच्छी तरह खबर ले। यही इनकी मजदूरी है।" (उप)। चपरासियो ने बेगारो को घेरा, "कास्टेबलो ने भी बदूको क कुदे चलाने शुरू किये।" प्रेमशकर ने कहा, "तहसीलदार साहब, मैं आपसे मिन्नत करता हूँ कि चपरासियो को मारपीट करने से मना कर दे, वरना इन गरीबो का खून हो जायगा।" इस मिन्नत का कोई असर नही होता, उल्टा तहसीलदार प्रेमशकर पर आरोप लगाता है कि वह किसान सभा के आदमी हैं और किसानो को भडकाते है। किसानो की ओर से बलप्रयोग की नौबत आ सकती थी। "प्रेमशकर ने देखा तो लखनपुरवालो के चेहरे रोष से विकृत हो रहे थे।" बलप्रयोग या आत्मसमर्पण, और कोई रास्ता न था। प्रेमशकर ने "तुरत अपने कर्तव्य का निश्चय कर लिया। गाँववालो की ओर रुख करके बोले, तहसीलदार साहब का हुक्म मानो। एक आदमी भी यहाँ से न जाय। सब आदमियो को मुँहमाँगी मजूरी दी जायगी।" (उप)। प्रेमशकर के कहने से दुखरन भगत को घर जाने की इजाजत मिल गई। फिर तहसीलदार प्रेमशकर को अपने खेमे मे ले गया और वहाँ उसने अपनी मजबूरी की ऐसी कथा कही कि "प्रेमशकर को तहसीलदार से सहानुभूति हो गयी।" (उप , पृ 183)। अब तहसीलदार के विरोध का सवाल ही न था!

प्रेमचद ने **प्रेमाश्रम** मे लिखा था, "सत्याग्रह मे अन्याय का दमन करने की शक्ति है, यह सिद्धात भ्रातिपूर्ण सिद्ध हो गया।" (उप , पृ 239)। कह सकते हैं कि **प्रेमाश्रम** गाँधीवाद की विफलता चित्रित करनेवाला उपन्यास है। पर यह बात ध्यान मे रखनी चाहिए कि **प्रेमाश्रम** का गाँधीवाद असहयोग आदोलन से पहले का गाँधीवाद है। अग्रेजो ने प्रथम विश्वयुद्ध के बाद रिफार्म बिल पास कर दिया था। गाँधी जी किसी शर्त के बिना सुधारो को अमल मे लाने के पक्ष मे थे। उपन्यास के अत मे प्रेमशकर चुनाव लडते है और जीत जाते है। वह अग्रेजी राज से रचनात्मक सहयोग करने की नीति पर चलते है। राजसभा के सदस्य बनने से प्रेमशकर और उनके साथियो को "अपने कार्यक्षेत्र को और विस्तृत करने का सुअवसर मिला (वे) विरोध के लिए विरोध न करते बल्कि शोध के लिए। इस सदुद्योग और कर्तव्यपरायणता ने शीघ्र ही राजसभा मे इस मंत्रिमडल का सिक्का जमा दिया।" (उप , पृ 398)। यहाँ बिल्कुल स्पष्ट हो जाता है कि प्रेमशकर का गाँधीवाद असहयोग आदोलन से पहले का गाँधीवाद है। उसकी विफलता स्वय गाँधी जी ने देख ली थी, इसलिए अग्रेजो की सदिच्छाओ का भरोसा करके राजसभा के चुनाव लडने के बदले उन्होने असहयोग का रास्ता अपनाया। **प्रेमाश्रम** में गाँधीवाद का रूप अस्थायी है, उसकी विजय अस्थायी है।

कादिर और प्रेमशकर से अलग रास्ता मनोहर का है। वह अन्याय होते

देखकर चुप नही रह सकता। वह ज्ञानशकर से दबता नही है। कादिर खाँ को अपमानित होते देखकर "तेवर बदल बोला दादा, इस दरबार से अब दया धर्म उठ गया। चलो, भगवान की जो इच्छा होगी, वह होगा। जिसने मुँह चीरा है वह खाने को भी देगा। भीख नही तो परदेश तो कही नही गया है?" (उप, पृ 25-26)। वह कादिर का हाथ पकडकर उन्हे बाहर खीच ले गया। अपनी पत्नी बिलासी के अपमान का बदला उसने गौस खाँ का वध करके लिया। बदला लेने की योजना मनोहर ने बनाई है, बलराज ने नही। मनोहर ही बलराज को समझाता है, "अपने मरजाद की रक्षा करना मरदो का काम है। ऐसे अत्याचारो का हम और क्या जवाब दे सकते है?" (उप, पृ 197)। बोल्शेविक सिद्धातो से मनोहर का कोई सबध नही है पर वह खुदीराम बोस की परपरा का आदमी है, अकेले ही प्रतिकार की योजना बनाता है और उस पर अमल करता है। किसान मे जो सहज आत्मसम्मान की भावना होती है, वह उसे प्रेरित करती है। उस पर मुकदमा चलता है और इससे सारे शहर की जनता आदोलित होती है। "मजिस्ट्रेट के इजलास पर लखनपुर के अभियुक्त हाथो मे हथकडियाँ पहने खडे थे। शहर के सहस्रो मनुष्य इन विचित्र जीवधारियो को देखने के लिए एकत्र हो गये थे। सभी मनोहर को एक निगाह देखने के लिए उत्सुक हो रहे थे। कोई उसे धिक्कारता था, कोई कहता था अच्छा किया, अत्याचारियो के साथ ऐसा ही करना चाहिए।" (उप, पृ 211)। ये असहयोग आदोलन से पहले के राजनीतिक कैदी है। जन-प्रतिरोध की लहर शहर से देहात की ओर नही, देहात से शहर की ओर बह रही है। सभी मनोहर के समर्थक नही हैं पर दर्शकों मे ऐसे भी हैं जो कहते है अत्याचारियो के साथ ऐसा ही करना चाहिए। ऐसे लोगो की सख्या बराबर बढती जाती है।

'सशन जज के इजलास मे एक महीने से मुकदमा चल रहा है। अभियुक्त ने फिर सफाई दी। आज मनोहर का बयान था। इजलास मे एक मेला-सा लगा हुआ था। मनोहर ने बडी निर्भीक दृढता के साथ सारी घटना आदि से अत तक बयान की और यदि जनता को अधिकार होता तो अन्य अभियुक्तों का बेदाग छूट जाना निश्चित था, किंतु अदालत जाब्ते और नियमो के बधन मे जकडी हुई थी।" (उप, पृ 233)। जनता की अदालत मे जीत किसानो की हुई। अन्याय का बलपूर्वक दमन करना उचित है, इस सिद्धात की विजय हुई। लखनपुर के किसान अग्रेजो की अदालत मे मुकदमा हार गए पर अब वह अकेले नहीं थे, उनके साथ अन्य गाँवो के किसान थे और शहर की जनता थी। प्रेमचद ने लिखा है, "आज फैसला सुनाया जानेवाला था, इसलिए जमाव भी और दिनो से अधिक था। लखनपुर के लोग तो आये ही थे, आस-पास के देहातो से लोग बडी सख्या में आ पहुँचे थे। ठीक चार बजे जज ने तजवीज सुनाई—बिसेसर साह रिहा हो गये बलराज और कादिर खाँ को काला पानी हुआ, शेष अभियुक्तो को सात-सात वर्ष

का सपरिश्रम कारावास दिया गया। चारो ओर कुहराम मच गया। दर्शकगण अभियुक्तो की ओर लपके, पर रक्षको ने किसी को उनसे कुछ कहने, सुनने की आज्ञा न दी। मोटर तैयार खडी थी। सातो आदमी उसमे बिठाये गये, खिडकियाँ बद कर दी गयी और मोटर जेल की तरफ चली।" (उप , पृ 280)। इस तरह के दृश्य भारत मे अनेक बार देखने को मिले, हिंदी मे उनका वर्णन यहाँ पहली बार हुआ है। विशेष बात यह है कि ये बदी मध्यवर्ग के पढे-लिखे युवक नहीं हैं, किसान हैं, और इनमे कादिर—"कब्र मे पैर लटकाये बैठे, सजा मिली काले पानी की।" (उप)।

जिन लोगो ने किसी न किसी तरह सरकार की मदद की थी, उनके प्रति जनता के रोष का उभरना स्वाभाविक था। प्रेमचद ने इस रोष का बहुत अच्छा चित्रण किया है। बैरिस्टर इरफान अली मोटर पर हवा खाने जा रहे थे। प्रेमशंकर को देखकर मोटर रोक दी और उनसे बाते करने लगे। "इतने मे सैकडो आदमियो ने चारो ओर से मोटर को घेर लिया और एक तगडे आदमी ने सामने आकर कहा—इन्ही की गरदन पर इन बेगुनाहो का खून है। सैकडो स्वरो से निकला—मोटर से खीच लो, जरा इसकी खिदमत कर दी जाय। इसने जितने रुपये लिये है सब इसके पेट से निकाल लो।" (उप , पृ 281)। प्रेमशकर ने किसी तरह उनकी जान बचाई। इरफान अली "मोटर पर बैठकर हवा हो गये। हजारो आदमियो ने तालियाँ बजायी—भागा! भागा!!" (उप)। भागना तो प्रेमशकर भी चाहते थे क्योकि लोगो को नियत्रण मे रखना कठिन था। "वह किसी तरह उनसे पीछा छुडाना चाहते थे, पर इसका कोई उपाय न सूझता था।" (उप , पृ 282)। भीड डाक्टर प्रियनाथ के बँगले के सामने पहुँची। इन्ही ने पुलिस के कहने से गलत मेडिकल रिपोर्ट देकर गौस खाँ की हत्या मे बहुत-से गाँववालो को फँसाया था। लोगो ने उन्हे घेर लिया। डाक्टर ने धमकाया—"मैं सबको जेल भेजवा दूँगा, रैसकल्स!" इस पर प्रेमचद की टिप्पणी है, "डाक्टर साहब ने भय दिखलाकर काम निकालना चाहा, पर यह न समझे कि साधारणत: जो लोग आँख के इशारे पर कॉप उठते है वे विद्रोह के समय गोलियो की भी परवाह नही करते।" (उप , पृ. 282)।

विद्रोह—किसके प्रति विद्रोह? स्पष्ट ही अग्रेजी राज के प्रति विद्रोह। असहयोग आदोलन से पहले यह विद्रोह-भावना जनता मे विद्यमान थी। विद्रोह के समय गोलियो की परवाह न करना, यह भावना गाँधीवाद की देन न थी; वह जनता की सहज देशभक्ति का विकास थी। "सैकडो लाठियाँ, छतरियाँ और छडियाँ उठ चुकी थी।" (उप)। प्रेमशकर ने डाक्टर को तो बचाया पर एक लाठी उनके अपने कधे पर पड ही गई। हड्डी टूट गई पर डॉ प्रियनाथ के उपचार से वह जल्दी ही अच्छे हो गए। प्रियनाथ का हृदय-परिवर्तन हुआ; इरफान अली का हृदय-परिवर्तन हुआ; एक है सुक्खू चौधरी, उनका भी हृदय-परिवर्तन हुआ। 'यह

महानुभाव गाँव के मुखिया, सबसे बडे किसान और सामर्थी पुरुष थे। असामियो पर उनका बहुत दबाव था, इसलिए नीतिकुशल खाँ साहब ने उन्हे अपना मत्री बना लिया था।" (उप , पृ 47)। उनका हृदय-परिवर्तन प्रेमशकर की तरह नही, कुछ अलग ढग से हुआ। नए कारिंदा फैजुल्लाह ने किसानो को बहुत सताया था। सुक्खू साधु हो गए पर गॉववालो का लगान चुकाने आए। फैजुल्लाह हिसाब मे धाँधली करने लगा तो "सहसा चौधरी ने अपना चिमटा उठाया और इतने जोर से फैजुल्लाह के सिर पर मारा कि वह जमीन पर गिर पडा। तब बोले, यही अदालत का खर्च है, जी चाहे तो और ले लो।" (उप , पृ 242)। प्रेमचद ने पृ 239 पर सत्याग्रह-सिद्धात को भ्रातिपूर्ण बताया था, और तीन पृष्ठ बाद ही अन्याय के दमन का यह उदाहरण प्रस्तुत किया।

ऐसी ही एक घटना 1857 मे घटी थी। उसका विवरण अग्रेज सैनिक अफसर गफ ने अपने सस्मरणो मे दिया है। ब्रिटिश सेना की एक टुकडी कानपुर से लखनऊ की ओर जा रही थी। रास्ते मे जो गॉव पडते थे, उनमे वह आग लगाती जाती थी। "एक गॉव मे गफ और उसके साथी आग लगाने गये। अचानक उसमे से शरीर मे भभूत मले एक साधु निकलकर गफ की ओर दौडे। उनके हाथ मे लाठी थी। गफ ने उन पर पिस्तौल चलाई लेकिन साधु ने लाठी चलाई और बोले—गफ द्वारा रोमन मे दिए हुए वे प्रभावशाली शब्द ये है— 'हम भी मारेगा, सुअर।' (गफ, *ओल्ड मैमोरीज,* लदन, 1897, पृ 198)। गॉव खाली, अकेला साधु, अग्रेज सैनिक अस्त्र-शस्त्र लिए हुए। किंतु कैसी अदम्य घृणा थी उनके हृदय मे अग्रेजो के लिए। गफ ने तलवार से लाठी का वार बचाया लेकिन पैंतरा सँभाल न पाया। साधु उसे गाली देते हुए जलते हुए गॉव मे लौट गए। गफ ने उनकी वीरता की प्रशसा करते हुए उन्हे 'गैलेट स्काउड्रेल' (साहसी बदमाश) कहा है। इस एक घटना से जनता की अदम्य प्रतिरोध भावना का पता चलता है।" (रा वि शर्मा, *सन् सत्तावन की राज्यक्रांति,* आगरा, 1957, पृ 277-78)। प्रेमचद इस घटना से परिचित रहे हो चाहे न रहे हो, वह जनता की अदम्य प्रतिरोध भावना से अवश्य परिचित थे।

किसान कानूनी लडाई भी लडते हैं, कभी हारते हैं, कभी जीतते हैं। यह कानूनी लडाई शहर के लोगो मे राजनीतिक चेतना फैलाने का साधन बन जाती है। पर इस लडाई के लिए पैसे चाहिए और किसानो के पास इतने पैसे नही हैं कि अंग्रेजी राज से लबी कानूनी लडाई लडे। प्रेमशकर ज्वाला सिंह से पूछते हैं, "आपके विचार मे अपील करने के लिए कितने रुपए चाहिए?" ज्वाला सिंह बताते हैं, "ज्यादा नही तो चार-पाँच हजार तो अवश्य ही लग जाएँगे।" प्रेमशकर के पास चार-पाँच सौ भी नही हैं। कहते हैं, "मेरे पास श्रद्धा के कुछ गहने अभी बचे हुए हैं। अगर वह सब बेच दिया जाय तो शायद हजार रुपए मिल जाएँ।" शीलमणि मना करती हैं और कहती हैं, "अगर ऐसी ही जरूरत है तो मेरे गहने ले

जाइए।" मायाशकर का प्रस्ताव है, "इस महीने की मेरी पूरी वृत्ति अपील मे खर्च कर दीजिए। मुझे रुपयो की कोई खास जरूरत नही है।" (उप पृ 350-51)। उधर इर्फान अली का हृदय-परिवर्तन हुआ, "उन्होने सकल्प कर लिया था कि अपील मे अभियुक्तो को छुडाने के लिए दिल तोडकर प्रयत्न करूँगा। वह अपील के खर्च का बोझ भी अपने ही सिर लेना चाहते थे।" (उप , पृ 354)।

कही से भी धन की व्यवस्था हुई हो, हो गई। अपील दायर हुई, हाईकोर्ट ने मातहत अदालत को हुक्म दिया कि मुकदमे की सुनवाई फिर से करे। बिसेसर साह की गवाही पर गाँव के लोग फँसाए गए थे। उनका हृदय-परिवर्तन हो चुका था। इस बार उनका "बयान क्या था, पुलिस के हथकडो और कूटनीति का विशद और शिक्षाप्रद निरूपण था।" (उप , पृ 357)। डाक्टर प्रियनाथ ने "पुलिस की बदौलत हजारो कमाए" थे, पर उनका हृदय-परिवर्तन हो चुका था, पुलिस अधिकारियो ने "जब उनका बयान सुना तो हाथो के तोते उड गए।" (उप , पृ 358)। सबसे बडी बात यह कि सरकारी गवाहो मे जिरह करनेवाले इर्फान अली का हृदय-परिवर्तन हो चुका था। पहले हाईकोर्ट मे उन्होने "अपने दावे को ऐसी सबल युक्तियो से पुष्ट किया और दडभोगियो पर हुई निर्दयता को ऐसे करुणाभाव से व्यक्त किया कि जजो ने मुकदमे की दुबारा जाँच किए जाने की अनुमति दे दी।" (उप पृ 357)। फिर मातहत अदालत मे बिसेसर का बयान एक तो यो ही पुलिस का भडाफोड करनेवाला था, "दूसरे इर्फान अली की जिरहो ने रहा-सहा पर्दा भी खोल दिया।" (उप)। दारोगा खुर्शीद आलम का बयान हुआ तो "इर्फान अली की जिरहो ने उनको बिलकुल उखाड दिया।" (उप , पृ 359)। तहसीलदार "घटो तक लखनपुर वालो की उद्दडता और दुर्जनता का आल्हा गाते रहे, लेकिन इर्फान अली ने दस ही मिनट मे उसका सारा ताना-बाना उधेडकर रख दिया।" (उप)। सारे कैदी छोड दिए गए।

कानूनी लडाई की दो मजिले हैं। पहली मजिल यथार्थवाद की भूमि पर है जब अभियुक्तो को सजा होती है, दूसरी मंजिल काल्पनिक इच्छापूर्ति की भूमि पर है जब अभियुक्त छोड दिए जाते है। गाँधी जी अत्यत व्यवहारकुशल राजनीतिज्ञ थे। काल्पनिक इच्छापूर्ति के सपने देखना उनकी राजनीति और स्वभाव, दोनो के विरुद्ध था। कानूनी लडाई मे किसानों की जीत के सपने को गाँधीवाद कहना सही न होगा। कानूनी लडाई की तरह किसान-जमीदार-सघर्ष की दो मंजिलें हैं। पहली मजिल यथार्थवाद की भूमि पर है जब सारा गाँव तबाह हो जाता है; दूसरी मंजिल काल्पनिक इच्छापूर्ति की भूमि पर है जब मायाशकर ने अपने इलाके मे जमीदारी प्रथा खत्म कर दी है, जब कादिर ने दो साल मे तीन-चार सौ रुपए जोड लिए हैं, डेढ सौ की एक जोडी बैल लाए हैं, दुखरन भगत के हाथ में भी दो साल मे तीन-चार सौ हो गए हैं और सौ रुपए की एक पछाही भैंस लाए हैं,

तबला-हारमोनियम भी ले लिया है, सुक्खू चौधरी ने अपनी चालीस बीघे जमीन उन लोगो को दे दी है जिनके हिस्से मे कुछ न पडा था, और बलराज– "बलराज रेशमी साफा बाँधे, मिर्जई पहने, घोडे पर सवार वह अब जिला सभा का सदस्य था।" (उप , पृ 409)। प्रेमशकर ने अपनी कृषिशाला से सहायता देकर देहात मे हरित क्रांति कर दी !

हरित क्रांति के लिए मशीने चाहिए, रासायनिक खादे चाहिए। गाँधीवाद मे इनकी गुंजाइश नही है, लेकिन प्रेमशकर की कृषि-सुधार योजना मे है। योजना को अमल मे लाने के लिए उन्हे दो लाख की पूँजी चाहिए। स्वभावत इस पूँजी को जुटाने के लिए वह राजाओ और ताल्लुकदारो का ही मुँह जोहते हैं। राजा इद्रकुमार सिंह उन्हे समझाते है, "हमारी सरकार ने कृषि की उन्नति के लिए कोई बात उठा नही रखी । जब वह करोडो रुपये व्यय करके कृतकार्य न हो सकी तो आप दो लाख की पूँजी से क्या कर लेगे ? आपके बनाए हुए यत्र कोई सेत मे भी न लेगा। आपकी रासायनिक खादे पडी सडेगी। बहुत हुआ, आप पाँच-सात सैकडे मुनाफा दे देगे। इससे क्या होता है ?" प्रेमशकर कहते हैं, "मेरा उद्देश्य कोई व्यापार खोलना नही है। मैं तो केवल कृषि की उन्नति के लिए धन चाहता हूँ। सभव है आगे चलकर लाभ हो, पर अभी तो मुनाफे की कोई आशा नही।" (उप , पृ 121)। प्रेमशकर रासायनिक खादो का उपयोग करके यत्रो की सहायता से नए ढग की खेती करना चाहते है। शुरू मे मुनाफे की कोई आशा नही है, आगे चलकर लाभ हो सकता है।

प्रेमशकर के प्रयत्न से पैदावार मे बढ़ती हुई। "जिन खेतो मे मुश्किल से पाँच-सात मन उपज होती थी, वहाँ अब पद्रह-बीस मन का औसत पडता था। उस पर बाग की आमदनी अलग थी। भूमि का आठवाँ भाग कपास के लिए अलग कर दिया गया था प्रेमशकर के उद्योग से आसपास के गाँवो मे भी कपास की खेती होने लगी थी और कितने ही कोरियो–और जुलाहो के उजडे हुए घर आबाद हो गए थे।" (उप , पृ 198-99)। प्रेमचद कुटीर उद्योग के पक्ष में हैं, बडे पैमाने के मशीनी उद्योग के नही। कुटीर उद्योग, अर्थात् छोटे पैमाने के पूँजीवादी उत्पादन के विकास मे भी सामाजिक सबंध बाधक हैं। हरित क्रांति के सपने की सबसे बडी कमजोरी यह है कि वह पुराने सामाजिक सबध कायम रखते हुए सपन्न होती है। इनमे सबसे महत्त्वपूर्ण है राजा और प्रजा, अंग्रेज और हिंदुस्तानी का सबध।

प्रेमशकर किसानो की दुरवस्था पर विचार करते हुए कहते हैं, "इस परस्पर विरोध का सबसे दु:खजनक फल क्या है ? भूमि का क्रमश: अत्यत अल्प भागो मे विभाजित हो जाना और उसके लगान की अपरिमित वृद्धि। प्रेमशकर इस शासन के सुधार को तो मानव-शक्ति से परे समझते थे, लेकिन भूमि के बँटवारे का रोकना उन्हे साध्य जान पडता था।" (उप , पृ 200)। स्वयं प्रेमचंद ने प्रेमशंकर के

'गाँधीवाद' की सीमाएँ स्पष्ट कर दी हैं। यह गाँधीवाद असहयोग आंदोलन से पहले का है, वह अंग्रेजी राज के सामने अपनी असमर्थता स्वीकार करता है। इस राज को, भारतीय जनता के मुख्य शत्रु को, कायम रखते हुए वह पारिवारिक संपत्ति का बँटवारा रोककर प्रेमाश्रम का स्वप्नलोक रचता है। इस स्वप्नलोक में अंग्रेजी राज अदृश्य नही है। बलराज ने राजसभा मे बेगार रोकने का बिल पास करा लिया है पर कहता है, "देखे जिलाधीश क्या फैसला करते हैं।" (उप, पृ. 410)। राजशक्ति का अधिष्ठान राजसभा नही है, जिलाधीश है। वह अधिष्ठान उपन्यास के अत तक अडिग बना हुआ है।

प्रेमशकर ने जो प्रेमाश्रम बनाया है, वह भी गाँधी जी के आश्रमो से भिन्न है। "एक तरफ डाक्टर इर्फान अली का सुदर बँगला था फूलो और लताओ मे सजा हुआ। उनके बँगले से मिला हुआ डॉ प्रियनाथ का मकान था जीविका के लिए एक गोशाला खोल ली थी जिसमे कई पछाही गाएँ-भैंसे थी। दूध-मक्खन बिकने के लिए शहर चला आता था। बाबू ज्वाला सिह और प्रेमशंकर एक ही मकान मे रहते थे। (सैयद ईजाद हुसेन का) यतीमखाना यही उठ आया था यतीमखाने के समीप ही मायाशकर का मित्र भवन था सब साथ-साथ पाठशाला को जाते और साथ-साथ भोजन करते।" (उप., पृ 289)। पाठशाला है, छात्रावास है, खेत हैं, कृषिशाला है, बागवानी के लिए बाग है, प्रमुख व्यक्तियो के लिए अलग-अलग बँगले, और मकान हैं। ऐसा लगता है जैसे काशी हिंदू विश्वविद्यालय के एक भाग पर प्रेमशकर ने कब्जा जमाया हो और उसे प्रेमाश्रम का नाम दे दिया हो।

प्रेमाश्रम का जीवन ज्ञानशकर को भी पसद है। वह दूसरे-तीसरे महीने बनारस आते "और प्रेमशकर के पास रहकर सरल जीवन का आनंद उठाते।"(उप, पृ 388)। हृदय-परिवर्तन का चमत्कार! उन्हे यह सोचकर आश्चर्य होता है, तीन साल पहले वह एक हजार सालाना नफे के लिए सारे गाँव को फाँसी पर चढ़वा देना चाहते थे (उप.), पर अब उन्होंने धन कमाने के ऐसे कारगर ढग सीख लिए थे कि प्रजा सबकुछ चुपचाप सह लेती थी। "असामियो पर अखराजु बकाया और इजाफे की नालिशें धूम से हो रही थी, उनके पट्टे बदले जा रहे थे, और नजराने बडी कठोरता से वसूल किए जा रहे थे। रायसाहब ने रियासत पर पाँच लाख का ऋण छोडा था। उस पर लगभग 25 हजार वार्षिक ब्याज होता था। ज्ञानशकर ने इन प्रयत्नो से सूद की पूर्ति की। इतने अत्याचार पर भी प्रजा असतुष्ट न थी। वह कडवी दवाएँ मीठी करके पिलाते थे। गायत्री की बरसी मे उन्होंने असामियो को एक हजार कंबल बाँटे और ब्राहमणो को भोज दिया। इसी तरह राय साहब के इलाके मे होली के दिन जलसे कराए और भोले-भाले असामियों को भरपेट भग पिलाकर मुग्ध कर दिया। कई जगह मंडियाँ लगवा दीं, जिससे कृषको को अपनी जिन्से बेचने मे सुविधा हो गई और रियासत को भी लाभ होने लगा।" (उप, पृ 387-88)। इसे आप चाहे हृदय-परिवर्तन कहें, चाहे

मस्तिष्क-परिवर्तन, ज्ञानशकर मे परिवर्तन अवश्य हुआ। वह समझ गया था, प्रजा को दुहना इस तरह चाहिए कि वह विद्रोह करने पर आमादा न हो जाए। बरसी मे किसानों को कबल देना, ब्राहमणो का भोज करना, होली के पावन पर्व पर असामियो को भरपेट भग पिलाना सब धर्म के काम हैं। प्रेमचद ने ज्ञानशकर के इन कारनामो का वर्णन उसी अध्याय मे किया है, जिसमे उन्होने प्रेमाश्रम के शात सरल जीवन की छवि अकित की है। प्रेमचद इतने बडे यथार्थवादी हैं कि कल्पनालोक रचते हुए भी धरती की तरफ देखना नही भूलते।

धर्म के नाम पर लोगो को ठगने के लिए ज्ञानशकर को पाश्चात्य शिक्षा की जरूरत न थी। यूरुप और भारत दोनो के लिए यह विद्या बहुत पुरानी है। अपने धार्मिक आडबर मे ज्ञानशकर पहले गायत्री को ठगता है, फिर उसकी प्रजा को ठगता है। एक दूसरी तरह का ठग है ईजाद हुसेन। ज्ञानशकर ने गोरखपुर मे सनातन धर्म मंडल के वार्षिक उत्सव का आयोजन किया। उसमे मुसलमानो की धार्मिक सकीर्णता का विरोध करके ईजाद हुसेन ने काफी धन बटोरा। पुत्र ने कहा, "इतनी उम्मीद तो आपको भी न थी।" पिता ने उत्तर दिया, "हर्गिज नही। मैंने ज्यादा से ज्यादा 1000 / - रु का अदाज किया था, मगर आज मालूम हुआ कि ये सब कितने अहमक होते है। इसी अपील पर किसी इस्लामी जलसे मे मुश्किल से 100 रु मिलते। इन बछिया के ताउओ की खूब तारीफ कीजिए। हजोमली तक हो तो मुजायका नही, फिर इनसे जितना चाहे वसूल कर लीजिए।" (उप , पृ 261)। विश्वभाषा अग्रेजी ने जो थोडे-से भारतीय शब्द स्वीकार किए हैं, उनमे एक शब्द है **ठग**।

ईजाद हुसेन का हृदय-परिवर्तन होता है, ज्ञानशकर का हृदय-परिवर्तन होता है और अनेक बार होता है। किंतु मायाशकर ने जब अपनी जमीदारी के खात्मे की घोषणा की तो उसके हृदय को भारी झटका लगा। वह फिर रोया, उसके बाद गगा मे डूबकर मर गया। **प्रेमाश्रम** मे भौतिकवाद पर अध्यात्मवाद ने विजय पाई, यह घोषित करने के पहले यह देख लेना चाहिए, कितने आदमियो ने यहाँ आत्महत्या की। मनोहर, ज्ञानशकर, विद्या, गायत्री—दो स्त्रियाँ, दो पुरुष, सब आत्महत्या करते है। ये सब ऐसे जाल मे उलझ गए हैं कि उन्हे निकलने की राह नही मिलती। ज्ञानशकर के लिए कहा जा सकता है, उसे पाश्चात्य शिक्षा मिली है पर बाकी तीन को ऐसी शिक्षा कहाँ मिली है ? गायत्री को थोडी-बहुत अग्रेजी आती है पर वह धर्म पर हृदय से विश्वास करती है। विद्या पुरानी रूढियो से इतना जकडी हुई है कि विदेश से लौटा पति पश्चाताप नही करता तो वह उसके साथ रहने को तैयार नही होती। मनोहर गाँववालो के ताने सुन-सुनकर आत्मग्लानि के कारण प्राण दे देता है।

वास्तव मे पाश्चात्य शिक्षा से ज्ञानशकर का सबध बहुत कमजोर है। पाश्चात्य सभ्यता के रग-ढग सीखने मे उसे बडा कष्ट होता है। उसका परिचय

नैनीताल के सभ्य समाज से करा दिया जाता है पर उसे ऐसा लगता था जैसे किसी गहन घाटी मे रास्ता भूल गया हो। "राय साहब उन्हे प्राय: एकात मे सभ्य व्यवहार के उपदेश दिया करते। स्वय नमूना बन उन्हे सिखाते, पुरुषो से क्योंकर बिना प्रयोजन ही मुस्कुराकर बाते करनी चाहिए, महिलाओ के रूप-लावण्य की क्योकर सराहना करनी चाहिए, किंत अवसर पडने पर ज्ञानशकर का मतिहरण हो जाता था।" (उप , पृ 101)। पाश्चात्य सभ्यता के रग-ढग अपनाने मे असफल होकर वह उसकी आलोचना करने लगता है। "लोग ख्वाहमख्वाह अँगरेजियत के पीछे लटठ लिए फिरते है। थोडी-सी ख्याति और सत्ता के लिए इतना झझट और इतने रग-रोगन पर भी असलियत का कहा पता नही और तो और लोग लौडियो के साथ नाचने पर भी मरते है।" (उप , पृ 102)। ऐसे व्यक्ति को पाश्चात्य सभ्यता और शिक्षा का प्रतिनिधि नही कहा जा सकता।

प्रेमशकर ने मायाशकर की पढाई-लिखाई की जो व्यवस्था की है, उसका गाँधी जी की शिक्षानीति से कोई सबध नही है। प्रेमशकर की योजना थी कि मायाशकर को एक अध्यापक "अँगरेजी और हिसाब पढायेगा, एक हिदी और सस्कृत, एक उर्दू और फारसी, एक फ्रेच और जर्मन, पाँचवाँ तुम्हे व्यायाम, घोडे की सवारी, नाव चलाना, शिकार खेलना सिखायेगा। इतिहास और भूगोल मैं पढाया करूँगा।" (उप , पृ 351)। यह व्यवस्था पाश्चात्य ढग की तो है ही, उसमे फ्रेच और जर्मन के साथ घुडसवारी सिखाने का विधान अभिजातवश के नौजवानो को ध्यान मे रखकर किया गया है। मायाशकर को ठाटबाट पसद नही। वह दूसरे लडको की ही तरह शिक्षा पाना चाहता है। "प्रेमशकर की इच्छा थी कि कई अध्यापक रखे जायँ, सैर करने के लिए गाडियाँ रखी जायँ, कई नौकर सेवा-टहल के लिए लगाये जायँ, पर मायाशकर अपने ऊपर इतना खर्च करने को राजी न हुआ। प्रेमशकर को मजबूर होकर उसकी बात माननी पडी। केवल दो अध्यापक उसे पढाने आते थे। फारसी पढाने के लिए ईजाद हुसेन और सस्कृत पढाने के लिए एक पडित। सवारी के लिए एक घोडा भी था। अँगरेजी प्रेमशकर स्वय पढाते थे। गणित ज्वाला सिह के जिम्मे था, डाक्टर प्रियनाथ सप्ताह मे दो दिन गाने की शिक्षा देते थे,जिसमे यह निपुण थे और दो दिन आरोग्य शास्त्र पढाते थे। डाक्टर इर्फान अली अर्थशास्त्र के ज्ञाता थे। सप्ताह मे दो दिन कानून सिखाते और दो दिन अर्थशास्त्र की व्याख्या करते।" (उप , पृ 390-91)।

मायाशकर के सिर पर काफी विषयो का बोझ है। मार्के की बात यह है कि समूचे पाठ्यक्रम मे धार्मिक शिक्षा के लिए कोई विधान नही है। स्पष्ट है, इस शिक्षा-व्यवस्था से अध्यात्मवाद का कोई सबध नही है। निष्कर्ष यह निकला कि पाश्चात्य शिक्षा और भारतीय शिक्षा, भौतिकवाद और अध्यात्मवाद, बोल्शेविज्म और गाँधीवाद—इस तरह के द्वद्व के आधार पर **प्रेमाश्रम** की व्याख्या नही की जा सकती। स्वय गाँधी जी के ट्रस्टीशिप सिद्धात का सबध जापानी सामतो

के इतिहास मे अधिक है, भारतीय सस्कृति से कम । गाँधी जी ने इस सिद्धांत की चर्चा क्रातिकारी युवको का विरोध करने के लिए शुरू की थी । प्रेमचद को इन युवको से गहरी सहानुभूति थी । दोनो की भावना मे यह मौलिक अतर था ।

2 भारतीय संस्कृति के विविध रूप

भारतीय सस्कृति मे अनेक धाराएँ है । एक तरह की धाराएँ रूढिवाद की पोषक हैं, दूसरी तरह की धाराएँ उसकी विरोधी हैं । भारतीय सस्कृति मे वर्णव्यवस्था का समर्थन है, उसमे उसका खडन भी है । मजे की बात है कि प्रेमशकर जब तक अमरीका मे रहे, तब तक "वर्णाश्रम धर्म का समर्थन करने मे सदैव तत्पर" रहे ! (*प्रमाश्रम*, पृ 113) । लेकिन जब उन्होने प्रेमाश्रम कायम किया, तब उन्होने उसे वर्णाश्रम धर्म से मुक्त रखा । "यहाँ स्वामी की घुडकियाँ न थी, न सेवक की दीन ठकुरसुहातियाँ । यहाँ सब एक-दूसरे के सेवक, एक-दूसरे के मित्र और हितैषी थे ।" (उप , पृ 389) । प्रेमचद क कल्पनालोक मे द्विज-शूद्र का भेद मिट गया है, उसके साथ भारतीय सस्कृति का परपरागत रूप भी मिट गया है । प्रेमचद ने इस परपरागत रूप के अस्तित्व की ओर बार-बार ध्यान दिया है । सनातन धर्म के वार्षिक समारोह मे "एक विद्वान पडित जी विधवा-विवाह पर भाषण कर रहे थे । ऐसे निद्य विषय पर गभीरता से विचार करना अनुपयुक्त समझकर वह इसकी खूब हँसी उडा रहे थे और यथोचित हास्य और व्यग, धिक्कार और तिरस्कार से काम लेते थे ।" उन्होंने एक किस्सा सुनाया । उनके पडोस के एक बाबू जी ने अपनी माँ से विधवा-विवाह की बहुत प्रशसा की तो वह बोली, "क्यो मेरा भी किसी से पाणिग्रहण नही करा देते ? देश भर की विधवाएँ सोहागिन हो जायँगी तो मुझसे क्योकर रहा जायगा ? श्रोताओ ने प्रसन्न होकर तालियाँ बजायी, कहकहो से पडाल गूँज उठा ।" (उप , पृ 257) ।

विधवा-विवाह का निषेध भारतीय सस्कृति मे है, इस निषेध का विरोध भी भारतीय सस्कृति मे है । इस सस्कृति के मूल्यवान तत्व रूढियो मे निहित नहीं हैं, वे इन रूढियो के विरोध मे निहित हैं । प्रेमचद ने इन रूढियो पर निरतर प्रहार किया, **प्रेमाश्रम** इसलिए भी महान् उपन्यास है कि उसमे रूढियो की विशद आलोचना है । धार्मिक आडबरो से आर्थिक लाभ की प्राप्ति के लिए सबसे ज्यादा प्रयत्नशील है ज्ञानशकर । पर वह अकेला नही है, उसके साथ सनातन धर्ममडल के कर्णधार हैं, सैयद ईजाद हुसेन है, मोटर पर चलनेवाले सन्यासी हैं । "वह तिलकधारी पडितो को तुच्छ समझते थे और मोटर पर बैठने के लिए अग्रसर हो जाते थे । एक सन्यासी महात्मा, जो विद्यारत्न की पदवी से अलकृत थे, मोटर न मिलने से इतने अप्रसन्न हुए कि बहुत आरजू-मिन्नत करने पर भी फिटन पर न बैठे ।" (उप., पृ.

257)। भारतीयता का यह व्यापार स्वाधीन भारत में और भी बढ गया है।

प्रेमाश्रम मे भारतीयता के अनेक रूप हैं। राय कमलानद शाक्त हैं, योगी हैं, कुछ वाममार्गी साधनाएँ करते हैं, फिर वैष्णव हो जाते हैं। तेजशकर और प्रेमशकर तत्र-मत्र मे विश्वास करते हैं। उन्तालीस दिनो तक गगा के किनारे मंत्र जपते हैं। "कभी मालूम होता था आकाश फट पडता है, कभी आग की एक लहर सामने आती हुई नजर आती, कही कोई भयकर राक्षस मुँह से अग्नि की ज्वाला निकालता हुआ उन्हे निगलने को लपकता।" (उप , पृ 371)। अमावस की रात उनकी साधना की अतिम रात थी। तेजशकर ने भाई को तलवार दी और वार करने को कहा। उसे विश्वास है, "हमने मौत को कुचल दिया, काल को जीत लिया, अब हम अमर हैं।" (उप , पृ 373)। इस घोषणा से अधिक भारतीयता और कहाँ व्यक्त होगी ? वार तेजशकर को ही करना पडा। "कोई अभ्यस्त वधिक भी पशु की गर्दन पर तलवार चलाकर इतना स्थिर चित्त न रह सकता होगा।" (उप)। स्थितप्रज्ञता की पराकाष्ठा है। तेजशकर को आशा थी कि भाई अभी जी उठेगा। आशा पूरी होते न देख "उसने गगाजल चुल्लू मे लेकर भैरव मत्र पढा और उस पर एक फूँक मारकर उसे लाश पर छिडक दिया, किंतु यह क्रिया भी असफल हुई। उस कटे हुए सिर मे कोई गति न हुई, उस मृत देह मे स्फूर्ति का कोई चिह्न न दिखायी दिया। मत्र की जीवन सचारिणी शक्ति का कुछ असर न हुआ।" (उप)। अत मे उसने तलवार से अपना गला काट लिया। "बलिदान पूरा हो गया। मिथ्या विश्वास ने दो लहलहाते हुए जीव पुष्पो को पैर से मसल दिया।" (उप , पृ 374)।

पाठक को लग सकता है, यह घटना अतिरजित है, अपवादस्वरूप है। नरबलि के समाचार तो जब-तब अखबारो मे छपते ही रहते हैं, **प्रेमाश्रम** की घटना का भयकर पक्ष यह है कि मत्र सिद्ध करने के दौरान एक युवक ने अपने ही भाई का वध किया। इससे मिलती-जुलती घटना स्वाधीन भारत की राजधानी दिल्ली की विकासपुरी कालोनी मे 1986 मे घटित हुई।

8 जुलाई, 1986 के 'टाइम्स ऑफ इडिया' के मुखपृष्ठ पर यह समाचार छपा

SON BEHEADED TO APPEASE GODS

New Delhi, July 7 A 35 years old craftsman beheaded his young son with an axe in a Delhi Development Authority park in Vikaspuri this afternoon to appease the gods.

The police said that Mange Ram who then set to pray near the body hoping that Ram Sewak, the boy would come back to

life and he would be rewarded for his action, was arrested on charge of murder The police also recovered several religious books from the suspect

Preliminary investigations have revealed that Mange Ram who originally hails from Hamirpur in Uttar Pradesh and started believing that by making a human sacrifice he would be able to bring happiness all around At about 4.30 p m , he took his only son to the park and after performing a ritual, beheaded him.

According to the police, Mange Ram also has two daughters

कारीगर माँगेराम ने देवताओ को प्रसन्न करने के लिए अपने पुत्र की बलि दे दी । तेजशकर की तरह माँगेराम को भी आशा थी कि रामसेवक जी उठेगा पर वैसा हुआ नही । अखबार पढनेवाले जरूर समझते होगे, यह घटना अपवादस्वरूप है । **प्रेमाश्रम** की घटना बीसवी सदी के आरभ की है, नई दिल्ली की घटना बीसवी सदी के अवसान की है । लगता है, भारत इक्कीसवी सदी मे इस तत्रवाद के साथ प्रवेश करेगा ।

तत्रवाद और वाममार्ग की पृष्ठभूमि को ध्यान मे रखने से ही रामायण का ऐतिहासिक महत्त्व समझ मे आ सकता है । "डपटसिह के दालान मे एक मिट्टी के तेल की कुप्पी जल रही थी । भूमि पर पुआल बिछी हुई थी और कई आदमी और लडके एक मोटे टाट का टुकडा ओढे सिमटे पडे थे । एक कोने मे एक कुतिया बैठी हुई पिल्लो को दूध पिला रही थी । डपटसिह अभी सोये न थे । सोच रहे थे कि सुक्खू के कोल्हाडे से गर्म रस आ जाय तो पीकर सोये । उनके छोटे भाई झपटसिह कुप्पी के सामने रामायण लिये आँखे गडा-गडाकर पढने का उद्योग कर रहे थे ।" (उप , पृ. 95) । प्रेमशकर लखनपुर आए । "जब वह भोजन करके लेटे तो लोगो ने आपस मे सलाह की कि बाबूसाहब को रामायण सुनायी जाय । बिसेसर साह अपने घर से ढोल-मजीरा लाये । कादिर खाँ ने ढोल लिया । मजीरे बजने लगे और रामायण का गान होने लगा ।" (उप पृ.186) । प्रेमचद ने कई जगह प्रेमशकर पर व्यग्य किया है, एक जगह रामायण के सदर्भ मे है । "प्रेमशकर को हिंदी भाषा का अभ्यास न था और शायद ही कोई चौपाई उनकी समझ मे आती हो " (उप), फिर भी वह किसानो का उद्धार करने को उत्सुक थे । अमरीका से कृषि विद्या सीखकर आए थे, बहुत जल्दी उन्हे मालूम हो गया कि "यहाँ के किसानो को जितना मूर्ख समझा जाता है, वे उतने मूर्ख नही हैं ! उन्हे किसानो से कितनी ही नयी बातो का ज्ञान हुआ ।" (उप , पृ 122) । जहाँ तक धार्मिक साधना का सबध है, रामायण की चौपाइयाँ न समझने पर भी "वह इन देहातियो के विशुद्ध धर्मानुराग

का आनद उठा रहे थे।" (उप., पृ 186)। इस धर्मानुराग मे हिंदू-मुसलमान दोनो शामिल हैं। कादिर 'भजन' गाते हैं "मैं अपने राम को रिझाऊँ।" (उप.)। पर इस धर्मानुराग के भी अनेक रूप हैं।

निराला ने बिल्लेसुर के लिए लिखा था, "अपनी जिंदगी की किताब पढ़ते गये। किसी भी वैज्ञानिक से बढ़कर नास्तिक।" (*बिल्लेसुर बकरिहा*, किताब महल, 1958, पृ 19)।

जिंदगी की किताब मे किसान जिस नास्तिक मत को पढ़ लेता है, उसे पाश्चात्य सभ्यता की देन नही कहा जा सकता। बिल्लेसुर बकरियाँ चराने चले। रास्ते मे महावीर जी का मंदिर मिला। "चढ़ गये और चबूतरे के ऊपर से मुँह की गुठली नीचे फेक कर महावीर जी के पैर छुए और रोज की तरह कहा, मेरी बकरियो की रखवाली किये रहना!" (उप, पृ 41)। किंतु बदमाश लडके उनका बकरा चुरा ले गए। बिल्लेसुर ने उसकी कीमत आँकी थी आठ रुपये। घर लौटते समय "महावीर जी का वह मंदिर दिखा। अँधेरा हो गया था। सामने से मंदिर के चबूतरे पर चढे। चबूतरे-चबूतरे मंदिर की उल्टी प्रदक्षिणा करके, पीछे महावीर जी के पास गये। लापरवाही से सामने खडे हो गये और आवेग मे भरकर कहने लगे—'देख, मैं गरीब हूँ। तुझे सब लोग गरीबो का सहायक कहते हैं, मैं इसीलिए तेरे पास आता था, और कहता था, मेरी बकरियो को और बच्चो को देखे रहना। क्या तूने रखवाली की, बता, लिये थूथन-सा मुँह खडा है?' कोई उत्तर नही मिला। बिल्लेसुर ने आँखो से आँखे मिलाये हुए महावीर जी के मुँह पर वह डडा दिया कि मिट्टी का मुँह गिल्ली की तरह टूटकर बीघे-भर के फासले पर जा गिरा।" (उप, पृ 46)। यह घटना भी अपवादस्वरूप जान पडती है पर इससे मिलती-जुलती घटना **प्रेमाश्रम** मे घट चुकी है।

कादिर का भजन और रामायण का गायन सुनने से पहले प्रेमशकर दुखरन भगत के द्वार पर पहुँचे। वहाँ उन्होने "एक विचित्र दृश्य देखा। गाँव के कितने ही आदमी जमा थे। और भगत उनके बीच मे खडे हाथ मे शालिग्राम की मूर्ति लिये उन्मत्तो की भाँति बहक-बहककर कह रहे थे—यह शालिग्राम हैं! अपने भक्तो पर बडी दया रखते हैं? सदा उनकी रक्षा किया करते है। इन्हे मोहनभोग बहुत अच्छा लगता है! आप सत्तू खाता था, बच्चे चबेना चबाते थे, इन्हे मोहनभोग का भोग लगता था। इनके लिए जाकर कोसो से फूल और तुलसीदल लाता था। यह भगती और सरधा क्या इसलिए कि मुझ पर जूते पडे, हकनाहक मारा जाऊँ, चमार बनूँ? मै अब तक भूल मे पडा हुआ था। समझता था, इसकी उपासना करने से मेरे लोक-परलोक दोनो बन जायेंगे। आज आँखों के सामने से वह परदा हट गया। यह निरा मिट्टी का ढेला है। यह लो महाराज, जाओ जहाँ तुम्हारा जी चाहे! तुम्हारी यही पूजा है। उन्तालिस साल की भगती का तुमने मुझे जो बदला दिया है, मैं भी तुम्हे उसी का बदला देता हूँ। यह कहकर भगत ने शालिग्राम की प्रतिमा को

जोर से एक ओर फेंक दिया।" (*प्रेमाश्रम*, पृ 184)।

यह है यथार्थवाद। कल्पनालोक में स्थिति बदल जाती है। जमींदारी खत्म हो गई। कर्ज चुका दिया। तीन-चार सौ हाथ मे हैं। सौ रूपये की पछाहीं भैंस ले आए हैं। संपत्ति के साथ भक्ति भी लौट आई। सुक्खू प्रेमशकर से कहता है, "यह पहले ठाकुर जी के बडे भगत थे। एक बार बेगार मे पकडे गये तो आकर ठाकुर जी पर क्रोध उतारा। उनकी प्रतिमा को तोड-ताडकर फेक दिया। अब फिर ठाकुर जी के चरणो मे इनकी श्रद्धा हुई है। भजन-कीर्तन का सब सामान इन्होने मँगवाया है।" (उप, पृ 408)। 'भक्त और भगवान' मे निराला की उक्ति याद आती है "भक्त साधारण पिता का पुत्र था। सारा सासारिक ताप पिता के पेड पर था, उस पर छाँह उसी छाँह के छिद्रो से ज्योतिर्मय जल मे नहाई भिन्न-भिन्न रूपो की प्रकृति को देखता रहता था। स्वभावत जगत के करण-कारण भगवान पर उसकी भावना बँध गई।" निराला और प्रेमचद मनुष्य की भावनाओ का सबध उसकी परिस्थितियो से जोडते है, यह उनके यथार्थबोध की विशेषता है।

विषाक्त भोजन करने के बाद राय कमलानद ने कहा, "यह सारी विडबना इसी जायदाद का फल है। इसी जायदाद के कारण हम और तुम एक-दूसरे के खून के प्यासे हो रहे हैं। ससार मे जिधर देखो ईर्षा और द्वेष, आघात और प्रत्याघात का साम्राज्य है। भाई भाई का बैरी, बाप बेटे का बैरी, पुरुष स्त्री का बैरी, इसी जायदाद के लिए। इनके हाथो जितना अनर्थ हुआ, हो रहा है और होगा उसके देखते कही अच्छा है कि अधिकार की प्रथा ही मिटा दी जाती। यही वह खेत है जहाँ छल और कपट के पौधे लहराते हैं, जिसके कारण ससार रणक्षेत्र बना हुआ है। इसी ने मानवजाति को पशुओ से भी नीचे गिरा दिया है।" (उप, पृ 278-79)।

प्रेमाश्रम मे सभी तरह की सपत्ति का विरोध नही है, प्रेमशकर ने जो नई दुनिया बसाई है, उसका आधार व्यक्तिगत सपत्ति ही है। सबकी आर्थिक स्थिति का विवरण सुन लेने के बाद "मायाशकर ऐसे प्रसन्न थे मानो स्वर्ग मे बैठे हुए हैं। स्वार्थसेवी, माया के फदो मे फँसे हुए मनुष्यो को यह शान्ति, यह सुख, यह आनन्द, यह आत्मोल्लास कहाँ नसीब!" (उप, पृ 411)। यहाँ जिन लोगो के सुख और आनद की बात कही गई है, उनमे सन्यासी कोई नहीं है। मायाशकर के पास भी औरो की तरह व्यक्तिगत सपत्ति है। इन लोगो के आत्मोल्लास का भौतिक आधार यह सपत्ति है। सन्यासियो के लिए जो माया है, वह इनकी मुक्ति का साधन है। सपत्ति दो तरह की है एक अपने श्रमफल का परिणाम, अन्य दूसरो के श्रमफल का परिणाम। इस दूसरी तरह की सपत्ति को लेकर **प्रेमाश्रम** मे जबर्दस्त विरोध-प्रदर्शन है। रायसाहब ने जिस जायदाद को सारे अनर्थो की जड माना है, वह यही दूसरी तरह की संपत्ति है।

जमींदार अपनी जायदाद का ट्रस्टी नही है, वह दलाल है। दलाल होने के कारण जिसे वह जायदाद कहता है, वह वास्तव मे जायदाद है ही नही। राय

कमलानंद कहते हैं, "यह जायदाद नहीं है । इसे रियासत कहना भूल है । यह निरी दलाली है । हम केवल लगान वसूल करने के लिए रखे गये हैं । इसी दलाली के लिए हम एक-दूसरे के खून से अपने हाथ रँगते हैं ।" (उप , पृ 279) । कुछ ऐसे ही विचार प्रेमशकर के है । ज्ञानशकर से उन्होने कहा, "मैं यह सुनना ही नही चाहता कि मै उस गाँव (लखनपुर) का जमीदार हूँ । मैं अपने श्रम की रोटी खाना चाहता हूँ । बीच का दलाल नहीं बनना चाहता ।" (उप , पृ 140) । ट्रस्टीशिप का सिद्धात पूँजीपतियो की सपत्ति के लिए है, दलाल जमीदारों की सपत्ति के लिए नही । राय कमलानद की आलोचना का लक्ष्य केवल जमींदार की सपत्ति नही है, पूँजीपति की सपत्ति भी है । जो अनर्थ हुआ है और हो रहा है, उसी की ओर उनका ध्यान नही है वरन् जो होगा, उस पर भी उनका ध्यान है । "आप मिले खोलते हैं तो समझते हैं हमने जाति की बडी सेवा की; पर यथार्थ मे आपने दस-बीस आदमियों को वनवास दे दिया । आपने उनके नैतिक और सामाजिक पतन का सामान पैदा कर दिया । हाँ, आपने और आपके साझेदारो ने 45 रु प्रति सैकडे लाभ अवश्य उठाया ।" (उप , पृ 266) ।

प्रेमाश्रम पढते हुए कई बार ऐसा लगता है, मानो हम स्वाधीन भारत का दृश्य देख रहे है । इसका कारण यह है कि प्रेमचद पूँजीवादो सपत्ति और उसके आधार पर फलने-फूलनेवाले आचार-व्यवहार को पहचान रहे थे । चुनाव की सरगर्मी का हाल देखे "सारे प्रान्त मे धूम मची हुई थी । जैसे सहालग के दिनों मे ढोल और नगाडो का नाद गूँजने लगता है उसी भाँति इस समय जिधर देखिए जाति प्रेम की चर्चा सुनायी देती थी । डाक्टर इर्फान अली बनारस महाविद्यालय की तरफ से खडे हुए । बाबू प्रियनाथ ने बनारस म्युनिसिपैलिटी का दामन पकडा । ज्वाला सिह इटावे के रईस थे, उन्होने इटावे के कृषको का आश्रय लिया । सैयद ईजाद हुसेन को भी जोश आया । वह मुस्लिम स्वत्व की रक्षा के लिए उठ खडे हुए । प्रेमशकर इस क्षेत्र मे न आना चाहते थे, पर भवानी सिह, बलराज और कादिर खाँ ने बनारस के कृषको पर उनका मत्र चलाना शुरू किया । तीन-चार महीनो तक बाजार खूब गर्म रहा, छापेखाने को ट्रैक्टो के छापने से सिर उठाने का अवकाश न मिलता था । कही दावते होती थी, कही नाटक दिखाये जा रहे थे । प्रत्येक उम्मीदवार अपनी-अपनी ढोल पीट रहा था, मानो संसार के कल्याण का उसी ने बीडा उठाया है ।" (उप., पृ 397)

फिर चुनाव के बाद . "बहुधा वृक्ष पुंजो मे सध्या समय पक्षियो के कलरव से कान पडी आवाज नही सुनायी देती लेकिन ज्यों ही अँधेरा हो जाता है और चिडियाँ अपने-अपने घोसलो मे जा बैठती हैं वहाँ नीरवता छा जाती है, उसी भाँति जाति के प्रतिनिधिगण राजसभा के सुसज्जित सुविशाल भवन में पहुँचकर शांति में मग्न हो गये । वे लबे-चौडे वादे, वे बडी-बडी बाते सब भूल गयी । कोई मुवक्किलो के सेवा-सत्कार मे लिप्त हुआ, कोई अपने बहीखाते की देखभाल मे, कोई अपने सैर

और शिकार मे। जातिहित की वह उमग शात हो गयी।" (उप , पृ 398)। सपत्तिशाली वर्ग जैसे धर्म का उपयोग अपने ढग से करते हैं, वैसे ही जनतत्र का उपयोग भी अपने ढंग से करते हैं। नेता, वकील, डॉक्टर, सब तरह-तरह से सपत्ति के जाल मे फँसे हुए हैं। ज्वाला सिह के अनुसार वकील "यदि विवेक की रक्षा करे तो रोटियाँ चाहे भले खाय, समृद्धिशाली नही हो सकता और डाक्टरो का तो जीवन ही रईसो की कृपा पर निर्भर है, गरीबो से उन्हे क्या मिलेगा ?" (उप , पृ 22)।

यही माया है—माया अर्थात् सपत्ति। नारि मुई घर सपति नासी, मूड मुडाय भये सन्यासी। सपत्ति त्यागकर आदमी सन्यासी बनता है, जो पहले ही सपत्तिहीन है, वह सन्यासी क्या बनेगा ? सन्यास सपत्तिगत सबधो के प्रति एक तरह का विद्रोह है। सन्यासी उन्हे बदल नही सकता, वह उन्हे त्यागकर अलग हो जाता है। राय कमलानद प्रेमशकर को समझाते है, "वासनाओ मे पडकर अविचलित रहना ही सच्चा वैराग्य है।" (उप , पृ 119)। लेकिन जब वह जायदाद की आलोचना करते है, तब उन्हे यह बात खलती है कि वह उसे छोड नही पाते। "तुम कहोगे, यह सब कोरी बकवाद है, रियासत इतनी बुरी चीज है तो उसे छोड क्यो नही देते ? हा ! यही तो रोना है कि इस रियासत ने हमे विलासी, आलसी और अपाहिज बना दिया।" (उप , पृ 279)। ज्ञानशकर के सामने कमलानद ने जायदाद की जो आलोचना की, वह तोल्स्तोय की याद दिलाती है। तोल्स्तोय की ही तरह वह जीवन के अंतिम चरण मे घर से बाहर निकल गये। कमलानद ने वाममार्गी साधना और जायदाद दोनो का त्याग एक साथ किया।

प्रेमाश्रम मे एक और आदमी ने सन्यास लिया, यह है सुक्खू चौधरी। कमलानद को चिंता नही है, उनके बाद किसानो का क्या होगा। सुक्खू को चिंता है। वह जमींदार नही है, धनी किसान है। अपनी जमीन भूमिहीन किसानो मे बाँट देते हैं, सन्यास मानो इन्ही के हित मे लिया था। कहते हैं, "मैंने अपने चालीसो बीघे उन बेचारो को दे दिये हैं जिनके हिस्से मे कुछ न पडा था। इस तरह सात आठ घर जो पहले मजूरी करते थे और बेगार के मारे मजूरी भी न करने पाते थे, अब भले आदमी हो गये। मेरा अपना निर्वाह भिक्षा से हो जाता है। हाँ, इच्छापूर्ण भिक्षा यहीं मिल जाती है, किसी दूसरे गाँव में पेट के लिए नही जाना पडता।" (उप , पृ 409)। कृषिशाला से मुख्यत लाभ उन्हे होता है जिनके पास जमीन है, भले ही उस पर उनका मौरूसी हक न हो। गाँव मे खेत मजदूरों के कुल सात-आठ घर हैं। इन्हें जमीन मिलेगी या नहीं ? उन्नीसवी सदी के पूर्वार्ध मे जब एंगेल्स ने मजदूर वर्ग की दशा पर अपनी पुस्तक लिखी थी, तब वहाँ पूँजीवाद का काफी विकास हो चुका था पर खेत-मजदूर वहाँ भी बडे भूस्वामियो की जमीन बाँटकर किसान बनना चाहते थे। 1844 मे अर्ल रैडनर नाम के एक बडे भूस्वामी ने अनाज संबधी कानूनो का विरोध करने के लिए सभा बुलाई थी। खेत-मजदूरो को इन कानूनो से कोई

वास्ता न था; "उन्होंने अपने लिए एकदम अलग चीज़ की माँग की यानी छोटी किसानी लायक जमीन (small holdings) की, जिसका लगान कम हो, तथा अर्ल रैडनर के मुँह पर हर तरह की खरी-खोटी कह डाली।" (Marx-Engels, On Britain, लदन, 1953, पृ 303)। जहाँ तक पराधीन आयर्लैंड का सवाल था, वहाँ "हर खेत-मजदूर असामी काश्तकार बनने की कोशिश करता है।" (उप., पृ 306)। प्रेमचद खेत-मजदूर की यह स्वाभाविक इच्छा समझते थे कि उसके पास भी जमीन हो, वह दूसरो की मजूरी करना छोडकर 'भला आदमी' बन जाए। काल्पनिक समाधान प्रस्तुत करते समय प्रेमचद खेत-मजदूरो को भूले नही, यह तथ्य महत्त्वपूर्ण है।

किसान मरजाद का कायल है लेकिन **प्रेमाश्रम** मे मेहनत-मजूरी के प्रति एक नया दृष्टिकोण भी है। बलराज कहता है, "और फिर तुम जमीदार के गुलाम बने रहे तो उस जमाने में और कर ही क्या सकते थे? न अपने खेत मे काम करते, किसी दूसरे के खेत मे मजूरी करते। अब तो शहरो मे मजूरो की माँग है, रुपया रोज खाने को मिलता है, रहने को पक्का घर अलग। अब हम जमीदारो की धौंस क्यो सहे क्यो पेट भर खाने को तरसे?" (उप, पृ. 51)। जिसे खेती करने को जमीन मिली है, वह भी जमीदार का गुलाम है, जिसे नही मिली, वह तो है ही। प्रेमाश्रम नाम के कल्पनालोक मे किसान है, शहरी मजदूर नही हैं। बलराज रूस के लिए कहता है, वहाँ "कास्तकारो का राज है" (उप) लेकिन "उसी के पास कोई और देश बलगारी है। वहाँ अभी हाल की बात है, कास्तकारो ने राजा को गद्दी से उतार दिया है और अब किसानो और मजदूरो की पचायत राज करती है।" (उप, पृ 51-52)। यहाँ किसानो के साथ मजदूर भी है। बलराज शहर जाकर मजदूरी करने की बात-भर करता है, **गोदान** मे गोबर शहर पहुँचकर मजदूरी करने ही लगता है।

बलराज 'उस जमाने' की बात करता है जब किसान के सामने जमीदार की गुलामी छोडकर और कोई रास्ता नही है। वह जमाना अग्रेजी राज मे ही देखने को मिला था, स्वदेशी आदोलन से पहले का जमाना, जब शहरो मे थोडा-सा औद्योगिक विकास भी न हुआ था। अब नए जमाने मे तबाह होता हुआ किसान शहरों को आशाभरी निगाहो से देख रहा है। जमीदार की गुलामी से मुक्त होने के लिए शहर चले जाएँगे, रुपया रोज खाने को मिलेगा, रहने को पक्का घर। यह भी एक सपना है पर एकदम काल्पनिक नही। उद्योग धधो की तबाही से खेती पर निर्भर रहनेवालो की सख्या बेहद बढ़ गई थी। जैसे ही थोडा औद्योगिक विकास सभव हुआ, किसान गाँव छोडकर शहर की तरफ भागने लगे। यह प्रक्रिया **प्रेमाश्रम** में नही दिखाई गई पर उसकी ओर सकेत जरूर है। बहुत-से लोग रेलवे से संबंधित कारखानों मे काम करते थे, अन्य लोग फौज मे भर्ती हुए थे। **प्रेमाश्रम** के पात्रों की समस्याएँ अलग-अलग ढग की हैं, आत्महत्या से लेकर सन्यास तक

उनके समाधान भी अलग-अलग ढग के हैं। भागो नहीं, लडो, हारो चाहे जीतो लेकिन लडो, अन्याय के सामने सिर न झुकाओ, चाहे बरबाद हो जाओ—यह संदेश भी **प्रेमाश्रम** में निहित है। यह कोई समाधान नही है। पर यह भावना हर काल्पनिक समाधान से बढकर है, सही समाधान की ओर इस भावना के सहारे ही आदमी बढ सकता है। प्रेमचंद के उपन्यासो मे अक्सर पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियो का यथार्थबोध अधिक तीव्र होता है, अपने अधिकारो के लिए लडने की भावना उनके द्वारा प्राय. व्यक्त होती है।

लाला प्रभाशकर ज्ञानशकर से मीठी-मीठी बाते करते हैं पर उनकी पत्नी उन्हे फटकार देती है, "कुछ सुन रहे हो सपूत की बातें! बोलते क्यो नही? क्या मुँह मे दही जमा हुआ है। बाप हजारो रुपये साल साधू भिखारियो को खिला दिया करते थे। मरते दम तक पालकी के बारह कहार दरवाजे से नही टले। इन्हे आज हमारी रोटियाँ अखर रही हैं। लाला, हमारा जस मानो कि आज रईसो की तरह चैन कर रहे हो, नही तो मुँह मे मक्खियाँ आती-जाती।" (उप., पृ. 30)। पति को इस तरह भतीजे के सामने फटकारना उचित तो न था पर क्या किया जाए, जमाना बदल गया था!

यह तो जमीदार-घर की बात है। भोला हलवाहे की पत्नी बुधिया, प्रेमशकर से पति की शिकायत करती है, "दिन भर चक्की पीसती हूँ और जो कुछ पाती हूँ वह सब गृहस्थी मे झोक देती हूँ, तिस पर भी भरपेट दाना नसीब नहीं होता। आप उसके हाथ मे तलब न दिया करे। सब जुए मे उडा देता है आज से आप तलब मेरे हाथ मे दिया करे।" भोला की पेशी होती है। सीधे अपराध स्वीकार न करके प्रेमशकर के लिए जान भी निछावर करने को कहता है। इस पर बुधिया धिक्कारती है, "अरे जा, जालिये कही के! बाबूजी बीसो बार समझा के हार गये। तुझसे एक जुआ तो छोडा जाता नही, तू और क्या करेगा? जान पर खेलनेवाले और होते है।" (उप., पृ 244-46)। स्त्री पति की दासी है; उसका धर्म है, उसकी हर आज्ञा का पालन करे—इस सिद्धात की भनक भी बुधिया के कान मे नही पडी।

इर्फान अली शहर के आदमी हैं, धधा वकालत का है। गोरखपुर से बुलावा आया है, घर मे लडकी बीमार है, रुक नही सकते। बेगम से उनके डायलॉग का आखिरी हिस्सा इस प्रकार है:

"बेगम—लडकी की जान को खुदा के हवाले करते हो, लेकिन रुपये खुदा के हवाले नही किये जाते! लाहौल बिलाकूवत! आदमी मे इसानियत न हो, औलाद की मुहब्बत तो हो! दौलत की हवस औलाद के लिए होती है। जब औलाद ही न रही, तो रुपयो का क्या अलाव लगेगा?

इर्फान—तुम अहमक हो, तुमसे कौन सिर मगजन करे?" (उप., पृ 250)।

बेगम के सामने इर्फान अली की वकालत फेल हो जाती है।

जहाँ इतने स्तरो पर स्त्री अन्याय का विरोध करने को तैयार हो, वहाँ समझ

लेना चाहिए कि सारे देश मे विद्रोह की हवा चल रही है । यह हवा धीरे-धीरे चल रही है पर शात नही है, वह घरो के भीतर पहुँच रही है । सदियो से चले आते पितृसत्तात्मक समाज की रूढियाँ तोडकर नारी अब अपने मनुष्य होने का दावा पेश कर रही है । सबसे कठिन परिवार के भीतर विद्रोह होता है, पर यह आग वहाँ भी सुलग रही है । सभी स्त्रियो मे यह विरोध-भावना नही है पर आमतौर से पुरुषो की अपेक्षा स्त्रियो मे वह अधिक मुखर है । कभी-कभी जब एक स्त्री पस्त हो जाती है तो दूसरी उसे विद्रोह का पाठ पढाती है । ज्ञानशकर की योजना है कि गायत्री उनके पुत्र मायाशकर को गोद ले ले । सारी तैयारी हो चुकी है । विद्या मायाशकर की माँ है लेकिन उसका गोद लिया जाना कैसे रोके, उसकी समझ मे नहीं आता । प्रेमशकर की पत्नी श्रद्धा उसे रास्ता दिखाती है, "अभी शाम को जब यह लोग लौटे तब नीचे चली जाओ और माया का हाथ पकडकर खीच लाओ । वह न आये तो सारी बाते खोलकर उससे कह दो । समझदार लडका है, तुरत उनसे उसका मन फिर जायेगा ।" श्रद्धा उसे पति का विरोध करना सिखा रही है पर विद्या को भय है, कही मायाशकर ने बात न मानी तो क्या होगा ? इस पर श्रद्धा उसे यह लोकतांत्रिक मार्ग अपनाने को कहती है, "तो रात को जब शहर के लोग जमा हो, जाकर भरी सभा मे कह दो, यह सब मेरी इच्छा के विरुद्ध है । मैं अपने पुत्र को गोद नही देना चाहती । लोगो की सब चाले पट पड जायें । तुम्हारी जगह मैं होती तो वह महनामथ मचते कि इनके दाँत खट्टे हो जाते । क्या करूँ, मेरा कुछ अधिकार नही है, नही तो इन्हे तमाशा दिखा देती ।" (उप , पृ 330) । पुत्र पर माता का भी अधिकार है, पिता से अधिक नही तो उसके बराबर । इस अधिकार के लिए उसे भरी सभा मे लडना चाहिए, पति के छलकपट का भडाफोड करना चाहिए । विद्या मे यह सब करने का साहस नही है, होता तो आत्महत्या की नौबत न आती । पर यह आत्महत्या अनिवार्य नही है । **प्रेमाश्रम** मे उसका विकल्प मौजूद है ।

भरी सभा मे जाकर पति को चुनौती देने का साहस विद्या में नही है पर मनोहर की पत्नी बिलासी चरावर पर अपने और गाँव के सभी किसानो के अधिकारों के लिए गौस खाँ को चुनौती देती है, "चरावर सारे गाँव का है । जब सारा गाँव छोड देगा तो हम भी छोड देगे ।" गौस खाँ जानवरो को मवेशीखाने भेजने का हुक्म देता है । बिंदा और कर्तार जानवरो को घेरने लगे । बिलासी ने कहा, "मैं कहती हूँ इन्हें मत घेरो, नही तो ठीक न होगा ।" पर चपरासियो ने जानवरों को घेर लिया और उन्हे एक तरफ ले चले । बिलासी पीछे दौडी और बोली, "मैं कहती हूँ कि इन्हे छोड दो, नही तो ठीक न होगा ।" इसके बाद—

"फैजू—हट जा रास्ते से । कुछ शामत तो नही आयी है ?

बिलासी रास्ते मे खडी हो गयी और बोली, ले कैसे जाओगे ?

गौस खाँ—न हटे तो इसकी मरम्मत कर दो ।

बिलासी—कहे देती हूँ, इन जानवरो के पीछे लहू की नदी बह जाएगी। माथे गिर जायेंगे।

फैजू—हटती है या नही चुडैल ?

बिलासी—तू हट जा, दाढीजार !" (उप , पृ 193)।

गौस खाँ के वध के कारण सारा गाँव तबाह हुआ। सब लोग मनोहर को दोष देते थे। कादिर ने उसका समर्थन किया। "हम सबके सब कायर हैं, वही एक मर्द है।" (उप., पृ 215)। बिलासी को सारे गाँव के लोग जली-कटी सुनाते हैं। उसका समर्थन करते हैं तीर्थाटन मे लौटकर सुक्खू चौधरी "हाँ, जब से आया हूँ वही चर्चा हो रही है और उसे सुनकर तुम पर ऐसी श्रद्धा हो गयी है कि तुम्हारी पूजा करने को जी चाहता है।" और मनोहर—"वह वीर आत्मा था। इस मदिर मे अब उसकी समाधि बनेगी और उसकी पूजा होगी। उसको बुरा वही कह सकता है जिसकी आत्मा मर गयी है, जो बेहया हो गया है। गाँव के दस-पाँच पुरुष फाँसी चढ जायें तो कोई चिंता नही, यहाँ एक-एक स्त्री के पीछे लाखों सिर कट गये हैं। सीता के पीछे रावण का राज्य विध्वस हो गया। द्रौपदी के पीछे 18 लाख योद्धा मर मिटे। इज्जत के लिए दस-पाँच जाने चली जाएँ तो क्या बडी बात है। धन्य है मनोहर, तेरे साहस को, तेरे पराक्रम को, तेरे कलेजे को।" (उप , पृ 237-38)।

रामायण और महाभारत, ये दो महाकाव्य भारतीय सस्कृति के आधार ग्रथ हैं। किसान उनका सारतत्व उक्त रूप मे ग्रहण करता है। अन्याय के प्रतिकार की यह परपरा भारतीय जनमानस मे शताब्दियो से वर्तमान है। यह ससार कर्मभूमि है, रगभूमि है, यहाँ मनुष्य को कर्म करना है, अन्याय से लडना है। यहाँ काल्पनिक इच्छापूर्ति से समस्याओ का समाधान होनेवाला नही है। इच्छापूर्ति के जिस समाधान को गोयनका ने भारतीय सस्कृति, अध्यात्मवाद, गाँधीवाद आदि से जोडा है, उसे स्वय ही उन्होने **गोदान** मे ध्वस्त होते दिखा दिया। लिखा है, "'गोदान' से पूर्व प्रेमचद अपने अधिकाश उपन्यासो की मुख्य कथाओ मे ऐसे ससार का निर्माण करते रहे हैं, जो जीवन के यथार्थ से अलग हटा हुआ है, जो उनका इच्छित ससार है। 'गोदान' में होरी की कथा प्रेमचद के इस इच्छित ससार के आरोपण से मुक्त है।" (*शिल्प विधान,* पृ 450)। **प्रेमाश्रम** के विवेचन मे गोयनका ने जिसे अध्यात्मवाद और गाँधीवाद की विजय कहा था, उसे उन्होने स्वय पराजय मे बदल दिया। और भी। उन्होने किसान-जमीदार सघर्ष से ध्यान हटाकर **प्रेमाश्रम** की कथावस्तु को देशी-विदेशी सस्कृतियो का सघर्ष बना देने की बडी कोशिश की, फिर भी कई बार विवेचन मे संघर्ष की बात उभर ही आई। यथा "लेकिन ग्रंथकार ने ऐसे जमीदार को जमींदार-किसान की संघर्षकथा का नायक चुना है।" (उप., पृ 218)। पुनश्चः, "लेखक द्वारा कृषको की दयनीयता एवं शोषण से भरी कहानी को भी प्रधानता देने के कारण सीमित दृष्टिकोण उपलब्ध नहीं होता।" (उप., पृ 221)।

प्रेमाश्रम जमींदार-किसान सघर्ष की कथा है, उसमें कृषकों की दयनीयता एवं शोषण से भरी कहानी को प्रधानता दी गई है। इसके साथ ही इस उपन्यास मे पुराने सस्कारो, धार्मिक रूढियो और अधविश्वासो के विरुद्ध अनेक सामाजिक स्तरो पर स्त्रियो और पुरुषो के सघर्ष को भी चित्रित किया गया है। देशी-विदेशी सस्कृतियो के सघर्ष को उपन्यास की कथावस्तु पर आरोपित करने का अर्थ है रूढियो के विरुद्ध सघर्ष की अनदेखी करना, अप्रत्यक्ष रूप से रूढियो का समर्थन करना। प्रेमचद ने अग्रेजी राज और उसके सहारे शोषणचक्र चलानेवाले जमीदारो के विरुद्ध सघर्ष का चित्रण किया, इसके साथ उन्होने सामाजिक रूढियो के विरुद्ध सघर्ष का चित्रण भी किया। इससे उपन्यास और प्रभावशाली हुआ, उसका यथार्थवाद और गहरा हुआ। इस यथार्थवाद के साथ एक तरह की आचलिकता जुडी हुई है। **गोदान** के साथ **प्रेमाश्रम** पढने से यह आचलिकता स्पष्ट हो जाती है। होरी का गाँव अवध मे है, मनोहर के गाँव मे जब तब अवधी बोली जाती है। दोनो गाँव गगा के किनारे बसे हुए हैं।

3. प्रेमाश्रम और गोदान : राजनीतिक चेतना की दो मंज़िलें

होरी बेलारी नाम के गाँव मे रहता है। प्रेमचद जिले का नाम नही बताते पर प्रात का नाम बता देते हैं। बेलारी 'अवध प्रात' मे है। (*गोदान*, बनारस, 1954, पृ 12)। मनोहर का गाँव "लखनपुर बनारस नगर से बारह मील पर उत्तर की ओर एक बडा गाँव है।" (*प्रेमाश्रम*, पृ.9)। इस गाँव मे अवधी कई बार सुनने को मिलती है, भोजपुरी एक बार भी नही। प्रेमचद के किसान आमतौर से हिंदी (खड़ी बोली) बोलते हैं, जनपदीय भाषाओ का व्यवहार नही करते। **प्रेमाश्रम** मे अपवादस्वरूप अवधी का व्यवहार महत्त्वपूर्ण है।

कर्तार चपरासी मुक्खू से—"अरे तुमका का पडी है, है कोऊ आगे पीछे? चार दिन मे हाथ पसारे चले जैहो। ई ताल तुमरे सग न जाई।" (पृ 175)।

बिंदा चपरासी कर्तार से—"हमका तो ई मौजा मा तीस बरसे होय गई। तबस दस कारिंदे आये पर चरावर कोऊ न रोका। गाँव भर के मवेशी मजे से चरत रहे। हमार जी तो अस ऊब गवा है कि मन करत है छोड छाड़ के घर चला जाई। सुनित है मालिक अवैया हैं। बस, एक बेर उनसे भेट होइ जाय और अपने घर के राह लेई।" (पृ. 191)।

बिंदा पुन: कर्तार से ही—"हमका तो एक रुपया मिला रहे होवे करी तो कौनो डर हौ? अब की अस जर आवा है कि ठठरी होय गया है यह गाये भैंसे तो मनोहर की जान परते (परती) हैं। बिलासी लीने आवत है।"

कर्तार ने बिलासी को मना किया। वह "बिंदा महराज की ओर निश्चित भाव से देखकर बोली, सुनत हौ महराज ठाकुर की बात!" कर्तार और बिलासी मे

सरकारी हुक्म को लेकर हिंदी (खडी बोली) में बातचीत हुई। उसके बाद बिदा अवधी में बोला—"उन पुरानी बातन का न गावो, अबसे हुकुम भवा है। जानवर का और कौनो कैती लै जाव, नाही तो वह गौस खाँ आवत हैं, सभन का पकड के कानी हौद पठै दै हैं?"

इस पर बिलासी ने अवधी में जवाब दिया, "कानी हौज कैसे पठे दै हैं, कोई राहजनी है?" (पृ. 192-93)।

प्रेमशंकर ने लखनपुर से कुछ दूर पर अपनी कृषिशाला बनाई है। वहाँ बँटवारे पर बाते हो रही हैं। एक किसान कहता है, "कहूँ कुछ न होई। हम तो आपे लोगन के पीछे-पीछे चलित हैं। जब आपे लोगन मे भाई-भाई मे निबाह नाहीं होय सकत है तो हमार कस होई? आपका नारायन सब कुछ दिये हैं, मुदा आपे अपने भाई से अलग रहत हो।" 'सभ्य' लोगो ने उसे डाटा तो वह बोला, "साहब, मैं गँवार मनई। ई सब फेरफार का जानौं। जौन कुछ भूल चूक हो गयी होय माफ कीन जाय।" (पृ. 200)।

पुलिस इस्पेक्टर दयाशकर की सिफारिश करते हुए एक बूढ़े चौकीदार ने डाक्टर प्रियनाथ से कहा, "हुजूर, इनका अच्छा कर देव। और तो नाही, मुदा हम सब जने आपन एक-एक तलब आपके नजर कर दे हैं।" (पृ 378)।

यह अवधी किस क्षेत्र की है, किसी एक क्षेत्र की है या उसमे अन्य क्षेत्रो के रूपो की मिलावट है, प्रेमचद ने उसे ऐसा ही लिखा था या छापते समय उसमे कुछ फेरफार हो गया है, इन सब मुद्दो पर बहस हो सकती है और मतभेद की गुजाइश है। पर यह भाषा अवधी है, इस बारे मे कोई सदेह नही है। प्रेमचद की कल्पना मे लखनपुर और उसके आसपास का जो इलाका है वह अवध मे है और वहाँ किसान अवधी बोलते हैं।

लखनपुर से थोडी दूर हाजीपुर है। यह गाँव नदी किनारे बसा है। ज्ञानशकर लखनपुर से हाजीपुर गए तो देखा, "युवतियाँ सिरों पर घडे रखे नदी से पानी ला रही थी।" (पृ 139)। इसी नदी की बाढ़ मे हाजीपुर डूब गया था। एक नदी होरी के गाँव के पास है। मेहता और मालती बेलारी पहुँचते हैं। "ज्यो ही मालती गाँव का चक्कर लगाकर लौटी, उन्होने उसे साथ लेकर नदी की ओर प्रस्थान किया।" (*गोदान*, पृ. 313)। सिलिया का जना हुआ मातादीन का पुत्र जाता रहा तो "उसने शव को दोनों हथेलियों पर उठा लिया और अकेला नदी के किनारे तक ले गया, जो एक मील का पाट छोडकर एक पतली-सी धार मे समा गयी थी।" (उप., पृ. 347)। गगा छोडकर यह और कौन नदी हो सकती है? बेलारी गगा से थोडी दूर पर बसा हुआ है। **प्रेमाश्रम** मे इसी गाँव का नाम है लखनपुर। बेलारी के पास एक पुरा है जहाँ भोला रहता है, "भोला इसी गाँव से मिले हुए पुरवे का ग्वाला था।" (उप., पृ 7)। यह पुरा **प्रेमाश्रम** का हाजीपुर है। भोला के पुरवे में "अधिकतर अहीर ही बसते थे", उसके दरवाजे पर बडी चरनी में "दस-बारह गायें-भैंसें खडी

सानी खा रही थीं।" (उप., पृ 25)। हाजीपुर के पास "प्रात:काल गाय भैंसों के रेवड के रेवड चरते दिखायी देते थे।" (*प्रेमाश्रम*, पृ 129)। सभव है, ये रेवड अहीरों के हों जो भोला की तरह 'दूध मक्खन का व्यवसाय' करते हो। (*गोदान*, पृ 7)। मनोहर और होरी दोनो महतो हैं, मनोहर अहीर है, होरी भी उसी बिरादरी का जान पडता है।

भोला विधुर है, फिर से ब्याह करना चाहता है। होरी मदद करने का वचन देता है "मेरे ससुराल मे एक मेहरिया है। तीन-चार साल हुए, उसका आदमी उसे छोडकर कलकत्ते चला गया।" (उप, पृ 9)। इससे सकेत मिलता है कि होरी और भोला एक ही बिरादरी के है। गोबर भोला की विधवा बेटी झुनिया की तलाश मे 'अहिराने' पहुँचा। (उप, पृ 45)। गोबर सोचता है, "झुनिया को रख ले, तो रखेली को लेकर घर मे रहेगा कैसे? बिरादरी का झझट है। सारा गाँव काँव-काँव करने लगेगा।" (उप, पृ 47)। गोबर बिरादरी के जिस झझट के बारे मे सोचता है, उसका सबध एक विधवा को घर मे डालने से है, अतर्जातीय विवाह से नही।

ऊख की खेती बहुत जगह होती है, लखनपुर मे मनोहर के यहाँ होती है बेलारी मे होरी के यहाँ होती है। मनोहर को देखते होरी गरीब है। गौस खाँ के अनुसार मनोहर "बीस बीघे जोतता है।" (*प्रेमाश्रम*, पृ 23)। उसकी मदद के लिए रगी चमार हलवाहा है और घर मे भैस है। होरी के पास पाँच बीघे की खेती है, अपनी स्त्री और बच्चो के साथ सारा काम खुद करता है और गाय रखने के सपने देखता है। बलराज का ब्याह हो गया है, गोबर ब्याह लायक हो गया है। होरी और मनोहर की आयु लगभग बराबर होगी। मनोहर किसी का दबाव सहने का आदी नही है, होरी दबाव सहते-सहते उसका आदी हो गया है। दोनो के स्वभाव मे अतर है। पर बिलासी और धनिया के स्वभाव मे बहुत बडी समानता है। लखनपुर मे बिलासी-जैसी, बेलारी मे धनिया-जैसी स्त्री दूसरी नहीं है। मनोहर और होरी के परिवारो मे जो समानता है, उसका आधार समान चरित्रवाली ये दो स्त्रियाँ हैं।

लखनपुर मे एक बिसेसर साह हैं। "साह जी के यहाँ शक्कर और अनाज का कारबार होता था। डेवढी-सवाई चलती थी, लेन-देन करते थे, दो हल की खेती होती थी; गाजा-भाँग, चरस आदि का ठीका भी ले लिया था।" (*प्रेमाश्रम*, पृ 97)। एक बिसेसर साह बेलारी में भी हैं। होरी गाय लेना चाहता है पर "अभी तक लगान नही चुकाया जा सका, बिसेसर साह का देना भी बाकी है, जिस पर आने रुपये का सूद चढ रहा है।" (*गोदान*, पृ 7)। **गोदान** और **प्रेमाश्रम** में एक महत्त्वपूर्ण अतर यह है कि ज्ञानशंकर जैसा जमींदार यहाँ नहीं है। उसकी जगह ताल्लुकेदार राय अमरपाल सिंह हैं। **गोदान** के रायसाहब **प्रेमाश्रम** के राय कमलानद का नया सस्करण हैं। अमरपाल सिंह की तरह कमलानद का उल्लेख आमतौर से 'रायसाहब' के रूप में होता है "किंतु रायसाहब उन प्राणियो मे न थे", "रायसाहब बडे रसिक पुरुष थे," इत्यादि। (*प्रेमाश्रम*, पृ 71)। इससे

पहले उनका परिचय देते हुए प्रेमचद ने लिखा है, "राय बहादुर कमलानद लखनऊ के एक बडे रईस और ताल्लुकेदार थे।" (उप., पृ. 70)। इससे भ्रम हो सकता है कि रायबहादुर होने के कारण उन्हे रायसाहब के रूप मे याद किया जाता है। आगे ताल्लुकेदार एसोसिएशन के सिलसिले मे प्रेमचद ने लिखा है, "राय कमलानन्द इस सभा के मत्री चुने गये।" (उप., पृ 167)। कमलानद की रायबहादुरी से उनके रायसाहब होने का कोई सबध नही है।

राय कमलानद की "पत्नी का देहात उनकी युवावस्था मे हो गया, पर उन्होने दूसरा विवाह न किया था।" (*प्रेमाश्रम*, पृ 71)। "राय अमरपाल की पत्नी को मरे आज दस साल हो चुके थे, मगर दूसरी शादी न की थी।" (*गोदान*, पृ 12)। कमलानद "सगीत के सूक्ष्म तत्वो के वेत्ता थे काव्यकला मे भी उनकी कुशलता और मार्मिकता कवियो को लज्जित कर देती थी"; इसके साथ ही "शिकार मे उनके निशाने अचूक पडते थे।" (*प्रेमाश्रम*, पृ 71)। इनके समानातर राय अमरपाल "साहित्य और सगीत के प्रेमी थे, ड्रामा के शौकीन, अच्छे वक्ता थे, अच्छे लेखक, अच्छे निशानेबाज।" (*गोदान*, पृ 12)। राय कमलानद के कुछ गुण और अवगुण अमरपाल के दामाद दिग्विजय सिह मे हैं। शराब, गाँजा आदि ऐसा कोई नशा न था जो वह न करते हो। ऐयाश भी थे, पर "सगीत, नाट्यकला, हस्तरेखा, ज्योतिष योग, लाठी, कुश्ती, निशानेबाजी आदि कलाओ मे अपना जोड न रखते थे।" (उप , पृ 233)। ऐयाशी के साथ योग-साधना कमलानंद के चरित्र की विशेषता है। नाट्यकला से प्रेम ज्ञानशकर को भी है। वह अभिनय-कला मे दक्ष है। उसने कृष्णलीला का आयोजन किया, स्वय वैद्य का अभिनय किया। राधा की भूमिका मे गायत्री के अभिनय-कौशल की सभी प्रशसा कर रहे थे, "ज्ञानशकर के अभिनय कौशल की भी सराहना हो रही थी।" (*प्रेमाश्रम*, पृ 309)। राय अमरपाल सिह ने रामलीला का आयोजन किया, उसके लिए उन्होने स्वय प्रहसन लिखा। (*गोदान*, पृ 52)। स्टेज के पीछे से उसका सचालन किया, सबकुछ इतना प्रभावशाली था कि "मेहता दौडकर उनके गले लिपट गये और मुग्ध होकर बोले—आपकी दृष्टि इतनी पैनी है, इसका मुझे अनुमान न था।"(*गोदान*, पृ 75)।

पर इनकी अभिनय-कला मच से बाहर सामान्य जीवन मे ज्यादा निखरती है। ज्ञानशकर कृष्णभक्त बनकर दूसरो को ठगता है। राय अमरपाल ने पिता से संपत्ति के साथ "राम की भक्ति भी पायी थी और धनुष यज्ञ को नाटक का रूप देकर उसे शिष्ट मनोरजन का साधन बना दिया था।" (उप , पृ 12)। रामभक्ति, देशभक्ति, राजभक्ति—इनका समन्वय साधारण अभिनय कौशल से सभव नही है। ज्ञानशकर ने गायत्री को रानी का खिताब दिलवाया, अमरपाल ने स्वय राजा का खिताब प्राप्त किया। कौंसिल का चुनाव दोनो लडे, दोनो जीते, पर रायसाहब होम मेबर हो गए। ऐसा सौभाग्य ज्ञानशकर को प्राप्त न हुआ।

ज्ञानशकर के पुत्र मायाशकर की कुछ बातें रायसाहब के पुत्र रुद्रपाल में हैं। वह एम ए मे पढता था, "बडा निर्भीक, पक्का आदर्शवादी" था, रसिक और आलसी भी था पर उसे "अपने पिता की यह धन और मान-लिप्सा बुरी लगती थी।" (उप , पृ 319)। वह पिता की इच्छानुसार विवाह करने को राजी न हुआ तो राय साहब को लगा "जैसे सारा जीवन उजड गया हो। मिनिस्ट्री औ इलाका और पदवी, सब जैसे बासी फूलो की तरह नीरस, निरानद हो गये हो।" (उप , पृ 320)। रुद्रपाल को मायाशकर की तरह किसानो को जमीनें का मालिक बना देने का अवसर न मिला पर उसने स्वय भी रियासत का मालिक बनना स्वीकार न किया। मनपसद लडकी सरोज से ब्याह करके उसके साथ इग्लैंड चला गया। रायसाहब का जीवन वैसे ही असफल हुआ जैसे ज्ञानशकर का। केवल उन्होने आत्महत्या नही की। तखा ने "रुद्रपाल की तरफ से रायसाहब पर हिसाबफहमी का दावा किया। रायसाहब पर दस लाख की डिग्री हो गयी। सबसे बडा दु ख था इस बात का कि अपने बेटे ने ही दगा दी मगर अभी शायद उनके दु ख का प्याला भरा न था। जो कुछ कसर थी, वह लडकी और दामाद के सबध विच्छेद ने पूरी कर दी।" (उप , पृ 326)। इस उपन्यास का नाम भी रायसाहब को देखते **नाकाम** रखा जा सकता था।

नेकनाम यहाँ मेहता है। प्रेमशकर ने अमरीका मे शिक्षा पाई, मेहता ने फ्रास मे। गोविंदी ने उनसे अपनी व्यथा कही और उनसे सहायता माँगी , "मेहता अपनी नजरो मे कभी इतने ऊँचे न उठे थे, उस वक्त भी नही, जब उनकी रचना को फ्रास की एकाडमी ने इस शताब्दी की सबसे उत्तम कृति कहकर उन्हे बधाई दी थी।" (उप , पृ 201)। यद्यपि वह दर्शनशास्त्र के अध्यापक हैं, पर उन्हे कृषिशास्त्र से दिलचस्पी है। एक छोटी-मोटी कृषिशाला उनके बँगले मे है। "अपने बगीचे मे बैठे हुए पौधो पर विद्युतसचार क्रिया की परीक्षा कर रहे थे। उन्होने हाल मे एक विज्ञान परिषद मे यह सिद्ध किया था कि फसले बिजली के जोर से बहुत थोडे समय मे पैदा की जा सकती हैं, उनकी पैदावार बढायी जा सकती है और बेफस्ल की चीजे भी उपजायी जा सकती हैं। आजकल सबेरे के दो-तीन घटे वह इन्ही परीक्षाओ मे लगाया करते थे।" (उप , पृ 291)। लखनपुर के किसानो से जैसे प्रेमशकर का सपर्क है, वैसे ही बेलारी के किसानो से मेहता का है। मालती के साथ कभी-कभी देहात चले जाते थे और "किसानो के साथ दो चार घटे रहकर उनके झोपडो में रात काटकर, और उन्ही का-सा भोजन करके, अपने को धन्य समझते थे।" (उप., पृ 309)।

प्रेमाश्रम असहयोग आदोलन से पहले लिखा गया था, **गोदान** असहयोग आदोलन ही नही, सन् 30 के सविनय अवज्ञा आदोलन के भी बाद लिखा गया था। **प्रेमाश्रम** असहयोग आदोलन के बाद लिखा जाता, तो भी शायद उसमे ज्यादा फर्क न पडता। बहुत से बहुत प्रेमशकर कौंसिल के चुनावो का बहिष्कार करते,

ज्ञानशंकर तो चुने ही जाते। "पिछले सत्याग्रह संग्राम मे राय साहब ने बड़ा यश कमाया था। कौंसिल की मेबरी छोडकर जेल चले गये थे। तबसे उनके इलाके के असामियो को उनसे बडी श्रद्धा हो गयी थी।" (*गोदान*, पृ 12)। देशभक्ति के कारण किसानों के उत्पीडन मे कोई कमी न हुई। होरी से उन्होंने धर्म और नैतिकता की बहुत-सी बाते कही पर जैसे ही सुना, बेगारों ने काम करने से इनकार कर दिया है, उनके माथे पर बल पड गये, आँखें निकालकर बोले, "चलो मैं इन दुष्टो को ठीक करता हूँ। जब कभी खाने को नहीं दिया गया, तो आज यह नयी बात क्यो?" (उप, पृ 15)। देशभक्ति के कारण उनकी राजभक्ति में बट्टा नही लगता। यद्यपि वह पत्रकार ओकारनाथ से कहते हैं, "कांग्रेस में शरीक हुआ, उसका तावान अभी तक देता जाता हूँ। काली किताब मे नाम दर्ज हो गया।" (उप, पृ 177), पर "रायसाहब राष्ट्रवादी होने पर भी हुक्काम से मेलजोल बनाये रखते थे।" (उप, पृ 12)। परिणाम यह कि एक दिन वह होम मेंबर हो गए। बादशाह सलामत के जन्मदिन पर उन्हे राजा की पदवी मिली। "जिस वक्त हिज-एक्सेलेन्सी गवर्नर ने उन्हे पदवी प्रदान की, गर्व के साथ राजभक्ति की ऐसी तरग उनके मन मे उठी कि उनका एक-एक रोम उससे प्लावित हो उठा।" (उप, पृ 318-19)।

रायसाहब के रूप में प्रेमचद ने जमीदार देशभक्त का खाका खीचा है। रायसाहब जेल गए थे, पूँजीवाद के प्रतिनिधि खन्ना भी गए थे। मालती भी जेल गई थी। कहती है, वह जेल "अपने मतलब से ही गयी थी, उसी तरह जैसे रायसाहब और खन्ना गये थे।" अर्थात् ये लोग स्वार्थी देशभक्त हैं। मालती कारण बताती है, "इस नयी सभ्यता का आधार धन है, विद्या और सेवा और कुल हेज हैं। कभी-कभी इतिहास मे ऐसे अवसर आ जाते हैं, जब धन को आदोलन के सामने नीचा देखना पड़ता है, मगर इसे अपवाद समझिए।" (उप, पृ. 147)। नई सभ्यता, नया जमाना, व्यापार और बनियापन—यह सब **प्रेमाश्रम** मे ही नही है, **गोदान** मे भी है। जहाँ पूँजीपतियो का नेतृत्व न हो, ऐसे आदोलन अपवादस्वरूप होते हैं। सभव है फ्रास की राज्यक्रांति या रूस की राज्यक्राति मे धन को आदोलन के सामने नीचा देखना पडा हो। पर सन् 20 और 30 के आंदोलनो में तो ऐसा न हुआ था। जो बात मालती ने तंखा से कही, वही दूसरे अदाज मे, मेहता ने खन्ना से कही, "लक्ष्मीपतियो की बदौलत ही मारी बडी-बडी सस्थाएँ चलती हैं। राष्ट्रीय आन्दोलन को दो-तीन साल तक किसने इतनी धूमधाम से चलाया? इतनी धर्मशालाएँ और पाठशालाएँ कौन बनवा रहा है? आज ससार का शासन सूत्र बैंकरो के हाथ में है। सरकार उनके हाथ का खिलौना है।" (उप, पृ. 242)। प्रेमचंद देशी पूँजीवाद की सीमित भूमिका समझते हैं पर लक्ष्मीपतियों के चलाए हुए आदोलन से देश की बुनियादी समस्याएँ हल होगी, उन्हें इसकी आशा नहीं है। जो आंदोलन दो-तीन साल तक धूमधाम से चलाया गया, उसकी गहरी या हल्की

छाप **गोदान** पर नही है । इसीलिए यह कहना सही होगा कि प्रेमचद यदि **प्रेमाश्रम** असहयोग आंदोलन के बाद लिखते तो भी उसकी मूलकथा में ज्यादा फर्क न पडता ।

पर असहयोग आदोलन के बाद प्रेमचद ने जो उपन्यास लिखे, वे **प्रेमाश्रम** से भिन्न कोटि के हैं । इनमे यथार्थवाद का विकास हुआ है, काल्पनिक इच्छापूर्तिवाले समाधान निर्यात्रित हुए हैं । इसी तरह सन् 30-32 वाले आदोलन के बाद उन्होंने **गोदान** लिखा और यथार्थवाद का विकास एक नई मंजिल तक पहुँचा । काग्रेस के नेतृत्व मे चलनेवाले स्वाधीनता आदोलन ने जनता को, और लेखको को, दो तरह से प्रभावित किया , एक ओर उसने राजनीतिक चेतना का प्रसार किया, दूसरी ओर उसकी विफलता ने उन्हे नई रणनीति खोजने को प्रेरित किया । स्वाधीनता आदोलन के पहले दौर मे काग्रेसी नीति का विकल्प है नौजवान दलों द्वारा सशस्त्र क्राति का प्रयास, दूसरे दौर मे विकल्प है जनआदोलन । छायावादी कवियों के गद्य-पद्य मे यह परिवर्तन साफ देखा जा सकता है । ऐसा ही परिवर्तन **प्रेमाश्रम** के बाद **गोदान** मे है ।

फरवरी 1919 के 'जमाना' मे प्रेमचद ने नए पुराने जमाने मे भेद करते हुए जो लेख लिखा, उसमे सशस्त्र क्राति अथवा हिसात्मक प्रतिकारवाला विकल्प नही है । पर यह विकल्प प्रेमचद के मन मे है, वह **प्रेमाश्रम** मे मनोहर की कार्यवाही द्वारा व्यक्त हुआ है । प्रेमचद जानते हैं कि ऐसा जमाना आ सकता है जब जाहिल रईसो या जमीदारो की "गर्दने जनता के हाथो में होगी और वह बेबस निगाहों से इधर-उधर ताक रहे होगे ।" (*प्रेमचद के विचार*, भाग 3, दिल्ली, 1982, पृ 267) । पर अभी वह जमीदारो से ही अपील करते हैं कि "वे तात्कालिक हानि की चिन्ता न करके किसानो की भलाई और सुधार की कोशिश करे, स्वेच्छा से उन अधिकारो से हाथ खीच ले जो उन्हे किसानो पर प्राप्त हैं । उनसे बेगार लेना छोड दे, उनके साथ आदमियत का बर्ताव करे, इजाफा और बेदखली से परहेज करे, ताकि जनता के दिलो मे उनकी इज्जत और उनके प्रति श्रद्धा हो । हमारे कौंसिलरो और राजनीतिक नेताओ का कर्तव्य है कि वे अपने प्रस्तावो की परिधि को फैलाये और जनता (यानी काश्तकारो) की हिमायत का एक प्रोग्राम तैयार करें और उसे अपनी कार्य-प्रणाली बना ले ।" (उप , पृ 268-69) । अपने अधिकारों से हाथ खीचना, कौंसिलो मे प्रस्तावो की परिधि को फैलाना, **प्रेमाश्रम** मे ये दोनो काम प्रेमशकर करते हैं ।

'जमाना' मे लेख लिखते समय भी प्रेमचद जनआदोलन और जनक्राति का महत्त्व बहुत अच्छी तरह समझ रहे थे, उस समय इतनी अच्छी तरह इनका महत्त्व समझनेवाले कम लोग थे । प्रेमचद ने लिखा था, "आनेवाला ज़माना अब किसानो और मजदूरो का है । दुनिया की रफ्तार इसका साफ सबूत दे रही है । हिन्दुस्तान इस हवा से बेअसर नहीं हो सकता । हिमालय की चोटियाँ उसे इस हमले से नही

बचा सकती । जल्द या देर से, शायद जल्द ही, हम जनता को केवल मुखर ही नहीं, अपने अधिकारों की माँग करनेवाले के रूप में देखेगे और तब वह आपकी किस्मतों की मालिक होगी । तब आपको अपनी बेइसाफियाँ याद आयेंगी और आप हाथ मलकर रह जायेगे । जनता की इस ठहरी हुई हालत के धोखे मे न आइये । इन्कलाब के पहले कौन जानता था कि रूस की पीडित जनता मे इतनी ताकत छिपी हुई है ? हार के पहले कौन जानता था कि जर्मनी का एकछत्र स्वैराचारी शासन जनता के ज्वालामुखी पर बैठा हुआ है । निकट भविष्य में हिन्दुस्तान के लाखो मजदूर और कारीगर फ्रास से वापस आयेगे, लाखो सिपाही लडाई के बाद अपने-अपने घर लौटेंगे । क्या आप समझते हैं कि उन पर उन आजाद देशो की आबोहवा का कुछ भी असर न होगा ?'' (उप , पृ 268) ।

ऐसा जमाना आ सकता है कि जनता अपने अधिकारो की माँग करनेवाले के रूप मे दिखाई दे, इस रूप मे वह जमीदारो की किस्मतो की मालिक होगी, तब जमीदारो को अपनी बेइसाफियाँ याद आएँगी पर वे कुछ न कर पाएँगे, सिर्फ हाथ मलकर रह जाएँगे । अभी जनता ठहरी हुई हालत मे है अर्थात् जन-आदोलन का अभाव है । पर इससे धोखा न खाना चाहिए । रूसी क्राति से पहले किसी को पता न था कि रूसी जनता मे इतनी ताकत छिपी हुई है । प्रेमचद के लिए रूसी क्रांति इस छिपी हुई ताकत का विस्फोट है, वह लगभग एक स्वत स्फूर्त प्रक्रिया है, उसमे बोल्शेविक पार्टी की सगठनात्मक भूमिका या तो प्रेमचद की आँखो से छिपी हुई है या वह उसे बहुत महत्त्वपूर्ण नही समझते । इसी कारण इतना सब लिखने के बाद भी वह जमीदारो से अपील करते हैं कि वे स्वेच्छा से उन अधिकारो से हाथ खीच ले जो उन्हे किसानो पर प्राप्त हैं ।

इस अपील के समानातर, लेख मे, जनक्राति की सभावना विद्यमान है, इस सभावना को प्रथम विश्वयुद्ध के बाद की परिस्थितियो मे विशेष उपकरणो द्वारा यथार्थ का रूप दिया जा सकता है । युद्ध के बाद हिंदुस्तान के लाखो मजदूर और कारीगर फ्रास से वापस आएँगे, लाखो सिपाही घर लौटेंगे । वह आजाद देशो की आबोहवा का असर लेकर लौटेंगे । ये सब क्रांति के विशेष उपकरण हैं, हर समय वे सुलभ नही होते, वे महायुद्ध के बाद की विशेष परिस्थितियो में सुलभ हुए थे । वे जनता की ठहरी हुई हालत को बदल सकते हैं । लगभग इसी तरह के विचार उन्हीं दिनो लोकमान्य तिलक के दिमाग मे भी आए थे । वह अभी लदन मे थे । उनकी निगरानी की जिम्मेदारी जिन ब्रिटिश गुप्तचरो पर थी, उन्होने अपनी रिपोर्ट मे लिखा था, ''जहाँ तक स्वय भारत मे (स्वराज्य सबधी) प्रचार का सवाल है, मिस्टर तिलक नहीं समझते कि अब उसकी उतनी ज्यादा जरूरत है जितनी पहले थी । उनके विचार से वापस आनेवाले मजदूर बटालियन, सैनिक, इंग्लैंड की चाकरी मे लड़नेवाले सीमांत प्रदेश के कबीले, शाही सेवा के सैन्य दल, जर्मनी से आनेवाले कैदी, आदि, ये सब जिस मोर्चे से भी आएँ, वे परिस्थिति के कारण ही प्रचार संस्थाएँ

बन जाएँगे और स्वय को ऐसी सस्थाएँ बना लेगे। उनके अपने हर सूबे, जिले, शहर और गाँव मे लोग उनका प्रभाव महसूस करेंगे और उनका काम पूरा किया जाएगा। जहाँ के वे रहनेवाले है, वहाँ की देहाती जनता के लिए इसका भारी महत्त्व होगा।" (D. V Tanmankar, Lokamanya Tilak, लंदन, 1956 पृ 288)।

प्रेमचद ने मजदूरो और सैनिको की वापसी की बात किसानो के सदर्भ मे कही है। उनकी वापसी से जनता की ठहरी हुई हालत बदलेगी। तिलक सबधी रिपोर्ट मे यह बात स्पष्ट कर दी गई है कि देहाती जनता के लिए मजदूरो और सैनिकों की वापसी महत्त्वपूर्ण होगी। जुलाई 1920 मे कम्युनिस्ट इटरनैशनल की दूसरी काग्रेस मे लेनिन ने कहा था, "ब्रिटिश पूँजीपति वर्ग ने भारत के सैनिको को समझाया कि जर्मनी के विरुद्ध ग्रेट ब्रिटेन की रक्षा करना भारतीय किसानो का कर्तव्य है पूँजीपति वर्ग ने उन्हे हथियार इस्तेमाल करना सिखाया, बडे काम की चीज सिखाई, इसके लिए हमे पूँजीपति वर्ग के प्रति आभार प्रकट करना चाहिए, सभी रूसी किसानो और मजदूरो की ओर से खासतौर से रूसी लाल फौज की ओर से, आभार प्रकट करना चाहिए।" (*लेनिन, कलेक्टेड वर्क्स*, मास्को, 1974, खड 31, पृ 232)। दूसरे विश्वयुद्ध के बाद भारतीय जनता के क्रातिकारी उभार और नाविक विद्रोह को याद कर लेने से ही लेनिन की दूरदर्शिता प्रमाणित हो जाएगी। 1919-20 मे भी क्राति की सभावना विद्यमान थी, यह सभावना तिलक और प्रेमचद के सामने थी। क्रातिकारी पार्टी के अभाव मे वह यथार्थ का रूप न ले सकी थी। सन् 45-47 मे क्रातिकारी पार्टी तो थी पर वह दृढता से सही रणनीति के अनुसार क्राति का सचालन न कर सकी। फिर भी तिलक, प्रेमचद और लेनिन के लिए ट्रस्टीशिप का विकल्प यहाँ मौजूद था, यह तथ्य अत्यत महत्त्वपूर्ण तो है ही, वर्तमान भारत के लिए अत्यत प्रासगिक भी है।

भारत के स्वाधीन होने पर जमीदार हाकिम बने, इसका विरोध प्रेमचद ने 1919 मे भी किया था। "कोई कारण नही कि वह (जनता) दूसरे देश के हाकिमो के मुकाबले मे आपकी हुकूमत को ज्यादा पसद करे। जो रैयत अपने अत्याचारी और लालची जमीदार के मुँह मे दबी हुई है, जिन अधिकारसपन्न लोगो के अत्याचार और बेगार से उसका हृदय छलनी हो रहा है, उनको हाकिम के रूप मे देखने की कोई इच्छा उसे नही हो सकती।" (*प्रेमचद के विचार*, भाग तीन, पृ 267)। 1920 के पहले काग्रेस मे जमीदार वर्ग काफी प्रभावशाली था, 1920 के बाद पूँजीपति वर्ग विशेष प्रभावशाली हुआ। प्रेमचद के लिए इससे देश की बुनियादी समस्या हल होनेवाली न थी। जो बात उन्होने जमीदार नेताओ को लक्ष्य करके 1919 मे कही थी, वही बात उन्होने पूँजीवादी नेताओ को लक्ष्य करके **गबन** (1931) मे कही—"अरे, तुम क्या देश का उद्धार करोगे! पहले अपना उद्धार कर लो। गरीबो को लूटकर विलायत का घर भरना तुम्हारा काम है।" बात प्रेमचद

की है, कहा उसे देवीदीन ने है । प्रेमचद पूँजीवादी जनतंत्र के समर्थक नहीं हैं, यह स्पष्ट है । वह ऐसा जनतत्र चाहते हैं जिसमे सत्ता मजदूरो और किसानों के हाथ मे हो । ऐसा जनतत्र कायम करने मे मजदूर वर्ग की भूमिका किस तरह की होगी, भारत मे अनेक स्तरो का सामतवाद है और अनेक स्तरो का पूँजीवाद है, क्रांति के दौरान और उसके बाद इन स्तरो के प्रति कौन-सी नीति अपनाई जाएगी, इस तरह की अनेक समस्याएँ हैं, जिन पर प्रेमचद ने नही लिखा । पर उनके चिंतन की दिशा स्पष्ट है । यह दिशा नए जनतत्र की ओर ले जानेवाली है । स्वराज मेहनत करनेवालो का या मुनाफाखोरो का— प्रेमचद की ओर से उनके किसी भी पाठक को इस सवाल का जवाब देने मे कठिनाई न होगी । प्रेमचद के पुनर्मूल्याकन के अनेक चालू प्रयासो का उद्देश्य यह है कि पाठक वर्तमान व्यवस्था से सतुष्ट रहे, राज मेहनत करनेवालो का हो या मुनाफाखोरो का—ऐसी बेकार बातो मे न उलझे ।

4. महाजनी शोषण और सामाजिक रूढ़िवाद

मेहता ने खन्ना से कहा, "आज ससार का शासनसूत्र बैंकरो के हाथ मे है ।" पूँजी की शक्ति अदृश्य है, इसलिए उससे लडना कठिन होता है । जमीदार और उसके लठैत किसान के सामने प्रत्यक्ष हैं पर महाजन की शक्ति अप्रत्यक्ष है । ऊपर से देखने मे वह कमजोर लगता है, हास्यास्पद भी, पर उसके बिना किसान का काम नही चलता । इस महाजनी कारोबार का सबसे विकट पहलू यह है कि पैसा हाथ में हो तो किसान स्वय उसे सूद पर उठा देता है । "एक समय होरी ने भी महाजनी की थी ।" (*गोदान,* पृ 103)। गोबर शहर मे साल-भर रह चुका है । "अब वह छोटा-मोटा महाजन है । पडोस के एक्केवालो, गाडीवालो और धोबियो को सूद पर रुपये उधार देता है ।" (उप., पृ 204)। किसान स्वय महाजन बनकर धन कमाना चाहता है, इसीलिए उसे महाजनी की प्रथा बहुत स्वाभाविक जान पडती है । महाजन सूद लेकर मुकर जाए, हिसाब मे तीन के तेरह बताए, यह बेईमानी है । किसान इस बेईमानी को समझता है, उसका प्रतिवाद करता है पर व्यक्तिगत स्तर पर । महाजनी प्रथा ठीक है, व्यापक है, उसे पालने-पोसनेवाली शक्ति किसान को दिखाई नही देती ।

ससार का शासनसूत्र बैंकरो के हाथ मे है । सबसे बडे बैंकर इग्लैंड के शहरो मे हैं, छोटे बैंकर भारत के शहरो मे हैं, इनके एजेट देहात मे फैले हुए हैं । बेलारी मे कई तरह के महाजन हैं । "सबसे बडे महाजन थे झिंगुरी सिंह । वह शहर के एक बड़े महाजन के एजेट थे । उनके नीचे कई आदमी और थे, जो आसपास के देहातों मे घूम-घूम कर लेनदेन करते थे ।" (उप., पृ 103)। इस तरह ऊपर के महाजन नीचे देहात के महाजनो से जुडे हुए हैं । प्रेमचंद जिन दिनों यह सब लिख रहे थे, उन्हीं दिनो (या कुछ दिन बाद) रजनी पामदत्त भारत पर अपनी प्रसिद्ध पुस्तक मे

इस प्रक्रिया का अध्ययन कर रहे थे।

सूदखोरी भारत में पहले भी थी पर तब महाजन कर्ज़दार किसान की भूमि न हथिया सकता था। अंग्रेज़ी कानून के अंतर्गत वह किसान के माल-असबाब की कुडकी करा सकता था, उसकी जमीन हथिया सकता था। "पूँजीवादी शोषण की सारी व्यवस्था की वह अपरिहार्य धुरी बन गया। मालगुजारी उगाहने का वह अनिवार्य माध्यम है; यही नही, वह सूदखोरी के साथ आमतौर से गल्ले के व्यापारी की भूमिका भी निबाहता है। कटाई के समय फसल खरीदने में उसकी स्थिति इजारेदार की होती है। अक्सर वह किसानों को बीज और खेती के उपकरण पेशगी देता है। आमतौर से उसके बहीखाते देखकर किसान इस बात की जाँच नहीं कर पाते कि वे कितना दे चुके हैं, कितना और उन्हें देना है। इस तरह वे अधिकाधिक उसके जाल में फँसते जाते हैं। वह गाँव का तानाशाह बन जाता है। जैसे-जैसे जमीन उसके हाथ आती जाती है, वैसे-वैसे यह प्रक्रिया और आगे बढ़ायी जाती है। किसान खेत-मजदूर या बटाईदार बन जाते हैं और केवल उसी के लिए काम करते हैं। जो कुछ पैदा करते हैं, वह सूद और लगान मिलाकर उसे देते जाते हैं। वह अधिकाधिक भारत के ग्रामीण अर्थतंत्र का छोटा पूँजीपति बन जाता है, किसानो से अपने मज़दूरो की तरह काम कराता है।" (*रजनी पाम दत्त, इंडिया टुडे*, बंबई, 1947, पृ 207-08)।

पूँजी का सबसे पुराना, क्रूर और बर्बर रूप है सूदखोर पूँजी। सामंती व्यवस्था मे जहाँ वित्त का चलन हुआ, इस पूँजी ने अपने कर्तब दिखाने शुरू किए। वह खाते-पीते किसान को मुफलिस और मुफलिस को गुलाम बनाकर छोड़ती है। अंग्रेजों ने पुरानी सूदखोरी को कायम ही नहीं रखा वरन् उसे अधिक व्यापक और क्रूर बना दिया। अग्रेजी राज के प्रतिक्रियावादी स्वरूप की पहचान महाजनी कारोबार के अध्ययन के बिना नहीं हो सकती। **गोदान** की दुनिया वही है जो **प्रेमाश्रम** की है पर इस बीच साम्राज्यवादी शोषण का घनत्व और बढ़ा है। इसे बढ़ाने के उपकरण हैं महाजन। रजनी पामदत्त ने महाजनी कारोबार की जो विशेषताएँ बताई हैं, उनमें अनेक **गोदान** में मौजूद हैं। होरी ने भोला से गाय खरीदी। दाम न दे सका तो भोला उसके बैल ले गया। औरों के खेत में बोआई होने लगी, होरी के खेत यों ही पडे थे। दातादीन ने कहा, "हमारा तुम्हारा आधा साझा रहेगा।" होरी देख रहा था, "केवल बोआई के लिए आधी फसल देनी पड़ रही है," पर मजबूर था। दातादीन ने तुरत कहा, "तो चलो, मैं अभी बीज तोल दूँ।" (उप., पृ 183)। महाजन बीज देता है, खेत जोतने को बैल देता है; उत्पादन का मुख्य साधन 'खेत' होरी का है, मेहनत उसकी और उसके सारे परिवार की है, पर वह आधी फसल देने को मजबूर है। खेत का मालिक होते हुए भी वह बटाईदार बनता है।

अभी ऊख का सहारा था। खेत में फसल तैयार हुई तो होरी ऊख काटने

पहुँचा। दुलारी सहुआइन ने कहा, "पहले मेरे रुपये दे दो तब ऊख काटने दूँगी।" (उप., पृ. 187)। होरी ने किसी तरह दुलारी को टाला पर झिंगुरी सिंह बडे महाजन हैं। नदी पार शक्कर मिल खुला था। "झिंगुरी सिंह ने मिल के मैनेजर से पहले ही सबकुछ कह सुन रखा था। तौल शुरू होते ही झिंगुरी सिंह ने मिल के फाटक पर आसन जमा लिया। हर एक की ऊख तौलाते थे, दाम का पुरजा लेते थे, खजाची से रुपये वसूल करते थे और अपना पावना काटकर असामी को दे देते थे। असामी कितना ही रोये, चीखे, किसी की न सुनते थे। मालिक का यही हुक्म था। उनका क्या बस।" (उप., पृ. 188)। यह महाजन उत्पादन के स्रोत पर कब्जा किए बैठा है। सबके खेतो पर जाकर पैसा वसूलने में तो समय लगता, शक्कर मिल खुलने से काम आसान हो गया। देशी पूँजीपति का एजेट देहात के महाजन से मिला हुआ है और यह महाजन अपने से बडे शहर के महाजन का एजेंट है। जिस मालिक के हुक्म की बात कही गई है, वह शहर का बडा महाजन है।

होरी अब स्वयं ऊख बोने की स्थिति मे नही है, वह और उसका परिवार दातादीन के खेत मे मजूरी करते हैं। "धनिया, सोना, रूपा तीनो तलैया से ऊख के भीगे हुए गट्ठे निकाल-निकालकर खेत मे ला रही हैं, और होरी गँडासे से ऊख के टुकडे कर रहा है। अब वह दातादीन की मजूरी करने लगा है। किसान नही, मजूर है। दातादीन से अब उसका पुरोहित-जजमान का नाता नही, मालिक-मजूर का नाता है।" (उप., पृ. 207-08)। इस तरह ऋणग्रस्त किसान महाजन की मजदूरी करने को बाध्य होता है। पुरोहित-जजमान के पुराने वर्णसबध का स्थान नए मालिक-मजूर के संबध ने ले लिया। यह मालिक अपने मजूर से गुलाम की तरह काम लेता है। और मालिक की नजर में गुलाम आदमी नहीं, जानवर है। दातादीन ने होरी से और जल्दी हाथ चलाने को कहा। धनिया ने प्रतिवाद किया—"क्या जरा दम भी न लेने दोगे महाराज! हम भी तो आदमी हैं। तुम्हारी मजूरी करने से बैल नही हो गये। जरा मूड पर एक गट्ठा लादकर लाओ, तो हाल मालूम हो।" दातादीन के लिए मजूर और बैल मे फर्क नही था। बोले—"पैसे देते हैं काम करने के लिए, दम मारने के लिए नही। दम लेना है, तो घर जाकर दम लो।" (उप., पृ 208)। होरी ताव खाकर जल्दी-जल्दी गँडासा चलाने लगा। एक जून चबेने पर काटता था, दूसरी जून कभी आधा पेट भोजन मिला, कभी वह भी नही। हाथ जवाब दे रहा था पर दम लेने की गुंजाइश न थी। आखिर "गँडासा हाथ से छूट गया और वह औंधे मुँह जमीन पर पड गया।" (उप , पृ 209)। इस बार होरी गिरा तो उठ बैठा, दुबारा गिरा तो फिर न उठ सका। धनिया से कहता गया, "अब कब तक जिलायेगी? सब दुर्दशा तो हो गयी। अब मरने दे।" (उप , पृ 363)।

गाँव में महाजनी का काम पटेश्वरी नाम के पटवारी भी करते हैं। वह न जमींदार हैं न जमींदार के कारिंदे, "पर पटवारी होने के नाते खेत बेगार में जुतवाते थे, सिंचाई बेगार में करवाते थे और असामियों को एक दूसरे से लडाकर रकमें

मारते थे। सारा गाँव उनसे काँपता था। गरीबो को दस-दस, पाँच-पाँच कर्ज़ देकर उन्होने कई हजार की सपत्ति बना ली थी। फसल की चीजें असामियों से लेकर कचहरी और पुलिस के अमलो की भेट करते थे।" (उप., पृ 120-21)। यहाँ सरकारी तत्र महाजनी शोषणतंत्र से मिलकर एकाकार हो गया। सरकारी कर्मचारी महाजन बनता है तो वह किसान को अन्य महाजनो मे अधिक आतंकित करता है। पटेश्वरी कर्जदार शोभा को याद दिलाते हैं, "मैं जमीदार या महाजन का नौकर नही हूँ, सरकार बहादुर का नौकर हूँ, जिसका दुनिया भर मे राज है और जो तुम्हारे महाजन और जमीदार दोनों का मालिक है।" (उप , पृ 189)। पटेश्वरी से बडा अफसर है थानेदार। होरी की गाय को जहर देकर हीरा भाग गया। दारोगा ने हीरा के घर की तलाशी लेने की धमकी देकर होरी से कुछ रकम ऐठनी चाही। बीच मे पटेश्वरी और अन्य महाजनो को हिस्सा चाहिए। पटेश्वरी दारोगा से कहते है, "जब ऐसा ही कोई अवसर आ जाता है, तो आपकी बदौलत हम भी कुछ पा जाते हैं।" (उप , पृ 115)। पटेश्वरी गाँव के चार मुखियो अर्थात् महाजनो की सिफारिश करना नही भूलते। होरी झिंगुरी सिंह से तीस रुपये उधार लेता है और दारोगा को भेट करने चलता है, पर धनिया ने सारा खेल चौपट कर दिया। "यहाँ तो बाँट-बखरा होनेवाला था, सभी के मुँह मीठे होते। ये हत्यारे गाँव के मुखिया हैं, गरीबो का खून चूसनेवाले। सूद-ब्याज, डेढी-सवाई, नजर-नजराना, घूस-घास जैसे भी हो, गरीबो को लूटो। उस पर सुराज चाहिए। जेहल आने से सुराज न मिलेगा। सुराज मिलेगा धरम से, न्याय से।" (उप , पृ 117)।

थोडे से वाक्यो मे धनिया ने सरकारी तत्र से महाजनी प्रथा के सबध को और स्वाधीनता आदोलन की मूल समस्या को यहाँ स्पष्ट कर दिया। गरीबो की लूट बद करो तब सुराज के हकदार बनोगे—इसका मतलब यह भी है कि महाजनो के चगुल से किसानो को छुडाने का आदोलन चलाओ, तब देखो, किसान कैसे आगे बढकर आजादी की लडाई मे हिस्सा लेते है। महाजनो की मालिक है सरकार और सरकार का प्रतिनिधि है दारोगा। रुपए तो उसे मिलने ही चाहिए। होरी "न देगा, गाँव के मुखिया देगे और पन्द्रह की जगह पूरे पचास रुपये।" (उप , पृ 117)। पटेश्वरी को लगता है, यह तो अधेर है। दारोगा कहता है, "तुमने अभी अधेर नहीं देखा। कहो तो वह भी दिखा दूँ। एक-एक को पाँच-पाँच साल के लिए भेजँवा दूँ। यह मेरे बायें हाथ का खेल है। डाके मे सारे गाँव को काले पानी भेजवा सकता हूँ। इस धोखे मे न रहना।" (उप , पृ 118)। राज्यसत्ता की दंडशक्ति का प्रतीक है दारोगा। वह सिद्ध कर देता है कि वह महाजन से अधिक शक्तिशाली है।

सरकारी हाकिम, जमीदार और उसके कर्मचारी मिलकर किसान को कैसे दुहते हैं, यह उपन्यास के अत की ओर होरी के भावी दामाद रामसेवक ने स्पष्ट कर दिया: "यहाँ तो जो किसान है, वह सबका नरम चारा है। पटवारी को नजराना और दस्तूरी न दे, तो गाँव मे रहना मुश्किल। जमीदार के चपरासी और कारिंदो का पेट

न भरे ता निबाह न हो। थानेदार और कानिसिटिबिल तो जैसे उसके दामाद हैं कभी कानूनगो आते हैं, कभी तहसीलदार, कभी डिपटी, कभी जट, कभी कलक्टर, कभी कमिसनर; किसान को उनके सामने हाथ बाँधे हाजिर रहना चाहिए।" (उप , पृ 354)। हम यहाँ **प्रेमाश्रम** की दुनिया में पहुँच गए हैं। फर्क यह है कि अफसरो की सख्या बढ गई है। कुओ मे दवाई डालनेवाला डाक्टर, ढोरो को देखनेवाला डाक्टर, लडकों का इम्तहान लेनेवाला इसपिट्टर, "और न जाने किस-किस महकमे के अफसर हैं, नगर के अलग, जगल के अलग, ताडी सराब के अलग, गाँव सुधार के अलग, खेती विभाग के अलग। कहाँ तक गिनाऊँ। पादडी आ जाता है, तो उसे भी रसद देना पडता है, नही शिकायत कर दे।" (उप , पृ 354)। महाजनी के चलन का यह अर्थ नही है कि और तरह के उत्पीडन समाप्त हो गए है पर उनमे इजारेदार पूँजीवाद से सीधे जुडा हुआ और सबसे प्राणघातक यह महाजनी उत्पीडन है। साम्राज्यवादी शोषण के इस रूप को इतने विस्तार और इतने मर्मस्पर्शी ढग से उजागर करनेवाला हिंदी मे और कोई उपन्यास नही है।

होरी की कथा उन तमाम छोटे मालिक किसानो की कथा है जो भारत मे और भारत के बाहर पूँजीवादी सबधो के प्रसार के साथ भूमिहीन और मुफलिस बनकर मजदूरी करने को बाध्य होते हैं। **गोदान** मे प्रेमचद ने अवध के किसान को बहुत नजदीक से देखा है। व्यक्तिगत सपत्ति का मोह उसकी रग-रग मे समाया है। कहने को कह देता है, जमीन रेहन रख देने पर मजूरी करेगा, पर उसकी इज्जत और आबरू जमीन पर ही अवलबित थी। "जिसके पास जमीन नही, वह गृहस्थ नही, मजूर है।" (उप , पृ 274)। किसान के मन का भाव पढकर यह बात प्रेमचद कहते है। कुल-मर्यादा के सारे भाव, धर्म और नैतिकता के सारे विचार उसकी छोटी-सी भू-सपत्ति से जुडे हुए हैं। इस सपत्ति के लिए होरी अत तक लडता है। "हारे हुए महीप की भाँति उसने अपने को इन तीन बीघे के किले में बंद कर लिया था और उसे प्राणो की तरह बचा रहा था। फाके सहे, बदनाम हुआ, मजूरी की; पर किले को हाथ से न जाने दिया, मगर अब वह किला भी हाथ से निकला जाता था।" (उप , पृ 350)। **गोदान** अग्रेजी राज मे तबाह होते हुए भारतीय किसान के लबे सघर्ष की कहानी है। वह तबाह इसलिए नही होता कि वह विलायती माल खरीदता है, वरन् इसलिए तबाह होता है कि उसका श्रमफल महाजनो के माध्यम से वित्त मे रूपातरित होकर इजारेदार पूँजीपतियो के पास पहुँच जाता है।

होरी किसी महाकाव्य का धीरोदात्त नायक नहीं है। पर निराला ने 'राम की शक्तिपूजा' मे जो बात राम के लिए कही है, वह प्रेमचंद ने **गोदान** मे होरी के लिए कही है "जीवन के सघर्ष मे उसे सदैव हार हुई; पर उसने कभी हिम्मत नही हारी। प्रत्येक हार जैसे उसे लडने की शक्ति दे देती थी; मगर अब वह उस अतिम

दशा को पहुँच गया था, जब उसमें आत्मविश्वास भी न रहा था।" (उप., पृ. 350)। लेकिन—

'वह रहा एक मन और राम का जो न थका।'

और होरी—"कौन कहता है, जीवन सग्राम में वह हारा है। यह उल्लास, यह गर्व, यह पुलक क्या हार के लक्षण हैं! इन्हीं हारो मे उसको विजय है।" (उप., पृ 362)। केवल होरी की पराजय को देखना, उसके संघर्ष को न देखना आलोचक के अपने ही पराजयवादी दृष्टिकोण का परिणाम हो सकता है। होरी हिंदी-कथा साहित्य का सबसे जीवत पात्र है; अपनी पराजय के कारण नहीं, अपने संघर्ष के कारण।

होरी को मदद की जरूरत है। यह मदद उसे शहर के पढ़े-लिखे लोगों से मिल सकती है, दर्शनशास्त्र के प्रोफेसर मेहता उसकी मदद करना भी चाहते हैं, पर वह मूल समस्या नही समझते और शायद किसानों के सगठन की क्षमता भी उनमें नही है। गोबर मदद कर सकता है पर वह बहुत पिछडे हुए किस्म का मजदूर साबित होता है। शराब पीता है और झुनिया को पीटता है। प्रेमचंद कहते हैं, "सभी श्रमिको की यही दशा थी। सभी ताडी या शराब में अपनी दैहिक थकन और मानसिक अवसाद को डुबोया करते थे।" (उप., पृ 280)। यह बात सही नही है। प्रेमचद जिन दिनो यह उपन्यास लिख रहे थे, उन दिनो लखनऊ के रेल कारखाने मे सैकडो मजदूर काम करते थे। इनमें कुछ शहर मे रहते थे, कुछ आसपास के गाँवो से सबेरे आते थे और शाम को लौट जाते थे। उनमे ऊँची-नीची जातियो के लोग थे पर यहाँ एक साथ काम करने से उनमें भाईचारे की नई भावना का विकास हो रहा था। इसका असर गाँवों पर भी पड रहा था। लखनऊ में मजदूरो के सगठन का काम शुरू हो गया था। कुछ तो बडे घरों के लोग थे जो शौकिया ट्रेड यूनियनो में काम करते थे (**गोदान** के मिर्जा खुर्शेद इनके प्रतिनिधि हैं) पर कई मार्क्सवादी कार्यकर्ता भी थे जो मजदूरों के सगठन का क्रांतिकारी महत्त्व समझते थे और बडी लगन स काम करते थे। संभव है, प्रेमचद का परिचय मिर्ज़ा खुर्शेद जैसो से ही हुआ हो, इसलिए मजदूर वर्ग से उन्हें विशेष आशा न रही हो। मालती, मेहता, खुर्शेद आदि को उपन्यास में जरूरत से ज्यादा जगह दी गई है, मजदूरो को जरूरत से कम, इसका कारण भी मजदूरों से परिचय की कमी हो सकती है। वैसे मजदूर आंदोलन अभी इतना शक्तिशाली न था कि वह किसानों के संगठन मे सहायता करता और उन्हे साथ लेकर जनवादी क्रांति के मार्ग पर आगे बढता—अपनी जगह यह बात भी सही है।

होरी को शहर से मदद नहीं मिलती, गाँव मे वह अकेला पड गया है। हीरा भाग गया है, होरी उसकी खेती सँभालता है। घर में जब खाने को नहीं रहता तब हीरा की बहू उसकी मदद करती है। भोला की बहू नोहरी और गोबर भी रुपए-पैसे देकर उसकी मदद करते हैं पर इससे होरी का उद्धार नहीं होता। अपने

रूढ़िवादी विचारों के कारण वह अपने लिए नित नई मुसीबतें खड़ी कर लेता है। **गोदान** भारतीय रूढ़िवाद पर कडा प्रहार है। रूढ़ियों को पालनेवाले वही जमींदार और महाजन हैं जिनकी पीठ पर अंग्रेज सरकार का हाथ है। अंग्रेजी राज मे रूढ़ियों के बंधन और कठोर हो गए हैं, कारण यह कि इन बधनो से ऊपरवालो को लाभ होता है। वे सब मिलकर रस्सी खीचते हैं और धर्मभीरु किसान को निरतर कसते जाते हैं। दातादीन ने धमकाया, "अगर मैं ब्राहमण हूँ, तो अपने पूरे दो सौ रुपए लेकर दिखा दूँगा।" गोबर चुपचाप बैठा रहा, "मगर होरी के पेट में धर्म की क्रांति मची हुई थी। अगर ठाकुर या बनिये के रुपये होते, तो उसे ज्यादा चिन्ता न होती; लेकिन ब्राहमण के रुपये! उसकी एक पाई भी दब गयी, तो हड्डी तोडकर निकलेगी। भगवान न करे कि ब्राहमण का कोप किसी पर गिरे। बस मे कोई चिल्लू भर पानी देनेवाला, घर में दिया जलानेवाला भी नही रहता। उसका धर्मभीरु मन त्रस्त हो उठा।" (उप , पृ 224)। दातादीन महाजनी का धधा करते हैं, जिसका पुराने ब्राहमण धर्म से कोई भी संबंध नहीं है। वर्ण-व्यवस्था का आर्थिक आधार नष्ट हो चुका है, फिर भी पुराने सस्कार बने हुए हैं। नए शोषक उससे लाभ उठाते हैं। **गोदान** में होरी जहाँ भी रूढियो के प्रभाव से गलत काम करता है, कोई न कोई उसकी आलोचना करके उसे सही रास्ता बतानेवाला जरूर रहता है, वह उस पर न चले, वह अलग बात है। यहाँ गोबर कहता है, "तुम्ही लोगों ने तो इन सबो का मिजाज बिगाड दिया है। तीस रुपये दिये, अब दो सौ रुपये लेगा, और डाँट ऊपर से बतायेगा और तुमसे मजूरी करायेगा और काम कराते कराते मार डालेगा!" दातादीन का मजूर बनकर होरी जब काम करते-करते बेहोश होकर गिर पडता है, तब गोबर की बात न मानने और रूढ़ियो से बँधे रहने का फल प्रत्यक्ष हो जाता है। अंग्रेजी राज में किसान तबाह हो रहा था; आर्थिक तबाही के अलावा परिवार का पुराना ढाँचा टूट रहा था। यही नही कि सयुक्त परिवार की व्यवस्था खत्म हो रही थी, वरन स्त्री-पुरुष के सबध, पति-पत्नी के सबंध भी बदल रहे थे। व्यक्तिगत सपत्ति और राज्यसत्ता के उद्भव पर अपनी पुस्तक मे एंगेल्स ने बताया है कि (कुल-संपत्तिवाले पुराने कुटुब से भिन्न) आधुनिक व्यक्तिपरक परिवार का आधार नारी की खुली या मुँदी-ढँकी दासता है। अधिकांश परिवारों मे, पुरुष सबके लिए कमाई करता है, इस कारण कानूनी विशेषाधिकार पाए बिना ही उसे प्रभुत्व का स्थान मिल जाता है। "परिवार में वह पूँजीपति है; पत्नी सर्वहारा की प्रतिनिधि है।" (Engels, The Origin of the Family Private Property and the State, मास्को, 1977, पृ. 74)। होरी का संयुक्त परिवार टूट चुका है; जिस मरजाद की उसे चिंता रहती है, उसका संबंध इसी टूटे हुए परिवार से है। अब वह छोटे मालिक किसान के व्यक्तिपरक परिवार का अगुवा है। किंतु वह अकेले कमाई नहीं करता, धनिया भी बराबर काम करती है, बेटे के साथ बेटियाँ काम करती हैं। होरी के परिवार को हम अर्ध सर्वहारा

परिवार कह सकते हैं। पितृसत्ताक परिवार किसी तरह का हो, उसका अगुवा पुरुष होता है और वह चाहता है कि परिवार के सभी सदस्यों पर उसका एकछत्र शासन हो। ऐसा शासन वह अपनी पत्नी या पत्नियों पर भी चाहता है।

पूँजीवादी सबधो के विकास के साथ सयुक्त परिवार का ढाँचा टूटता है। वास्तव मे वह टूटता है मजदूरों के लिए, पूँजीपतियो के लिए सयुक्त परिवार पहले से भी अधिक महत्त्वपूर्ण हो जाता है। पुराने ढंग के रक्त-सबध—वास्तविक या कल्पित—सपत्ति के विस्तार और सुरक्षा के साधन बन जाते हैं। एक ओर बिडला ओर टाटा के 'परिवार' ऐसा विराट रूप धारण करते हैं जैसा पहले किसी सामत के परिवार का न था, दूसरी ओर मेहनत करनेवाले किसानो और मजदूरो का परिवार टूटता चला जाता है, जैसे होरी का परिवार टूटता है। पूँजीवाद एक ओर समाज के निचले स्तर पर जाति-बिरादरी को तोडता है, दूसरी ओर समाज के ऊपरवाले स्तर पर जाति-बिरादरी को मजबूत करता है या नई बिरादरियाँ कायम करता है। बडे पूँजीपतियो का वर्ग, बडे सामतो के वर्ग की तरह, बिरादरियो का समुदाय होता है। **गोदान** मे रायसाहब और होरी के परिवारो के आकार मे जो अतर है, वह ध्यान देने योग्य है। "रायसाहब का परिवार बहुत विशाल था। कोई डेढ सौ सरदार एक साथ भोजन करते थे। कई चचा थे, दरजनो चचेरे भाई, कई सगे भाई, बीसियो नाते के भाई। रियासत से सबके वसीके बँधे हुए थे। किसी को कोई काम करने की जरूरत न थी।" (उप, पृ 13)। रियासत और वसीके हटाकर यदि हम कहे, कपनियो मे सबके लाभाश बँधे हुए थे, तो बडे पूँजीपति के परिवार की कल्पना एक हद तक की जा सकेगी। पुराने समाज का मानो यह नियम है बडी सपत्ति बडा परिवार, छोटी सपत्ति छोटा परिवार, शून्य सपत्ति, शून्य परिवार। शहरी सर्वहारा के लिए स्थिर पारिवारिक जीवन बिताना अत्यत कठिन होता है।

जमीन का मालिक होरी है, कर्ज लेने का अधिकार उसी को है। धनिया सपत्तिहीन है, अधिकारहीन है, सर्वहारा है। वह सर्वहारा इसलिए भी है कि वह पति की कमाई नही खाती, उसके साथ बराबर काम करती है; घर मे चूल्हे-चौके का काम उसी के जिम्मे है, सो अलग से। जो स्त्री काम करेगी, वह दबकर न रहेगी। बहुत दबाई जाएगी तो पति को छोडकर अलग भी हो सकती है। थानेदारवाली घटना मे होरी से मार खाने के बाद धनिया पति को ललकारती है, "तू समझता होगा, मैं इसे रोटी कपडा देता हूँ। आज से अपना घर सँभाल। देख तो इसी गाँव मे तेरी छाती पर मूँग दलकर रहती हूँ कि नही, और उसमे अच्छा खाऊँ-पहनूँगी। इच्छा हो देख ले।" (उप, पृ 117)। खन्ना की पत्नी गोबिंदी भी मार खाती है पर रोकर रह जाती है, धनिया की तरह अलग होकर खाने-कमाने की चुनौती देना उसके बस मे नहीं है। पूँजीपति की बीवी और कामकाजी किसान की पत्नी मे यही अतर है। होरी और धनिया ने बरसों साथ काम किया है, बरसो एक साथ दुख झेले हैं, उनमे लडाई-झगडे के बावजूद गहरा प्यार है, ऐसा प्यार

जैसा गोबर और झुनिया में नहीं है, मालती और मेहता मे नहीं है, प्रमचंद-साहित्य मे शायद स्त्री-पुरुष के किसी जोडे मे नही है।

धनिया होरी को छोडेगी नहीं, पर उसने अधिकार जता दिया, वह चाहे तो उसे छोड भी सकती है। मारने का अधिकार केवल पुरुष को नहीं है। धनिया ने बडे भोलेपन से कहा, "तुम्हे इतना गुस्सा कैसे आ गया। मुझे तो तुम्हारे ऊपर कितना ही गुस्सा आये मगर हाथ न उठाऊँगी।" (उप, पृ 120)। हाथ उठाने का अधिकार उसे भी है, यह उसने जता दिया, उस पर हाथ उठाएगी नही, यह बात अलग है। शहरी सर्वहारा किसान का नेतृत्व करने को यहाँ नहीं है, पर देहाती सर्वहारा के रूप मे धनिया हर जगह होरी का नेतृत्व करती है। वह पिछडे हुए किसान की चेतना का विकल्प है। होरी समझता है, जमीदार की खुशामद करने से वह मुसीबतो से बचा रहेगा। "'जब दूसरो के पाँवो तले अपनी गर्दन दबी हुई है, तो उन पाँवो को सहलाने में ही कुशल है।' धनिया इतनी व्यवहारकुशल न थी। उसका विचार था कि हमने जमीदार के खेत जोते हैं, तो वह अपना लगान ही तो लेगा। उसकी खुशामद क्यो करे, उसके तलवे क्यो सहलाये।" (उप, पृ 5)। प्रेमचद ने 'व्यवहारकुशल' व्यग्य मे लिखा होगा, होरी कितना अकुशल सिद्ध होता है, यह आगे कथा मे साफ दिखाई देता है। धनिया की विद्रोह-भावना का विश्लेषण करते हुए प्रेमचद कहते हैं, "जिस गृहस्थी मे पेट की रोटियाँ भी न मिले, उसके लिए इतनी खुशामद क्यो? इस परिस्थिति से उसका मन बराबर विद्रोह किया करता था और दो-चार घुडकियाँ खा लेने पर ही उसे यथार्थ का ज्ञान होता था।" (उप.)। यथार्थ का ज्ञान—क्या माने? कुछ नही हो सकता, उसका विद्रोह करना बेकार है—यह ज्ञान? सभव है, प्रेमचंद का यही आशय हो। दबकर रहो, सिर उठाकर न चलो—यह नीति होरी की है। धनिया पहले इस नीति का विरोध करती है, फिर विवश होकर उसी पर चलती है। प्रेमचद का ऐसा ही आशय था, इस धारणा की पुष्टि प्रेमचंद के इन वाक्यों मे होती है, "कभी तो जीवन का सुख न मिला। इस चिरस्थायी जीर्णावस्था ने उसके आत्मसम्मान को उदासीनता का रूप दे दिया था।" (उप.)। आत्मसम्मान की जगह उदासीनता, लडने से कुछ न होगा, यह भाव।

ऐसा लगता है, प्रेमचंद ने धनिया के चरित्र की जो हदें उपन्यास के आरभ मे बाँधी, उन्हे उसने जल्दी ही तोड दिया। उसके चरित्र का स्वतः विकास होता गया; वह आगे बढी, प्रेमचद उसके पीछे चले। सर्वहारा धनिया ने केवल होरी का नही प्रेमचद का नेतृत्व किया। पर वह थी तो उन्हीं की रचना। कह सकते हैं, प्रेमचंद का चेतन मन उन्हें जितनी दूर ले जाता था, उनका उपचेतन मन उन्हे उससे और आगे ठेलता चला जाता था। आत्मसम्मान के भाव का स्थान उदासीनता ने ले लिया—यह बात होरी के लिए सही हो सकती है, धनिया के लिए नहीं। उसका विद्रोह सफल हो चाहे असफल, वह बार-बार विद्रोह करके यही सिद्ध करती है कि

यथार्थ का ज्ञान उसे है, होरी को नहीं। होरी कर्ज़ लेकर दारोगा को घूस देने जा रहा था, धनिया ने अकेले दारोगा का मुकाबला किया, उसने "अपने साहस से स्त्रियों का ही नहीं, पुरुषों का नेतृत्व भी प्राप्त कर लिया था।" (उप., पृ. 119)। कम से कम एक बार धनिया का विद्रोह सफल हुआ, स्वयं प्रेमचंद ने स्वीकार किया, उसने पुरुषों का नेतृत्व भी प्राप्त कर लिया था।

उसकी विद्रोह-भावना की कठिन परीक्षा तब हुई जब गर्भवती विधवा झुनिया उसके घर आई। थोडे-से मानसिक संघर्ष के बाद उसने उसे आश्रय देने का फैसला किया। इसके लिए उसने होरी को जिस तरह राजी किया, वह एक ओर उसकी व्यवहारकुशलता का प्रमाण है, दूसरी ओर उसकी नेतृत्व-क्षमता का। "उसे घर मे आने ही न देना चाहिए था अच्छा चल, देखूँ कैसे नहीं उठती, घसीटकर बाहर निकाल दूँगा।"—यह कहनेवाला होरी घर पहुँचकर झुनिया की पीठ पर हाथ फेरते हुए उसे दिलासा देता है, "डर मत बेटी, डर मत। तेरा घर है, तेरा द्वार है, तेरे हम हैं। आराम से रह। जैसी तू भोला की बेटी है, वैसी ही मेरी बेटी है। जब तक हम जीते हैं, किसी बात की चिंता मत कर। हमारे रहते कोई तुझे तिरछी आँखों न देख सकेगा। भोज भात जो लगेगा, वह हम सब दे लेंगे, तू खातिर जमा रख।" (उप., पृ 124-25)। थानेदार का विरोध करना उतना कठिन नहीं है जितना बिरादरी का, सदियों से चली आती रूढियो का। 1930-40 के दशक मे हिंदी प्रदेश के गाँवो में एक सामाजिक क्रांति घटित हो रही थी। इसका चित्रण प्रेमचद ने किया है, निराला ने किया है। गर्भवती झुनिया को घर में रखकर होरी ने उस क्रांति में भाग लिया, जिसका नेतृत्व धनिया कर रही थी। होरी और धनिया अकेले पड़ जाते हैं, रूढ़ियो के आगे झुकने के कारण नहीं, उनके आगे तनकर खड़े होने के कारण।

गाँव में तहलका मच गया। झुनिया के दो भाई लाठी लिए गोबर को मारने के फिराक में घूमने लगे। भोला ने कहा, होरी से गाय के दाम वसूल करेगा, न देगा तो दावा करके उसका घर नीलाम करा देगा। "गाँववालों ने होरी को जाति-बाहर कर दिया।" (उप., पृ 125)। यह बहुत बडा दड था। बहुमत रूढ़िवादियों का है, इनके विरोध में खडे हैं होरी और धनिया। रूढ़िवादियों की नैतिकता दो तरह की है। होरी को दड देते हैं पर दातादीन के पुत्र मातादीन की प्रतिष्ठा बरकरार रहती है। "वह एक चमारिन से फँसा हुआ था। इसे सारा गाँव जानता था; पर वह तिलक लगाता था, पोथी-पत्रे बाँचता था, कथा-भागवत कहता था, धर्म-संस्कार कराता था। उसकी प्रतिष्ठा मे जरा भी कमी न थी।" (उप., पृ. 127)।

गाँव-भर के पाखंडी होरी के विरुद्ध एक हो जाते हैं। वे चाहते हैं कि होरी झुनिया को निकाल दे पर वह इसके लिए तैयार नहीं है। उन्हें लगता है, "स्त्री-पुरुष दोनो ऊसे समाज को चुनौती दे रहे हैं कि देखें समाज क्या कर लेता है।" (उप., पृ. 129)। पंचायत ने होरी पर सौ रुपये नकद और तीस मन अनाज डाँड़ लगाया। (यह होरी की बिरादरी की पंचायत नहीं है, पूरे गाँव की पंचायत

है ।) धनिया ने प्रतिरोध किया पर होरी यहाँ उसका नेतृत्व स्वीकार करने को तैयार न था । धनिया बिरादरी से अलग होकर रहने को तैयार है । "हमें नहीं रहना है बिरादरी में । बिरादरी में रहकर हमारी मुकत न हो जायगी । अब भी अपने पसीने की कमाई खाते हैं, तब भी अपने पसीने की कमाई खायेंगे ।" (उप., पृ 131-32) । होरी ढुलमुल है, धनिया दृढ है । वह धनिया की बात मानता तो बहुत-सी मुसीबतों से बच जाता । लेकिन धनिया आसानी से हार माननेवाली नही थी । जब होरी अनाज की आखिरी टोकरी सिर पर रख रहा था, धनिया ने टोकरी पकड ली और बोली, "तुमने अकेले ही सब कुछ नही कर लिया है । मैं भी अपनी बच्चियो के साथ सती हुई हूँ । सीधे टोकरी रख दो, नही आज सदा के लिए नाता टूट जायेगा ।" (उप , पृ 133) । श्रमिक नारी ने श्रमफल पर अपना अधिकार जताया, फिर समानता के आधार पर समझा दिया—तुम्हारी दासी नही हूँ, अलग हो जाऊँगी । होरी को झुकना पडता है— "दूसरों के हिस्से पर मेरा कोई जोर नही है ।" धनिया ने अनाज की टोकरी घर मे रखी, फिर पोते के जन्मोत्सव मे दोनो लडकियो के साथ 'गला फाड-फाडकर' सोहर गाने लगी, "जिससे सारा गाँव सुन ले अगर बिरादरी को उसकी परवा नहीं है, तो वह भी बिरादरी की परवा नही करती ।" (उप) । इस तरह धनिया की नैतिक विजय हुई । वह झुकी नही, न पति के सामने, न सारे गाँव के सामने ।

मातादीन पंडित की प्रेमिका सिलिया चमारिन को आश्रय देकर धनिया ने और भी साहस का काम किया । सिलिया के बाप को और उसकी बिरादरी के अन्य लोगो को सिलिया-मातादीन का सबध पसद न था । मातादीन "सिलिया का तन और मन दोनो लेकर भी बदले मे कुछ न देना चाहता था ।" (उप , पृ 252) । सिलिया के बाप का तर्क सीधा है, बाम्हन के साथ रहना है तो बाम्हन की तरह रह । चमारिन ही बनी रहना था तो बिरादरी की नाक क्यो कटाई । जो भी सिलिया को रखे, वह हमारा होकर रहे । "तुम हमे बाम्हन नही बना सकते, मुदा हम तुम्हे चमार बना सकते हैं ।" (उप , पृ 253) । चमारो ने मातादीन का जनेऊ तोड डाला, "मुँह मे एक बडी सी हड्डी का टुकडा डाल दिया इतने मे खलिहान के सारे आदमी जमा हो गये; पर आश्चर्य यह कि कोई इन धर्म के लुटेरों से मुजाहिम न हुआ ।" (उप , पृ. 254) । इससे मिलती-जुलती घटना का वर्णन निराला के अधूरे उपन्यास **चमेली** मे है । जमींदार की बिरादरी के सदस्य बख्तावर सिह ने विधवा चमारिन चमेली का हाथ पकडा, उसने महादेव को पुकारा, महादेव ने बख्तावर सिह को पटक दिया और मारा । (*निराला की साहित्य साधना,* खड 2, पृ 485) ।

सिलिया मातादीन को छोडकर घर लौटने को तैयार न थी; मातादीन उसे छोड़कर प्रायश्चित करने को तैयार था । सिलिया के भाइयों ने उसे घसीटकर ले जाना चाहा, "उसकी साडी फट गयी, पीठ और कमर की खाल छिल गयी; पर वह जाने पर राजी न हुई ।" (उप., पृ. 255) । न बाम्हन के यहाँ जगह, न चमार के

यहाँ दोहराई गई है। "यह सारी विडंबना इसी जायदाद का फल है भाई भाई का बैरी, बाप बेटे का बैरी, पुरुष स्त्री का बैरी, इसी जायदाद के लिए! इस रियासत ने हमें विलासी, आलसी और अपाहिज बना दिया।" (*प्रेमाश्रम,* पृ. 278-79)। राय कमलानद ने ये बातें सच्चे मन से कही थीं, जायदाद की समस्या उन्होंने अपने लिए संन्यास लेकर हल की; राय अमरपाल सिंह ने संपत्ति में इजाफा किया; पैरों की बेडियाँ और भी मोटी, और भी मजबूत हो गईं। पर क्या करें बेचारे! भाई भाई का बैरी, बाप बेटे का बैरी! राय अमरपाल अपमानित हुए, अभिलाषाएँ धूल में मिल गईं, "और सबसे बडा दुःख इस बात का था कि अपने बेटे ने ही दगा दी।" (*गोदान,* पृ 326)।

बेटे रुद्रपाल ने विवाह के मामले को लेकर विद्रोह किया तो रायसाहब को लगा "जैसे सारा जीवन उजड गया हो।" (उप., पृ. 320)। होरी के उजडने में और रायसाहब के उजडने मे कितना फर्क है! रायसाहब लडे लेकिन हारे। "और अब ससार से निराश होकर उनकी आत्मा अन्तर्मुखी होती जाती थी।" (उप , पृ 328)। होरी की निराशा और रायसाहब की निराशा में कितना फर्क है! रायसाहब का मन "आप ही आप भक्ति की ओर झुका।" (उप., पृ 328)। सुक्खू का मन भक्ति की ओर झुका था, राय कमलानद संन्यासी हो गए थे, पर **गोदान** के रायसाहब को भक्ति से शांति नही मिलती। "वह मोह को छोडना चाहते थे, पर मोह उन्हे न छोडता था और इस खीचतान मे उन्हें अपमान, ग्लानि और अशांति से छुटकारा न मिलता था।" (उप)। होरी के मन पर धर्म का आतंक है पर वह भक्त नही है। अपमान और ग्लानि के भावों से वह परिचित है। रूपा के ब्याह के सिलसिले मे उसने रुपए लिए तो "जैसे अपमान के अथाह गढ़े में गिर पड़ा है और गिरता चला जाता है।" और गोबर से कहता है, "मैंने इस जमीन के मोह में पाप की गठरी सिर पर लादी।" (उप., पृ 358)। रायसाहब की ग्लानि और होरी की ग्लानि मे कितना अतर है। ग्लानि का कारण है मोह और मोह का कारण है सपत्ति। गोबर होरी को अपराध-बोध से मुक्त करते हुए कहता है, "जैजात न बचाते तो रहते कहाँ?" (उप , पृ. 359)।

होरी ग्लानि का भाव लिए नही मरा। गोबर बिदा हुआ तो होरी रोया लेकिन "पुत्र से यह श्रद्धा और स्नेह पाकर वह तेजवान हो गया है, विशाल हो गया है। कई दिन पहले उस पर जो अवसाद-सा छा गया था, एक अन्धकार-सा, जहाँ वह अपना मार्ग भूल जाता था, वहाँ अब उत्साह और प्रकाश है।" (उप., पृ. 359)। बाप बेटे के टूटे हुए सबंध जुड गए हैं। राय अमरपाल और रुद्रपाल के टूटे हुए संबध नही जुडते। होरी का भाई हीरा अपराधी है; उसने गाय को ज़हर दिया था। वह भी आकर चरणों मे गिर पड़ा है। इससे बड़ी विजय और क्या होगी? बँटवारा होने पर, सपत्ति का नाश होने पर भी, गरीब आदमियों के पारिवारिक स्नेह-संबंध कायम रहते हैं, विपत्ति में और सुदृढ़ होते हैं। परास्त होरी की जीवन-कथा का

विजयपक्ष पारिवारिक संबंधों को ध्यान में रखने से ही समझा जा सकता है। और ये पारिवारिक संबंध रायसाहब जैसों के पारिवारिक संबंधों से एकदम भिन्न स्तर के हैं। मेहता को जो शिकार खेलते समय जंगली लडकी मिली थी, उसके सहज स्नेहभाव से मालती का स्वार्थी प्रेमभाव एकदम अलग है; इसी तरह होरी-गोबर का पिता-पुत्र संबंध अमरपाल-रुद्रपाल के पिता-पुत्र संबंध से एकदम अलग है। अनेक स्तरों पर कई तरह के पारिवारिक सबधो की यह भिन्नता प्रेमचद **गोदान** में आदि से अंत तक दिखाते हैं। होरी की विजय-पराजय की कहानी का महत्त्व इस भिन्नता पर ध्यान देने से प्रकट हो जाता है।

किसान के लिए उसकी मर्यादा के अनेक लक्षण हैं। उनमें एक है दरवाजे पर गाय का बँधा होना। भोला की गायों में होरी ने एक को पसंद किया और सोचने लगा, "द्वार पर बँधेगी, तो द्वार की शोभा बढ़ जायगी।" (उप., पृ 9)। द्वार की शोभा बढ़ाने के फेर में होरी को गाय से हाथ धोने पडे। गाय घर के भीतर बाँधी जाती थी। लेकिन एक दिन बडी उमस थी। होरी गाय को खोलकर बाहर ले चला तो "धनिया ने टोका भी, कहाँ लिये जाते हो ? पर होरी ने सुना नही, बोला—बाहर हवा में बाँधे देता हूँ।" (उप., पृ 196)। हवा मे बाँधने पर हीरा को मौका मिला और उसने गाय को जहर दे दिया। इस गाय के लिए होरी ने छल किया, अपराध किया; उपन्यास के अंत मे उसने जमीन के लिए छल किया, अपराध किया। उपन्यास के आदि और अंत में होरी के छल और अपराधो मे आतरिक सगति है। भोला की सगाई का वादा करके वह उससे गाय लेता है। "भोला के साथ वह छल कर रहा था और यह व्यवहार उसकी मर्यादा के अनुकूल था।" (उप , पृ. 9)। इससे बड़ा अपराध वह गाय के मरने पर करता है। होरी पहले तो धनिया को बता देता है कि गाय को हीरा ने ज़हर दिया है—"मैंने अपनी आँखों देखा। सच, तेरे सिर की सौंह।" (उप., पृ. 109)। बाद को जब धनिया हीरा को पकड़वाने की धमकी देती है, तब होरी मुकर जाता है। धनिया के ललकारने पर बेटे की झूठी कसम खा जाता है। "होरी ने गोबर के माथे पर काँपता हुआ हाथ रखकर काँपते हुए स्वर मे कहा—मैं बेटे की कसम खाता हूँ कि मैंने हीरा को नाँद के पास नहीं देखा।" (उप , पृ. 111)। झूठी कसम खाने से बेटे का अनिष्ट हो सकता है, इस भय से उसका हाथ काँपता है, आवाज़ काँपती है। उपन्यास के अंत मे वह फिर अपराध करता है। दातादीन प्रस्ताव करते हैं, "लडकी का ब्याह भी हो जायगा, और तुम्हारे खेत भी बच जायेंगे।" (उप., पृ. 351)। जिससे ब्याह होना है, वह होरी से दो ही चार साल छोटा था। गहरी चोट लगी। "आज उसके ऐसे दिन आ गये हैं कि उससे लड़की बेचने की बात कही जाती है।" (उप., पृ. 351-52)।

लेकिन इस बार अपराध मे धनिया भी शामिल है। रामसेवक को देखने के बाद कहती है, "उमिर तो ज़्यादा है; लेकिन तुम लोगों की राय है, तो मुझे भी मंजूर है।" (उप., पृ. 355)। धनिया के सहमत होने पर भी होरी के मन में अपराधबोध

यहाँ दोहराई गई है। "यह सारी विडंबना इसी जायदाद का फल है भाई भाई का बैरी, बाप बेटे का बैरी, पुरुष स्त्री का बैरी, इसी जायदाद के लिए! इस रियासत ने हमें विलासी, आलसी और अपाहिज बना दिया।" (*प्रेमाश्रम,* पृ. 278-79)। राय कमलानंद ने ये बातें सच्चे मन से कही थी, जायदाद की समस्या उन्होंने अपने लिए संन्यास लेकर हल की; राय अमरपाल सिंह ने संपत्ति में इजाफा किया; पैरों की बेडियाँ और भी मोटी, और भी मजबूत हो गईं। पर क्या करे बेचारे! भाई भाई का बैरी, बाप बेटे का बैरी! राय अमरपाल अपमानित हुए, अभिलाषाएँ धूल में मिल गई, "और सबमे बडा दुःख इस बात का था कि अपने बेटे ने ही दगा दी।" (*गोदान,* पृ 326)।

बेटे रुद्रपाल ने विवाह के मामले को लेकर विद्रोह किया तो रायसाहब को लगा "जैसे सारा जीवन उजड गया हो।" (उप., पृ 320)। होरी के उजडने में और रायसाहब के उजडने मे कितना फर्क है! रायसाहब लडे लेकिन हारे। "और अब ससार से निराश होकर उनकी आत्मा अन्तर्मुखी होती जाती थी।" (उप., पृ 328)। होरी की निराशा और रायसाहब की निराशा मे कितना फर्क है! रायसाहब का मन "आप ही आप भक्ति की ओर झुका।" (उप., पृ 328)। सुक्खू का मन भक्ति की ओर झुका था, राय कमलानंद संन्यासी हो गए थे, पर **गोदान** के रायसाहब को भक्ति से शांति नही मिलती। "वह मोह को छोडना चाहते थे, पर मोह उन्हे न छोडता था और इस खीचतान मे उन्हे अपमान, ग्लानि और अशांति से छुटकारा न मिलता था।" (उप)। होरी के मन पर धर्म का आतंक है पर वह भक्त नही है। अपमान और ग्लानि के भावो से वह परिचित है। रूपा के ब्याह के सिलसिले मे उसने रुपए लिए तो "जैसे अपमान के अथाह गढ़े में गिर पड़ा है और गिरता चला जाता है।" और गोबर से कहता है, "मैंने इस जमीन के मोह में पाप की गठरी सिर पर लादी।" (उप , पृ. 358)। रायसाहब की ग्लानि और होरी की ग्लानि मे कितना अतर है। ग्लानि का कारण है मोह और मोह का कारण है सपत्ति। गोबर होरी को अपराध-बोध से मुक्त करते हुए कहता है, "जैजात न बचाते तो रहते कहाँ?" (उप., पृ 359)।

होरी ग्लानि का भाव लिए नही मरा। गोबर बिदा हुआ तो होरी रोया लेकिन "पुत्र से यह श्रद्धा और स्नेह पाकर वह तेजवान हो गया है, विशाल हो गया है। कई दिन पहले उस पर जो अवसाद-सा छा गया था, एक अन्धकार-सा, जहाँ वह अपना मार्ग भूल जाता था, वहाँ अब उत्साह और प्रकाश है।" (उप., पृ. 359)। बाप बेटे के टूटे हुए संबध जुड गए हैं। राय अमरपाल और रुद्रपाल के टूटे हुए संबंध नही जुडते। होरी का भाई हीरा अपराधी है; उसने गाय को ज़हर दिया था। वह भी आकर चरणो मे गिर पडा है। इससे बड़ी विजय और क्या होगी? बँटवारा होने पर, सपत्ति का नाश होने पर भी, गरीब आदमियों के पारिवारिक स्नेह-संबंध कायम रहते हैं, विपत्ति में और सुदृढ़ होते हैं। परास्त होरी की जीवन-कथा का

विजयपक्ष पारिवारिक संबंधों को ध्यान में रखने से ही समझा जा सकता है। और ये पारिवारिक संबंध रायसाहब जैसों के पारिवारिक संबंधों से एकदम भिन्न स्तर के हैं। मेहता को जो शिकार खेलते समय जंगली लड़की मिली थी, उसके सहज स्नेहभाव से मालती का स्वार्थी प्रेमभाव एकदम अलग है; इसी तरह होरी-गोबर का पिता-पुत्र संबंध अमरपाल-रुद्रपाल के पिता-पुत्र संबंध से एकदम अलग है। अनेक स्तरों पर कई तरह के पारिवारिक सबधों की यह भिन्नता प्रेमचंद **गोदान** मे आदि से अंत तक दिखाते हैं। होरी की विजय-पराजय की कहानी का महत्त्व इस भिन्नता पर ध्यान देने से प्रकट हो जाता है।

किसान के लिए उसकी मर्यादा के अनेक लक्षण हैं। उनमे एक है दरवाजे पर गाय का बँधा होना। भोला की गायो में होरी ने एक को पसद किया और सोचने लगा, "द्वार पर बँधेगी, तो द्वार की शोभा बढ़ जायगी।" (उप , पृ 9)। द्वार की शोभा बढ़ाने के फेर में होरी को गाय से हाथ धोने पडे। गाय घर के भीतर बाँधी जाती थी। लेकिन एक दिन बडी उमस थी। होरी गाय को खोलकर बाहर ले चला तो "धनिया ने टोका भी, कहाँ लिये जाते हो ? पर होरी ने सुना नही, बोला—बाहर हवा में बाँधे देता हूँ।" (उप., पृ. 196)। हवा में बाँधने पर हीरा को मौका मिला और उसने गाय को जहर दे दिया। इस गाय के लिए होरी ने छल किया, अपराध किया; उपन्यास के अत मे उसने जमीन के लिए छल किया, अपराध किया। उपन्यास के आदि और अत में होरी के छल और अपराधो में आतरिक संगति है। भोला की सगाई का वादा करके वह उससे गाय लेता है। "भोला के साथ वह छल कर रहा था और यह व्यवहार उसकी मर्यादा के अनुकूल था।" (उप , पृ 9)। इससे बड़ा अपराध वह गाय के मरने पर करता है। होरी पहले तो धनिया को बता देता है कि गाय को हीरा ने जहर दिया है—"मैंने अपनी आँखों देखा। सच, तेरे सिर की सौंह।" (उप., पृ. 109)। बाद को जब धनिया हीरा को पकडवाने की धमकी देती है, तब होरी मुकर जाता है। धनिया के ललकारने पर बेटे की झूठी कसम खा जाता है। "होरी ने गोबर के माथे पर काँपता हुआ हाथ रखकर काँपते हुए स्वर मे कहा—मैं बेटे की कसम खाता हूँ कि मैंने हीरा को नाँद के पास नहीं देखा।" (उप , पृ 111)। झूठी कसम खाने से बेटे का अनिष्ट हो सकता है, इस भय से उसका हाथ काँपता है, आवाज़ काँपती है। उपन्यास के अंत मे वह फिर अपराध करता है। दातादीन प्रस्ताव करते हैं, "लड़की का ब्याह भी हो जायगा, और तुम्हारे खेत भी बच जायेंगे।" (उप., पृ. 351)। जिससे ब्याह होना है, वह होरी से दो ही चार साल छोटा था। गहरी चोट लगी। "आज उसके ऐसे दिन आ गये हैं कि उससे लड़की बेचने की बात कही जाती है।" (उप., पृ. 351-52)।

लेकिन इस बार अपराध मे धनिया भी शामिल है। रामसेवक को देखने के बाद कहती है, "उमिर तो ज्यादा है; लेकिन तुम लोगों की राय है, तो मुझे भी मंजूर है।" (उप., पृ. 355)। धनिया के सहमत होने पर भी होरी के मन में अपराधबोध

बना रहा। गोबर ने उसे समझाया, "जैजात न बचाते तो रहते कहाँ ?" और मुक्ति का मार्ग भी दिखाया, "रामसेवक के रुपये अदा कर देने चाहिये।" (उप., पृ. 358)। दातादीन के माध्यम से उसने दो सौ रुपए लिए थे, उन्हे अदा कर दे तो बेटी बेचने के अपराध से मुक्त हो जायगा। दामाद उम्र मे बडा है तो क्या, उसके हाथ बेटी को बेचा तो नही है। घर मे पोता है, उसके लिए दूध का इतजाम करना है। "यो अभी उसे गाय की कोई जल्दी न थी, मगर मगल यही है और वह गाय के बिना कैसे रह सकता है!" (उप , पृ 360)। उपन्यास के आरभ मे गाय रखने का सबध गृहस्थ की मर्यादा से है, अत मे उसका सबध पारिवारिक आवश्यकता से है। आरभ मे गाय उसके यहाँ आ गयी पर रहने न पाई, अत मे वह आ ही न पाई और होरी को अपनी साध पूरी किए बिना दुनिया से कूच करना पडा। विडंबना यह कि जो अपने पोते के लिए गाय न ले सका, उससे मृत्यु के समय गोदान करने को कहा गया। 'गोदान' नाम मे जो गहरा व्यग्य निहित है, वह उपन्यास के आदि और अत मे गाय सबधी कडियो को जोडने से स्पष्ट होता है।

एक विडबना यह कि होरी जब दूसरी गाय लेने की तैयारी कर रहा था, तब पहली गाय के हत्यारे ने आकर क्षमा माँगी। और इसी हत्यारे के कारण उसने बेटे की झूठी कसम खाई थी! दूसरी विडबना यह कि जो रूपा एक गाय के लिए बहन से लडती है "गाय मेरी होगी उसका दूध मै दहूँगी, उसका गोबर में पाथूँगी, तझे कुछ न मिलेगा।" (उप., पृ 35), उसके पास अब गाये ही गाये हैं, यद्यपि "इस द्वार पर ढोरो का एक रेवड देखकर उसे वह हष न हो सकता था, जो अपने द्वार पर एक गाय देखकर होता।" (उप , पृ 359-60)। उसने तै किया कि अबकी जायगी तो एक गाय साथ लेती जायगी। फिर सोचा, अपने जाने का इतजार न करे, रामसेवक से पूछकर किसी के हाथ गाय भेज दे। "मजूरी हो गयी, और दूसरे दिन एक अहीर के मारफत रूपा ने गाय भेज दी।" (उप , पृ 360)। अब सबसे बडी विडबना यह कि गाय के पहुँचने से पहले होरी की मृत्यु हो गई। गाय समय से पहुँच जाती तो शायद होरी बच जाता। बच सकता था पर न बच पाया, यही तो ट्रैजेडी है। शेक्सपियर के नाटक किंग लियर मे लियर और उसकी पुत्री कौर्डीलिया जेल मे है। एडमड ने अधिकारियो से कह रखा है कि उसे फाँसी दे दे और इसका दोष उसी के माथे मढ दे कि निराश होकर उसने आत्महत्या कर ली। एडमड का हृदय-परिवर्तन हुआ तो उसने तुरत आदमी भेजा कि फाँसी का आदेश रद्द करा दे। पर उसके अधिकारियो तक पहुँचने के पहले ही कौर्डीलिया को फाँसी दी जा चुकी थी। कौर्डीलिया बच जाती तो लियर भी कुछ दिन और जीता; दोनो बच सकते थे पर न बच पाए। यही तो ट्रैजेडी है।

पर यह नाटक का अत मात्र है। 'यही तो ट्रैजेडी है'—यह बात केवल एक घटना, जीवन की एक विडंबना के सदर्भ मे सही है। यूनानी ट्रैजेडी का दुःखांत होना आवश्यक नही है। मुख्य बात है करुणा जगानेवाली कथा, मनुष्य का वीरतापूर्ण

सघर्ष। लियर अपने दुखों को याद करते हुए कहता है :

I should e'en die with pity to see another thus.

(अपनी-सी हालत मे दूसरे को देखता तो दया के मारे प्राण निकल जाते।)

होरी की ट्रैजेडी तभी शुरू हो गई थी जब उसने भोला की गाय खरीदने का विचार किया था। उसके अपने चरित्र की कमजोरी यह है : "वह जानता था, घर मे रुपए नही हैं, अभी तक लगान नही चुकाया जा सका, बिसेसर साह का देना भी बाकी है, जिस पर आने रुपए का सूद चढ रहा है; लेकिन दरिद्रता मे जो एक प्रकार की अदूरदर्शिता होती है, वह निर्लज्जता, जो तकाजे, गाली और मार से भी भयभीत नही होती, उसने उसे प्रोत्साहित किया। बरसो से जो साध मन को आदोलित कर रही थी, उसने उसे विचलित कर दिया।" (*गोदान*, पृ. 7)। **गोदान** मे और लोग भी कर्ज लेते हैं पर जिस तरह होरी कर्ज लेता है, उस तरह और कोई नही लेता। उसके कर्ज लेने का विरोध धनिया करती है, गोबर करता है, लेकिन परिवार का अगुवा होने के नाते वह अपने आगे किसी की चलने नही देता। शेक्सपियर के महानाटको मे नायक बाहय परिस्थितियो से जूझते हुए ही परास्त नही होते, उनकी अपनी कमजोरी भी उन्हे पराजय की ओर ठेलती है। लेकिन यह कमजोरी कभी भी पराजय का मुख्य कारण नही होती। मुख्य कारण होती हैं बाहय परिस्थितियाँ। 'किंग लियर' के तीसरे अक मे वर्षा और शीत का सामना करते हुए लियर से होरी की तुलना मजे मे की जा सकती है "एक तो जाडों की रात, दूसरे माघ की वर्षा। मौत का-सा सन्नाटा छाया हुआ था। अँधेरा तक न सूझता था। होरी भोजन करके पुनिया के मटर के खेत की मेड पर अपनी मडैया मे लेटा हुआ था। चाहता था, शीत को भूल जाय और सो रहे; लेकिन तार-तार कबल और फटी हुई मिर्जई और शीत के झोको से गीली पुआल। इतने शत्रुओ के सम्मुख आने का नीद मे साहस न था। आज तमाखू भी न मिला कि उसी से मन बहलाता। उपला सुलगा लाया था, पर शीत मे वह भी बुझ गया। बेवाय फटे पैरो को पेट मे डालकर और हाथो को जाँघो के बीच मे दबाकर और कबल मे मुँह छिपाकर अपनी ही गर्म साँसो से अपने को गर्म करने की चेष्टा कर रहा था।" (*गोदान*, पृ. 120-21)।

यूनान के महान् नाटककारो के और शेक्सपियर के नायक अभिजात वर्ग के होते हैं, अपने दुख और सघर्ष के कारण उनका एक तरह से साधारणीकरण होता है, अपना अभिजातपन छोडकर वे सामान्य जनो के स्तर पर आ जाते हैं। शेक्सपियर ने 'किंग लियर' मे यह प्रक्रिया बहुत सचेत रूप से दिखाई है। पर इन नाटको मे किसान नायक नहीं है। हार्डी के उपन्यासो में धनी किसान नायक होते हैं और परिस्थितियो के दबाव से तबाह होते हैं। साधारण या निर्धन किसान को पूरे उपन्यास के मुख्य पात्र के रूप मे न तो हार्डी ने चित्रित किया है, न तोल्स्तोय ने। बेवाय फटे पैरो को पेट में डालकर और हाथों को जाँघों के बीच में दबाकर शीत मे ठिठुरनेवाला किसान नायक **गोदान** मे ही है। बहुत साधारण से उपकरण, बहुत

साधारण से शब्द, प्रेमचंद का हिंदी गद्य यहाँ उदात्त का उदाहरण बन गया है। वह कंबल साधारण होकर भी असाधारण है। "और कंबल तो उसके जन्म से भी पहले का है। बचपन में अपने बाप के साथ वह इसी में सोता था, जवानी में गोबर को लेकर इसी कबल मे उसके जाडे कटे थे और बुढ़ापे में आज वही बूढ़ा कंबल उसका साथी है; पर अब वह भोजन को चबानेवाला दाँत नहीं, दुखनेवाला दाँत है।" (उप., पृ 121)। कोई भी कवि यह लिखकर अपने कवि होने को सार्थक मान सकता था; यह कथाकार का गद्य है। सन् 30 के बाद प्रेमचंद और निराला ने यथार्थवाद के साथ हिंदी में कलात्मक गद्यलेखन का विकास भी किया।

केवल दुख सहने से ट्रैजेडी का सृजन नहीं होता। आदमी दुख सहता है, हारता है, फिर भी लडता है, इस सघर्ष से ट्रैजेडी का सृजन होता है। "जीवन के संघर्ष में उसे सदैव हार हुई; पर उसने कभी हिम्मत नहीं हारी। प्रत्येक हार जैसे उसे भाग्य से लडने की शक्ति दे देती थी।" (उप., पृ. 350)। ट्रैजेडी का विन्यास यहाँ है, हारने मे, फिर भी लडते रहने मे। कथा ट्रैजेडी है या नहीं, यह मृत्यु पर निर्भर नहीं है। धनिया की मृत्यु नही होती पर उसका चरित्र होरी से कम ट्रैजिक नही है। उसकी उम्र ही अभी क्या थी। "छत्तीसवाँ ही साल तो था; पर सारे बाल पक गए थे, चेहरे पर झुर्रियाँ पड गई थी, सारी देह ढल गई थी, वह सुंदर गेहुँआ रंग सँवला गया था और आँखों से भी कम सूझने लगा था।" जानती थी, कितना ही पेट-तन काटे, लगान बेबाक होना मुश्किल है। "फिर भी वह हार न मानती थी।" (उप., पृ 5)। जो बात होरी के बारे में प्रेमचंद ने उपन्यास के अंत में कही है, वह धनिया के बारे मे उन्होंने उपन्यास के आरंभ मे कह दी है। धनिया से तुलनीय है निराला की 'देवी'। "उम्र पच्चीस साल से कम। दोनो स्तन खुले हुए। प्रकृति की मारों से लडती हुई, मुरझाकर, मुमकिन, किसी को पच्चीस साल से कुछ ज्यादा जँचे। ज्योतिष का सुख-दुःख चक्र इसके जीवन में अचल हो गया है। सहते-सहते अब दुःख का अस्तित्व इसके पास न होगा।"

'देवी' लडती है, प्रकृति की मारों से। पर केवल इन मारों से नहीं। सड़क पार करना उसके लिए बड़ा सघर्ष है। "पानी पीने के लिए रास्ते के उस पार जाना पडता था। पानी की कल उसी तरफ थी। इस पार से उस पार तक इतना रास्ता पार करते उसे आधे घटे से ज़्यादा लग जाता था। एक फलाँग पर कोई इक्का या ताँगा आता होता, तो पगली खड़ी हुई उसके निकल जाने की प्रतीक्षा करती रहती।" उदात्त का सृजन केवल योद्धाओं के चित्रण से नहीं होता, सामान्य जनों के चित्रण से भी उसका सृजन सभव है। निराला ने देवी के लिए कहा था, "लोग नैपोलियन की वीरता की प्रशसा करते हैं। पर यह कितनी बड़ी शक्ति है, कोई नहीं सोचता।"

निराला और प्रेमचंद एक ही समय, एक ही मार्ग पर चल रहे थे। **गोदान** ट्रैजेडी है। यहाँ दो मुख्य पात्र हैं—धनिया और होरी। एक की मृत्यु होती है, एक की नहीं होती। ट्रैजेडी केवल एक के चरित से नहीं, दोनों के चरित मिलाकर बनी है।

कमलकिशोर गोयनका का विचार है कि होरी की मौत न तो हीरोइक है, न घनीभूत त्रासदी की अनुभूति दे पाती है। होरी मजदूरी करते मरा, लू लगने से मरा। उसे किस तरह मरना चाहिए था? "वह जिस शोषण और विषमता के चक्र मे पिसता रहा है और उसमें जीवित रहते हुए वह धीरे-धीरे रिसता रहा है, यदि वह उन परिस्थितियों में संघर्ष करते हुए मरता तब उसकी मौत उसके जीवन-चरित्र को एक नए ही रग में रँग देती और उसकी मौत सूरदास के समान 'हीरोइक' मौत बन जाती। इस स्थिति के बावजूद प्रेमचद ने होरी की मौत को भी सूरदास के समान गौरवान्वित करने की चेष्टा की है, जिसके कारण होरी की मौत न तो 'हीरोइक' बन पाती है और न घनीभूत त्रासदी की अनुभूति ही दे पाती है। प्रेमचद सूरदास और होरी दोनो की हारों मे विजय के गौरव के दर्शन करते हैं, और समान रूप से दोनों के साथ एक-सा ट्रीटमेट करते हैं, जिसके कारण होरी की मौत सूरदास के समान 'हीरोइक' नही बन पाती, क्योंकि वह सूरदास के समान न तो सक्रिय सघर्ष करता है और न महत लक्ष्यों के प्रति प्रतिबद्ध है।" (कमल किशोर गोयनका, *प्रेमचद : अध्ययन की नई दिशाएँ,* दिल्ली 1981, पृ., 123-24)। प्रेमचद के लिए होरी परिस्थितियों से सघर्ष करता है, हारता है, फिर भी लडता है; गोयनका के लिए वह शोषण और विषमता के चक्र मे **पिसता रहा है,** उस चक्र मे जीवित रहते हुए **रिसता रहा है,** वह सूरदास के समान **सक्रिय संघर्ष** नहीं करता, अर्थात् वह निष्क्रियता का प्रतीक है। वह चक्र मे पिसते रहने और रिसते रहने के अलावा और कुछ नही कर पाता। एक विशेष प्रकार के वामपथी लेखन मे दुनिया के किसान आमतौर से, भारत के किसान खासतौर से, निष्क्रिय होते हैं। होरी मानो इनका प्रतिनिधि है। **गोदान** की लोकप्रियता का यही कारण होगा। वामपथी लेखन की इसी दृष्टि के अनुरूप गोयनका की यह राय है कि "होरी की कथा इस भूमि से (के) अनन्तकाल से पीड़ित, शोषित, दलित किसानों की कथा को अपने अदर समेटे हुए है।" (उप., पृ. 126)। सूरदास की मौत हीरोइक है तो वह अपवाद है, मरना तो होरी की तरह चाहिए, वरना उपन्यास का नायक किसानों का प्रतिनिधि न बन पाएगा।

विजेद्रनारायण सिंह वामपंथी लेखक हैं। उनका कहना है, "प्रेमचद के किसान क्रांति तो दूर, विद्रोह की भी बात नही करते हैं। उनके किसान विद्रोही नही हैं। प्रेमचंद की यह इच्छा जरूर है कि किसान विद्रोह करे। 'प्रेमाश्रम' के मनोहर और बलराज के चरित्र मे विद्रोह के स्फुलिग के दर्शन होते हैं। प्रेमचद के संपूर्ण कथा-साहित्य मे विद्रोह की थोड़ी चिनगारियाँ 'प्रेमाश्रम' के मनोहर और बलराज में मिलती हैं। किंतु, ये नियम नहीं वरन् अपवाद हैं। नियम है होरी।" (विजेंद्रनारायण सिंह, *'प्रेमचंद : सवर्ण से अवर्ण तक की यात्रा का समाजशास्त्र,'* 'आलोचना,' जनवरी-जून, 1983, पृ.,88 और 93)। संघर्ष करनेवाले पात्र किसानों के प्रतिनिधि नही हैं—यह स्थापना विजेंद्रनारायण सिंह की है,

कमलकिशोर गोयनका की है। गोयनका ने होरी की मौत का विवेचन वामपंथी पैंतरा साधे हुए किया है, यह उनके अनेक वाक्यो से प्रकट हो जाता है, यथा–"यदि होरी की जमीन खूनी जमींदार एवं पचो के पेट में समा जाती और वह मजदूर बनकर जीवन के कष्टों को झेलता और उन्हीं परिस्थितियों मे भूखा रहकर मर जाता, तब वह वर्तमान त्रासदी से निश्चित रूप से अधिक घनीभूत एव घनघोर त्रासदी होती।" (*नई दिशाएँ*, पृ, 125)।

प्रेमचद ऐसा क्यो नही कर पाए, इसका कारण विजेद्रनारायण सिंह ने बताया है। "प्रेमचद के कथा-साहित्य के किसान, ये ही मध्यकिसान हैं। उनके पास जमीन भी है और थोडे औजार भी तथा बैल भी।" और "क्रांति के सबंध मे इन किसानो की ढुलमुल नीति का लेनिन को पूरी तरह एहसास था।" (*आलोचना*, पृ 90-91)। किसान न सही, क्या अन्य किसी तरह के लोग देहात मे क्रांतिकारी या विद्रोही हो सकते है? और प्रेमचद ने इन्हे पहचाना था क्या? विजेद्रनारायण सिंह कहते है, "प्रेमचद के सबसे विद्रोही नायक 'रगभूमि' का चमार सूरदास और 'कफन' के घीसू-माधव हैं। ये किसान नही, बल्कि अछूत हैं।" (उप पृ 96)।

सूरदास न तो चमडे का कोई काम करता है न किसी जमीदार या किसान के यहाँ मजूरी करता है। वह भीख माँगता है और यह पेशा चमारो से ज्यादा ब्राह्मण अपनाए हुए हैं। जैसा कि **गोदान** मे धनिया ने दातादीन पंडित को लक्ष्य करके कहा था, "भीख माँगो **तुम** जो भिखमगे की जात हो।" (*गोदान*, पृ. 209)। समाज में सूरदास की स्थिति अछूतो की-सी नही है। गाँव मे ठाकुर जी का मंदिर है। इसके पुजारी दयागिरि सगुण ईश्वर के उपासक है। मंदिर के चबूतरे पर सारे दिन दस-पाँच आदमी लेटे या बैठे रहते है। नायक राम पडा समेत वहाँ अनेक जातियो के लोग गाते-बजाते हैं। "सूरदास इस सगत का प्राण था।" (*रंगभूमि*, इलाहाबाद, 1978, पृ. 20)। बनारस के पास पाँडेपुर की इस बस्ती मे छुआछूत को लेकर वैसी कट्टरता नही है, जैसी आमतौर से अवध के गाँवो मे देखी जाती है। सूरदास पाँडेपुर के समाज का सम्मानित सदस्य है। मंदिर मे देर से पहुँचा, प्रेमचद कहते है, "सभासद आ गए थे, केवल सभापति की कमी थी।" (उप)। इस सम्मानित स्थिति के अलावा सूरदास के पास जमीन भी है, इतनी जमीन है कि उस पर कारखाना लगाया जा सकता है, गोदाम, दफ्तर, मैनेजर का बँगला, श्रमजीवियों के कमरे आदि भी बनाए जा सकते हैं। वहाँ आसपास के जानवर चरने आया करते थे। उनके चरने के वह पैसे नहीं लेता, चाहे तो ले सकता है; चाहे तो जमीन को बेच भी सकता है। वह जमीन के लिए लडता है तो अछूतो के नहीं, उन्ही किसानों के हित मे लडता है जिनसे विजेंद्रपाल सिंह ने उसे अलग किया है। जहाँ तक घीसू और माधव का संबध है, उन्हे खेत-मजदूरो का प्रतिनिधि नही कहा जा सकता। "गाँव मे काम की कमी न थी" लेकिन वे काम तभी करते थे जब फाके होने लगे। उनके काम करने का ढंग यह था कि "घीसू एक दिन काम करता तो

तीन दिन आराम करता। माधव इतना कमजोर था कि आध घंटे काम करता तो घंटे भर चिलम पीता।" मजदूरी के बदले व चोरी करके पेट भरना ज्यादा अच्छा समझते थे। "मटर-आलू की फसल मे दूसरो के खेतो से मटर-आलू उखाड लाते और भून-भूनकर खा लेते या दस-पाँच ऊख उखाड लाते और रात को चूसते।" माधव का ब्याह हुआ तो उसकी पत्नी ने "इस खानदान मे व्यवस्था की नीव डाली।" यदि घीसू और माधव क्रांतिकारी थे तो यह स्त्री क्रांतिविरोधी थी, क्योंकि वह उनके जीवन को व्यवस्थित करना चाहती थी। वह जरूर मजदूरी करती होगी क्योंकि वह "इन दोनो बेगैरतो का दोजख भरती रहती थी।" उसके आने के बाद ये दोनों अकडने लगे थे, कोई काम को बुलाता तो "दुगुनी मजदूरी माँगते।" जब वह प्रसव-वेदना मे मर रही थी, तो "यह दोनो शायद इसी इतजार मे थे कि वह मर जाए, तो आराम से सोएँ।"

गाँवो में चमार इसी तरह के होते हैं, खेत-मजदर ऐसे ही निर्दयी और स्वार्थी होते हैं, यह समझना भ्रम है। प्रेमचद इस कहानी से दिखाना यह चाहते हैं कि जो किसान दिन-रात मेहनत करते हैं, उनकी हालत इनसे ज्यादा अच्छी नहीं है। किसानों का श्रमफल ऊपरवाले लूट ले जाते हैं। घीसू और माधव का श्रमफल किसान लूटते हो, यह स्थिति नही है, श्रमफल किसानो का लूटा जाता है और उसे लूटनेवाले किसानो से भिन्न वर्ग के हैं। प्रेमचद कहते हैं, "जिस समाज मे रात-दिन मेहनत करनेवालो की हालत उनकी हालत से कुछ बहुत अच्छी न थी, और किसानो के मुकाबले मे वे लोग जो किसानो की दुर्बलताओ से लाभ उठाना जानते थे, कहीं ज्यादा सपन्न थे, वहाँ इस तरह की मनोवृत्ति का पैदा हो जाना कोई अचरज की बात न थी।" घीसू को सिर्फ इस बात से तस्कीन है कि "अगर वह फटेहाल है तो कम से कम उसे किसानो की तरह जी-तोड मेहनत नहीं करनी पडती, और उसकी सरलता और निरीहता से दूसरे लोग बेजा फायदा तो नही उठाते।" (*धनंजय वर्मा. हिदी की प्रगतिशील कहानियाँ,* दिल्ली, 1986, पृ 12-14)। जी-तोड मेहनत किसान करते हैं, घीसू और माधव नही। जो लोग सपन्न हैं, वे किसानो की दुर्बलताओ से लाभ उठाते हैं, माधव और घीसू की दुर्बलताओं से नहीं। यदि ये मेहनती और शोषित किसान घीसू और माधव की तरह 'विद्रोही' हो जाएँ तो खेतो में चोरी से उखाड लाने के लिए आलू, मटर, ऊख, कुछ भी सुलभ न हो। विद्रोह करने का मतलब है खेती का काम बंद कर देना। लेकिन विद्रोही बनने के बाद खाएँगे क्या?

घीसू और माधव गाँव के जमीदार के पास गए। वहाँ दो रुपए वसूल किए। फिर दो-दो चार-चार आने बनियों और महाजनों से उगाहे। "एक घंटे मे घीसू के पास पाँच रुपए की अच्छी रकम जमा हो गई।" (उप , पृ. 16)। खेती छोडने के बाद 'विद्रोही' किसान भी यही करते? विजेंद्रनारायण कहते हैं, "प्रेमचंद के कथा साहित्य का आरंभ मध्यवर्ग के आख्यान से हुआ था। (1913 की कहानी **बाँका**

जमींदार मे विद्रोही बजारें का चित्रण भी देखें।—रा. वि.) बाद में उन्होंने भारतीय कृषक की दरिद्रता की महागाथा लिखी, किंतु उसकी अंतिम परिणति जनता के निम्नतम वर्ग यानी अवर्णों के जीवन की करुणा के यथार्थवादी आकलन में होती है। प्रेमचंद के कथा साहित्य का यह विकास उनके निजी मानसिक विकास का पूर्ण प्रतिफलन है। वर्ण से अवर्ण तक की इस यात्रा की इस पहचान में उनके यथार्थवादी रुझान की परख हो जाती है। किसानो के संबंध में बड़ी ममता से रची गई अपनी ही प्रतिभा के भजन मे उन्हे कोई हिचक नहीं होती है।" (उप., पृ. 97-98)। क्रांति के दायरे से मध्य ही नहीं, गरीब किसान भी निकाल दिए गए हैं, रह गए हैं केवल अछूत। वर्ग का स्थान वर्ण ने ले लिया है। वर्ण में भी एक जाति विशेष के सदस्य ही विद्रोह करते हैं। प्रेमचद को अपनी प्रतिभा के भंजन में हिचक नहीं थी तो हमे ही **गोदान** के भजन में हिचक क्यो हो? कठिनाई यह है कि अपने कथा-साहित्य के विकास में तथा अपने निजी मानसिक विकास में प्रेमचंद आगे बढ़ने के बदले पीछे की ओर लौटते हैं। **रंगभूमि** के सूरदास के बाद उन्होंने **गोदान** मे होरी की कथा लिखी—पूर्ण सहानुभूति के साथ। इसे आगे बढ़ना कैसे कहें? सूरदास की सक्रियता, होरी की निष्क्रियता—गोयनका और विजेंद्रनारायण सिंह की यह सामान्य भूमि है। होरी यदि मज़दूर बनकर जीवन के कष्टों को झेलता हुआ मर जाता तो उसकी त्रासदी निश्चित रूप से अधिक घनीभूत एवं घनघोर होती। होरी के बारे मे गोयनका और विजेद्रनारायण सिंह की धारणाओं का सार तत्व एक ही है।

विजेद्रनारायण सिंह का लेख उस दौर की रचना है जब वामपंथी विचारधारा की एक शाखा ने जनवादी क्रांति की जगह सर्वहारा क्रांति का लक्ष्य स्थापित किया और इसकी मुख्य शक्ति माना खेत-मज़दूरों को। जो अधिक उदार थे, उन्होंने निर्धन किसानो को भी शामिल कर लिया। यह क्रांति बहुत जल्दी शूद्र और द्विज का संघर्ष बन गई। उक्त शाखा से जुड़े हुए लेखकों ने इस संघर्ष को प्रेमचंद पर अरोपित किया। स्वाधीनता संग्राम का अर्थ है सामंत विरोधी संग्राम, सामंत विरोधी सग्राम का अर्थ है द्विज-शूद्र सग्राम। इस परिप्रेक्ष्य में प्रेमचंद का ही नहीं, समूचे भक्ति साहित्य का पुनर्मूल्याकन जरूरी हो गया। निर्गुण धारा प्रगतिशील, सगुण धारा प्रतिक्रियावादी, इसमें कृष्णभक्ति कम, रामभक्ति विशेष प्रतिक्रियावादी सिद्ध हुई।

गोयनका ने प्रेमचंद के उपन्यासों के शिल्प-विधान पर अपना शोधग्रंथ उस समय पूरा किया था जब आदमी अपने भीतर से टूटता था, उसका मोहभंग होता था और उसके मोहभग की यह प्रक्रिया जीवन की सबसे बड़ी ट्रैजेडी मानी जाती थी। बाहरी परिस्थितियों से जूझना गौण था, मुख्य जूझना अपने भीतर होता था। **गोबान** मे होरी टूटा, होरी के साथ प्रेमचंद टूटे। "होरी का जन्म लेखक की गहन, घनीभूत और लंबे समय तक चलनेवाली पीड़ा का परिणाम है।... होरी का जन्म

लेखक के 'मोहभंग' का परिणाम ही नहीं है, बल्कि प्रेमचद के आस्था-स्तंभ के टूटने की पीडा के बीच होरी का साहित्य में जन्म होता है । आस्थाओं का विघटन, प्रेमचंद के लिए, उनका स्वय का टूटना है और यह किसी भी लेखक के लिए चरम पीड़ाजनक स्थिति है । प्रेमचद का प्रेमचद के रूप मे टूटकर गोदानकार के रूप मे नया रूप ग्रहण करना एक बडी घटना है, और इसी बडी घटना से एक साधारण किसान होरी के जन्म की कहानी प्रारभ होती है ।" (*शिल्प विधान,* पृ 450)। मुक्तिबोध की, व्यक्तित्व के रूपातरणवाली बात आपको याद आती है न ?

दिसबर 1933 मे हिंदू सप्रदायवाद की आलोचना करते हुए प्रेमचद ने विश्वास प्रकट किया था कि "निकट भविष्य मे आजकल का पूँजीवाद जमीन पर पडा होगा और उसकी लाश पर समाजवाद की धारा बह रही होगी ।" (*प्रेमचद के विचार,* भाग एक, पृ. 224-25)।

होरी को चाहे जो कुछ हुआ हो, प्रेमचद की आस्था अटूट थी । समाजवाद की विजय होगी और पूँजीवाद पराजित होगा, उनका यह विश्वास निरतर दृढ़ होता गया । गोयनका का सारा प्रयत्न इस उद्देश्य के लिए है कि प्रेमचद को समाजवाद की छाया से बचाया जाए । **प्रेमाश्रम** मे उन्होने भौतिकवाद पर अध्यात्मवाद की विजय दिखाई, अध्यात्मवाद को गाँधीवाद का पर्याय माना । **गोदान** में प्रेमचद का मोहभग हुआ; स्पष्ट ही गाँधीवाद और अध्यात्मवाद के प्रति उनका मोह टूटा होगा । इसके बाद वह समाजवाद की दिशा मे न बढ़े, बढ़े तो अस्तित्ववाद की दिशा में ! गोयनका ने प्रेमचद के लेख 'महाजनी सभ्यता' का ज़िक्र किया है लेकिन उसमे जो सोवियत सघ और समाजवाद का जोरदार समर्थन है, उसका ज़िक्र नही किया । उनके लिए महाजनी सभ्यता समाजवाद से टकरानेवाली पूँजीवादी सभ्यता नहीं है वरन् दातादीन और मँगरू साह की सभ्यता है, जिससे किसान और जमींदार दोनों तबाह होते हैं । "कृषक की इस परिणति के लिए प्रेमचद महाजनी सभ्यता को मुख्यरूप से दोषी मानते हैं । महाजनो के जाल में किसान और जमींदार फँसे हैं । इसका परिणाम दोनों को भुगतना पड़ता है । किसान जमीन की रक्षा के लिए मजदूरी करते हुए मरने को विवश होता है, और जमींदार का सुख-ससार छिन्न-भिन्न होकर ध्वस्त हो जाता है ।" (*शिल्प विधान,* पृ. 449)।

ससार दुख का कारण है । यहाँ गरीब अमीर दोनो दुख सहते हैं । किसान अपना दुख तो देखता है, जमींदार के दुख को वह क्या जाने ! यह विचार प्रेमचंद का नहीं, बगुला भगत्त रायसाहब का है । उनके दर्शनशास्त्र का रहस्य कुछ तो होरी उनके सामने ही समझ गया था—"होरी ने मन में सोचा, अभी यह कैसी कैसी नीति और धरम की बातें कर रहे थे और एकाएक इतने गरम हो गए !" (*गोदान,* पृ. 16) जो कसर रह गई थी, उसे गोबर ने पूरा कर दिया । होरी ने कहा, "हमें अपने ही पेट की चिंता है, उन्हें हजारो चिंताएँ घेरे रहती हैं ।" इस पर गोबर ने सवाल किया, "तो फिर अपना इलाका हमें क्यों नहीं दे देते ! हम अपने खेत, बैल, हल,

कुदाल सब देने को तैयार हैं। करेंगे बदला ?" (उप , पृ 18)। गोयनका ने महाजनी सभ्यता की जो व्याख्या की है, उसका जवाब **गोदान** में मौजूद है। महाजनी सभ्यता को गाँव के सूदखोरों तक सीमित किया जाए, तो भी उसे उपन्यास की मुख्य समस्या मानने मे गोयनका को दुविधा है। "प्रेमचद के अनुसार जमीदार, साहूकार, सरकार, मिलमालिक आदि अनेक शक्तियाँ किसान को अपना शिकार बनाती हैं, लेकिन वे यह मानत है कि किसाना के उद्धार का सबसे आवश्यक अग उन्हे महाजन क पजे से निकालना है।" (*शिल्प-विधान,* पृ. 449) लेकिन—"ऋण की समस्या भी 'गोदान' की मूल समस्या नही है।" (उप , पृ 485)। दविधा का कारण यह है कि गोयनका कृषि-सस्कृति को अग्रेज़ी राज और महाजनी शोषण जैसी अस्थायी चीजो से थोडा अलग हटाकर देखना चाहते हैं। "'गोदान' का उद्देश्य कृषि सस्कृति के ध्वस की यथार्थ कहानी कहना है।" (उप)। यह बात उन्होने होरी की मौतवाले निबध मे दोहराई है। "होरी की मौत इस अर्थ मे महत्त्वपूर्ण बनती है कि वह जिस कृषक सस्कृति मे जीता है, साँस लेता है, वह उसकी मृत्यु के साथ ही ध्वस की ओर उन्मुख होती है।" (*नई दिशाएँ,* पृ 126)। तब नई दिशाओ का नयापन किस बात मे है ? नयापन है **गोदान** के शिल्प-विधान को उलट देने मे। पहले जो बाते कथाशिल्प को सँवारती थी, वे अब उसे बिगाडती है। **शिल्प-विधान** के अनुसार "'गोदान' मे लेखकीय टिप्पणियो के कथा सकेत नही है। अधिकाश कथा सकेत पात्रो के सवादो से दिए गए हैं जो अत्यत स्वाभाविक और सगत है।" (पृ 457)। **नई दिशाएँ** के अनुसार "प्रेमचद ने 'गोदान' के अतिम अध्याय बडी शीघ्रता मे लिखे थे, क्योंकि कई वर्षों से लिखने पर भी वह समाप्त नही हो रहा था। 'गोदान' के पैंतीसवे अध्याय की आरंभिक पक्तियो मे यह ध्वनि निकलती है कि लेखक ने अपने नायक के अंतिम दिनो की घटनाओ को प्रस्तुत करने का निर्णय कर लिया है और इसके लिए पाठक को अपने विश्वास मे लेना चाहते है। लेखक ने अध्याय के आरभ मे लिखा है लेखक इस वर्णन से पाठक के मन मे यह बात उत्पन्न कर देना चाहता है कि होरी की अंतिम दशा आ पहुँची है और वह मृत्यु की ओर चल पडा है। इसी अध्याय के दूसरे अवतरण मे प्रेमचद छत्तीसवे अध्याय के आरंभ मे होरी की भावी मौत की स्पष्ट शब्दो मे घोषणा कर देते है।" (पृ 121-22)।

शिल्प-विधान के अनुसार "होरी का यह वाक्य—'साठे तक पहुँचने की नौबत न आने पाएगी धनिया,' सत्य होने पर पाठक के मन में बार-बार उभरता है।" (पृ 457-58)। **नई दिशाएँ** मे वह पाठक के मन मे एक बार भी नही उभरता क्योकि प्रेमचद उपन्यास खत्म करने की जल्दी में हैं और होरी के सहज रूप से मरने का इतजार नही कर सकते! **शिल्प-विधान** के अनुसार "लेखक ने एक कथा संकेत दूसरी पद्धति के द्वारा दिया है। दूसरी बार गोबर के शहर जाते समय का वर्णन करते हुए लेखक ने लिखा है, 'जब गोबर उसके चरणों पर झुका, तो

होरी रो पडा, मानो फिर उसे पुत्र के दर्शन न होंगे ।' इस वाक्य से होरी की भावी मृत्यु का सकेत मिल जाता है ।'' (पृ 458)। **नई दिशाएँ** के अनुसार यह सकेत मिलना ही गुनाह है । होरी का रो पडना तो स्वाभाविक है ''परतु 'मानो फिर उसे पुत्र के दर्शन न होगे' लिखकर लेखक होरी की भावी मृत्यु की स्पष्ट रूप से घोषणा कर देता है ।'' (पृ 122)। **नई दिशाएँ** के निबधो मे प्रेमचद कथा-शिल्पी के ऊँचे आसन से नीचे आ गए हैं । यही नही, वह समाज-सुधारक के आसन से भी कुछ नीचे खिसक आए हैं । 'एक चौकानेवाला पत्र,' विधवा विवाह से सबधित है । इस पत्र मे प्रेमचद ने लिखा था, ''मैंने विधवा का विवाह कराके हिंदू नारी को आदर्श से गिरा दिया था । उस वक्त जवानी की उम्र थी और सुधार की प्रवृत्ति जोरो पर थी ।'' (*नई दिशाएँ*, पृ 13)। इस पत्र पर कई तरह से विचार करने के बाद गोयनका ने यह निष्कर्ष निकाला है, ''यह पत्र उनकी परिवर्तित विचारधारा का प्रामाणिक रूप से उद्घाटन करता है तथा बताता है कि एक समय ऐसा भी आया, जब प्रेमचद ने अपनी प्रगतिशील एव आधुनिक विचारधारा को छोडकर पुरानी परपरागत विचारधारा को स्वीकार कर लिया ।'' (उप , पृ 16)। इससे तुलनीय है गोयनका की यह धारणा कि सूरदास की मौत हीरोइक है, होरी की मौत हीरोइक नही है ।

6. विचारधारा का प्रश्न

प्रेमचद के शिल्प मे ही गिरावट नही आई, उनकी विचारधारा भी अपनी प्रगतिशीलता छोडकर प्रतिक्रियावादी बन गई ! गोयनका प्रगतिशील विचारधारा के हामी बनकर प्रेमचद की आलोचना कर रहे है ! उन्हे झुनिया की याद क्यो नही आई ? उपन्यास के तीसरे ही अध्याय मे भोला होरी से कहता है, ''लडकी है झुनिया, वह भी नसीब की खोटी उसका आदमी बबई मे दूध की दूकान करता था । उन दिनो वहाँ हिंदू-मुसलमानो मे दगा हुआ, तो किसी ने उसके पेट मे छुरा भोक दिया ।'' (*गोदान*, पृ 24)। होरी ने झुनिया को अपने यहाँ शरण दी, पटेश्वरी को चिंता यह है—''झुनिया को देखकर दूसरी विधवाओ का मन बढेगा कि नहीं ?'' (उप., पृ.130)। झुनिया सबधी घटना उपन्यास का वह मोड है जो होरी के जीवन को अनिवार्य रूप से ट्रैजेडी बना देता है । गर्भवती झुनिया को घर मे रखना होरी का सबसे वीरतापूर्ण कार्य है । वह जानता है, इसका परिणाम क्या होगा, वह सबकुछ भोगने को तैयार है । वह सदियो से चली आती परपरा को चुनौती दे रहा है, रूढ़ियों को तोडने की समस्या कर्ज की समस्या से घुलमिल जाती है । जो महाजन हैं, वही समाज के नेता हैं, रूढियों के सबसे बडे रक्षक हैं । इस घटना के सहारे प्रेमचंद ने उनकी नैतिकता की असिलयत जाहिर कर दी है । इस घटना से प्रेमचद ने धनिया की क्रांतिकारिता को उभारा है । झुनिया और गोबर का ब्याह

नहीं हुआ पर ब्याह की रस्म से एक ऊँची नैतिकता और है : "ब्याहता न सही ; पर उसकी बाँह तो पकडी है मेरे बेटे ने ही।" (उप., पृ. 128)। प्रेमचंद विधवा-विवाह के समर्थन से दस कदम आगे बढकर इस नई नैतिकता के प्रति सहानुभूति जगाते है । समाज के नेताओ को उस शिशु की जरा भी चिंता नहीं है जो झुनिया के गर्भ मे है । उसकी चिंता धनिया को है । "झुनिया के गर्भ मे जो बालक है, वह धनिया ही के हृदय का टुकडा तो है । हँसी के डर से उसके प्राण कैसे ले लेती !" (उप) । फिर पोता होने पर धनिया ने गला फाडकर जब सोहर गाए, जिससे सारा गाँव सुन ले, तब उसने इन्कलाब जिंदाबाद के नारे लगानेवालो को मात कर दिया ।

प्रेमचद के **हमखुर्मा व हमसवाब** उपन्यास का हिंदी रूपातर 1907 मे **प्रेमा** नाम से छपा । उसमे उन्होने विधवा का विवाह कराया । 1927 मे **प्रतिज्ञा** उपन्यास छपा । यह पहले उपन्यास का सशोधित रूप था । प्रेमचद ने डॉ. रघुवीर सिंह को लिखा, "उस रूप मे मैं उस पुस्तक (प्रेमा) को नही देखना चाहता था । इसलिए मैंने कथा मे उलट-फेर कर इसे लिख डाला । आप देखेंगे कि आरंभ दोनो का भिन्न है, अत भी भिन्न, समानता केवल पात्रो के नामो मे है ।" (*नई दिशाएँ*, पृ 13)। इससे निष्कर्ष निकलता है कि सन् 27 मे प्रेमचद के कदम डगमगाए थे और मई 1932 मे डॉ रघुवीर सिंह को लिखे पत्र मे वह अपने ढुलमुलपन को उचित ठहरा रहे थे । पर 1932 मे उन्होने अपने को सँभाल लिया था और उस साल **गोदान** शुरू करते समय उन्होने तै कर लिया था कि विधवा झुनिया और गोबर के अनब्याहे प्रेमसबध का समर्थन करेगे । तीसरे अध्याय मे भोला ने कहा, "जाकर लिवा लाया कि दूसरी सगाई कर दूँगा, मगर वह राजी ही नही होती ।" (*गोदान*, पृ 24)। विधवा विवाह का समर्थन तो यहाँ हो ही गया । भोला दूसरी सगाई की बात यो करता है मानो यह बहुत साधारण बात हो । पर झुनिया राजी ही नहीं होती क्योंकि उसे दूसरी भूमिका निभानी है । इसी अध्याय मे गोबर से झुनिया का परिचय होता है, और पहले ही प्रेमसंवाद के बाद–"उसका मुँह उदास हो गया । वह विधवा है ।" (उप , पृ 26)। मई 1932 मे प्रेमचद ने रघुवीर सिंह को पत्र लिखा । 25 फरवरी, 1932 को उन्होने दयानरायन निगम को सूचना दी थी, "एक नया नाविल भी शुरू कर दिया है ।" (*चिट्ठी-पत्री*, इलाहाबाद, 1962, पृ. 192), यह नया नाविल **गोदान** ही हो सकता है । 17 जून, 1932 को उन्होंने **कर्मभूमि** के बारे में उन्हें लिखा, "मेरा नया नाविल कर्मभूमि छप रहा है ।" (उप. पृ. 196)। **कर्मभूमि** लिखना उन्होने 16 अप्रैल, 1931 को शुरू किया था । (*प्रेमचंद : कलम का सिपाही*, पृ 356)। 13 मई, 1932 के पत्र में प्रेमचंद ने उन्हें लिखा, "मेरा नाविल बेवा तैयार हो गया है ।" (*चिट्ठी-पत्री*, भाग 1, पृ. 194)। यह भी 'नया नाविल' न था, **प्रतिज्ञा** का रूपांतर था । यदि प्रेमचंद ने फरवरी 1932 में **गोदान** लिखना शुरू किया तो यह बहुत संभव है कि उन्होंने आधी मई तक उसके तीन

अध्याय पूरे कर लिए हो। उस हालत मे या तो वह रघुवीर सिंह को महज अपनी 1927 की वैचारिक स्थिति बता रहे थे, या फिर उन्हें चकमा दे रहे थे! जो भी हो, **गोदान** लिखते समय वह **प्रेमा** की जमीन से आगे बढ़कर विधवा के अवैध प्रेम-संबंध का समर्थन कर रहे थे, इसमे सदेह की गुजाइश नही।

गोयनका ने रघुवीर सिंह को लिखे पत्र के सिलसिले मे एक दिलचस्प सवाल किया है, "क्या ऐसा तो नहीं कि प्रेमचंद पर महात्मा गाँधी के विधवा विवाह सबधी विचारो का इतना गहरा प्रभाव पडा कि उन्होने अपनी पूर्व त्रुटि को ठीक करने के लिए नए उपन्यास की रचना कर डाली? गाँधी जी विधवा विवाह को पाप मानते थे।" (*नई दिशाएँ*, पृ 13-15)। अब यदि गाँधी जी के प्रभाव से प्रेमचद ने विधवा-विवाह का समर्थन वापस लिया, अपनी प्रगतिशील और आधुनिक विचारधारा छोड दी तब गाँधीवाद किस तरह की विचारधारा हुई? इस विचारधारा के कई पहलू थे और प्रेमचद उन सभी से सहमत न थे, खासतौर से **गोदान** की रचनावाले दौर मे।

प्रेमचद पर अपना शोधकार्य शैलेश जैदी ने 1972 मे आरभ किया था, उनका शोध-ग्रथ **प्रेमचंद की उपन्यास यात्रा : नव मूल्यांकन** 1978 मे प्रकाशित हुआ। अपने नव मूल्याकन के दौरान जैदी ने पूरे शोध-ग्रथ मे गोयनका का उल्लेख नही किया है, केवल परिशिष्ट मे अन्य लेखको के साथ उनकी पुस्तक पर भी टिप्पणी लिखी है। इसके अनुसार गोयनका ने अपने शोधप्रबध मे प्रेमचद के उपन्यासो का 'मनोवैज्ञानिक विश्लेषण' प्रस्तुत किया है पर "बहुत अधिक विस्तार मे आने के कारण डॉ गोयनका की दृष्टि आग्रहपूर्ण बन गई है।" हाँ, शिल्प-शैली का विवेचन "अनेक स्थलो पर लेखक से असहमति होते हुए भी" स्तुत्य है। (*उपन्यास यात्रा*, पृ 515)। जहाँ गोयनका से जैदी की सहमति है, उन स्थलो को विशेष स्तुत्य मानना चाहिए। ऐसे स्थल अनेक हैं, यद्यपि स्वय जैदी ने उनका उल्लेख नही किया। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं.

1. गोयनका—"डॉ. इद्रनाथ मदान इसे 'एक कृषि सबधी महाकाव्य' तथा डॉ रामविलास शर्मा 'किसान जीवन का महाकाव्य' मानते हैं। क्या कृषक जीवन पर सर्वप्रथम उपन्यास होने मात्र से 'प्रेमाश्रम' को महाकाव्य के समकक्ष रखा जा सकता है? 'प्रेमाश्रम' की मूल चेतना भी किसान-जमीदार के सघर्ष और परस्पर संबंधो तक ही सीमित नही है।" (पृ 222-23)।

जैदी—"'प्रेमाश्रम' पर जब आलोचको की निगाह पड़ी तो किसी ने कहा यह किसान जीवन का महाकाव्य है।" (पृ 159)। "'प्रेमाश्रम' को कृषक जीवन का महाकाव्य कहने से पहले इसकी जाँच की जानी चाहिए कि उपन्यास के कितने पृष्ठों में किसानों की जिंदगी की चर्चा की गई है।" (पृ 160)। "इसलिए **प्रेमाश्रम** को कृषक जीवन का महाकाव्य कहना उसके फलक को सकुचित करना है।" (पृ. 165)।

प्रेमाश्रम की मूल कथा किसान-जमीदार सघर्ष को लेकर नही रची गई, क्योंकि सघर्ष सभी जमीदारो के विरुद्ध नही है।

2 गोयनका—"उपन्यास मे ज्ञानशकर, प्रभाशकर, रायसाहब, गायत्री आदि अनेक जमीदार और ताल्लुकेदार हैं, लेकिन सघर्ष की कथा केवल ज्ञानशकर के गाँवो मे ही उत्पन्न होती है।" (पृ 218)।

जैदी—"फिर राय कमलानद को कोई किसान बुरा नही कहता गायत्री देवी की किसानो पर इतनी कृपा है प्रभाशकर जब तक जमीदारी देखते थे स्पष्ट ध्वनित होता है कि प्रेमचद को प्रत्येक जमीदार या प्रत्येक ताल्लुकेदार से शिकायत नही है।" (पृ 160-61)।

असली समस्या है देशी-विदेशी शिक्षा की।

3 गोयनका—"ज्ञानशकर पश्चिमी शिक्षा-दीक्षा से प्राप्त पाश्चात्य सस्कारो की उपज है।" (पृ 183)।

जैदी—"प्रेमचद ने शायद यह कहना चाहा है कि हमारी शिक्षा प्रणाली इनसान को ज्ञानशकर, इर्फान अली, ज्वाला सिह और प्रियनाथ बनना सिखाती है।" (पृ 161)। "प्रेमचद इस प्रकार की शिक्षा के पक्ष मे बिलकुल नही थे उनकी आदर्श शिक्षा प्रणाली गुरुकुलो की शिक्षा प्रणाली थी।" (पृ 162)। फिर भी **प्रेमाश्रम** की मूल कथा किसान-जमीदार सघर्ष-कथा ही है।

4 गोयनका—"लेकिन ग्रथकार ने ऐसे जमीदार को जमीदार किसान की सघर्ष कथा का नायक चुना है।" (पृ 218)। "लेखक द्वारा कृषको की दयनीयता एव शोषण से भरी कहानी को भी प्रधानता देने के कारण।" (पृ 221)। जैदी—"**प्रेमाश्रम** मे भी एक ऐसे ही व्यक्ति की कहानी सुनाई गई है जो जमीदार और कृषक वर्ग के मध्य होनेवाले हिमालयायी सघर्ष मे अपना स्थान बनाने की इच्छा रखता है।" (पृ 180)। सरकारी नौकरी से इस्तीफा देने के बाद प्रेमचद सोच रहे है, "सोजेवतन तुमने जला दिया प्रेमाश्रम जलाकर दिखाओ तो जाने बलराज और मनोहर तुम्हारी गर्दन धड से अलग कर देगे। तुम इन किसानो को समझते क्या हो? ये पशु नही है—इनसान है और इन्हे भी जीने का हक है। यह जान गए है कि इस सारे राष्ट्रीय वैभव और प्रभुत्व का कारण वह खुद है। **प्रेमाश्रम** ऐसे ही किसानो की कहानी है।" (पृ 8)। ऐसे क्रातिकारी किसानो की कथा मे विजय होती है अध्यात्मवाद की!

5 गोयनका—"बलराज बोल्शेविक क्राति की उपज है बलराज आदि की विरोधशक्ति आगे चलकर प्रेमशकर के जीवन मूल्यो की क्रियात्मक धारा मे घुलमिल जाती है।" (पृ 182)। जैदी—"**प्रेमाश्रम** मे भौतिकता पर आध्यात्मिकता की विजय स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है।" (पृ 190)।

गोदान की रचना के समय प्रेमचद का मोहभग हुआ।

6 गोयनका—"आस्थाओ का विघटन, प्रेमचद का स्वय उनका टूटना

है ।" (पृ 450)।

जैदी—"**गोदान** के लेखनकाल तक प्रेमाश्रमकार की दृष्टि में आमूल परिवर्तन हो चुका था।" (पृ. 410)। इस परिवर्तन के प्रमाणस्वरूप जैदी ने प्रेमचद के जो वाक्य उद्धृत किए है, उनमे ये वाक्य खासतौर से ध्यान देने योग्य है "आध्यात्मिक मार्ग की परीक्षा हमने खूब कर ली। फल इसके सिवा और कुछ न हुआ कि समाज जहाँ खडा था वही खडा रह गया, नही, और पीछे हट गया पुराने ज्ञानियो ने सारे झगडो की जिम्मेदार 'जर, जमीन' और 'जन' रखी थी। आज उसके लिए केवल एक ही शब्द काफी है—सपत्ति।" (उप)।

यद्यपि अध्यात्मवाद की **प्रेमाश्रम**कालीन विजय **गोदान**कालीन पराजय मे बदल गई, फिर भी जैदी अध्यात्मवादवाला सूत्र आसानी से छोडनेवाले नही थे। एक है भौतिकवाद, दूसरा है एकात्मवाद। इनका समन्वय हुआ भौतिक एकात्मवाद। "प्रेमचद का यह भौतिक एकात्मवाद ही उनकी दृष्टि मे सच्चा समाजवाद था।" (पृ 411)।

यह सच्चा समाजवाद बडे विचित्र ढग से फ्रासीसी कथाकार कामू का अस्तित्ववाद बन जाता है। मोहभग का अर्थ क्या है? जीवन की व्यर्थता का अहसास। मोह क्या है? जीवन की सार्थकता मे विश्वास। मूल सूत्र गोयनका का है, व्याख्या जैदी की है।

7 गोयनका—"प्रेमचद के आस्थास्तभ के टूटने की पीडा के बीच होरी का साहित्य मे जन्म होता है।" (पृ 450)।

जैदी— उसके (होरी के) समक्ष अस्तित्व और मृत्यु मे से किसी एक को चुन लेने की स्वतत्रता है होरी अस्तित्व को चुनता है इसलिए कर्म मे प्रवृत्त रहते हुए भी परतत्रता को झेलता है। एल्बर्ट कामू (Albert Camus) की दृष्टि मे 'मनुष्य के अस्तित्व की दुखद अर्थहीनता इसमे नही है कि वह मृत्यु के समक्ष डटा रहता है, बल्कि इसमे है कि वह दुर्व्यवस्था, तर्कशून्यता एव अन्याय के मध्य जीता है और सबकुछ समझते हुए भी उससे निकलने मे स्वय को असमर्थ पाता है।' **गोदान** का होरी कामू की पीढी का ही एक व्यक्ति है जो यह जानती है कि ससार को बदल सकना उसके लिए सभव नही है।" (पृ 397)।

जाहिर है, यहाँ अग्रेजी राज, जमीदार, महाजन सब अदृश्य हो जाते हैं, रह जाता है केवल होरी का आत्मसघर्ष, मृत्यु को न चुनकर अस्तित्व को चुनने के कारण उसका परतत्रता को झेलते रहना, कामू के साथ होरी का इस परम सत्य से साक्षात्कार कि ससार को बदल सकना सभव नही है। कमाल की बात यह है कि **कर्मभूमि** के प्रकाशन के बाद से ही प्रेमचद की सर्जनात्मक प्रतिभा "लेनिन की ओर दोस्ती का हाथ बढा रही थी।" (पृ 385)। और "प्रगतिशील एव आलोचनात्मक सोपानो को तै करते हुए **गोदान** मे वे समाजवादी यथार्थवाद की विचारभूमि को प्राप्त कर लेते हैं।" (पृ 383)। पता **नहीं प्रेमचंद** ने यह

समाजवादी यथार्थवाद भारतीय साहित्य से प्राप्त किया था या वह उन्हें कहीं बाहर से प्राप्त हुआ था। वास्तव में ऐसे समाजवादी यथार्थवाद को कहीं भी ढूँढ़ पाना कठिन होगा जिसकी आधारशिला यह सिद्धात हो कि इस दुनिया को बदल पाना सभव नही है।

जैदी ने प्रेमचंद का राष्ट्रीयकरण और अतर्राष्ट्रीयकरण एक साथ किया है। एक ओर वह "विशुद्ध भारतीय कलाकार हैं" (पृ 13), "मूलतः वे एक वेदान्ती है" (पृ 14), "उनके आर्यसमाजी सस्कार प्रगतिशील बुनियादो पर विकसित हुए थे" (पृ 398), दूसरी ओर उनकी तुलना रूसी उपन्यासकारो से ही की जा सकती है। एक ओर "**प्रेमाश्रम** मे प्रेमचद एकात्मवाद के आध्यात्मिक धरातल पर खडे थे" (पृ 411), दूसरी ओर "प्रेमचद ने रूसी उपन्यासकारों की भाँति अतर्राष्ट्रीयता और मानवतावाद की मनोवेदना को नैतिक सिद्धातों, विचारों और समाजवादी दृष्टिकोण के साथ जन्म लेनेवाले पात्रो के माध्यम से **प्रेमाश्रम** मे प्रत्यार्पित किया है, और जीवन के उन आयामो के साथ उन्हें जोड दिया है जिनका सार्वभौमिक महत्त्व है।" (पृ 189)। रूसी उपन्यासकारों में क्रांति से पहले और बाद के, दोनो तरह के, कलाकार है। यथा—प्रेमचद की "प्रतिभा टाल्स्टाय की भाँति ही भावना-प्रधान थी" (पृ 430), "**कर्मभूमि** लिखते समय जहाँ उपन्यासकार ने टाल्स्टाय कृत **वार एण्ड पीस** से प्रेरणा ग्रहण की है, वहीं **गोदान** के ताने-बाने मे **अन्ना करेनिना** के सूत्र भी देखे जा सकते हैं।" (पृ 455)। यह तो हुई क्रांति से पहले के उपन्यासकार से तुलना। रूसी क्रांति के बाद के लेखक हैं शोलोखोव। "शोलोखोव की भाँति प्रेमचद ने भी अतर्राष्ट्रीय ऐतिहासिक महत्त्व के प्रश्नो को इसमे उठाया है।" (पृ 190)। इसमें—अर्थात् **प्रेमाश्रम** मे।

रूसियो के अलावा, भारत की तटस्थ नीति के अनुरूप, जैदी ने पश्चिमी यूरुप के उपन्यासकारो मे अनेक प्रसगो में प्रेमचद की समता दिखाई है। "प्रेमचंद का **सेवासदन** जार्ज इलियट के उपन्यास **ऐडम बीड** का स्मरण दिलाता है।" (पृ 150)। "**रंगभूमि** के लेखन में **साइलस मार्नर** का आंशिक प्रभाव देखा जा सकता है।" (पृ 225), "हार्डी ने डर्बी फील्ड्स के नैतिक पतन को इतिहासबद्ध किया है तो प्रेमचद ने (निर्मला मे) कायस्थो के नैतिक पतन का प्रलेख प्रस्तुत किया है।" (पृ 285)। "**कर्मभूमि** और उससे पूर्व की औपन्यासिक कृतियों में प्रेमचंद की दृष्टि गेटे से पर्याप्त साम्य रखती थी।" (पृ. 381)। इत्यादि, इत्यादि, इत्यादि। फिर इस तरह की तुलनात्मक आलोचना का जोरदार खडन करते हुए जैदी ने लिखा, "प्रेमचद की तुलना विश्व के प्रसिद्ध उपन्यासकारों में टाल्स्टाय, गोर्की, शरतचद्र, ताराशकर, डीकेन्स, थैकरे आदि से करने का प्रयत्न किया गया है। किंतु इस तुलना के साँचे अपने में दोषपूर्ण हैं। कारण यह है कि प्रेमचंद ने हिंदी उपन्यास को अलग से एक क्षितिज दिया है और यह क्षितिज विशुद्ध भारतीय रंगों और रेखाओ के सम्मिश्रण से जीवत दिखाई देता है।" (पृ. 499-500)।

हिंदी आलोचना को जैदी की मुख्य देन है उनका व्यक्ति प्रेमचद सबधी अध्ययन। उनके समक्ष यह महत्त्वपूर्ण प्रश्न था कि "एक व्यक्ति जो तेरह वर्ष की अवस्था तक झूठा, चकमेबाज, तिकडमी, बीडी-सिगरेट पीनेवाला और यौन सबधी बातचीत मे रुचि लेनेवाला रहा हो, वह अचानक एकदम से बदल किस प्रकार सकता है।" (पृ 11)। मतलब यह कि प्रेमचद बदले नही। "मैने अपने अध्ययन के बाद यह देखा कि किशार धनपत के सारे सस्कार युवक धनपत और प्रौढ प्रेमचद मे विद्यमान है।" (उप)। इन सस्कारो ने प्रेमचद को कलम का सिपाही नही "कलम का सौदागर" बना दिया। (उप)। एक ओर व्यक्ति प्रेमचद और साहित्यकार प्रेमचद मे जबर्दस्त फासला है—"व्यक्ति प्रेमचद साहित्यकार प्रेमचद के सामने बौना था" (पृ. 480), दूसरी ओर इसी व्यक्ति प्रेमचद के अनुभव उपन्यासो मे चित्रित है और इस कारण वे महान् कृतियाँ भी हैं। "इस प्रकार वैयक्तिक जीवन के अनुभव और सामूहिक जीवन के निरीक्षण की सहायता से उसने **सेवासदन** को अपने युग का प्रामाणिक इतिहास बना दिया।" (पृ 135)। **प्रेमाश्रम** मे "मनोहर, कादिर और प्रेमशकर के साथ प्रेमचद ने वस्तुत स्वय को लेखनी मे उतार दिया है।" (पृ 170)।

हिंदी के शोधग्रथो मे ऐसा अद्‌भुत रस अन्यत्र दुर्लभ है।

गोयनका ने प्रश्न किया है 'क्या प्रेमचद का भूत-प्रेत पर विश्वास था?' एक तो भूत-प्रेतो की बात वैसे ही चौंकानेवाली होती है, फिर प्रेमचद को भूत-प्रेतो पर विश्वास हो तो बात और भी चौकानेवाली होगी। प्रेमचद ने विधवा-विवाह के बारे मे जो पत्र डॉ रघुवीर सिंह को लिखा था, उसे **शिल्प-विधान** मे उद्धृत करते हुए गोयनका ने बताया था, "उस पत्र मे प्रेमचद ने कुछ चौंकानेवाली सामग्री लिखी है।" (पृ 545)। लोगो ने या तो यह पत्र पढा नही या पढा तो चौके नही, इसीलिए गोयनका ने **नई दिशाएँ** के लेख मे उसे फिर उद्‌धृत किया और लेख को शीर्षक दिया. 'एक चौकानेवाला पत्र'। लेख की शुरुआत इस तरह की "आप इस लेख के शीर्षक को पढ़कर शायद चौंक रहे है। आपका चौंकना स्वाभाविक ही है।" गोयनका पाठक को चौंकने के लिए प्रेरित करते हैं। फिर तीसरे पैरा मे. "प्रेमचद के इस चौंकानेवाले पत्र का सबध उनके विधवा-सुधार के प्रयासो से है।" (*नई दिशाएँ*, पृ 13)। पुन. पत्र उद्‌धृत करने के बाद "प्रेमचद का यह पत्र एक साधारण पाठक के लिए चौंकानेवाला है।" (उप पृ. 13)। फिर लेख के अतिम पैराग्राफ मे गोयनका ने डॉ रघुवीर सिंह से सपर्क किया और "प्रेमचद के इस चौंकानेवाले पत्र के सबध में जानकारी माँगी।" (उप., पृ. 16)। गोयनका को अद्‌भुत रस से विशेष प्रेम है, यह समझना कठिन नही है।

जादू का खेल देखकर दर्शक इसलिए चौंकते हैं कि उन्हे पता नही होता कि जादूगर की झोली मे क्या है। **शिल्प-विधान** मे गोयनका ने यह नही बताया कि प्रेमचंद का वह पत्र उन्हें कहाँ देखने को मिला। लेकिन **नई दिशाएँ** वाले निबध मे

उन्होंने बता दिया है कि "'आजकल' पत्रिका के फरवरी, 1952 के अक मे प्रेमचंद के इस पत्र की प्रतिलिपि श्री रघुवीर के ही लेख मे प्रकाशित की गई है।" (उप पृ 13)। 'क्या प्रेमचद का भूतप्रेत पर विश्वास था?'—इस लेख मे रामदास गौड को लिखा प्रेमचद का पत्र उद्धृत है। इसके बारे मे गोयनका ने नही बताया कि पत्र उन्होने कहाँ देखा। मूल पत्र उदयशकर शास्त्री के पास था। शास्त्री जी ने मुझे बताया था कि गोयनका ने वह पत्र उनके यहाँ देखा था, यह भी कि शास्त्री जी इससे पहले उसे कही प्रकाशित करा चुके थे। (इस वर्ष शास्त्री जी का देहात हो गया।)

नई दिशाएँ की भूमिका मे गोयनका ने अपने लेखो का महत्त्व बता दिया है "प्रेमचद के जीवन, विचार तथा साहित्य पर अध्ययन की नई दिशाओ को खोलनेवाले ये लेख ।" ये लेख "विगत 7-8 वर्षो मे देश की अधिकाश प्रतिष्ठित पत्रिकाओ मे छप चुके है।" 'प्रेमचद अध्ययन की नई दिशाएँ', सकलन का अतिम लेख, "प्रेमचद शताब्दी समारोह मे 2 फरवरी, 1980 को पढा गया" था। (उप , पृ 214)। इससे पहले 1978 मे जैदी की **उपन्यास-यात्रा** प्रकाशित हो चुकी थी। उक्त निबध मे इस पुस्तक का जिक्र नही है। यह बात चौंकानेवाली नही है क्योंकि भूत-प्रेतवाले पत्र के साथ उदयशकर का नाम नही है तो व्यक्ति प्रेमचद के अध्ययन-सूत्रो के सिलसिले मे जैदी का ही नाम क्यों हो?

प्रेमचद ने 14 नवबर, 1931 के पत्र मे पुत्री के अस्वस्थ होने की चर्चा करते हुए रामदास गौड को लिखा था, "कह नही सकता वहाँ कोई आसेबर (भूत-प्रेत) था या क्या बात हुई। पर सदेह हो रहा है कि जरूर कुछ न कुछ था ।" पत्र उद्धृत करने के बाद "मै अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त नही करूँगा" कहकर गोयनका ने पाठक से कुछ बातो पर गौर करने को कहा है। इनमे पहली बात यह है, "प्रेमचद जैसे महान लेखक तथा महात्मा गाँधी जैसे अमर नेता के सबध मे हम क्यो मान लेते है कि उनमे साधारण मनुष्य के समान दुर्बलताएँ नही होगी?" (उप , पृ 23)। यह प्रश्न **नई दिशाएँ** के गोयनका ने **शिल्प-विधान** के गोयनका से किया है। इस बीच जैदी की **उपन्यास-यात्रा** निकल गई है। जैदी ने लिखा था, "हमारी कमजोरी यह है कि हम अपने प्रत्येक श्रेष्ठ साहित्यकार को भगवान का अवतार, महापुरुष और दिव्यात्मा समझ बैठते है। गोया हमारी समझ मे एक चरित्रहीन व्यक्ति कोई श्रेष्ठ साहित्यिक रचना करने की सामर्थ्य ही नही रखता।" (*उपन्यास-यात्रा*, पृ 12)।

7. प्रामाणिक जीवनी का प्रश्न

प्रेमचद की जीवनी पढकर जैदी के मन मे कई सवाल उठे। "1970 मे जब मैंने पहली बार अमृतराय की पुस्तक **प्रेमचंद : कलम का सिपाही** पढ़ी, तो मेरे मन मे

प्रेमचंद को लेकर अनेक प्रश्न बनने लगे। मुझे लगा कि अमृतराय ने बडे कलात्मक ढग से प्रेमचद के जीवन के दुर्बल पक्षो को दबा दिया है।" (उप, पृ 10)। साहित्य के अध्ययन के लिए साहित्यकार के जीवन का ठीक-ठीक परिचय आवश्यक है, यह मानकर जैदी ने "प्रेमचद का प्रामाणिक जीवन प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।" (उप, पृ 11)। कुछ ऐसे ही प्रश्न गोयनका के मन मे उभरे और प्रामाणिक जीवनी की आवश्यकता उन्होने भी महसूस की। यह आवश्यकता उन्होंने **शिल्प-विधान**वाले दौर मे नहीं, **नई दिशाओं**वाले दौर मे महसूस की। "प्रेमचद के अध्ययन की नई दिशाओ को प्रस्तुत करते समय मेरी दृष्टि सबसे पहले उनके जीवन पर जाती है। अमृतराय और मदनगोपाल की जीवनियो को देखते हुए प्रेमचद के जीवन पर और कुछ कहने की सभावना प्राय समाप्त हो गई थी, परतु विगत दस वर्षो से निरतर कार्य करने के पश्चात् जो नई सामग्री मुझे मिली है उसे देखते हुए उनकी जीवनी को नए सिरे से लिखने की आवश्यकता उत्पन्न हो गई है। इस नई सामग्री से उनके जीवन के अनेक ऐसे प्रश्न उभरकर सामने आए हैं, जिनका कोई उत्तर इन दोनो ही जीवनियो से प्राप्त नही होता।" (*नई दिशाएँ*, पृ 208)। प्रेमचद सबधी जो प्रसग अज्ञात है, उनमे एक का सबध सूदखोरी से है। 10 अगस्त, 1915 को दयानरायन निगम के नाम लिखे पत्र के अनुसार "प्रेमचद ने स्वय एक महाजन के समान तीन सौ रुपए तीन असामियो को अठारह फीसदी सूद पर कर्ज के रूप मे दिए।" (उप पृ 209)। इसी पत्र के आधार पर जैदी ने भी लिखा था, "प्रेमचद ने इसी जमाने मे 18 प्रतिशत सूद पर रुपए उठाने का धधा भी शुरू कर दिया था। (*उपन्यास-यात्रा*, पृ 71; फुटनोट मे चिट्ठी-पत्री की पृष्ठ सख्या 45 की जगह 47 छपी है।)

जैदी को जो बात सबसे ज्यादा खटकी, वह प्रेमचंद की गरीबी की चर्चा थी। "प्रारभ मे मुझे सबसे अधिक जो बात खटकी, वह थी प्रेमचद की गरीबी और दरिद्रता की तस्वीर।" (उप, पृ 10)। यह बात गोयनका को भी खटकी। उन्होने मानो पहली बार विषय-प्रवर्तन करते हुए कहा, "यहाँ मैं प्रेमचद की निर्धनता और निर्धनता मे जीवन यापन करने की स्थापित मान्यताओ के सबध मे कुछ कह देना चाहता हूँ। डॉ रामविलास शर्मा ने लिखा है कि प्रेमचद निर्धनता मे जीवित रहे और निर्धनता मे ही मर गए। मैं नही जानता कि डॉ रामविलास शर्मा निर्धनता की क्या परिभाषा करते हैं, लेकिन मेरे पास कुछ ऐसे तथ्य हैं जो कुछ दूसरी ही बात कहते हैं।" (*नई दिशाएँ*, पृ 210)। दरिद्रता की परिभाषा की टीका जैदी लिख चुके थे "मैं नही समझ पाता कि जिस युग मे एक मजदूर को दो पैसे से एक आने तक मजूरी मिलती हो उसी युग के एक ऐसे छात्र को जो दो तीन आने तक की चाट खा जाता हो और बडे संकोच से दो आने निकाल कर रामलीला के रामचद्र को दे देता हो, निर्धन और दरिद्र किस प्रकार कहा जा सकता है। 1895 ई मे जब एक प्राइमरी स्कूल के अध्यापक को ढाई रुपए मासिक मिलते हों और वह उसमें अपने

परिवार का खर्च चलाता हो, पाँच रुपए मासिक पानेवाले छात्र की दरिद्रता और गरीबी की चर्चा करना सर्वथा निर्मूल है।" (*उपन्यास-यात्रा*, पृ. 11)। दरिद्रता की परिभाषा की टीका लिखी जा चुकी थी, मौलिकता केवल अभिव्यक्ति की शैली मे है।

अब कुछ तथ्यो को देखे जो गोयनका के पास हैं और जो कुछ दूसरी ही बात कहते हैं।

नई दिशाएँ– "सन् 1900 मे प्रेमचद का वेतन 20 रुपए मासिक था।"

उपन्यास-यात्रा– "2 जुलाई सन् 1900 ई को वे बहराइच के जिला स्कूल मे पाँचवे मास्टर के पद पर नियुक्त हुए। वेतन था बीस रुपए माहवार।" (पृ. 59)।

नई दिशाएँ– "1905 मे 25 रुपये।"

उपन्यास-यात्रा- "मई 1905 मे उनका तबादला तीस रुपए मासिक वेतन पर डिस्ट्रिक्ट स्कूल कानपुर के लिए हो गया।" (पृ. 60)।

नई दिशाएँ– "1907 मे 40 रुपए।"

उपन्यास-यात्रा– "10 जून 1909 को धनपत को डिस्ट्रिक्ट बोर्ड हमीरपुर के अधीन सब डिप्टी इन्स्पेक्टर आफ स्कूल्स होने का पत्र मिला और 24 जून को धनपत ने महोबा में इस नए पद का चार्ज ले लिया। वेतन तीस रुपए से बढ़ाकर पचास रुपए कर दिया गया।" (पृ 65)।

नई दिशाएँ– "1912 मे 60 रुपए।"

उपन्यास-यात्रा– "1916 के अगस्त की 18 तारीख को प्रेमचद गोरखपुर पहुँचे। गोरखपुर मे तनख्वाह फिर साठ रुपए हो गई।" (पृ. 66)।

नई दिशाएँ– "सन् 1925 मे 'रगभूमि' की प्रकाशित 5000 प्रतियों पर उन्हे रायल्टी की सपूर्ण राशि 1800 रुपए एकमुश्त प्राप्त हुई थी।"

उपन्यास-यात्रा– "फरवरी 1925 ई मे उनका हिंदी उपन्यास **रंगभूमि** गंगा पुस्तकमाला से निकला। इस उपन्यास के लिए दुलारे लाल भार्गव ने प्रेमचद को अट्ठारह सौ रुपए दिए।" (पृ. 84)।

नई दिशाएँ– "बबई की फिल्म कपनी में कार्य करने पर 900 रुपए मासिक वेतन मिलता था।"

उपन्यास-यात्रा– "जून 1934 ई. की पहली तारीख को प्रेमचंद बंबई पहुँच गए। अजता सिनेटोन फिल्म कपनी से आठ हजार रुपए वार्षिक के अनुबंध पर हस्ताक्षर कर दिए गए। चलते समय कपनी से छः हजार तीन सौ रुपए प्रेमचद को मिले।" (पृ. 97)।

तथ्यों के प्रस्तुतीकरण में थोडा हेर-फेर है किंतु अधिकतर तथ्य एक-से हैं। यह नहीं कहा जा सकता कि गोयनका के पास ऐसे तथ्य हैं जिनका पता जैदी को न था। दरअसल जैदी ने प्रेमचंद की आय पर व्यापक रूप में विचार किया है। जैसे गोरखपुर में वेतन साठ रुपए था, वार्डन हुए तो बीस रुपए वेतन मे और जुड गए, फर्स्ट एड का डिप्लोमा कोर्स कर लिया तो दस रुपए और बढे। (*उपन्यास-यात्रा*, पृ 66)। प्रेस लगाने, दूसरो के साथ व्यवसाय करने आदि पर उन्होने विस्तार से लिखा है। मरने के समय प्रेमचद बैंक मे कितने रुपए जमा कर गए थे, इसका पता जैदी न लगा पाए थे। लेकिन इसका पता लगाना चाहिए, यह बात उन्हे मालूम थी। "मृत्यु के समय प्रेमचद का बैंक बैलेस कितना था, इसका कोई सकेत नही मिलता।" (उप , पृ 99)।

गोयनका ने प्रेमचद के बैंक बैलेस का पता लगा लिया, इसके लिए वह बधाई के पात्र हैं। इस अतिम तथ्य का उद्‌घाटन करते हुए गोयनका ने अपना विषय-प्रवर्तनवाला भाषण इस प्रकार समाप्त किया "बनारस बैंक की एक पासबुक के अनुसार 24 सितबर 1936 को इस खाते मे 4471 रुपए 5 आने 11 पाई जमा थे। यह उनकी मृत्यु के 14 दिन पहले का विवरण है जो इस पासबुक मे दर्ज है। अब आप ही बताएँ और फैसला करे कि क्या ये तथ्य निर्धनता मे जीवित एव मर जानेवाले प्रेमचद की कहानी कहते हैं या एक मध्यवर्ग के व्यक्ति के आर्थिक जीवन की कथा कहते है।" (*नई दिशाएँ*, पृ 210)।

यहाँ थोडा-सा स्पष्टीकरण आवश्यक है। प्रेमचद निर्धनता मे जीवित रहे और निर्धनता मे मर गए, यह वाक्य मैंने कहाँ लिखा है, इसका उल्लेख गोयनका ने नही किया। मैने प्रेमचद के "कटु अनुभवो" का जिक्र किया है, उन्हे "दुखी हिंदुस्तान के गरीबो के लेखक" के रूप मे याद किया और छप्पन साल की उम्र मे उनकी मृत्यु के लिए अग्रेज साम्राज्यवादियो को उत्तरदायी ठहराया है। "जब 'सोजेवतन' की प्रतियाँ जलाई गईं, तब से लेकर 'हस' के लिए जमानते देने तक—और आखिरी जमानत उन्होने अपनी मृत्यु के साल ही दी थी—उन्हे बराबर ब्रिटिश साम्राज्यवाद से टक्कर लेनी पडी। यह कहना सच होगा कि प्रेमचद देश की आजादी के लिए लडते हुए शहीद हुए और उनका खून अग्रेज साम्राज्यवादियो के सिर पर है।" (*प्रेमचंद और उनका युग*, 1965, पृ 28)।

इस समय हवा ऐसी है कि साहित्य के, साहित्यकार के व्यक्तित्व के, भारतीय जनता के अपने अतर्विरोध प्रधान हो गए हैं, ब्रिटिश साम्राज्यवाद से इन सबका अतर्विरोध गौण, प्राय. नगण्य हो गया है। प्रेमचद की दरिद्रता का प्रश्न इतना महत्त्वपूर्ण क्यों हो गया है? इसलिए महत्त्वपूर्ण हो गया है कि प्रेमचद का देशभक्त लेखक होना न होना इस प्रश्न के उत्तर पर निर्भर है। वह दरिद्र नही थे तो पैसा कमा रहे थे। पैसा कमाऊ लेखक देश के लिए, वह भी देश के निर्धन किसानो के लिए, साहित्य क्यों लिखेगा? यह बात जैदी ने बहुत साफ-साफ कह दी है। प्रेमचंद

कलम के मजदूर या सिपाही नहीं हैं। "उन्हे यदि कुछ कहा जा सकता है, तो कलम का सौदागर।" (*उपन्यास- यात्रा*, पृ 11)। प्रेमचद ने अत्याचार और आतंक पर वार तो किए थे "किंतु उसका कलम एक सिपाही की निष्ठा और निःस्वार्थ सेवा की भावना से रिक्त था। उसके पास एक बहुमूल्य कलम था और वह इस कलम का सौदा करने से कभी नही चूका।" (उप., पृ. 43)। जैसे 'जागरण' और 'हस' का सौदा करने मे। "घाटे का ढिढोरा पीटने का अर्थ उस समय स्पष्ट हो जाता है जब प्रेमचद **जागरण** और **हंस** का सौदा करने बैठ जाते हैं।" (उप., पृ. 95)। घाटे का ढिढोरा पीटने मे मतलब क्या था? "मतलब यह कि बडा साहस था और साहित्य सेवा के लिए बडा त्याग, कि इतना घाटा झेलकर भी डटे रहे और **हंस** तथा **जागरण** के अतिरिक्त अपनी तथा अन्य लेखको की पुस्तके धडाधड छापते रहे।" (उप.)। साहित्य सेवा के लिए त्याग और साहस दिखाने का स्वाँग किया, वास्तविक उद्देश्य था पैसा कमाना।

पैसा कमाने मे उन्होने अपने भाई को भी ठगा। गोयनका कहते है, "जीवनीकार कहते हैं कि प्रेमचद ने अपने छोटे भाई महताब राय का पुत्र के समान पालन पोषण किया, लेकिन महताब राय के पुत्र डॉक्टर रामकुमार राय कहते हैं कि महताब राय अपनी सज्जनता एव बडे भाई को पिता तुल्य मानने के कारण प्रेमचद की सभी उचित अनुचित बातो को मानते रहे।" (*नयी दिशाएँ*, पृ. 210)। गोयनका ने इशारा करके छोड दिया है। पूरी बात जैदी ने कही है, "महताब राय सीधे सादे आदमी थे। प्रेमचद का लिहाज भी बहुत करते थे। अततोगत्वा वह उनकी बातो मे आ ही गये। सरस्वती प्रेस खोला सितबर 1925 तक नरमगरम बातें करके प्रेमचद उसके पूरे मालिक बन बैठे।" (उप., पृ.80)।

गोयनका के पास और भी बहुत-से तथ्य हैं। "प्रवासीलाल वर्मा 'हस' के उपसपादक और 'सरस्वती प्रेस' के सचालक थे, परतु प्रेमचद ने सन् 1936 के आरंभ में उन्हे 900 रुपये का गबन करने के आरोप में नौकरी एवं व्यवसाय से निकाल दिया। सरस्वती प्रेस मे हुई मजदूरो की हड़ताल के सबध मे भी अभी तक सभी तथ्य सामने नही आ सके हैं। प्रेस कर्मचारियो ने किस कारण हड़ताल की और किन शर्तों पर समझौता हुआ, ये सभी तथ्य अभी तक अज्ञात बने हुए हैं।" (उप., पृ 211-12)। सभी तथ्य जब ज्ञात होंगे, तब होगे, अभी जो गोयनका ने कह दिया है, उससे क्या यह सिद्ध नही होता कि प्रेमचद एक साधारण पूँजीवादी व्यवसायी थे और अपने सहयोगियो और मजूदरो से वैसे ही पेश आते थे जैसे इस तरह के व्यवसायी पेश आते हैं?

"एक समय ऐसा भी आया, जब प्रेमचद ने अपनी प्रगतिशील एव आधुनिक विचारधारा को छोड़कर पुरानी परपरागत विचारधारा को स्वीकार कर लिया।" (*नयी दिशाएँ*, पृ.16)। गोयनका की इस स्थापना से महताब राय, प्रवासीलाल वर्मा. प्रेस के मजदूरों की हड़ताल आदि से सबंधित उनके उल्लेखों को मिलाकर पढ़े

तो प्रेमचद की प्रामाणिक जीवनी के लिए उनकी तडप का उद्देश्य स्पष्ट हो जाएगा। उद्देश्य है प्रेमचद-साहित्य की प्रगतिशीलता का सफाया करना, अर्थात् भारतीय साहित्य की साम्राज्यविरोधी, सामतविरोधी धारा मे प्रेमचद के योगदान को अस्वीकार करना। प्रेमचद के महत्त्व को, उनकी लोकप्रियता को अस्वीकारना सरल नही है। वह तात्कालिक विषयो पर लिखते हैं, इनका महत्त्व अस्थायी है—उनकी लोकप्रियता ने इस तरह की धारणाओ को खंडित कर दिया है। अब आक्षेप दूसरे ढग से होते है, उनकी जीवनी और व्यक्तित्व के तटस्थ और वस्तुगत अध्ययन के नाम पर। शुरुआत इस सवाल से होती है हम यह क्यो मान लेते हैं कि "प्रेमचद जैसे महान् लेखक' मे "साधारण मनुष्य के समान दुर्बलताएँ नही होगी?" (*नयी दिशाएँ*, पृ 23)। बहुत जल्दी पता चल जाता है कि प्रेमचद की दुर्बलताएँ असाधारण है, वह साधारण मनुष्यो मे गिरे हुए है। कलाकार के महत्त्व को बचाए रखने के लिए आवश्यक हो जाता है कि उसके व्यक्तित्व को उसकी कला से अलग रखा जाय। भूत-प्रेत पर विश्वासवाले निबध मे गोयनका अपने पाठक को उस घटना की ओर ले चलते हैं, "जहाँ वे एक लेखक के रूप मे नही, एक सामान्य-साधारण मनुष्य के रूप मे हमे दिखलायी देते है।" (उप , पृ 21)। यहाँ व्यक्ति प्रेमचद को लेखक प्रेमचद से अलग किया गया है। यह काम पहले जैदी ने किया, क्षुद्र व्यक्ति और महान लेखक मे भेद करते हुए लिखा, "व्यक्ति प्रेमचद साहित्यकार प्रेमचद के सामने बौना था।" (*उपन्यास-यात्रा*, पृ 480)।

यह बौना व्यक्ति जैदी की पुस्तक मे अचानक जीवट के और बडी सूझबूझ के काम करता है। "प्रेमचद ने 14 फरवरी 1921 को सरकारी नौकरी से इस्तीफा दे दिया।" (उप , पृ 73)। व्यक्ति प्रेमचद ने इस्तीफा दिया। क्यो इस्तीफा दिया? यह बौना व्यक्ति अचानक देशभक्त कैसे बन गया? इससे पहले—"यह स्वदेश प्रेम सभी देशवासियो को एक तार मे बाँधता है, धनपत की समझ मे अब यह बात पूरी तरह आ गई थी।" (उप पृ 64)। बडे आश्चर्य की बात है कि जिस आदमी मे निःस्वार्थ सेवा का भाव था ही नही, वह स्वदेश प्रेम के आधार पर राष्ट्रीय एकता की बात इतनी आसानी से समझ गया! अधिकाश पढे-लिखे लोग तो इससे उल्टी दिशा मे चल रहे थे। फिर प्रेमचद ने कहानियाँ लिखी और ऐसी कहानियाँ लिखी कि पुस्तक की सात सौ प्रतियाँ जब्त कर ली गई। जब कलम के सौदागर बनने चले थे, तब किसी और ढग से सौदागरी न कर सकते थे? उर्दू और हिंदी मे कौन ऐसी कहानियाँ लिख रहा था? व्यवहारकुशल आदमी के लिए आ बैल मुझे मार की नीति पर चलना कहाँ तक उचित था? लेखक और व्यक्ति को यहाँ कैसे अलग करेगे? व्यक्ति राजभक्त, लेखक देशभक्त! या दोनो ही बौने? लेकिन 'सरस्वती' के अनुसार **सोज़वतन** की कहानियाँ पढकर "स्वदेश भक्ति का पवित्र भाव हृदय मे अकुरित हो जाता है।" (उप , पृ 65)। लेखक का हृदय एक, व्यक्ति का हृदय दूसरा? एक पवित्र, दूसरा अपवित्र!

कांग्रेस के नागपुर अधिवेशन के बाद—"देश का विवेक जाग उठा। स्वदेशी वस्तुओ के उत्पादन पर जोर दिया गया। विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार की माँग की गई। सरकारी स्कूलो और नौकरियों का बहिष्कार करने की होड लग गई। प्रेमचंद के विचारो मे यह सभी बाते मेल खाती थी।" (उप , पृ 74)। इसका अर्थ यह है कि सन् 20 के आदोलन से पहले ही प्रेमचद की विचारधारा सुनिश्चित हो चुकी थी। जैदी ने व्यक्ति प्रेमचद को जिस घटिया स्तर का मनुष्य चित्रित किया है, उसे देखते देशभक्तवाली यह प्रतिबद्धता आकस्मिक ही नही, अप्रासंगिक भी लगती है। लेकिन व्यक्ति प्रेमचद की इस देशभक्ति के बिना उनके साहित्य की व्याख्या कैसे की जा सकती है?

गोदान लिखने के बाद, उसके प्रकाशन तक, "प्रेमचद की मान्यताएँ अपने नए मार्ग की टोह पा चुकी थी।" (उप , पृ 98)। नए मार्ग की जरूरत क्यो पडी? क्या पुराने मार्ग पर चलने मे काफी कमाई न हो रही थी? "मन की क्रान्ति कागज पर बिखरने के लिए आतुर थी।" (उप., पृ 99)। इसका अर्थ यह है कि **सोज़ेवतन** से लेकर **मंगलसूत्र** तक प्रेमचद साहित्य के साम्राज्यविरोधी, सामतविरोधी मार्ग पर निरतर आगे बढते गए। व्यक्तित्व की असामान्य दृढता और कार्यक्षमता के बिना यह विकास सभव कैसे हुआ? जैदी प्रेमचद-साहित्य के विकास की मुख्य दिशा पहचानते हैं लेकिन भारतीयता और अस्तित्ववाद के तार उलझाकर इस साहित्य के विवेचन मे विकास की दिशा को आँखो से ओझल कर देते है। प्रेमचद के व्यक्तित्व का मेल न वह भारतीयता से करा पाते हैं, न अस्तित्ववाद से, प्रगतिशील साहित्य की रचना से और भी नही।

प्रेमचद ने अपने छात्र जीवन के बारे में लिखा था, "जाडो के दिन थे। पास एक कौडी न थी। दो दिन एक-एक पैसे का खाकर काटे थे। मेरे महाजन ने उधार देने से इनकार कर दिया था। सकोचवश मैं उससे माँग न सका था। चिराग जल चुके थे। मै एक बुकसेलर की दूकान पर एक किताब बेचने लगा। एक चक्रवर्ती-गणित-कुजी दो साल हुए खरीदी थी, अब तक उसे बडे जतन से रखे हुए था, पर आज चारो ओर से निराश होकर मैंने उसे बेचने का निश्चय किया। किताब दो रुपए की थी; लेकिन एक रुपए पर सौदा ठीक हुआ।" यह अश इस पुस्तक के पहले अध्याय मे उद्धृत है। जैदी का कहना है, "बडा आदमी हो जाने के बाद अपनी गरीबी की चर्चा करने में बडा आनंद आता है।" (उप , पृ 53)। जैदी ने यह मान लिया है कि प्रेमचद को अपने पिता से हर महीने पढाई के खर्च के लिए पाँच रुपए मिलते थे। यह बात शिवरानी देवी की पुस्तक **प्रेमचंद : घर में** के आधार पर उन्होंने लिखी है। पर अन्य प्रसग मे इस गवाह को वह अत्यत अविश्वसनीय मानते हैं।

"शादी ब्याह ऐसी चीज नहीं है कि उसकी तारीख और सन् तक याद न रहें? पर शिवरानी देवी के साथ शादी का मामला कछ ऐसा ही है।" शिवरानी देवी के

एक विवरण के अनुसार उनका ब्याह 1909 में हुआ, दूसरे दो विवरणो के अनुसार 1907 में हुआ ।(उप , पृ 63)। प्रेमचंद और उनके पिता में जो पाँच रुपए देने की बात हुई थी, उस समय शिवरानी देवी वहाँ मौजूद न थी. अपने विवाह मे वह बेशक मौजूद थी। उस विवाह का सन् उन्हें याद नही; प्रेमचद के पिता ने पाँच रुपए देने को कहा था. यह उन्हे ठीक-ठीक याद रहा, यह कैसे मान लिया जाए ?

पिता से पाँच रुपए माहवार पक्के किए, "हेड मास्टर से जोडतोड करके फीस भी माफ करा ली। अब पाँच रुपए मे ऐश ही ऐश था। किन्तु जब ऐश ही करना है, तो पाँच रुपए की क्या बिसात। इसलिए कुछ ही समय मे बाँस के फाटक पर एक ट्यूशन भी पक्का कर लिया। ट्यूशन से कम से कम दो रुपए तो मिल ही जाते होगे।" (उप , पृ 53)। प्रेमचद बाँस के फाटक चार बजे पहुँचते थे और छह बजे छुट्टी पाते थे। ये जाडे के दिनो के छह थे। इम्तहान सिर पर था। ऐश करने का बडा अच्छा तरीका निकाला था प्रेमचद ने ! छह बजे के बाद वह अपने गाँव जाते थे। गाँव पाँच मील पर था। लेकिन जैदी के लिए "लमही से बनारस का फासला ही कितना था, और वह भी एक गाँव के युवक के लिए। गाँवो मे तो जमीदारों के लडके भी कोस-दो कोस आसानी से पैदल चल लेते हैं।" (उप , पृ 51)। यानी पाँच मील जाना, पाँच मील आना, पद्रह साल के लडके के लिए दस मील की यह चलाई कोई बात ही न थी। अमृतराय के अनुसार लमही बनारस से "करीब चार मील दूर" है। (*कलम का सिपाही,* पृ 5)। जैदी के अनुसार लमही बनारस से "केवल चार-पाँच मील के फासले पर" है। (*उपन्यास-यात्रा* पृ 44)। यानी प्रेमचंद को आठ-दस मील रोज चलना पडता था।

शादी के लिए गुड आया। प्रेमचद और उनके साथियो ने गुड खाना शुरू किया। प्रेमचंद ने जब देखा कि गुड की रक्षा न होगी तो बक्से की चाबी कुएँ मे फेक दी। इसे गरीबी का चित्र माननेवाले मन्मथनाथ गुप्त को फटकारते हुए जैदी ने लिखा है, "मैं नही समझ पाता कि इसमें गरीबी का चित्र प्रस्तुत करनेवाली कौन-सी बात है। इसके प्रकाश में एक असयमी, गैरजिम्मेदार, यारबाश, खिलंडरे और चटोरे व्यक्ति का रूप उभरकर सामने आता है।" (उप , पृ 52)। जिस बात की कैफियत जैदी ने नहीं दी, वह यह कि ऐसा लडका ऐंट्रेस परीक्षा द्वितीय श्रेणी में पास कैसे कर सका। प्रेमचंद को यह परीक्षा 1897 में देनी थी। उस साल उनके पिता का देहात हुआ और वह परीक्षा न दे पाए। जैदी अपनी सहज उदारता से कहते हैं, "यह भी सभव है कि परीक्षा दी हो और फेल हो गए हों।" (उप , पृ 56)। और एक की जगह दो साल की पढाई के कारण ही द्वितीय श्रेणी से पास हुए हों। वैसे पिता के न रहने पर असंयमी और गैरजिम्मेदार लडके का और भी बिगड़ जाना ज्यादा स्वाभाविक था।

प्रेमचद ने नौकरी की, तब भी पढाई जारी रखी। "1916 मे एफ. ए. की परीक्षा बस्ती मे रहकर द्वितीय श्रेणी में पास कर ली।" (उप., पृ 66)। इसके बाद

"1919 ई. की बी. ए की परीक्षा मे बैठे और द्वितीय श्रेणी मे उत्तीर्ण हो गए।" (उप , पृ 70)। प्रेमचंद की यह सफलता उनके असयमी और गैरजिम्मेदार स्वभाव से कहीं मेल नहीं खाती। प्रेमचद परीक्षाएँ देने के अलावा और बहुत-सा साहित्य पढ़ते थे और केवल मनोरजन के लिए नहीं। **प्रेमाश्रम** लिखने के समय "प्रेमचंद टाल्स्टाय के भक्त तो थे ही।" (उप., पृ 74)। मानो कलम की सौदागरी सीखने के लिए प्रेमचद न टाल्स्टाय को खासतौर से गुरु बनाया हो! टाल्स्टाय को पढने की प्रवृत्ति उनमे जागी कैसे? और **ले मिज़ेराब्ल**—"विक्टर हयूगो का यह ग्रथ प्रेमचद को बहुत प्रिय था।" (उप , पृ 25)। यह सब पढने के लिए उन्हे समय कैसे मिल जाता था? उर्दू मे बहुत-से उपन्यास उन्होने मनोरजन के लिए पढ़े होगे लेकिन "शेख सादी की फारसी रचनाओ ने प्रेमचद को कुछ इतना आकृष्ट किया कि **महात्मा शेख़ सादी** नामक एक पुस्तक ही लिख डाली।" (उप , पृ 23)। फारसी के अलावा "उर्दू कवियो मे प्रेमचद को कोई बहुत प्रिय था, तो वह थे डा इकबाल!" (उप)। "उर्दू लेखकों से हटकर अपनी चिट्ठियो और निबधो मे प्रेमचद ने जिन पाश्चात्य लेखको की चर्चा की है उनमे थैकरे, डिकेन्स, इलियट, गाल्सवर्दी, अनातोले फ्रान्स, रोमा रोला, तुर्गनेव, टाल्स्टाय, चेखोव और गोर्की के नाम विशेष उल्लेख्य हैं।" (उप , पृ 25-26)। कितने घटे पढते थे रोज प्रेमचद? और वह लिखते भी थे!

"अच्छा ही हुआ कि प्रेमचद ने जब आँखे खोली, उनका पहला परिचय उर्दू से हुआ।" (उप , पृ 23)। अच्छा इसलिए हुआ कि हिंदी मे 'हिन्दी हिन्दू हिन्दुस्तान' की धूम थी, "उर्दू की पत्रिकाएँ इन साम्प्रदायिक भावनाओ से मुक्त थी।" (उप , पृ 22)। प्रेमचद ने 'जमाना' मे भारतेदु हरिश्चद्र, बिहारी और केशव पर निबध लिखे, 'माधुरी, 'हस', 'मर्यादा', 'जागरण' का सपादन किया। बहुत-सी हिंदी पुस्तको की समीक्षा लिखी, बहुत-सी रचनाएँ पढकर कुछ छापी होगी, कुछ वापस की होगी। उन्हे पेचिश ने बहुत दिनो तक परेशान किया। और **मंगलसूत्र** "प्रेमचद ने अपनी बीमारी की अवस्था मे लिखा था।" (उप., पृ 99)। बीमारी बढ़ी तो "कै के साथ शरीर का रक्त मुँह से बाहर आ जाता।" (उप.)। और इस अधूरे उपन्यास मे प्रेमचद ने लिखा था, "दरिन्दो के बीच मे उनसे लडने के लिए हथियार बाँधना पडेगा। उनके पजो का शिकार बनना देवतापन नही, जडता है।" प्रेमचद की इस तेजस्विता का स्रोत उनके अपराजेय व्यक्तित्व मे था। क्या प्रेमचद का भूतप्रेत पर विश्वास था?—इसके समानातर यह प्रश्न भी करना चाहिए : क्या प्रेमचद को मरते समय ईश्वर याद आया था? उन्होने मृत्यु से कुछ घटे पहले जैनेद्र से कहा था, "जैनेद्र, लोग ऐसे समय याद किया करते हैं ईश्वर, मुझे भी याद दिलाई जाती है। पर अभी तक मुझे ईश्वर को कष्ट देने की जरूरत नही मालूम हुई है।" प्रेमचद ने मृत्यु का जिस तरह सामना किया, वह उनके जीवन का सबसे साहसपूर्ण काम था।

ऐसा नहीं था कि उनके जीवन और साहित्य में अतर्विरोध न रहे हों। उनका जन्म सर्वहारा वर्ग में न हुआ था, न उन्होंने सर्वहारा वर्ग के क्रांतिकारी दर्शन मार्क्सवाद को पूरी तरह अपनाया था। प्रेमचंद की सपत्ति के बारे में मैंने लिखा था, "प्रेमचंद व्यवहारकुशलता से उतनी दूर न थे जितना अमृतराय ने उन्हे दिखलाया है। साझेदारी का प्रेस घाटा भले देता हो, अत मे रह गया वह केवल प्रेमचद का। वह अपने भाई को भी यह घाटेवाला प्रेस बेचने को तैयार न थे। उन्होंने गाँव में मकान बनवाया था और रक्षाबधन के अवसर पर—उस जमाने मे—एक सौ पैंतीस रुपए की लौंग बेटी के लिए, पैंतालीस-पैंतालीस की घडियाँ बेटो के लिए लाए थे। (देखिए, शिवरानी देवी, *'प्रेमचद घर में'*)। अमृतराय ने इस घटना का जिक्र नही किया, न यह लिखा है कि प्रेमचद अपनी पुस्तको के रूप मे जो सपत्ति छोड गए, उससे उनके बेटो को कितना मुनाफा हुआ।" (*प्रेमचद और उनका युग*, पृ. 181।

व्यक्ति प्रेमचंद के बारे मे जैदी ने जो सनसनीखेज विवरण प्रस्तुत किए हैं, उनमें कुछ के सूत्र यहाँ मौजूद हैं; प्रेमचद की प्रामाणिक जीवनी के सिलसिले मे गोयनका ने जो प्रयास नई दिशाओ मे किए हैं, उनमे अधिकाश के सूत्र जैदी की पुस्तक में हैं। अतर्विरोधों को सही परिप्रेक्ष्य में न देखने पर व्यक्ति प्रेमचंद के चरित्र की उन विशेषताओ की व्याख्या नही की जा सकती, जिनका प्रतिफलन उनका साहित्य है। उस साहित्य के महत्त्व को अस्वीकारना किसी जैदी या गोयनका के बस में नही है। व्यक्ति प्रेमचद को वह जितना ही लेखक प्रेमचंद से अलग करेंगे, उतना ही वे स्वय अतर्विरोधो मे फँसते जाएँगे। हिंदी-उर्दू में जितने रूढ़िवादी थे, प्रेमचद के जीवनकाल मे वे सब उनके विरोधी थे। इस रूढ़िवाद के संरक्षक थे यहाँ के सामत और पुरोहित और इस जर्जर सामाजिक व्यवस्था का पोषक था ब्रिटिश साम्राज्यवाद। इस साम्राज्यवाद और उसके द्वारा पाली-पोसी जानेवाली समाज-व्यवस्था पर सबसे शक्तिशाली प्रहार किया था प्रेमचंद ने। भारत के आधुनिक साहित्य मे उनसे बडे कलाकार हैं, उनसे बडा साम्राज्यविरोधी, सामतविरोधी लेखक दूसरा नहीं है। भारत अभी अतर्राष्ट्रीय महाजनी पूँजीवाद के जाल में फँसा हुआ है, सामंती अवशेषों से वह अभी मुक्त नहीं हुआ, अधविश्वास मिटने के बदले किसी हद तक दृढ़ हुए हैं। इनमे जाति-बिरादरी और सप्रदायवाले अंधविश्वास सर्वोपरि हैं। भारत का पूँजीपति वर्ग वर्तमान व्यवस्था मे पैबंद लगाकर काम चलाना चाहता है, बुनियादी परिवर्तन करने की क्षमता उसमें नहीं है। यही नहीं, वह इस तरह के परिवर्तन से डरता है। प्रेमचंद का साहित्य इस परिवर्तन की प्रेरणा देता है। जितने भी लेखक इस परिवर्तन के लिए काम करते हैं, वे प्रेमचंद से जुडे हैं, उनसे प्रभावित हैं। पूँजीपति वर्ग इस प्रभाव से चिंतित है। वह भारतीय संस्कृति के नाम पर रूढ़िवाद से समझौता करता है, एक हद तक बिरादरीबाजी और सांप्रदायिकता के प्रसार में सहायता करता है। यही कारण है कि जो लेखक इस वर्ग

के हित-चिंतक हैं, वे भारतीयता के नाम पर प्रेमचंद साहित्य की ऐसी व्याख्या करते हैं जिससे संघर्षवाला साहित्य उससे बाहर जा पड़े। प्रेमचंद की आस्थाएँ टूट गईं, वह गोदानकार बने, होरी के जीवन-मरण का सारतत्व यह निकला कि संसार को बदल सकना उसके लिए सभव नहीं है। इससे काम न चले तो एक अस्त्र और है : प्रेमचंद पैसा कमाऊ लेखक थे, निःस्वार्थ सेवाभाव से तो उन्होंने साहित्य लिखा न था। वह साहित्य प्रेरणादायक हो कैसे सकता है? मुमकिन है, किसी समय प्रगतिशील रहे हों पर एक समय वह भी आया जब प्रेमचंद ने अपनी प्रगतिशील विचारधारा को छोडकर पुरानी परंपरागत विचारधारा को स्वीकार कर लिया!

प्रेमचंद की मृत्यु के बाद आधी शताब्दी बीत रही है। उनके जीवन और साहित्य को लेकर विचारधारात्मक संघर्ष जारी है। निःसंदेह भारत के इक्कीसवीं शताब्दी में प्रवेश करते समय भी यह संघर्ष जारी रहेगा। प्रेमचंद साहित्य का ऐतिहासिक महत्त्व ऐसा ही है।

8. उपन्यासों के संदर्भ : कहानियों में

बडे भित्तिचित्र बनाने के पहले कलाकार अक्सर छोटे रेखाचित्र बनाते हैं, इन रेखाचित्रो को अशत: ग्रहण करते और अशत: छोडते हुए वे भित्तिचित्र की विशद भूमि तक पहुँचते हैं। प्रेमचद की कहानियाँ स्वतंत्र रचनाएँ हैं, उपन्यासों के विवेचन मे उनसे सहायता ली जा सकती है, पर उपन्यास लिखने की तैयारी के लिए उन्होने कहानियाँ लिखी हो, यह कहना उचित न होगा। फिर भी चित्रकारों और कवियो के मन मे कुछ अनुभाव उभरते और डूबते रहते हैं और किन्हीं विशेष परिस्थितियो मे, किन्ही विशेष सरचनाओं मे, वे अपना भरा-पूरा संवर्धित आकार ग्रहण करते हैं। (कुछ अस्फुट, कुछ प्रस्फुट, भाव, बिंब, विचार, भाषा, छंद—इन सभी के लिए यहाँ मैंने 'अनुभाव' शब्द का प्रयोग किया है। **निराला की साहित्य साधना** के दूसरे खड में उभरने-डूबने की इस प्रक्रिया के कुछ उदाहरण मैंने दिए हैं।) 'प्रेमचद ने भले ही सचेत रूप से प्रयास न किया हो, पर उनकी कुछ कहानियो के अनुभाव उनके मन मे सवर्धित होते रहे हैं और जब वे उपन्यास की बड़ी संरचना के अश बने, तब मानो उनका विकासक्रम पूरा हुआ, उनकी अभिव्यक्ति पूर्ण हुई; इसके साथ ही उनकी मूल व्यजना में परिवर्तन हुआ और उन्होंने बड़ी संरचना के अन्य अनुभावो को भी प्रभावित किया। इसके साथ ही एक उल्टी प्रक्रिया भी घटित हो सकती है : उपन्यास लिख डाला, उसके बाद उसके किसी पात्र, घटना आदि को लेकर थोड़े हेर-फेर से कहानी लिख दी।

प्रेमचंद की **बाँका जमींदार** कहानी अक्तूबर 1913 के 'ज़माना' में प्रकाशित हुई थी। (*गुप्तधन*, भाग 1, इलाहाबाद, 1978, पृ. 158-66)। कुछ सूत्र इसे **प्रेमाश्रम** से जोड़ते हैं। ठाकुर प्रद्युम्न सिंह वकील हैं। कानूनी ज्ञान से अधिक वे

अपने और अन्य सहयोगियों के बाहुबल का भरोसा करते हैं। उनकी विशेषताएँ तीन तरह के जमींदारों में अलग-अलग विकसित हुई। ज्ञानशंकर की तरह वह पढ़े-लिखे हैं, राय कमलानद की तरह शारीरिक बल का भरोसा करनेवाले और सनकी हैं और प्रेमशकर अथवा मायाशकर की तरह वह अपनी जमीन किसानो को देते हैं। वह पुश्तैनी जमीदार नही हैं, गाँव उन्हे एक जमीदार मुक्तिकल से मिल गया है। इस जमीदार को कत्ल के अपराध मे पकडा गया था। जिस तरह किसानो को **प्रेमाश्रम** मे सताया जाता है, उसी तरह यहाँ भी उन्हे सताया जाता है और इस प्रक्रिया में एक किसान की मृत्यु हो गई। जमीदार ने "सिर्फ रस्मोरिवाज के माफिक" एक असामी को दिन-भर जेठ की जलती हुई धूप मे खडा रखा था, मर गया तो जमीदार क्या करे? धूप मे खडा रखने आदि के अत्याचार किसानो पर प्रथम विश्वयुद्ध से पहले से होते आ रहे थे। वकील प्रद्युम्न सिंह ने अपराधी जमीदार को बचा लिया। "उनके यहाँ शहर के पहलवानो और फेकैतो का हमेशा जमघट रहता था," और इन्ही के बल पर वह मुकदमा जीते। मेहनताने के रूप मे उन्हे वह गाँव मिला जिसके किसानो को "इस बात का गर्व था कि कभी कोई जमींदार उन्हें बस मे नही कर सका।"

मालिक बनते ही प्रद्युम्न सिंह ने तीन साल का पेशगी लगान भरने का हुक्म दिया। मजबूर होकर किसान गाँव छोडकर चले गए। साल-भर बाद गाँव फिर आबाद हुआ। फसल अच्छी हुई। खबर पाकर प्रद्युम्न सिंह ने अपने लठैतो के साथ गाँव का दौरा किया। वहाँ उन्होने लेमनेड और बर्फ की फर्माइश की। फर्माइश पूरी न हुई और किसान फिर गाँव छोडकर भागे। तीन साल बाद वहाँ बजारे आकर बस गए। "उनके आते ही गाँव मे लक्ष्मी का राज हो गया।" यहाँ ऊख जरूर बोई गई होगी क्योंकि अन्य बातो के अलावा "कोल्हाडो ने फिर धुएँ और भाप की चादरे पहनीं।" प्रद्युम्न सिंह ने फिर गाँव का दौरा किया पर इस बार उन्होने धौंस दिखाई तो बूढे हरदास ने कहा, "हम आपकी रैयत हैं लेकिन हमको अपनी आबरू प्यारी है और चाहे जमीदार को अपना सिर दे दे आबरू नही दे सकते।" इससे **प्रेमाश्रम** मे मनोहर और बलराज की बातो को मिलाकर देखे, रूसी क्राति से पहले किसान जमीदार की ज्यादतियो का मुकाबला करने लगे हैं। ये बजारे पुराने ढग के नियमित किसान नहीं हैं, खानाबदोश जिंदगी बिताते हुए उन्होने आत्मसम्मान का भाव बनाए रखा है, उनका समाज बिरादरियो मे बँटा हुआ नही है, ऐसे किसान जमीदार के लठैतों का मुकाबला करते हैं। प्रेमचद के नेक इरादे साफ जाहिर हैं—किसानो को मिलकर अत्याचारी जमींदारो का मुकाबला करना चाहिए।

प्रद्युम्न सिंह ने अपने लठैत सरदार अर्जुनसिंह को हुक्म दिया, "कल शाम तक इन लोगों से मेरा गाँव साफ हो जाए।" इस पर हरदास ने कहा, "हमने इस गाँव को छोडने के लिए नही बसाया है। जब तक जिएँगे इसी गाँव मे रहेगे, यहीं पैदा होगे और यहीं मरेगे। आप बडे आदमी हैं और बडो की समझ भी बड़ी होती है। हम

लोग अक्खड़ गँवार हैं। नाहक गरीबो की जान के पीछे न पडिए। खून-खराबा हो जाएगा। लेकिन आपको यही मजूर है तो हमारी तरफ से आपके सिपाहियो को चुनौती है, जब चाहे दिल के अरमान निकाल ले।" हरदास को मनोहर और बलराज का पूर्व रूप कहना उचित होगा। हरदास के साथियो ने लाठियाँ चलाई। "अर्जुन सिंह ने समझदारी से काम लिया। ताहम उनके चद आदमियो के लिए गुड और हल्दी पीने का सामान हो चुका था।" हरदास के साथी लडते हैं, मनोहर अकेला लडता है, होरी नही लडता; इन तीनो को मिलाकर देखें—किसान हमेशा पस्त नही था, उसे पस्त बनाया गया है। सन् 13 का हरदास सन् 33 मे होरी बन गया है। प्रद्युम्न सिंह और राय कमलानद भी होशियार होकर राय अमरपाल सिंह बन गए है। फिर भी किसान अपराजेय रहा और सन् 45-47 के जनसघर्षों मे उसने अपनी शक्ति का फिर से परिचय दिया।

लठैतो के मार खाने के बाद प्रद्युम्न सिंह का हृदय-परिवर्तन हो गया। वह बहुत दिनो से जमीदार बनने का सपना देख रहे थे। "ठाकुर प्रद्युम्न सिंह की निगाहे बहुत अर्से से एक बहुत उपजाऊ मौजे पर लगी हुई थी। लेकिन बैंक का एकाउण्ट कभी हौसले को कदम नही बढाने देता था।" जब जमीदार उन्हे वही गाँव देने लगा, तब "वकील साहब फडक उठे। दो चार बार निस्पृह बैरागियो की तरह इनकार करने के बाद इस भेट को कबूल कर लिया। मुँहमाँगी मुराद मिली।" लेकिन लठैतो के पिटने के बाद उन्होने वह मुराद किसान के हवाले की और कारण यह बताया, "मेरी दिली आरजू यह थी कि इस गाँव मे वे लोग आबाद हो जो जुल्म का मर्दो की तरह सामना करे, जो अपने अधिकारो और रिआयतो की मर्दो की तरह हिफाजत करे, जो हुकूमत के गुलाम न हो, जो रोब और अख्तियार की तेज निगाह देखकर बच्चो की तरह डर से सहम न जाएँ।" प्रेमशकर इस तरह बाते नही करते। वह भी गाँव की जमीन किसानो के देते है पर अहिंसावादी ढग से। केवल मनोहर मे हरदास का तेज बाकी है। पचास साल बाद बजारो के उस गाँव की स्त्रियाँ प्रद्युम्न सिंह की पूजा करती हैं, कई नौजवान दौलत और हुकूमत की बुलदी पर पहुँच गए, "लेकिन बूढे और अक्खड हरदास के नाम पर अब भी गर्व करते है।" यही नही, जिस दिन किसानो ने जमीदार के लठैतो का मुकाबला किया था, उस दिन की याद मे उत्सव करते है। "और भादो सुदी एकादशी के दिन अब भी उसी मुबारक फतेह की यादगार मे जश्न मनाये जाते हैं।" प्रेमचद ने तिथि का उल्लेख इतने सहज ढग से किया है कि लगता है, उस दिन सचमुच कहीं उत्सव का आयोजन होता था। "गो पचास साल से ज्यादा गुजर गए है"—यह लिखकर उन्होने मानो इशारा किया है कि इस कहानी का आधार परपरा से चली आती एक पुरानी कथा है।

सन् 1913 मे यह कहानी छपी। इससे पचास साल पीछे चले तो 1863 मे पहुँचे। गदर को अभी पाँच साल भी नही बीते। लोग लडना-मरना जानते हैं,

आबरू का मतलब समझते हैं। अंग्रेज नए जमींदारों को गाँव दे रहे थे। हो सकता है, ऐसे किसी नए जमींदार के लठैतो को किसानो ने सबक सिखाया हो, उसकी याद उनके मन में बनी रही हो और उस दिन, भादो सुदी एकादशी को, वह विजय-पर्व मनाते हों।

इस कहानी मे किसान, जमीन पर अपना मौरूसी हक कायम करने के लिए नही लडते; जमीन उन्हे जमीदार की कृपा से मिल जाती है। यही स्थिति **प्रेमाश्रम** मे है। **प्रेमाश्रम** से पहले एक प्रेमशकर **पशु से मनुष्य** कहानी मे हैं; नाम और गुण, दोनो मे उपन्यास के प्रेमशकर के समान हैं। वह "बडे मतोषी, सरल, सहृदय मनुष्य" हैं। खास बात यह है कि "व कई साल अमेरिका रह चुके थे। वहाँ उन्होने कृषि विज्ञान का खूब अध्ययन किया था और यहाँ आकर इस वृत्ति को अपनी जीविका का आधार बना लिया था।" (*मानसरोवर*, भाग 8, इलाहाबाद, 1978, पृ 107)। यह प्रेमशकर **प्रेमाश्रम** वाले प्रेमशकर हैं, इसमे कोई सदेह नही। प्रश्न यह है कहानी पहले लिखी गई या उपन्यास (या दोनो साथ लिखे गए)? और भी—क्या इस कहानी से उपन्यास के विवेचन मे (अथवा उपन्यास से कहानी के विवेचन मे) सहायता मिलती है?

प्रेमचंद : कलम का सिपाही के परिशिष्ट-2 मे इसका प्रकाशन काल फरवरी 1920 दिया हुआ है। इस हिसाब से जब प्रेमचद उपन्यास खत्म कर रहे थे, तभी वह यह कहानी भी लिख रहे थे। डॉ मेहरा बॉर ऐट लॉ **प्रेमाश्रम** के डॉ इर्फान अली बॉर ऐट लॉ के प्रतिरूप हैं। "डाक्टर महोदय को बागवानी से विशेष प्रेम था।" (उप., पृ 102)। इधर इर्फान अली—"शाम सबेरे वह प्रेमशकर के साथ बागवानी करते थे, जिसका उन्हे पहले से ही शौक था।" (*प्रेमाश्रम*, पृ 389)। उन्होने आमो की चोरी के अपराध मे दुर्गा माली को हटर लगाए, फिर उसे निकाल दिया। जब वह आमो की कुछ अच्छी कलमे लेने प्रेमशकर के यहाँ पहुँचे तो उन्होने देखा कि दुर्गा वहाँ काम कर रहा है। प्रेमशकर खुद भी काम कर रहे थे। वहाँ किसी को वेतन न दिया जाता था। "सब लोग लाभ मे बराबर के साझेदार है। अबकी नारगियाँ खूब हुई हैं, मटर की फलियो, गन्ने, गोभी आदि से अच्छी आमदनी हो रही है।" (उप, पृ 108-09)। कलमी आम और नारगी के पेड **प्रेमाश्रम** मे भी हैं। कहानी मे मटर की फलियो, गन्ने, और गोभी का जिक्र है। खेती भी होती थी, पर जोर बागवानी पर है। **प्रेमाश्रम** मे जोर खेती पर है, "बाग की आमदनी अलग" से है। (*प्रेमाश्रम*, पृ 198)। **प्रेमाश्रम** मे असामी किसान है। "यद्यपि प्रेमशकर केवल उसके प्रबधकर्ता थे, पर वस्तुत असामियों की भक्ति और पूर्ण विश्वास ने उन्हे उसका स्वामी बना दिया था।" (उप, पृ 198)। कहानी मे असामिया का पता नही है। प्रेमशकर समेत कुल सात आदमी हैं। किसान-जमीदार-सघर्ष की समस्या यहाँ नही है। उसकी जगह मालिक और नौकर के सबधो की समस्या है। प्रेमशकर अपनी जमीन के मालिक हैं, उस पर वह

सहकारिता का प्रयोग कर रहे हैं, वह और उनके सहायक मिलकर काम करते हैं, जो लाभ होता है, उसमे दस प्रतिशत धर्मखाते मे डालते हैं, बाकी आपस में बाँट लेते हैं। मालिक-नौकर की समस्या इस प्रकार है . "मालिक चाहता है कि इससे जितना काम लेते बने, लेना चाहिए। नौकर चाहता है कि मैं कम-से-कम काम करूँ। उसमे स्नेह या सहानुभूति का नाम तक नही होता। दोनो यथार्थ मे एक-दूसरे के शत्रु होते हैं।" (*मानसरोवर*, भाग 8, पृ 109)।

दुर्गा मेहरा के यहाँ नौकर था। मासिक वेतन पाँच रुपए था, गुजारा न होता था। "दुर्गा, डाक्टर साहब की नजर बचाकर बगीचे से फूल चुन लेता और बाजार मे पुजारियो के हाथ बेच दिया करता था। कभी-कभी फलो पर भी हाथ साफ किया करता।" (उप., पृ 102)। प्रेमशकर के यहाँ दुर्गा का स्वभाव बिलकुल बदल जाता है। मेहरा के पूछने पर वह बतलाते हैं, "यहाँ तो खूब मेहनत करता है, यहाँ तक कि दोपहर की छुट्टी मे भी आराम नही करता। मुझे तो इस पर इतना भरोसा हो गया कि सारा बगीचा इस पर छोड रखा है।" (उप., पृ 108)।

इसी तरह **प्रेमाश्रम** मे –"भोला अहीर जिसके मारे खलिहान मे अनाज न बचता था, दमडी पासी जिसका पेशा ही लठैती था, अब गाँव के सबसे मेहनती और ईमानदार किसान थे।" (उप , पृ 199) . दमडी ने प्रेमशकर से शिकायत की–"भोला कल एक टोकरी अमरूद तोडकर बेच लाया है।" (उप., पृ. 216)। दुर्गा माली का प्रतिरूप है भोला। सुधर गया है लेकिन पूरी तरह नही। जुआ भी खेलता है। बुधिया ने उसे ठीक कर दिया। प्रेमशकर पूछते हैं, "तुम्हारी तलब बुधिया को दे दिया करूँ?" (उप , पृ. 246)। आगे से बुधिया को भोला की तलब दी जाया करेगी। तलब नौकरो को दी जाती है। प्रेमचद की कल्पना मे प्रेमशकर के सहयोगियो का नौकरवाला रूप समाप्त नही हुआ। प्रेमशकर मस्ता कोरी की झोपडी की ओर चले "कि अकस्मात दुर्गा, मस्ता और कृषिशाला के कई और नौकर एक मनुष्य को खीच-खीचकर लाते हुए दिखाई दिए।" (उप , पृ 293)। जिसे वे खीच रहे थे, वह बिसेसर साह थे। मुख्य बात यह कि दुर्गा, मस्ता आदि कृषिशाला के नौकर हैं। मालिक-नौकर की समस्या पहले है, जमीदार-किसान समस्या बाद को। **पशु से मनुष्य** मे प्रेमचद ने पहली समस्या हल की; **प्रेमाश्रम** मे दूसरी। पहली समस्या की छाया दूसरी पर है, इसलिए कृषिशाला मे कुछ लोग नौकर हैं! कहानी उन्होंने पहले लिखी होगी, उपन्यास बाद को।

प्रेमचद के मन मे शायद सबसे बढिया नौकरी माली की है। मिर्जा खुर्शेद ने मजदूरो को कबड्डी खेलने के लिए बटोरा, गोबर को उन्होने "पौधे सींचने का काम सौंपा।" (*गोदान*, पृ 144)। आगे चलकर "मालती ने अपने बाग के लिए गोबर को माली रख लिया। पद्रह रुपए वेतन तय हुआ। माली का काम उसे पसद था। यही काम उसने किया था और उसमें मँजा हुआ था। मिल की मजदूरी में वेतन ज्यादा मिलता था; पर उस काम से उसे उलझन होती थी।" (उप., पृ

336)। औद्योगिक विकास मजदूरो का सगठन, पूँजीपति-मजदूर-सघर्ष, इन सबसे प्रेमचद को भी उलझन होती है। वे ऐसे उलझने पुराने दस्तकारीवाले श्रम-विभाजन के सहारे दूर करते हैं। मालिक अच्छा हो तो **पशु से मनुष्य** मे दुर्गा की, **प्रेमाश्रम** मे भोला की, **गोदान** मे गोबर की समस्या हल हो जाएगी।

पशु से मनुष्य मे मालिक-नौकरवाले प्रसग मे प्रेमशकर कहते है, "इस प्रतिद्वद्विता का दुष्परिणाम हम और आप देख ही रहे हैं। मोटे और पतले आदमियो के पृथक-पृथक दल बन गए है और उनमे घोर सग्राम हो रहा है। मैने अन्य देशो मे इस घातक सग्राम के दृश्य देखे है और मुझे घृणा हो गई है। सहकारिता ही हमे इस सकट से मुक्त कर सकती है।" (*मानसरोवर*, भाग 8, पृ 179)। अन्य देशो मे प्रेमशकर ने जो कुछ देखा था, उसका सबध पूँजीपतियो और मजदूरो के सघर्ष से अवश्य रहा होगा। किंतु **प्रेमाश्रम** या **गोदान** मे उन्होने सहकारिता के आधार पर कही इस तरह के संघर्ष के समाधान का प्रयत्न नही किया। वह अपना यह नुस्खा आजमाते हैं किसान-जमीदार-सघर्ष पर। **पशु से मनुष्य** मे सहकारिता मालिक-नौकर की समस्या, छोटे पैमाने पर, हल करती है, **प्रेमाश्रम** मे उसे बडे पैमाने पर, एक बड़ी समस्या के हल के लिए, इस्तेमाल किया गया है। **प्रेमाश्रम** लिखते समय प्रेमचद के लिए किसान-जमीदार-सबधो की समस्या बहुत महत्त्वपूर्ण है। **प्रेमाश्रम** के बाद, या उसे लिखते समय, वह उसे भूल जाएँ, सहकारिता का उपयोग माली और उसके मालिक के सबधो को सुधारने के लिए करे, तो यह बडे आश्चर्य की बात होगी। सभावना यह है कि कहानी **प्रेमाश्रम** से पहले लिखी गई थी, प्रकाशित वह फरवरी, 1920 मे हुई।

कहानी मे एक मार्के की बात यह है कि डाक्टर मेहरा अत तक अपनी बात पर अडे रहते हैं, हृदय-परिवर्तन की नौबत नही आती। वह समझते है कि दुर्गा पैदायशी बदमाश है और जन्म के सस्कार मिटाए नही जा सकते। प्रेमचद के कथा-साहित्य मे हृदय-परिवर्तन सर्वत्र नही होता। दूसरी मार्के की बात ऐतिहासिक भौतिकवाद का यह सिद्धात है "समाज का चक्र साम्य से आरभ होकर फिर साम्य पर ही समाप्त होता है। एकाधिपत्य, रईसो का प्रभुत्व और वाणिज्य-प्राबल्य, उसकी मध्यवर्ती दशाएँ हैं। वर्तमान चक्र ने मध्यवर्ती दशाओ को भोग लिया है और वह अपने अंतिम स्थान के निकट आता जाता है।" (उप , पृ 112)। आरंभ मे आदिम साम्यवाद, व्यक्तिगत सपत्ति का अभाव, सहकारिता का चलन; इसके बाद सपत्ति के अनेक रूप, वर्गो का आपसी सघर्ष; अत मे पुन सामूहिक श्रम और सामूहिक सपत्ति। यह सिद्धात प्रेमशकर ने प्रस्तुत किया है। उन्होने यह नही बताया कि नया साम्यवाद पुराने साम्यवाद से भिन्न होगा, वह ज्ञान-विज्ञान की उपलब्धियों का उपयोग करेगा, पर यह स्पष्ट है कि प्रेमशकर व्यक्तिगत संपत्ति और वर्गयुक्त समाज-व्यवस्था को अस्थाई मानते हैं। सन् 20 के आसपास प्रेमचंद ने ऐतिहासिक भौतिकवाद पर कोई पुस्तक पढ़ी होगी, इसकी

सभावना बहुत कम है । विकास-सिद्धात भारतीय दर्शन का बहुत पुराना सिद्धांत है । दुनिया बदलती है, यह तो सभी जानते हैं, पर बदलने का अर्थ एक ही जगह चक्कर खाना नही है । परिवर्तन के साथ विकास भी होता है । यह धारणा भारतीय दर्शन मे विद्यमान है । डारविन से प्रभावित जर्मन लेखक हैकेल के विकासवाद सबधी विचारो को 'सरस्वती' के माध्यम से महावीर प्रसाद द्विवेदी ने हिंदी पाठको तक पहुँचाया था । प्रेमचद इस विचार-सामग्री से भी परिचित रहे होगे । पर वह इस सिद्धात को सामाजिक क्षेत्र मे लागू कर रहे थे, अतीत ही नही, भविष्य की बात कर रहे थे । यह काम हिंदी मे किसी और ने अब तक न किया था ।

श्रम-विभाजन के बारे मे मेहरा के तर्क का जवाब देते हुए प्रेमशकर कहते हैं, हर आदमी मजूरी (अर्थात् शारीरिक श्रम) करने पर मजबूर न किया जाएगा । लोग अपनी क्षमता के अनुसार काम करेगे पर "मानसिक और औद्योगिक कामो मे इतना फर्क न्याय के विरुद्ध है ।" (उप , पृ -111) । शारीरिक श्रमवाले कामो को यहाँ औद्योगिक काम कहा गया है । प्रेमचद शारीरिक और मानसिक श्रम की दूरी को कम करने के पक्ष मे है । कुछ लोगो को आपत्ति है कि "इस साम्य मे गुणी लोगों का अनादर होगा", प्रेमशकर का उत्तर है कि ससार के बडे से बडे कवि, पडित, आविष्कारक, शिक्षक "धन और प्रभुता के लोभ से मुक्त थे ।" (उप , पृ 111-12) । मेहरा प्रेमशकर के विचारो को देवलोक के लिए उपयुक्त बताकर उन्हे वास्तविक ससार के लिए अप्रासगिक सिद्ध करना चाहते हैं । प्रेमशकर उन्हे वास्तविक ससार की दशा बतलाते हुए कहते है, "केवल इसी कारण से अभी तक धनवानो का, जमीदारो का और शिक्षित समुदाय का प्रभुत्व जमा हुआ है । पर इसके पहले भी, कई बार इस प्रभुत्व को धक्का लग चुका है । और चिह्नो से ज्ञात होता है कि निकट भविष्य मे फिर इसकी पराजय होनेवाली है । कदाचित् यह हार निर्णयात्मक होगी ।" (उप , पृ 112) ।

उस समय सोवियत सघ मे शायद ही कोई मार्क्सवादी ऐसा रहा हो जो विश्वक्राति पर, पूँजीवाद की पराजय और श्रमिक जनता की आसन्न विजय पर विश्वास न करता हो । ये लोग कल्पनालोकी समाजवादी नहीं थे, संसार के एक बडे भूखड मे क्राति कर चुके थे और अब वे विश्वक्रांति की विजय के लिए प्रयत्नशील थे, खासतौर से एशियाई जनता के स्वाधीनता संग्राम की सहायता करना चाहते थे । प्रेमचद को यदि लगा कि सपत्तिशील वर्गों की पराजय होने ही वाली है तो इसमे आश्चर्य की बात नही है । धनवानो के प्रभुत्व को पहले भी कई बार धक्का लग चुका था, इस बार उनकी हार 'निर्णयात्मक' होगी । नई क्रांति सपत्तिशाली वर्गो के प्रभुत्व को सदा के लिए समाप्त कर देगी—यह धारणा प्रेमचद को बोल्शेविक क्रांति की विजय से प्राप्त हुई है । पर उनके विचार रूस के उन लोकवादियो के-से हैं जो पूँजीवादी विकास के बिना ही समाजवाद की मंजिल तक पहुँच जाना चाहते थे । प्रेमशकर कहते हैं, "हम शहरों में कारखाने खोलते फिरते

है, इसलिए कि मजदूरो की मेहनत से मोटे हो जायँ। 30 रु और 40 रु सैकडे लाभ की कल्पना करके फूले नही समाते, पर ऐसा कही देखने मे नही आता कि किसी शिक्षित सज्जन ने कपडा बुनना या खेत जोतना शुरू किया हो।" (उप, पृ 112-13)। प्रेमचद के चिंतन की यह कमजोरी है, वह औद्योगिक विकास से बचकर, कुटीर उद्योगो के रास्ते, साम्यवाद तक पहुँचना चाहते है। यह कमजोरी प्रेमशकर के माध्यम से व्यक्त हुई है। कहानी मे प्रेमशकर की भूमिका सीमित है, पाठक खेत जोतने और कपडा बुनने की बात सुन लेता है पर रहता है बागवानी की दुनिया मे। दुर्गा माली पहले फल-फूल चुराकर बेच लेता था, अब नही बेचता। उसका चोरी न करना समाज व्यवस्था मे किसी बडे परिवर्तन की सूचना नही है। किंतु **प्रेमाश्रम** मे प्रेमशकर की भूमिका विस्तृत है और उसका असर पूरे उपन्यास की सरचना पर पडता है। इस सरचना के दो अलग टुकडे साफ दिखाई देते है—लखनपुर के किसानो की यथार्थ दशा का चित्रण और समस्याओ के समाधान के लिए **प्रेमाश्रम** के रूप मे काल्पनिक इच्छापूर्ति।

प्रेमचद औद्योगिक विकास का विरोध करते है लेकिन उनका **प्रेमाश्रम** बिकाऊ माल की दुनिया से बाहर नही है। **पशु से मनुष्य** मे नार्रगियाँ खूब हुई है, मटर की फलियो, गन्ने, गोभी आदि से "अच्छी आमदनी" हो रही है। (उप, पृ 108-09)। आमदनी इन सब पदार्थो को बाजार मे बेचने से होती है। उनका उत्पादन तात्कालिक उपभोग के लिए नही किया गया। कहानी मे प्रेमशकर और उनके सहयोगियो के पास एक साइकिल भी है। भारत मे तब साइकिले बनती न थी। स्पष्ट ही बिलायती माल है। सात आदमियो का यह साम्यवादी समाज भारत के बाजार से ही नही, बिलायत के बाजार भी से जुडा हुआ है। उपन्यास मे **प्रेमाश्रम** की उत्पादित वस्तुएँ—"दूध-मक्खन बिकने के लिए शहर चला आता था।" (*प्रेमाश्रम*, पृ 389)। शहर के इस बाजार पर देशी ही नही, विदेशी बनियो का कब्जा है। सहकारिता, काल्पनिक इच्छापूर्ति के द्वारा भी, पूँजीवादी सबधो को खत्म नही कर पाती, न कहानी मे, न उपन्यास मे।

यहाँ यह कह देना उचित होगा कि स्वय प्रेमशकर साम्यवादी होने का दावा नही करते। ज्ञानशकर की आपत्ति है कि साम्य सिद्धात 'अस्वाभाविक' है, उसे "व्यवहार मे लाना असभव है", प्रेमशकर उत्तर देते हैं, "यहाँ साम्यवाद की तो कभी चर्चा नही हुई है।" (उप, पृ 390)। इसी तरह के आक्षेप का उत्तर देते हुए कहानी के प्रेमशकर कहते हैं, "मै 'सोशलिस्ट' या 'डिमोक्रेट' कुछ नही हूँ। मैं केवल न्याय और धर्म का दीन सेवक हूँ।" (*मानसरोवर*, भाग-8, पृ 109)। भारत के पुराने ग्राम समाज द्विज-शूद्र के भेद, विशेषाधिकारी और अधिकारहीन समुदायो के भेद, पर आधारित थे। प्रेमचंद यह भेद स्वीकार नहीं करते। इसी अस्वीकृति के सदर्भ मे वह साम्य शब्द का व्यवहार करते हैं। उसका सबध भारतीय सतो के मानवतावाद से है, योरुप के कल्पनालोकी समाजवाद से नहीं।

गोदान की दुनिया मे प्रेमशकर नही है, उनका साम्यवाद नही है पर जमींदार यह सीख गए है कि केवल देशभक्त बनना काफी नही है, किसानो का शोषण बनाए रखने के लिए उन्हे साम्यवादियो की-सी बाते करना चाहिए। मेहता रायसाहब की आलोचना करते हुए कहते है, "मुझे उन लोगो मे जरा भी हमदर्दी नही है, जो बाते तो करते है कम्युनिस्टो की-सी, मगर जीवन है रईसो का-सा, उतना ही विलासमय, उतना ही स्वार्थो मे भरा हुआ।" (*गोदान*, पृ 53)। रायसाहब के एक प्रतिरूप **रियासत का दीवान** के राजा साहब है। उनके दीवान का नाम है मेहता। स्वय दीवान तो नही पर उनका पुत्र जयकृष्ण किसी हद तक **गोदान** के मेहता से मिलता है। 1932 मे उग्र भाषण करने के अपराध मे उसे छह महीने की सजा हुई थी। उसके पिता दीवान हुए तो उसे "राजा साहब ने खास तौर पर बुलाया था और उससे जी खोलकर बाते की थी जयकृष्ण पर राजा साहब के साम्यवादी विचारो का बडा प्रभाव पडा था। उसे ज्ञात हुआ कि राजा साहब केवल देशभक्त ही नही, क्राति के समर्थक भी है। रूस और फ्रास की क्राति पर दोनो में खूब बहस हुई थी, लेकिन अब की यहाँ उसने कुछ और ही रग देखा। रियासत के हर एक किसान और जमीदार से जबरन चदा वसूल किया जा रहा था। पुलिस गाँव-गाँव चदा उगाहती फिरती थी। रकम दीवान साहब नियत करते थे। वसूल करना पुलिस का काम था। हजारो मजदूर सरकारी इमारतो, सजावट और सडको की मरम्मत मे बेगार भर रहे थे। बनियो से डडो के जोर से रसद जमा की जा रही थी।" (*मानसरोवर*, भाग 2, पृ 168-69)।

कलम का सिपाही के अनुसार यह कहानी मई 1934 के 'हस' मे छपी थी। जिन दिनो प्रेमचद **गोदान** मे रायसाहब का रूप निखार रहे थे, उन्ही दिनो इन साम्यवादी राजा साहब का रेखाचित्र भी उन्होने तैयार किया था। इस कहानी मे सन् 32 का स्पष्ट उल्लेख है। गोलमेज-सम्मेलन से स्वराज न मिला, सविनय अवज्ञा आदोलन एक दलदल मे फँसकर समाप्त हो गया। समाजवाद की चर्चा ने जोर पकडा और ऐसा जोर पकडा कि राजा और ताल्लुकेदार भी समाजवादी बाते करने लगे। इनकी देशभक्ति और क्रांतिकारिता के प्रति प्रेमचद ने जनता को सतर्क किया था। कहानी में प्रेमचंद ने रियासती व्यवस्था से अग्रेजी राज की पुलिस का सीधा सबध दिखाया है। इस सबध के कारण किसान ही नही, जमीदार और बनिए भी पीडित है। एक बडे साम्राज्यविरोधी, सामत-विरोधी मोर्चे के उपकरण यहाँ मौजूद है। राजा साहब की तुलना मे रायसाहब का चित्रण अधिक कौशल से किया गया है और वह उपन्यास के जीवत पात्रो मे हैं। कहानियों मे वैसा 'देशभक्त' जमीदार दूसरा नही है।

कलम का सिपाही के अनुसार **पूस की रात** मई 1930 की 'माधुरी' में छपी थी। सविनय अवज्ञा आदोलन के दौर मे प्रेमचद की निगाह निर्धन किसानों पर थी। कहानी मे होरी का पूर्वरूप हल्कू है। होरी के पास बाप का पुराना कंबल है,

हल्कू ने तीन रुपए जोडे हैं कबल खरीदने के लिए। समस्या ऋण की है। होरी के मुकाबले हल्कू भारी-भरकम डील का है। होरी की तरह आसान रास्ता ढूँढता है। जाडा आएगा, तब देखा जाएगा, अभी तो महाजन के तकाजे से छुट्टी मिले। उसकी पत्नी का नाम मुन्नी, धनिया का प्रतिरूप। पति से दूर हटकर आँखे तरेरती हुई बोली, "कर चुके दूसरा उपाय! जरा सुनूँ तो कौन उपाय करोगे? कोई खैरात दे देगा कम्मल? न जाने कितनी बाकी है, जो किसी तरह चुकने ही नही आती। मै कहती हूँ, तुम क्यो नही खेती छोड देते? मर-मर काम करो, उपज हो तो बाकी दे दो, चलो छुट्टी हुई। बाकी चुकाने के लिए ही तो हमारा जन्म हुआ है। पेट के लिए मजूरी करो। ऐसी खेती से बाज आये। मैं रुपये न दूँगी– न दूँगी।" (*मानसरोवर*, भाग 1, पृ 157)। एक आँच की कसर भी नही है, हू-ब-हू धनिया है। पर वह हल्कू की बात बहुत आसानी मे मान जाती है और उसे तीन रुपए दे देती है। कहानी के छोटे फलक मे उसके पूर्ण चरित-विस्तार के लिए मानो गुजाइश नही है। शुरू में झलक दिखाकर अत मे ही प्रकट होती है।

जो चीज हल्कू को होरी से जोडती है, वह उसका जाडे की रात मे, खेत की रखवाली के लिए, वहाँ जाकर सोना है। "पूस की अँधेरी रात। आकाश पर तारे भी ठिठुरते हुए मालूम होते थे। हल्कू अपने खेत के किनारे ऊख के पत्तो की एक छतरी के नीचे बाँस के खटोले पर अपनी पुरानी गाढे की चादर ओढे पडा काँप रहा था। खाट के नीचे उसका सगी कुत्ता जबरा पेट मे मुँह डाले सर्दी से कूँ-कूँ कर रहा था। दो मे एक को भी नीद न आती थी।" (उप , पृ 158)। ठढ और अँधेरे का उल्लेख केवल दो वाक्यो मे है, फिर हल्कू और जबरा पर ठढ का असर दिखाया गया है। अँधेरा गौण है, ठढ मुख्य है। इससे होरी के परिवेश की तुलना करे।

"माघ के दिन थे। महावट लगी हुई थी। घटाटोप अँधेरा छाया हुआ था। एक तो जाडो की रात, दूसरे माघ की वर्षा। मौत का-सा सन्नाटा छाया हुआ था। अँधेरा तक न सूझता। होरी भोजन करके पुनिया के मटर के खेत की मेड पर अपनी मँडैया मे लेटा हुआ था। चाहता था, शीत को भूल जाय और सो रहे; लेकिन तार-तार कबल और फटी हुई मिर्जई और शीत के झोको से गीली पुआल। इतने शत्रुओं के सम्मुख आने का नींद मे साहस न था।" (*गोदान*, पृ 120-21)। पूस की जगह माघ है। महावट लगी हुई है। माघ की वर्षा से ठंढ और बढ गई है। अँधेरा महत्त्वपूर्ण है। मिल्टन के नरक में अँधेरा दिखाई देता था, यहाँ अँधेरा भी नही सूझता। हल्कू का खेत नील गाएँ चर गईं। चलो छुट्टी मिली, अब रात को ठंढ मे सोना तो न पडेगा। हल्कू कहीं मजूरी करेगा खाने-भर को पैदा कर लेगा। कंबल के लिए तीन रुपए उसने मजूरी के पैसों से ही जोडे थे। होरी को मजूरी के पैसों का सहारा नहीं है। उसका भविष्य अधकारमय है। **पूस की रात** से **गोदान** मे इस रात का अँधेरा और घना होना ही चाहिए। कहानी में किसान की वेदना के साथ व्यग्य और परिहास है; वह एक ओर वेदना को तीव्र करता है, दूसरी ओर उसे काटता भी

है। कोई बात नही, जब पडेगी तब निपट लेगे—यह भाव। **गोदान** मे उस रात को होरी के आसपास कहीं परिहास और विनोद का भाव नही है। हल्कू की अपेक्षा होरी अधिक ट्रैजिक है। हल्कू के साथ ठढ का साथी उसका कुत्ता जबरा है, होरी एकदम अकेला है। उसके सामने उसका अतीत और वर्तमान है और उसका यह आत्मज्ञान—"मै बुड्ढा होकर भी उल्लू बना रह गया।" (उप , पृ 121)।

I am a very foolish fond old man,
Four score end upward, not an hour more not less

लियर को जो ज्ञान अस्सी साल मे हुआ, होरी को वह उसकी आधी उम्र मे हो गया। ठढ और अँधेरे के अलावा, कहानी मे भिन्न उपन्यास मे, तीसरा तत्व और है—मौत का-सा सन्नाटा। आत्मज्ञान के लिए बडा उपयुक्त वातावरण है।

हल्कू के पास चिलम है, तमाखू है, गड्ढे मे सुरक्षित आग भी है। पर होरी—"आज तमाखू भी न मिला कि उसी से मन बहलाता। उपला सुलगा लाया, पर शीत मे वह भी बुझ गया।" (उप , पृ 121)। प्रेमचद ने **पूस की रात** के कुछ उपकरण हटा दिए। कुत्ता नही है, तमाखू नही है, आग नही है। यहाँ बाग मे पत्तियाँ बटोरकर जलाने, अलाव के बुझ जाने पर भी गर्म राख के पास दँदाने की गुजाइश नही है। उक्त उपकरण हटा देने से सारा अनुभव और समृद्ध हो गया है। होरी को, ठढ दूर करनेवाले उपकरणो के बिना ही, उस रात का, और जीवन के अनुभवो का सामना करना है।

पूस की रात का केंद्रीय बिंब यह है "हल्कू ने घुटनियो को गरदन मे चिपकाते हुए कहा ।" (*मानसरोवर*, भाग 1, पृ 158)। फिर थोडी देर बाद—"एक घटा और गुजर गया। रात ने शीत को हवा से धधकाना शुरू किया। हल्कू उठ बैठा और दोनो घुटनो को छाती से मिलाकर सिर को उसमे छिपा लिया, फिर भी ठढ कम न हुई। ऐसा जान पडता था, सारा रक्त जम गया है, धमनियो मे रक्त की जगह हिम बह रही है। उसने झुककर आकाश की ओर देखा, अभी कितनी रात बाकी है। सप्तर्षि अभी आकाश मे आधे भी नही चढे। ऊपर आ जायेगे तब कही सबेरा होगा। अभी पहर से ऊपर रात है।" (उप. , पृ. 160)। हवा से आग धधकाई जाती है, यहाँ विरोधी तत्व शीत को धधकाया गया है। इस साहसी प्रयोग से प्रेमचद ने शीत के घनत्व को पाठक के मन मे उतार दिया है। शेष उपमान फालतू-से है। रक्त के जमने, धमनियो मे हिम बहने से शीत के घनत्व मे वृद्धि नही होती। **पूस की रात** मे अँधेरा है, पर आसमान मे तारे है, **गोदान** की रात में घटाटोप अँधेरा है। हल्कू की रात काटे नही कटती, तारे देखकर सोचता है, भोर होने मे पहर-भर की देर है। होरी को केवल शीत का बोध होता है, वह अपने विचारो मे खो जाता है।

हल्कू के पास पुरानी गाढ़े की चादर है, होरी के पास पुराना 'बूढ़ा कंबल' है। सारी कविता इस कबल मे है; गाढ़े की चादर के आसपास कहीं कोई कविता नहीं

है । हल्कू ने घुटनायों को गरदन मे चिपकाया, कुछ देर बाद दोनो घुटनो को छाती से मिलाकर सिर को उसमे छिपा लिया । **गोदान** मे भी यह बिंब है, पर वहाँ भाषा, भाव, बिंब, सब एक साथ सवर्धित होकर नया अनुभाव बन गए है । "बेवाय फटे पैरो को पेट मे डालकर और हाथो को जाँघो के बीच मे दबाकर और कबल मे मुँह छिपाकर अपनी ही गर्म साँसो से अपने को गर्म करने की चेष्टा कर रहा था।" (*गोदान*, पृ 121)। केवल घुटनो कहने से काम न चलेगा, बेवाय फटे पैर है । घुटनो को गरदन मे चिपकाने, फिर छाती से मिलाने के बदले होरी ने बेवाय फटे पैरो को पेट में डालकर हाथो को जाँघो के बीच मे दबाया । **पूस की रात** मे कुत्ते की देह से दुर्गध आ रही थी पर हल्कू उसे अपनी गोद मे चिमटाए हुए था । यहाँ केवल होरी की गमं साँसे हैं, वह उन्ही से अपने को गर्माने का असफल प्रयास करता है । विडबना यह कि ऐसे मे धनिया ने पुकारा । होरी को लगा, "देवी प्रसन्न हो गयी, उसे वरदान देने आयी है", पर "इसके साथ ही इस बादल-बूँदी और जाडे-पाले मे इतनी रात गये, उसका आना शकाप्रद भी था।" (उप , पृ 122)। वरदानवाला भाव बहुत जल्दी तिरोहित हो गया । शकावाला भाव सही निकला । **पूस की रात** मे सबेरे जब हल्कू की नीद खुली, तब धूप फैल गई थी, मुन्नी पास खडी थी । कह रही थी—खेत चौपट हो गया । **गोदान** मे धनिया "इतनी रात गये" आई है, धूप फैलने का सवाल नही है, वह गर्भवती झुनिया को उसके सहारे छोडकर गोबर के भागने का समाचार लेकर आई है । यह खेत के चौपट होने से अधिक भयानक समाचार है । यहाँ से ट्रैजेडी नया मोड लेकर आगे बढेगी । **पूस की रात** प्रेमचद की श्रेष्ठ कहानियो मे है, उसके प्रभावशाली होने मे कोई सदेह नही है । पर यदि मुन्नी से धनिया की तुलना करे तो यह अवश्य लगेगा कि कहानी का फलक उसके चरित्र-विकास के लिए बहुत छोटा है । हल्कू का खेती का अनुभव उस एक रात की घटनाओ मे साकार हो गया है । पर हल्कू के सबधियो का पता नही है, उसकी अपनी किसी सतान का उल्लेख नही है । होरी मँडैया मे अकेला है, स्मृति मे टूटा और जुडा हुआ पूरा पारिवारिक परिवेश मौजूद है । "सब यह समझते है कि वह पुनिया को लूटे लेता है भोला कई बेर याद दिला चुके हैं कि कही कोई सगाई का डौल करो सोभा उससे कई बार कह चुका है कि पुनिया के विचार उसकी ओर से अच्छे नही हैं धनिया का दिल भी अभी तक साफ नही हुआ कोई बात कहनी होती है, तो सोना या रूपा से कहलाती है कल मुझसे कहा भी, तो सोना की साडी के लिए ।" (उप., पृ. 121)। परिवार का जो ताना-बाना इससे पहले प्रेमचद ने फैलाया था, उसे यहाँ उन्होंने समेट लिया है । कहानी मे ताना-बाना फैलाने की गुजाइश नही, समेटने का सवाल पैदा नही होता । किंतु इसके बिना होरी की कथा अधूरी रहेगी, उसके चरित्र का भरपूर विकास न होगा, वह कृषक-जीवन का प्रतिनिधि पात्र न बनेगा । **पूस की रात** रेखाचित्र है, भित्तिचित्र है **गोदान**, यद्यपि यहाँ जिन घटनाओं का उल्लेख किया गया है, उनका विवरण **पूस की रात** से कम

जगह घेरता है । किसी को रहस्य का ज्ञान प्रकृति का सौंदर्य देखकर होता है, हल्कू को यह ज्ञान पशु और मनुष्य की मैत्री के भौतिक स्पर्श से होता है । कुत्ते की देह से दुर्गंध आ रही थी, पर हल्कू उसे अपनी गोद में चिमटाए हुए "सुख का अनुभव कर रहा था," उसकी पवित्र आत्मा मे कुत्ते के प्रति "घृणा की गंध तक न थी", "इस अनोखी मैत्री ने जैसे उसकी आत्मा के सब द्वार खोल दिये थे और उसका एक-एक अणु प्रकाश से चमक रहा था ।" (*मानसरोवर*, भाग 1, पृ 159)। क्या किसी रहस्यवादी कवि की आत्मा के द्वार इस तरह कभी खुले होंगे! क्या किसी रहस्यवादी कवि का अणु-अणु, उसकी देह का अणु-अणु, इस तरह प्रकाश से चमका होगा ! प्रेमचद कही न कही भारतीय सतो की आत्मा से जुडे हुए हैं, और वह भारत के किसानो को भी उस आत्मा से जुडा हुआ देखते है । खास बात यह कि अणु-अणु से प्रकाश, सुख भोगते हुए नही, दुख सहते हुए फूटा था ।

जद ते माई जनमिया, कदे न जाना सुक्ख ।
डाली डाली मैं फिराँ, पाताँ पाताँ दुक्ख ।।

ऐसा दुख सहनेवाले कबीर ने आकाश से अमृत बरसते देखा था :

गगन गर्राज बरसे अमी, बादर गहर गँभीर ।
चहुँ दिसि दमकै दामिनी, भीजै दास कबीर ।।

और मृत्यु से पहले होरी—"यह उल्लास, यह गर्व, यह पुलक क्या हार के लक्षण है ! उसकी छाती फूल उठी है, मुख पर तेज आ गया है ।" (*गोदान*, पृ 362)।

मुक्तिमार्ग कहानी मे बुद्धू गडरिये पर गोहत्या का अपराध लगाया गया है । प्रायश्चित स्वरूप वह भीख माँगता, घूमता था । "गरीब जाकर द्वारों पर खडा होता और मुँह छिपाये हुए कहता—गाय की बाछी दिया बनवास ।" (*मानसरोवर*, भाग 3, पृ 250)। बुद्धू पर तो मिथ्या दोष लगाया गया है, हीरा ने सच ही गोहत्या की थी । स्वय होरी ने उसे नाँद के पास खडे देखा था । गोहत्या का अपराधी भाई हीरा उसके पैरो पर गिरा तो—"हीरा की कृतज्ञता मे उसके जीवन की सारी सफलता मूर्तिमान हो गयी है ।" (*गोदान*, पृ 362)। होरी किस महात्मा से कम है ? समाज के बहिष्कृतो को गले लगाना महात्माओ का काम है । होरी ने केवल हीरा को गले लगाया हो, भाई होने के नाते, सो बात नहीं है । इससे पहले वह गर्भवती विधवा झुनिया को, उसके बाद पंडित मातादीन की परित्यक्ता प्रेमिका चमारिन सिलिया को (बेशक धनिया के थोडे-से दबाव से) आश्रय दे चुका है ।

विधवा झुनिया और गोबर के अनब्याहे सबध को प्रेमचंद जायज मानते हैं **गोदान** मे । इससे पहले **अलग्योझा** कहानी मे वह विधवा मुलिया से उसके देवर, पति के सौतेले भाई, केदार का ब्याह कराने की घोषणा कर चुके हैं । सास से केदार के मन की बात सुनी तो—"वैधव्य के शोक से मुरझाया हुआ मुलिया का पीत बदन कमल की भाँति अरुण हो उठा । दस वर्षो मे जो कुछ खोया था, वह इसी एक क्षण में मानो ब्याज के साथ मिल गया । वही लावण्य, वही विकास, वही आकर्षण, वही

लोच।" (*मानसरोवर*, भाग-1, पृ. 34)। विधवा-विवाह के प्रस्ताव से प्रेमचद अत्यंत प्रसन्न हैं। **कलम का सिपाही** के अनुसार यह कहानी अक्तूबर 1929 की 'माधुरी' में छपी थी। यदि सन् 27 में प्रेमचद विधवा-विवाह के विरोधी हो गए थे तो यह उनका अस्थायी भाव मात्र था।

कलम का सिपाही के अनुसार **स्वामिनी** सितबर 1931 के 'विशाल भारत' मे छपी थी। इसमे स्वामिनी विधवा रामप्यारी अपने हलवाहे जोखू से पूछती है, अपनी सगाई क्यों नहीं कर लेते! वह जैसी मेहरिया चाहता है, उसके गुन बताना शुरू करता है। और अत मे—"मैं चाहता हूँ कि वह तुम्हारी तरह हो।" इस पर "प्यारी का मुख लज्जा से आरक्त हो गया। उसने पीछे हटकर कहा—तुम बडे नटखट हो! हँसी-हँसी मे सबकुछ कह गए।" (उप, पृ 140)। विधवा-विवाह के विरोध का भाव अस्थायी था, इसकी पुष्टि हुई।

अलग्योझा कहानी मे मुलिया के ससुर का नाम है भोला महतो। प्रेमचद शायद महतो शब्द का प्रयोग अहीरों के लिए ही करते हैं। **गोदान** के भोला महतो के पास बहुत-सी गाएँ हैं, पर यहाँ "भोला महतो गाय की चिंता ही मे चल बसे। न रुपये आये और न गाय मिली। मजबूर थे।" (उप, पृ 16)। किसान गाय रखना चाहता था, पैसों के अभाव मे रख नही पाता, मन की साध मन मे लिए ससार से विदा हो जाता है—यह सूत्र यहाँ मौजूद है। भोला के मरने के बाद उसका बेटा गले की मुहर बेचकर गाय ले आया। कोई उत्सव नही हुआ, गाय को घर आते दिखाया भी नही गया, कहानी मे गाय की कोई भूमिका नही है। लेकिन भोला महतो मरे थे गाय की चिंता करते हुए। गाय के दर्शन होते हैं **मुक्तिधन** मे। यह कहानी **अलग्योझा** से पाँच साल पहले अप्रैल, 1924 की 'माधुरी' मे (कलम का सिपाही के अनुसार) प्रकाशित हुई थी। "रहमान एक गरीब किसान था जमीदार ने इजाफा लगान का दावा दायर किया था घर मे बैलो के सिवा और कोई सपत्ति न थी। वह इस गऊ को प्राणो से भी प्रिय समझता था; पर रुपयो की कोई तदबीर न हो सकी, तो विवश होकर गाय बेचनी पडी।" (*मानसरोवर*, भाग-3, पृ 175-76)।

गाय का रूप इस प्रकार है: "गऊ मोहनी रूप थी। छोटी गर्दन, भारी पुट्ठे और दूध से भरे हुए थन थे! पास ही एक सुदर बलिष्ठ बछडा गऊ की गर्दन से लगा हुआ खड़ा था।" (उप., पृ. 174)। होरी की गाय—"ऐसा अच्छा डील-डौल, दोनों जून में छः सात सेर दूध, सीधी ऐसी कि बच्चा भी दुह ले। इसका तो एक-एक बाछा सौ-सौ का होगा।" (*गोदान*, पृ 9)। रहमान की गाय महाजन के पास पहुँच गई, इधर बेलारी के महाजन "झिंगुरी सिंह ने जबसे उसके द्वार पर गाय देखी थी, उस पर दाँत लगाये हुए थे।" (उप, पृ 104)। होरी झिंगुरी सिंह के हाथ गाय बेचने को तैयार भी हो जाता है। "यह तय किया गया कि जब दोनो लडकियाँ रात को सो जाएँ, तो गाय झिंगुरी सिंह के पास पहुँचा दी जाए।" (उप, पृ. 106)। पर उसी रात उसे जहर दे दिया गया।

भोला महतो की गाय रखने की साध, कर्ज के बोझ से दबा हुआ रहमान, रहमान की मोहिनी रूप गाय, रात को खेत मे बसनेवाला हल्कू, हल्कू की जुझारू पत्नी मुन्नी, देशभक्ति और क्रांति की बाते करनेवाले राजा साहब, फिर से विवाहित जीवन बिताने को तैयार विधवाएँ—ये सारे सूत्र **गोदान** मे प्रेमचद ने एक जगह बटोर लिए हैं। सन् 24 मे **मुक्तिधन** कहानी छपी; तब तक प्रेमचद होरी की गाय देख चुके थे। सन् 29 मे **अलग्योझा** कहानी छपी: तब तक उस किसान की बहुत हल्की झलक उन्हे मिल गई थी जो गाय लेने की साध पूरी किए बिना मर जाता है। साल-भर बाद **पूस की रात** छपी. तब गायवाले सूत्र से अलग खेती मे तबाह होता हुआ होरी और उसकी परिस्थितियो से समझौता न कर पानेवाली धनिया प्रेमचद के सामने थे। इन दो मूल सूत्रो को एक में जोडकर सन् 32 मे प्रेमचद ने **गोदान** की रचना आरभ की। कहानियो मे जो अनुभाव अस्फुट थे, वे यहाँ सवर्धित प्रस्फुटित हुए। हिंदी प्रदेश मे सभी जगह भूमिव्यवस्था एक-सी नही थी। प्रेमचद ने जहाँ ताल्लुकेदारो और बडे जमीदारो का चित्रण किया है, वहाँ उनकी कल्पना मे अवध जनपद रहा है। वह सन् 27 से 31 तक लखनऊ मे थे; इसी अवधि मे **गोदान** की रूपरेखा उनकी कल्पना मे उभर रही थी। वह परताबगढ और इलाहाबाद मे रह चुके थे और कई साल कानपुर मे रहे। कई जगह और कई तरह की अवधी उन्हे सुनने को मिली थी। **प्रेमाश्रम** मे कुछ पात्र जब-तब अवधी बोलते हैं, इसका उल्लेख हो चुका है। कुछ पात्र जब-तब कहानियो मे भी अवधी बोलते हैं। यथा **निमंत्रण** मे भडारी—"जौन कुछ होई, सब आय जाई।" इस वाक्य से आगे पीछे वह अवधि मिश्रित खडी बोली बोलता है : "चुपाई मारे बैठे रहौ": "घबड़ाये का नही होता। तुम्हारे सिवाय और कोई जिवैया नही बैठा है।" (*मानसरोवर*, भाग-5, पृ 31)। ऐसी ही मिश्रित भाषा का व्यवहार मोटेराम की पत्नी सोना करती है "जोहत जोहत आधी रात बीत गई, तब ई विपत्त फाट परी।" "ऐसे तो बडे विद्वान बनते रहै। अब काहे नाहीं बोलत बनत। मुँह मे दही जम गया, जीभै नही खुलत है।" (उप पृ. 32)। विशुद्ध अवधी मे भी "अरे हाँ, लरिकन से ई सब पँवारा से का मतलब। तुमका धरम परै मिठाई देव, न धरम परै न देव। ई का कि बाप का नाम बताओ तब मिठाई देव।" (उप , पृ. 33-34)। अमृतलाल नागर की लखनऊ केंद्रित आचलिकता की शुरुआत प्रेमचद सन् 26 मे कर चुके थे। **निमंत्रण** कहानी नवबर 1926 की 'सरस्वती' मे छपी थी (*कलम का सिपाही* के अनुसार)। मोटेराम शास्त्री लखनऊ के थे। उनकी पत्नी का कनौजी के रगवाली अवधी बोलना बहुत स्वाभाविक है।

नशा कहानी मे "एक ग्रामीण बोला—दफ्तरन माँ घुस पावत नाहीं, उस पै इत्ता मिजाज।" (उप., भाग-1,पृ. 123)। **कलम का सिपाही** के अनुसार यह कहानी फरवरी 1934 के 'चाँद' मे छपी थी। **गोदान** के लेखनकाल मे उन्होंने यह कहानी भी लिखी थी। **उपदेश** में एक नौजवान किसान अवधी मिश्रित भोजपुरी

बोलता है, ''भैया ! ऊ तहकीकात देखे गइल रहली । दारोगा जी सबका डाटत मारत रहे । देवी मुखिया बोला—मुख्तार साहब, हमका चाहे काट डारो मुदा हम एक कौडी न देबै । थाना कचहरी जहाँ कहो चलै के तैयार हईं । ई सुनके मुख्तार लाल हुई गयेन । चार सिपाहिन से कहेन कि एहिका पकरि कै खूब मारो, तब देवी चिल्लाय-चिल्लाय रोवे लागल, एतने मे सरमाँ जी कोठी पर से खट खट उतरेन और मुख्तार का लगे डाँटे । मुख्तार ठाढे झूर होय गयेन । दारोगा जी धीरे से घोडा मँगवाय के भागेन । मनई सरमाँ जी का असीसत चला जात है ।'' (उप , भाग-8, पृ 296) । इसी कहानी मे कई लोग भोजपुरी की जमीन से अलग हटकर अवधी बोलते है । शिवदीन—''भैया, आप जाके दारोगा जी को काहे नाही समझावत हौ । राम-राम ! ऐसन अधेर ! अरे भैया ! हमारे होस मे ई सब कोल्हू चलत रहे है । माघ-पूस मे रात-भर गाँव मे मेला लगा रहत रहा, पर जबसे इ नासिनी विद्या फैली है तब से कोऊका ऊख के नेरे जाय का हियाव नही परत है ।'' (उप , पृ 294-95) । रामदास—''शर्मा जी कोठा पर है और नीचू बेचारन पर मार परत है । ऊख बोये ढेर रहे मुदा दुष्टन के मारे बचै पावै । नू मानत नाही भैया, पर आँखन देखी बात है कि कराह के कराह रस जर गवा और छटाँकौ भर माल न परा । न जानी अस कौन मन्तर मार देत है ।'' (उप , पृ 295) ।

कलम का सिपाही के अनुसार यह कहानी मई 1917 के 'जमाना' मे छपी थी । भोजपुरी क्षेत्र, अवध और बुंदेलखड— हिंदी प्रदेश के इन तीन बडे जनपदो से प्रेमचद परिचित थे । बनारस से पूरब की तरफ कम गए थे, पछाँह की तरफ ज्यादा रहे थे । उनके उपन्यासो और कहानियो के पात्र एक तरह से अतर्जनपदीय है, और हिंदी प्रदेश से बाहर निकलकर भारतीय है । मन चगा तो कठौती मे गगा । प्रेमचद की गगा जिस कठौती मे बहती थी वह लखनपुर और बेलारी मे थी । उनकी कहानियो मे जहाँ-तहाँ पात्र जो अवधी बोलते है, हिंदी के अलावा जनपदीय उपभाषा के नाम पर प्रेमचद जो मुख्यत अवधी का व्यवहार करते हैं, उससे सिद्ध यह होता है कि सन् 17 से 36 तक प्रेमचद के सामने किसी न किसी रूप मे अवध का जनजीवन रहा है । खासतौर से, उनके कथा-साहित्य मे ताल्लुकेदारो और बडे जमीदारों से किसानो के सबधो का विवेचन करते हुए, इस तथ्य को ध्यान में रखना आवश्यक है । जाति-बिरादरी की कट्टरता जैसी अवध मे है, वैसी भोजपुरी क्षेत्र मे नही है । प्रेमचद ने यह कट्टरता अवध मे देखी थी और आजीवन उसकी आलोचना करते रहे । उन्हे घृणा का प्रचारक कहनेवाले विद्वान भी अवध के थे । प्रेमचद की उर्दू मे फारसीवाला तत्व लखनऊ की देन है, दिल्ली की उर्दू मे कभी इतनी ज्यादा अरबी-फारसी नही रही—यानी प्रेमचद के जमाने तक । उनकी हिंदी मे सस्कृतवाला तत्व बहुत कम है, उस हिंदी पर अवधी की छाप है । कथा कहनेवाले से अलग जहाँ मनोहर, बलराज, होरी, धनिया बाते करते हैं, वह हिंदी प्रेमचंद की अपनी सृष्टि है । अवधी के सस्कार उन्होंने शहरो की हिंदी मे उतार दिए हैं । यह

उनके सर्जनशील उपचेतन का सबसे बडा कमाल है । किसान शहर की हिंदी बोलते है, फिर भी देहाती बने रहते हैं । बहुतो ने किसानो पर लिखा है पर किसी के किसान पात्र वैसी हिंदी नही बोलते । इस हिंदी मे कुछ ऐसा है जो बदलनेवाला नही है, अग्रेजी की वाक्य-रचना से प्रभावित विद्वानो की भाषा इस हिंदी का मुकाबला नही कर सकती । यह हिंदी उनके उपन्यासो मे है, उनकी कहानियों में है । जैसे उपन्यासो के सदर्भ कहानियो मे हैं, वैसे ही प्रेमचद की हिंदी के सदर्भ अवधी में हैं ।

● ● ●

राजकमल से प्रकाशित
डॉ. रामविलास शर्मा की अन्य कृतियाँ

निराला की साहित्य साधना-1 (जीवन चरित)
निराला की साहित्य साधना-2 (कला तथा विचारधारा का विवेचन)
निराला की साहित्य साधना-3 (पत्र-सग्रह)
भारत के प्राचीन भाषा परिवार और हिंदी-1 (आर्यभाषा केंद्र और हिंदी जनपद)
भारत के प्राचीन भाषा परिवार और हिंदी-2 (इंडोयूरोपियन परिवार की भारतीय पृष्ठभूमि)
भारत के प्राचीन भाषा परिवार और हिंदी-3 (नाग-द्रविड-कोल और हिंदी प्रदेश)
महावीरप्रसाद द्विवेदी और हिंदी नवजागरण
आचार्य रामचंद्र शुक्ल और हिंदी आलोचना
भारतेंदु हरिश्चंद्र और हिंदी नवजागरण की समस्याएँ
भारतेंदु-युग और हिंदी भाषा की विकास-परपरा
प्रेमचंद और उनका युग
नई कविता और अस्तित्ववाद
भाषा और समाज
भारत की भाषा समस्या
परपरा का मूल्यांकन
भारत में अंग्रेजी राज और मार्क्सवाद (दो खंड)
मार्क्स और पिछड़े हुए समाज
घर की बात

राजकमल प्रकाशन
नयी दिल्ली पटना

ISBN-81-7178-013-0